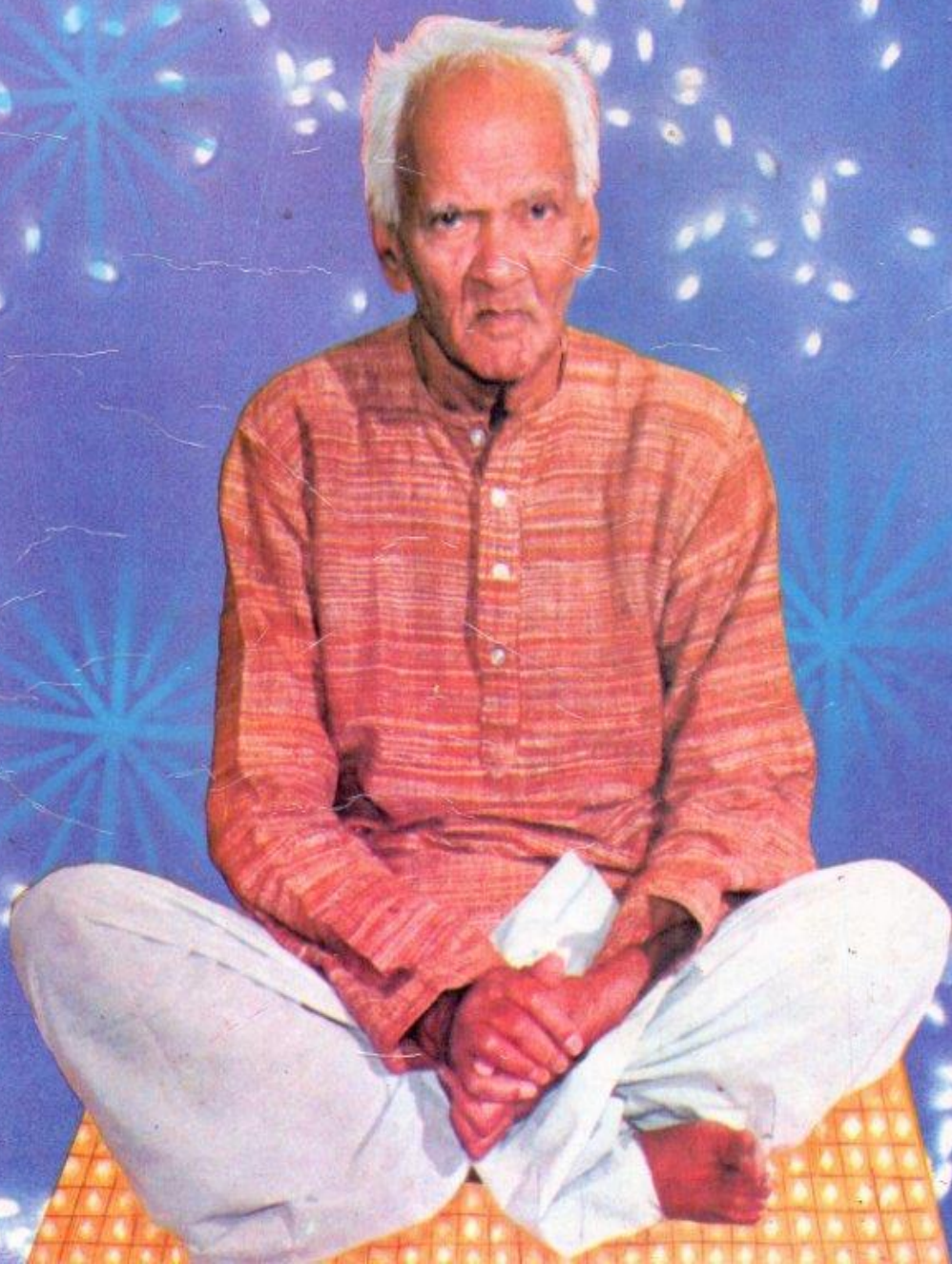


पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

गृहस्थ : एक तपोवन



पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

गृहस्थ : एक तपोवन



प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा



प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान

मथुरा-२८१ ००३



© सर्वाधिकार सुरक्षित



द्वितीय संस्करण १९९८

www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)



मुद्रक

जनजागरण प्रेस, मथुरा

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक

एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनो का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनसे भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात् कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट् परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा जा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनो के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनसे संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिससे कुछ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनसे घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अच्छूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनसे चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनसे प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनसे संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साधियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवाई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनसे भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनसे झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनसे मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनसे पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी पशुस्थिति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेंट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनसे प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनसे पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनसे अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारीयाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनसे परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रान्ति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

‘अखण्ड ज्योति’ पत्रिका लोगों के मनो को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित ‘गायत्री चर्चा’ स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनसे गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनसे महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलधाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व ‘युग निर्माण सत्संकल्प’ के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनसे अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनसे शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-बढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

□□□

भूमिका

‘धन्यो गृहस्थाश्रमः’ कहकर हमारे ऋषि-मुनियों ने चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही धन्य कहे जाने योग्य है, ऐसा श्रुति में कहा है। जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। वस्तुतः किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास के लिए परिवार संस्था का स्वस्थ, समर्थ व सशक्त होना जरूरी है। यह सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है। बिना किसी बाह्य दण्ड, भय या कानून के चलने वाली यह एकमात्र ऐसी संस्था है जो आनुवंशिक संस्कारों एवं पारस्परिक विश्वास पर निर्भर रह, अविच्छिन्न स्थिति में न जाकर सतत गतिशील रहती आयी है। बिना स्वार्थों का त्याग किए, कष्ट सहन किए सहजीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती एवं त्याग, सहिष्णुता, सेवा की धुरी पर यह संस्था मात्र भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है एवं सदा रहेगी।

परमपूज्य गुरुदेव ने गृहस्थाश्रम को समाज को सुनागरिक देने की खान मानते हुए इसे एक आदर्श समाज की अनिवार्य आवश्यकता माना है। मनुष्य की सहज वृत्ति कामवासना को पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठा में परिवर्तित कर कामोपभोग को एक सांस्कृतिक संस्कार बनाकर सामाजिक मूल्य का रूप देना गृहस्थाश्रम की ही देन है। गृहस्थाश्रम कामोपभोग का प्रमाण पत्र नहीं, अपितु संयम-ब्रह्मचर्य मूलक होने का प्रतीक माना गया है।

गृहस्थ तप और त्याग का जीवन कहा गया है। इस धर्म के परिपालन के लिए किया गया कोई भी प्रयास किसी तप से कम नहीं है। गृहस्थ में स्वयं मनुष्य को अपनी वृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। चिकित्सा, भोजन, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सब प्रबन्ध करने हेतु अपना पेट काट कर सारी व्यवस्था करनी होती है, एक जिम्मेदारी से भरा जीवन जीना पड़ता है। सचमुच गृहस्थाश्रम एक यज्ञ है, जिसमें प्रत्येक सदस्य उदारता पूर्वक सहज ही एक दूसरे के लिए कष्ट सहते हैं, एक दूसरे के लिए त्याग करते हैं। गृहस्थाश्रम समाज के संगठन, मानवीय मूल्यों की स्थापना, समाजनिष्ठा, भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक, मानसिक विकास का भी क्षेत्र है एवं इस प्रकार समाज के व्यवस्थित स्वरूप का मूलधार है।

श्रेष्ठ संतान, सुसंतति देने की खान गृहस्थ धर्म को ही माना गया है। भक्त, ज्ञानी, संत, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पण्डित गृहस्थाश्रम से ही निकल कर आते हैं। उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण, ज्ञानवर्धन गृहस्थाश्रम के बीच ही हो पाता है। परिवार के बीच ही महामानव प्रशिक्षण पाकर निकलते व किसी समाज के विकास का निमित्त बन पाते हैं। इसी कारण इस संस्था के महत्व को सर्वोपरि बताते हुए पूज्यवर वाङ्मय के इस खण्ड में दाम्पत्य जीवन के निर्वाह, सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत सिद्धान्त, संतानों की संख्या नहीं स्तर बढ़ाया जाय तथा दाम्पत्य जीवन को एक स्वर्ग जैसा मानते हुए वैसा जीवन जिया जाय, इन सभी पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं।

आज इस संस्था में विघटन पैदा होता दीख पड़ता है। मध्यकाल में आई कुरीतियों के कारण कच्ची उम्र में विवाह, छूँछ हो गए जीवनी-शक्ति विहीन शरीरों द्वारा कमजोर संततियों को जन्म, लड़का-लड़की में भेद के कारण संतानों की बढ़ती संख्या, पारस्परिक मनोमालिन्य व द्वेष के कारण नारकीय वातावरण, रूप-सज्जा व कामुकता पर अधिक ध्यान होने से विवाहेतर सम्बन्धों में अधिकता, यौन स्वच्छन्दता से लेकर पति-पत्नी दोनों की निजी मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के कारण बोझ बन गया गृहस्थी का संसार-यह कुछ ऐसा विकृत स्वरूप है जिस पर आज सर्वाधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। बढ़ती आधुनिकता व फैशन फिजूलखर्ची की होड़ में अधिकाधिक परिवार संस्कार विहीन, दरिद्र एवं सुख-शांति से विहीन होते देखे जा सकते हैं। कैसे वह पुरुषार्थ किया जाय कि संस्कारों को पुनर्जीवित करने वाली यह संस्था पुनः अपना पूर्व वाला स्वरूप ले सके, यह आग युगपुरुष पूज्य गुरुदेव के अंतःकरण में सतत धधकती रही। उसी आग को सुव्यवस्थित रूप देते हुए उनसे वाङ्मय के इस खण्ड में गृहस्थ रूपी तपोवन के मानदण्ड बताए एवं व्यावहारिक तथ्य समझाए हैं।

परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि दाम्पत्य प्रेम एवं सहयोग की सफलता में अब पुरुष को पहल करनी पड़ेगी, क्योंकि चित्रातीत में पुरुषों के अंतःपुरों-हरमों में लाखों स्त्रियों ने उत्पीड़न सहे व आसू बहाते दिन बिताए हैं। वे

सावित्री . जगदीश प्रसाद

लिखते हैं कि अब पुरुषों को ही आगे आना होगा, प्रायश्चित्य करना होगा ताकि इतने लम्बे समय तक शोषण सहती आ रहीं स्त्रियाँ न्याय पा सकें। परमपूज्य गुरुदेव का नारी जाग्रति अभियान पूर्णतः इसी पर टिका है कि नर व नारी एक ही गाड़ी के दो पहियों की तरह एक साथ मिलकर दायित्व निर्वाह करते हुए एक सफल समर्थ गृहस्थ संस्था का निर्माण कर प्रजातंत्र को सशक्त व रूढ़िवादिता-प्रतिगामिता से मुक्त बनाएँ।

आज समाज में अविवाहित कन्याओं की उम्र भी बढ़ती जाती है एवं संख्या भी। सुयोग्य जोड़ियाँ न मिल पाने के कारण अन्तर्जातीय विवाह के लिए मानसिकता न बन पाने के कारण विवाह प्रक्रिया पश्चिम की तरह एक खिलवाड़ बनती चली जा रही है। एक भारी दायित्व जिसे माना गया है यदि वह कामवासना की पूर्ति का एक माध्यम मात्र बन जायगा तो समाज जीवित कैसे रहेगा-जिम्मेदार नागरिक कहाँ से पैदा होंगे? यह सभी ज्वलन्त प्रश्न 'गृहस्थ योग' रूपी इस शोध प्रबन्ध स्तर के खण्ड में रखे व उनके समाधान दिए गए हैं। यह खण्ड आज के टूटते समाज के नैतिक मूल्यों पर करारी चोट कर सामयिक समाधान देता है तथा एक ऐसी व्यवस्था की बात करता है जिससे परिवार संस्था सशक्त, समर्थ बने एवं राष्ट्र पुनः अपनी गौरव-गरिमा को प्राप्त हो सके।

—ब्रह्मवर्चस



विषय-सूची

१. विवाह और दाम्पत्य जीवन का निर्वाह

विवाह खिलवाड़ नहीं, भारी दायित्व है	१.१
विवाह इस प्रकार हो	१.३
विवाह दिवसोत्सव कैसे मनावें ?	१.६
परिवार संस्था का सुसंचालन	१.१४
परिवार का मूल—दाम्पत्य-जीवन	१.१६
पतिव्रत धर्म की गरिमा	१.१९
पत्नीव्रत-धर्म की आवश्यकता	१.२२
दाम्पत्य जीवन आदर्शों पर आधारित रहे	१.२४
दाम्पत्य जीवन का निर्वाह	१.२७
समय से पूर्व विवाह करने की विवेकहीनता	१.२७
योग्यता संवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक	१.२८
पारस्परिक आत्मीयता का व्यवहार हो	१.२८
रूप-लावण्य को प्रधानता न मिले	१.२८
विवाह पूर्व की भूलों को अप्रकट ही रखें	१.२९
एक-दूसरे का सम्मान करें	१.२९
पति का कर्तव्य	१.३०
प्रजनन की विडम्बना	१.३१
पुरुषों का दायित्व	१.३१
अर्धांग को समुन्नत बनाने में लाभ-ही-लाभ है	१.३२
उत्पीड़न के विरुद्ध आन्दोलन हो	१.३२
विवेक और साहस की आवश्यकता	१.३३

२. सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत आधार

दाम्पत्य-जीवन में परस्पर समर्पण ही सफल होता है	२.१
पत्नी अपने पति की वास्तविक सहायक हो	२.३
इतने व्यस्त न रहें कि दाम्पत्य जीवन नीरस बन जाय	२.५
दाम्पत्य जीवन का आचार संहिता	२.६
संतुलित दाम्पत्य जीवन और पत्नी की भूमिका	२.८
दाम्पत्य-जीवन ढोयें नहीं सँजोयें	२.१०
सहधर्मिणी के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहिए	२.१२
धर्मपत्नी की उपेक्षा न करें	२.१४
सफल दाम्पत्य के सुदृढ़ आधार	२.१५
दाम्पत्य-जीवन में सार्थकता की समान कसौटी	२.१६
पारिवारिक सुख-शान्ति का मार्ग	२.१८
सुखी दाम्पत्य-जीवन इस तरह बनता है	२.२०
पति-पत्नी परस्पर सामंजस्य रखें	२.२२
दाम्पत्य-जीवन इस तरह निभता है	२.२३
पति-पत्नी—ब्रह्म और प्रकृति	२.२५
पति-पत्नी सच्चे मित्र बनकर रहें	२.२६

पति-पत्नी के बीच स्नेह, सहयोग और सम्मान	२.२८
सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत—आधार	२.२९
माता-पिता बनने से पहले श्रेष्ठ दम्पति बनें	२.३१
सफल दाम्पत्य के लिये पूर्व तैयारी आवश्यक	२.३४
दाम्पत्य-जीवन में आदर्शवादिता का समावेश	२.३६
दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए	२.३६
दाम्पत्य-जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ	२.३८
दाम्पत्य-जीवन सफल कैसे बने ?	२.४०
पति होने का अहंकार त्यागिये	२.४२
मधुर दाम्पत्य के मूल आधार	२.४४
दाम्पत्य-जीवन की सफलता सघन प्रेम पर निर्भर	२.४६
सुशिक्षितों का दाम्पत्य जीवन	२.४७
दाम्पत्य-जीवन के स्नेह-सूत्र टूटने न पायें	२.४७
छोटी-छोटी बातें बड़ा रूप ले लेती हैं	२.४८
दाम्पत्य-जीवन में प्रसन्नता अशुष्ण रहे	२.५०
दाम्पत्य प्रेम का सन्तति पर प्रभाव	२.५०
दाम्पत्य-जीवन की सफलता के रहस्य	२.५२
दाम्पत्य-जीवन का सुख प्राप्त कीजिए	२.५३
दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मार्ग	२.५४
पत्नी सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बने	२.५५
पति-पत्नी के सहजीवन के आधार	२.५७
दाम्पत्य-जीवन और प्रेम	२.५९
दाम्पत्य-जीवन की सफलता	२.६१
दाम्पत्य-जीवन की साधना के मन्त्र	२.६२
दाम्पत्य प्रेम स्थिर कैसे रहे ?	२.६३
दाम्पत्य-जीवन में सुख-सृष्टि कैसे हो ?	२.६५
पति ही नहीं, पति के कर्तव्य भी हैं	२.६७
दाम्पत्य-धर्म की मर्यादाएँ समझें	२.६९
सुखी दाम्पत्य-जीवन इस प्रकार बनता है	२.७०

३. दाम्पत्य जीवन की असफलता—कारण और निवारण

दाम्पत्य जीवन की असफलता का मूल कारण	३.१
पत्नी को दासी नहीं, साथी मानिये	३.३
दाम्पत्य जीवन में दुराव की दूरार	३.४
विवाह के आदर्श और दाम्पत्य अपराध	३.५
दाम्पत्य जीवन की असफलता का अभिशाप	३.८
अहंकार और दाम्पत्य प्रेम में एक रह सकता है, दोनों नहीं	३.९
भौतिकता की बाढ़ मारकर छोड़ेगी	३.११
असफल दाम्पत्य जीवन—कारण और निवारण	३.१२
पत्नी-अनुवर्तिनी नहीं सहधर्मिणी	३.१४

पतिव्रत ही नहीं, पत्नीव्रत भी निभाया जाय
 बुद्धिवाद के इस अभिशाप से
 समाज को मुक्ति दिलाये
 दाम्पत्य जीवन का सुखद निर्वाह
 दाम्पत्य जीवन और सहचरत्व
 दाम्पत्य प्रेम : छोटा स्वर्ग सोपान
 पति के विकास में पत्नी का सहयोग
 सुखी दाम्पत्य के स्वर्णिम सूत्र
 पति और पत्नी का सम्बन्ध
 धर्मपत्नी के प्रति पति के कर्तव्य
 पति-पत्नी परस्पर मन-मुटाव से बचें
 सफल दाम्पत्य—सघन-आत्मीयता पर निर्भर
 दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावें
 दाम्पत्य जीवन की आधारशिला
 मर्यादा टूटी नहीं, औचित्य छूटा नहीं
 सफल दाम्पत्य जीवन में पत्नी की भूमिका
 लोकमान्य तिलक तथा उनकी धर्म-पत्नी
 एक और ताजमहल
 दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने वाले
 कुछ स्वर्ण-सूत्र
 दाम्पत्य-जीवन की सफलता का रहस्य
 गृहस्थाश्रम की सार्थकता
 लोकेषणा की हेय लालसा
 वितेषणा की डाकिन
 नर एवं नारी एक-दूसरे के सहचर
 प्रेम की पावन पाठशाला
 कौस्तुभ मणिव्रत-‘कौस्तुभ दम्पति’
 दाम्पत्य सुख का प्रमुख आधार—विवेकशीलता
 हमारे सम्बन्ध—स्नेह-सौहार्द्रपूर्ण कैसे रहें ?
 बड़ी उम्र में पिता बनना चाहिए
 काम के साथ शारीरिक वासनाएँ
 जोड़ना अहितकर
 सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (१)
 सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (२)
 सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (३)
 सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (४)
 सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार
 दाम्पत्य जीवन में आनन्द की सृष्टि
 कण-कण जोरे मन जुरे
 गृहस्थ योगी
 दाम्पत्य जीवन एक आध्यात्मिक योग साधना
 यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः
 गृहस्थ में संन्यास
 गृहस्थ में रहकर भी मुक्ति लाभ संभव है

३.१६

३.१८

३.१९

३.२१

३.२३

३.२४

३.२५

३.२६

३.२७

३.२८

३.३०

३.३१

३.३३

३.३४

३.३४

३.३६

३.३९

३.३९

३.४२

३.४४

३.४६

३.४८

३.५१

३.५२

३.५३

३.५४

३.५६

३.५९

३.६०

३.६२

३.६४

३.६६

३.६८

३.७०

३.७१

३.७३

३.७५

३.७६

३.७७

३.७८

३.८०

४. संतान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ायें

४.१

सन्तान न होना-कोई दुर्भाग्य तो है नहीं

४.१

क्या सन्तान न होना दुर्भाग्य है ?

४.२

सन्तानहीन होना एक सौभाग्य भी

४.४

सन्तान के लिए अधीरता क्यों ?

४.६

एक सार्थक उदाहरण

४.८

कन्या की उपेक्षा न हो

४.९

पुत्र और कन्या की तुलना

४.११

सन्तानोत्पादन हेतु इतनी आतुरता क्यों ?

४.१४

जन्म-दर आखिर कैसे घटे ?

४.१५

सन्तान की अविवेकपूर्ण आकांक्षा

४.१६

कामुकता की कुदृष्टि

४.१८

पतन के मार्ग पर तो न चलें

४.१९

संख्या नहीं; समर्थता जिन्दा रहेगी

४.२०

अमर्यादित प्रजनन की विभीषिका

४.२२

हम सबको ले डूबेगी

४.२२

निरंकुश भोगवाद की परिणति

४.२४

यौन स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाना ही होगा

४.२६

यौनाचार और प्रजनन का दायित्व

४.२८

प्रजनन का दायित्व लेने से पूर्व कई बार सोचें

४.२९

विवाह और प्रजनन की नई समीक्षा

४.३१

सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया जाय

४.३३

सन्तानोत्पादन की वज्रमूर्खता

४.३४

अन्धाधुन्य प्रजनन हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण

४.३६

हर प्रकार घाटा ही घाटा

४.३७

सन्तानों की संख्या बढ़ाना व्यक्ति

४.३८

और समाज के लिए घातक है

४.३८

अनियंत्रित प्रजनन-सर्वनाश का आह्वान

४.४०

संयम ही हमें नष्ट होने से अब बचायेगा

४.४२

सन्तान सीमित ही रखें

४.४३

सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व समझ-बूझ

४.४५

कर ही उठाये

४.४५

अधिक बच्चे उत्पन्न कर सिर दर्द न बढ़ाए

४.४७

अभिभावक हैं, तो उत्तरदायित्व भी निभाइये

४.४८

उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम

४.५०

कामुकता का यह अतिवाद और भी हानिकारक

४.५२

धरती खिसक जाय तो आश्चर्य नहीं

४.५३

बदलती परिस्थितियों में विचार भी बदलें

४.५३

सन्तान की लालसा एक मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता

४.५५

सन्तानहीनता की स्थिति से परेशान न हों

४.५७

अधिक बच्चे उत्पन्न करना सामाजिक अपराध है

४.५९

संतान बढ़ाना-दुःख-दारिद्र्य को न्यौत बुलाना	४.६०	गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान है	५.२
सन्तान के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ करें	४.६१	दाम्पत्य जीवन की सफलता	५.५
संतान न होना ईश्वर की कृपा ही समझिये	४.६४	दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने वाले स्वर्ण सूत्र	५.७
राष्ट्रीय स्वास्थ्य और सन्तानोत्पत्ति	४.६५	सौन्दर्य की निस्सारता	५.९
समय रहते संभलने की समझदारी	४.६६	वैवाहिक असफलता के कारण	५.१०
सन्तानोत्पादन आवश्यक न माना जाए	४.६७	अपनी पत्नी से शिष्ट व्यवहार	५.११
अमर्यादित प्रजनन की समस्या और समाधान	४.७०	दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार	५.११
जन्मदर घटाने में इस प्रकार योगदान दीजिए	४.७१	झगड़ों का निपटारा शीघ्र करें	५.१३
अवांछनीय प्रजनन से हाथ खींचें	४.७२	दाम्पत्य मनोरंजन	५.१६
अधिक सन्तान या जान की आफत	४.७४	उपयोगी मनोरंजन	५.१७
सुसंतुलित परिवार-सुखी परिवार	४.७४	मित्रता की आवश्यकता एवं उसका निर्वाह	५.१९
भगवान ने दिया बेटा	४.७५	दाम्पत्य जीवन का सुख यों प्राप्त करें	५.२०
बच्चे यों न बढ़ाइये कि उन्हें		हमारे उत्सव तथा त्यौहार	५.२१
पालते-पालते मर जाना पड़े	४.७६	बचे हुए समय का उपयोग कैसे होना चाहिए ?	५.२२
सन्तान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ाइये	४.७७	शान्तिमय गृहस्थ जीवन	५.२४
अधिकारी व्यक्ति ही सन्तान उत्पन्न करें	४.७९	महापुरुषों का दाम्पत्य-जीवन	५.२६
व्यभिचार से दूर रहो	४.८१	परिवार छोटा रहे	५.२७
वरदायी आविष्कार	४.८३	अपने साथी की सुविधा-सामर्थ्य का ध्यान रखिए	५.३०
संतति नियमन के कुछ सुलभ उपाय	४.८४	दाम्पत्य प्रेम का सन्तान पर प्रभाव	५.३१
असह्य भार, बड़ा परिवार, सीमित			
सन्तान—सदा बलवान्	४.८६	६. गृहस्थ एक तपोवन है	६.१
संयम बनाम समर्थता बनाम सुनिश्चित जीवन	४.८७	घर-गृहस्थी मायाजाल या साधना भूमि	६.१
सन्तान की संख्या नहीं, उत्कृष्टता बढ़ायें	४.८८	आश्रम व्यवस्था पर एक दृष्टि	६.३
बालकों को जन्म ही न दें—उनका		ऋषियों की गृहस्थ-साधना-गृहस्थ योग	६.५
निर्माण भी करें	४.८९	गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व साधना से कम नहीं	६.८
सन्तानोत्पादन—भारी दायित्व	४.९०	गृहस्थ धर्म तुच्छ नहीं है	६.१०
सुसंतति प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त	४.९२	धन्यो गृहस्थाश्रमः	६.१२
उत्तम संतान कैसे प्राप्त हो ?	४.९३	ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण	६.१४
अभ्यागत आत्मा के स्वागत की तैयारी	४.९५	अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा	६.१७
अभीष्ट सन्तति कैसे जन्मे	४.९६	गृहस्थ की समुन्नति के लिए समय का सदुपयोग	६.१७
मनचाही सन्तान प्राप्त करें	४.९७	सद्गृहस्थ और असद्गृहस्थ में अन्तर	६.१८
परिष्कृत और समुन्नत पीढ़ियाँ ही		गृहस्थ में वैराग्य	६.२१
नवयुग का आधार बनेंगी	४.९८	दृष्टिकोण का परिवर्तन	६.२२
दाम्पत्य जीवन का स्वर्ग	५.१	भोग से योग तक	६.२३
मनुष्य अपने आप में अपूर्ण है	५.१	गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र	६.२५
गृहस्थ धर्म एक योग-साधना	५.२	गृहस्थ योग से परम पद	६.२८



विवाह और दाम्पत्य जीवन का निर्वाह

विवाह खिलवाड़ नहीं, भारी दायित्व है

सड़े-गले विचारों वाले दकियानूसी समुदाय में यह अपेक्षा की जाती है कि विवाह के उपरान्त जल्दी ही सन्तान होनी चाहिए। उसे सौभाग्य समझा जाता है। विवाह हुए कुछ समय निकल जाये और सन्तान न हो तो चिन्ता की जाने लगती है। वधू को बन्ध्या कहकर उस पर दोषारोपण का सिलसिला चल पड़ता है। दूसरा विवाह कर लेने की बात सोची जाने लगती है। खाली गोद नारी को अभागी कहा जाने लगता है। जबकि ऐसे अधिकांश मामलों में पुरुष की दुर्बलता ही आधारभूत कारण होती है। लड़कों में बचपन से ही कुटेबें पड़ जाती हैं और वे अपना पुरुषत्व खो बैठते हैं। ऐसी दशा में पुरुष की हीनता का दोष नारी के सिर पर मढ़ने का रिवाज ही व्यापक होते देखा गया है। जिनके जल्दी-जल्दी कई बच्चे हो जाते हैं उन्हें भाग्यवान कहा जाता है। लड़के हुए तो सोचा जाता है कि कमाई से घर भरेगा। लड़कियाँ होने लगे तो लड़कों की प्रतीक्षा में उस संदर्भ में और भी जल्दबाजी के प्रयोग किये जाते हैं। कई बार तो इसी प्रयोग में ढेरों लड़कियों से घर भर जाता है और उनके लिए जननी को लज्जित-तिरस्कृत किया जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या विवाह के उपरान्त जल्दी ही बच्चे होने चाहिए और उनकी संख्या बढ़ती ही रहनी चाहिए ? समय को देखते हुए यह चिन्तन सर्वथा अनुपयुक्त ही कहा जा सकता है। ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व संसार भर में मनुष्य की जनसंख्या पाँच करोड़ के करीब थी। अब वह बढ़कर ६०० करोड़ हो गयी है। यह बढ़ोतरी यदि इसी चक्रवृद्धि गति से चलती रही तो अगले पचास वर्ष में यह गणना १००० करोड़ तक पहुँच सकती है।

वर्तमान स्थिति का पर्यवेक्षण करने से पाया गया है कि जितने मनुष्य अभी हैं उनके लिए खाद्य पदार्थ कम पड़ रहे हैं। ईंधन बेतहाशा घट रहा है। लकड़ी, कोयला, तेल, बिजली आदि को अधिक मात्रा में उपलब्ध किये जाने की पग-पग पर आवश्यकता अनुभव की जाती है। बढ़ती हुई आबादी के लिए रोजी, शिक्षा, चिकित्सा,

मकान आदि सभी जीवनोपयोगी वस्तुएँ कम पड़ती जाती हैं। अनुमान है कि यह संकट अगले पचास वर्ष में अत्यधिक भयावह रूप धारण कर लेगा। कारखानों की बढ़ोतरी से हवा और पानी विषाक्त होता चला जाता है। खाद्य के साथ खनिजों की भी कमी पड़ेगी। धरती का जितना दोहन संभव है, उसकी चरमसीमा पर जा पहुँचा है। जनसंख्या बढ़ते रहने पर दुर्भिक्ष पड़ेगा। बेरोजगारी, बीमारी, अशिक्षा का अनुपात बढ़ेगा। ऐसी दशा में प्रगति के लिए किये जाने वाले सभी प्रयास ओछे पड़ते जायेंगे। मनुष्य जाति क्रमशः मुसीबत के अधिक गहरे दलदल में फँसती जायगी।

विज्ञानों की पुकार है कि अब धरती का बोझ न बढ़ाया जाय। सन्तानोत्पादन रोका जाय। इस कारण जो भारी विपत्ति बढ़ रही है उसे यहीं पर विराम दिया जाय। कुछ वर्षों तक सन्तानोत्पादन को समाज द्रोह घोषित किया जाय। जो समझाने पर नहीं समझते उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाय। जिस भी उपाय से प्रजनन रुकता हो उसे काम में लाया जाय। परिवार नियोजन की आवश्यकता जनसाधारण को समझाने के लिए सरकारें विपुल धन खर्च कर रही हैं, पर अनगढ़ों की कमी नहीं। वे अपने लिए स्वयं विपत्ति मोल लेने से बाज नहीं आ रहे हैं। यह भारी चिन्ता का विषय है और भयानक दुर्गति की संभावना का भी। लगता है कि नासमझी की विकल्प प्रताड़ना ही हो सकती है। भले ही वह शासन द्वारा, समाज द्वारा या प्रकृति द्वारा दी जाय।

कुछ समय पहले यह समझा जाता था कि विवाह एक अनिवार्य आवश्यकता है। जिसे हर किसी को करना चाहिए। अयोग्य लड़कियों और लड़कों को भी किसी प्रकार इस बन्धन में बाँध दिया जाता था। विवाह का अर्थ यौनाचार की खुली छूट भी है। यौनाचार का प्रतिफल है सन्तानोत्पादन। यह क्रम चल पड़े तो फिर बहुत समय तक चलता ही रहता है। एक-एक जोड़ा कई-कई सन्तानें जनता है। उनकी संख्या कई बार तो दस बारह तक पहुँचती है। औसत प्रजनन चार-पाँच तक तो होता ही है। इनमें से दो-तीन मर भी जायें तो भी हर पचास वर्ष में आबादी दूनी हो जाती है और फिर वह चक्रवृद्धि दर से बढ़ती है। इनमें से अधिकांश अनगढ़ और अशिक्षित होते हैं। उनके शरीर के लिए उपयुक्त

१.२ गृहस्थ एक तपोवन

आहार, जल, हवा और मस्तिष्क के लिए शिक्षा संगति का प्रबन्ध न होने पर भी उस उत्पादन को अनगढ़ होना ही चाहिए।

इस जमाने में बच्चा पालना हाथी खरीदने के समान है। उसे स्वस्थ और सुयोग्य बनाने के लिए भरण-पोषण की बहुमुखी सुविधाएँ चाहिए। पर अकेली जननी उन सब को घेर-बटोर कर बैठती-सोती है। तो सबके लिए समुचित स्थान, वस्त्र, आहार, शिक्षा, चिकित्सा, खेल, विनोद, संगति आदि का प्रबन्ध न के बराबर हो पाता है। ऐसी दशा में वे किसी प्रकार जीते-मरते घास-फूस की तरह बढ़ते और बनते-बिगड़ते रहते हैं। सही रीति से पालन करने के लिए बच्चे पर भी उतना ही खर्च आता है जितना हाथी बाँधने पर। जिनके पास अपने पत्नी के परिवार के निर्वाह के उपयुक्त साधन नहीं वे किस प्रकार इस बढ़े हुए नये उत्पादन की व्यवस्था करें ? कैसे उन्हें सुयोग्य, सुविकसित बनायें ?

हर व्यक्ति का विवाह-हर विवाह में ढेरों खर्च, हर दम्पति द्वारा ढेरों प्रजनन—हर बच्चे की ढेरों आवश्यकताएँ—उन्हें जुटाने के लिए साधनों का अभाव-यह समूचा गोरखधंधा ऐसा है जिसके फलस्वरूप अगणित प्रकार के अभाव और संकट उत्पन्न होते हैं। उन्हे सुलझाने का जितना प्रयत्न बन पड़ता है उससे अनेक गुनी नई आवश्यकताएँ सामने आती हैं। वे अपूर्ण रहने पर अभिभावकों के लिए ही नहीं समूचे विश्व के लिए विपत्तियों के घटाटोप बनकर घुमड़ती-बरसती हैं। इस जंजाल से निपटने के लिए कुपित प्रकृति ऐसे भयंकर उपाय करती है जिनके कारण सर्वत्र हाहाकार ही उमड़ता है। शान्ति संतुलन बुरी तरह खतरे में पड़ जाता है।

इस अनसुलझी गुथी को सुलझाने का एक ही उपाय है कि विवाहों की वर्तमान परिपाटी, प्रक्रिया और परिणिति पर रोक लगायी जाय। असमर्थ नर-नारी विवाह न करें। जो इसके बिना न रह सकें वे सन्तानोत्पादन न करें। परिणिति को समझें। गर्भ धारण करने पर नारी की जीवनी शक्ति निचुड़ती है। इसके अतिरिक्त उसे अपना रक्त दूध के रूप में बच्चे को पिलाना पड़ता है। यह प्रथम चरण है जिसकी विपत्ति जननी को ही खोखला बना देती है। अब पिता की बारी आती है, उसे भरण-पोषण की सामग्री जुटानी पड़ती है। शिक्षा, चिकित्सा, शादी, रोजी आदि की एक से एक भारी व्यवस्था करनी पड़ती है। यह सब जुटाने में उसका भी कचूमर निकल जाता है। जुगाड़ बिठाने में कमर टेढ़ी हो जाती है। ईमानदारी, बेईमानी का अन्तर भुलाकर जैसे भी, जो करते बन पड़े करना पड़ता है। इसके बाद भी असंस्कृत बालक स्वयं जिस प्रकार दुःख पाते, अभिभावकों को दुःख देते और समाज में व्यापक अनाचार फैलाते हैं, उसे देखते हुए एक स्वर में यही कहा जा सकता है कि कामक्रीड़ा के

लिए किये गये विवाह इतने अलाभदायक होते हैं कि उन्हें नरक भुगतने के समतुल्य कहा जा सकता है।

भगवान ने जिन्हें आगा-पीछा सोचने की सामर्थ्य नहीं दी है उन विमूढ़ों को क्या कहा जाय ? वे तो अंधे होकर चलते हैं। जगत गति उन्हें व्यापती ही नहीं। मक्खी-मच्छरों की तरह पेट प्रजनन में निरत रहते हैं और निरर्थक जीते निरर्थक मरते हैं। विवेकहीन-अदूरदर्शी जो भी कर गुजरें उसे कम ही मानना चाहिए।

इस संदर्भ में उच्चस्तरीय विज्ञ वर्ग में एक ऐसी योजना पर विचार किया जा रहा है कि साँपों का सफाया तो न किया जाय। अपितु उन सुन्दर एवं उपयोगी प्राणी को विषहीन बनाकर जीवित रहने दिया जाय। तात्पर्य यह है कि विवाह तो होते रहे पर वे बच्चे पैदा न करें, परिवार नियोजन इस कार्य पद्धति का नाम है। इस योजना पर प्रायः सभी विचारशील देश और वर्ग अत्यन्त गंभीरतापूर्वक चिन्तनरत हैं। इस निमित्त कितने ही उपकरण विनिर्मित किये गये हैं, पर उनके आधे-अधूरे प्रयोग किन्हीं विरलों ही द्वारा किये जाने के कारण सफलता नाममात्र को ही मिल रही है। विभाग अपनी जगह काम करता रहता है और प्रजनन अपनी रीति से अपनी राह पर चलता रहता है। समझदार लोग रोकथाम के उपाय करते हैं पर उन पिछड़े लोगों के लिए क्या कहा जाय जो इस प्रकरण में लाभ-हानि जैसा कुछ सोचते ही नहीं और जो होता है उसे होने देने में संकोच नहीं करते।

विज्ञ समाज में यह सरल माना गया है कि विवाहों की रोकथाम किये बिना भी किस प्रकार प्रजनन वृद्धि से बचा जा सकता है। इसके लिए जंजाल भरे उपायों से पीछे हटकर एक अत्यन्त निरापद और सर्वसुलभ उपाय पाया गया है कि “वीर्यपात योनि से बाहर किया जाय।” इसमें किसी खर्च या झंझट की आवश्यकता नहीं पड़ती। समझदार लोग इतनी भर सतर्कता आसानी से बरत सकते हैं और विवाहित रहते हुए भी ब्रह्मचारी जैसी उपलब्धि से लाभान्वित हो सकते हैं।

ऐसे अनेक लोकसेवियों, मनीषियों के उदाहरण सामने हैं जिनने विवाह से मिलने वाली सुविधा का लाभ तो उठाया पर थोड़ी सतर्कता बरतकर सन्तानोत्पादन के जंजाल से बच गये। जो शक्ति बच्चों के भरण-पोषण में लगती, उसे बचाकर उनसे अपने दाम्पत्य जीवन को सुविकसित बनाया, मिल-जुलकर महत्वपूर्ण कार्य किये और जितनी परिवार की जिम्मेदारियाँ पहले से ही गिर पर थीं उन्हें निभाया। अमेरिका में इससे भी एक कदम बढ़कर ऐसा प्रचलन आरम्भ हुआ है कि स्त्री-स्त्री से विवाह कर ले और मिल-जुलकर समुन्नत निश्चिन्त जीवन जियें।

कौन क्या उपाय अपनाये यह ऐच्छिक विषय है। अविवाहित रहने से लेकर परिवार नियोजन के कृत्रिम उपायों तक जिसे जो सूझ पड़े वह उस राह को अपनाये, पर ध्यान इतना अवश्य रहे कि यह समय

आँखें बन्द करके संतानोत्पादन करते रहने का नहीं है। प्राचीनकाल में इसके लिए ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम उपाय था। उसे साहसी और संयमी व्यक्ति अभी भी अपना सकते हैं।

जिन्हें बच्चे पालने की इच्छा है वे पिछड़े लोगों के बहुप्रजनन में से कुछ अण्डे बच्चे अपने घोंसले में रखकर उन्हें पोसने और पढ़ाने, स्वावलम्बी बनाने का पुण्य परमार्थ जैसा कार्य अपने लिए चुन सकते हैं।

जिनके पास कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं है। जो रोज कमाते और रोज खाते हैं, जिनकी स्त्रियाँ कमाने-घमाने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसे लोग भी अपने पीछे कई-कई बच्चे छोड़कर मर जाते हैं। इन स्त्रियों की सबसे अधिक दुर्दशा होती है। सहानुभूति के अभाव में ससुराल वाले या पिता के घर वाले भी इस बड़े कुटुम्ब का पालन करने में उत्साह नहीं दिखाते, ऐसी दशा में इन अनाथ बालकों की भी जो दयनीय दुर्दशा होती है, उसे देखकर कलेजा काँपता है। कई परित्यक्ताओं के बालकों को भी ऐसी स्थिति में निर्वाह करना पड़ता है।

जिनकी संतानें नहीं हैं। यदि हैं तो अधिक बच्चे पालने की स्थिति में हैं उन्हें ऐसे बच्चों को भरण-पोषण के लिए एकत्रित कर लेना चाहिए और उन्हें स्वावलम्बी बनाने के बाद स्वतन्त्र जीवनयापन के लिए छोड़ अपने पैरों खड़ा हो जाने देना चाहिए।

उत्तराधिकारी बनाने के लिए, वंश चलाने के लिए जो किसी का बच्चा गोद रख लेते हैं, वे भारी गलती करते हैं। ऐसे बच्चे तनिक समझदार होते ही यह चाहने लगते हैं कि गोद रखने वाला कितनी जल्दी मरे और उन्हें गुलछरें उड़ाने के लिए कब धन-दौलत हाथ लगे। मुफ्त का धन हर किसी को दुर्व्यसनी, दुर्गुणी बना देता है। इसलिए गोद रखने की ओर बिना संतान वालों को मन नहीं ललचाना चाहिए। इसमें बुढ़ापे में सहायता पाने का स्वार्थ है जो उल्टी प्रतिक्रिया पैदा करता है। गोद लिया हुआ बच्चा कदाचित् ही उन लालची अभिभावकों की इच्छा पूर्ति करता हो, जो समर्थ हैं उन्हें तोता, कबूतर, कुत्ता, बिल्ली आदि पालने का शौक पूरा करने की अपेक्षा यही उचित है कि असमर्थ लोगों द्वारा अंधाधुन्ध बच्चे पैदा कर लेने और उन्हें पाल न सकने की स्थिति जहाँ भी देखी जाय वहाँ उदार सहायता का हाथ बढ़ाया जाय और अपने घर को ही एक अनाथालय बना लिया जाय।

संभव हो तो आश्रयहीन, साधनहीन महिलाओं, परित्यक्ताओं, विधवाओं के भरण-पोषण का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे वे घर रहकर भी कुछ उद्योग धंधों के सहारे कमा लिया करें। कुछ सहायता प्राप्त कर लिया करें। जिनके मर जाने पर पत्नी तथा संतान की ऐसी दुर्दशा होने की संभावना है उन्हें विवाह का दायित्व नहीं ओढ़ना चाहिए। ओढ़ ही लिया है तो बच्चे पैदा नहीं

करने चाहिए। यदि कर ही बैठे हैं तो इतनी रकम का बीमा करा लेना चाहिए, जिससे आश्रितों का भरण-पोषण होता रहे। भाइयों के भरोसे उन अनाथों को छोड़ जाना व्यर्थ है। स्वार्थी हो वे विधवाओं की बची पूँजी हड़पने का जो प्रयत्न करते हैं। सहायता तो क्यों देंगे ?

विवाह एक अत्यन्त जोखिम भरा और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। उसे खेल-खिलवाड़ न समझा जाय। जो उसे अन्त तक निभा सकने की क्षमता अपने में पायें वे ही इस हेतु कदम बढ़ायें।

विवाह इस प्रकार हों

शारीरिक और मानसिक दृष्टि से परिपुष्ट परिवार बनने में समय लगता है। यदि ऐसी ही जोड़ी तलाशनी हो तो वह बड़ी आयु की ही मिलेगी। लड़कों को पढ़ने-लिखने की, आने-जाने की, ट्यूशन की सुविधा अधिक मिलती है। इसलिए वे जितने दिन में अमुक पढ़ाई पूरी करते हैं। योग्यता अर्जित करते हैं। उतनी करने में स्वभावतः लड़कियों को अधिक समय लग जाता है। लड़कों का छोटी उम्र से ही बालमन्दिरों में जाने का सिलसिला शुरू हो जाता है। इसमें लगने वाली फीस भी घर वाले खुशी-खुशी बर्दाश्त कर लेते हैं। किन्तु कन्याओं को यह लाभ नहीं मिलता। वे प्रायः पाँच वर्ष से अधिक की हो जाती हैं तब कहीं प्रायमरी स्कूल में भर्ती होती हैं। लड़कों के लिए जल्दी दर्जा चढ़ाने और फेल न होने देने के लिए ट्यूशन भी लगाये जाते हैं। पर लड़कियों को ऐसी सुविधा मात्र बड़े घरानों में ही मिलती है। इस फेर में लड़कियाँ आयु और कक्षा के हिसाब से कुछ पीछे ही रहती हैं।

इसके अतिरिक्त शिक्षित लड़कियों के लिए उपयुक्त लड़का ढूँढ़ने में भी दसियों देखभालें रह करनी पड़ती हैं। लड़कियों की आयु बढ़ जाती है। जबकि लड़कों को बड़ा नहीं होने देते। उस हुण्डी को जितनी जल्दी भुनाया जा सके भुना लेते हैं। लड़कियाँ पढ़ाई पूरी करने में बड़ी हो जाती हैं। सयानी लड़कियों की रुचि भी देखनी पड़ती है। वे अनुपयुक्त स्थानों में जाने की अपेक्षा कुमारी रहना अधिक पसन्द करती हैं। सुयोग्य लड़के एक तो कम उम्र में ही घिर जाते हैं फिर उनकी कीमत भी इतनी होती है कि सामान्य स्तर का व्यक्ति उतना जुटा नहीं पाता। ऐसी दशा में कितनी ही लड़कियाँ बड़ी उम्र की हो जाती हैं। फिर उनसे भी बड़ी उम्र का लड़का खाली मिलना और भी कठिन हो जाता है।

अपने समाज में एक रिवाज यह भी है कि लड़की से लड़का बड़ा होना चाहिए। लड़की वाले भी यही चाहते हैं और लड़के वाले भी। डर यह रहता है कि बड़ी आयु की लड़की होगी तो वह विकसित स्तर की होगी। लड़का-बुद्धू होगा तो उससे दबेगी नहीं। मारपीट गाली-गलौज भी न सहेगी। इसलिए लड़की की उम्र

१.४ गृहस्थ एक तपोवन

अपेक्षाकृत छोटी ही होनी चाहिए ताकि उसे कारणवश या अकारण ही चाहे जब डराया-धमकाया मारा-पीटा जा सके और वह स्वाभिमान जाग्रत न हो पाने के कारण उस सबको सहती सुनती रहे। वर से छोटी लड़की दूढ़ने के ऐसे ही कुछ कारण हो सकते हैं।

वस्तुतः मनुष्य, मनुष्य है और प्रकृति, प्रकृति। नर और नारी दोनों के ही शारीरिक, मानसिक विकास की आयु समान है। पच्चीस वर्ष तक दोनों के शरीर समान रूप से बढ़ते और परिपक्व होते हैं। यह आयु विवाह की मानी जाती है। प्रचलन के अनुसार लड़की, लड़के से कम उम्र की पसंद की जाती है। जबकि ऐसा कोई वास्तविक कारण है नहीं। दोनों समान आयु के भी हो सकते हैं।

यदि छोटे-बड़े की बात आवश्यक समझी जाती हो तो यह भी हो सकता है कि लड़की बड़ी हो और लड़का कुछ छोटा हो। कच्ची आयु में तो छोटे-बड़े का कुछ कारण समझा भी जा सकता है किन्तु जब दोनों तरुण हो गये तो अन्तर देखने की बात समाप्त हुई समझी जानी चाहिए। लड़की बड़ी भी हो सकती है और लड़का कुछ छोटा भी। नैपेलियन की, अब्राहम लिंकन की पत्नियाँ उनसे कई वर्ष बड़ी थीं। इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद साहब की धर्म पत्नी फातिमा पति की अपेक्षा बीस से भी अधिक वर्ष बड़ी थीं। कृष्ण के बड़े भाई बलराम की पत्नी रेवती उनसे बहुत बड़ी थीं। इस अन्तर से उनके दाम्पत्य जीवन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ा। वे लोग सुखपूर्वक अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते रहे। यदि लड़की से लड़का कई वर्ष बड़ा हो सकता है तो इसमें क्या हर्ज हो सकता है कि वर से वधू भी कई वर्ष बड़ी हो सकती है। बड़ी आयु की पत्नी घर-गृहस्थी को संभालने में, बच्चों को सुविकसित स्थिति में जन्म देने में अधिक सफल हो सकती है। पति के ऊपर भार न रहकर उसे वे अच्छे साथी और सहयोगी की भूमिका निभा सकती हैं।

यदि किसी की लड़की बड़ी हो गई और कुछ वर्ष छोटे लड़के से विवाह का सुयोग बनता है तो उसमें पुरातन मान्यता के कारण किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ने देना चाहिए। वरन् सच तो यह है कि जिसे समझदार साथी की जरूरत है उसे अपने से बड़ी आयु की वधू ही तलाश करनी चाहिए। वह विधवा भी हो सकती है। जब विधुर को कुमारी कन्या के साथ विवाह करने का अधिकार है तो यह क्यों नहीं हो सकता कि विधवा वधू का विवाह कुँआरे वर के साथ हो। इसमें किसी भी दृष्टि से कोई अड़चन नहीं है। जिसके कारण ऐसे चयन में कोई बाधा समझी या अटकई जाय। प्रचलन के अनुसार वधू की आयु तो वर से कुछ कम होने की बात एक मान्यता बनी ही हुई है। अब समझदारी का तकाजा है कि वधू बड़ी हो तो भी वर

पक्ष को उससे कोई आपांत नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वे नफे में ही रहते हैं। इस आधार पर उन्हें शरीर की परिपुष्टता और बुद्धि की परिपक्वता के दोनों ही लाभ अतिरिक्त रूप में मिलते हैं।

जिनके सामने कोई बड़े लक्ष्य हैं। समय की कमी तथा मानसिक व्यस्तता है। समाज सेवा जैसे कार्यों में उत्कट लगन है। जो बिना विवाह अपना सीधा-सादा जीवन जी सकते हैं, वे अविवाहित रहें तो भी कुछ हर्ज नहीं। कितनी ही बाल-विधवाएँ अपना जीवन पवित्रतापूर्वक काट लेती हैं। कई साधु, ब्रह्मचारी विवाह से पूर्व ही संन्यास ले लेते हैं और अपनी व्रतशीलता निभाये रहते हैं। अतएव विवाह करना अनिवार्य नहीं है। कई बड़ी लड़कियाँ पिता के न रहने पर स्वयं नौकरी करती और छोटे भाई-बहनों को पढ़ा-लिखाकर सुयोग्य बनाती देखी गई हैं।

विवाह का प्रमुख उद्देश्य काम तृप्ति समझा जाता है। घर बसाना भी। दो साथियों में से एक घर सम्भाले दूसरा उपार्जन कर्म में जुटा रहे, तो दोनों ही पक्ष अपने-अपने हिस्से का काम ठीक तरह निपटाते रह सकते हैं। इन सबसे बढ़कर है दो सच्चे मित्रों का एकजुट होकर जीवन नौका को सहयोगपूर्वक खेकर पार करना। यह कार्य एकाकी उतनी अच्छी तरह नहीं बन पड़ता जितना कि युग्म मिलकर उसे पार करता है। गाड़ी के दो पहिये मिलकर चल सकते हैं। चलने में दोनों पैरों का योगदान रहता है। हाथ से बन पड़ने वाले कार्यों में दोनों ही मिलकर किसी व्यवस्था को सम्पन्न करते हैं। मनुष्य के जीवन में भी विवाह के रूप में ऐसी ही आवश्यकता पड़ती है। यह सरल भी है और सुविधाजनक भी। फिर भी यह अनिवार्य नहीं है। जो साथी की गहरी मित्रता अर्जित करने में अपने को अयोग्य अनुभव करते हों वे अपने ऊपर अंकुश लगाकर भी अविवाहित रहने में भी अधिक सुविधा अनुभव करते एवं सुखी रहते हैं।

विवाहोत्सव—ऐसा ही पारिवारिक हर्षोल्लास आयोजन है जैसे—दिवाली, दशहरा आदि मनाये जाते हैं। इनमें घर परिवार के लोग एकत्रित होते हैं, मंगल गीत गाते, मिल-जुलकर जलपान, प्रीतभोज आदि सामूहिक क्रिया-कृत्य करते हैं। लड़की की विदाई, लड़के के घर में नया प्रवेश यह अवसर प्रसन्नता भरा माना जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए घर में कुछ रौनक हो, दीपक जलें, गीतवाद्यों का शुगल हो, खान-पान चले, दोनों पक्ष के स्वजन-सम्बन्धी उस समारोह में सम्मिलित हों। विवाह संस्कार के मन्त्रोच्चार हवन आदि उपक्रम रहें तो कुछ हर्ज की बात नहीं है। इस सारे समारोह में सौ, दो सौ रुपये खर्च हो जायें तो भी हर्ज नहीं। यह समारोह दोनों पक्षों के लिए समान प्रसन्नता का है। इसलिए उसका खर्च दोनों पक्ष मिल-जुल कर वहन करें तो ज्यादा अच्छा

है। इसमें समानता का बाँध भी होता है और यह प्रतीत होता है कि किसी पर किसी का बोझ लदा नहीं है।

दोनों ने इस मिलन सम्मेलन में समान रूप से हाथ बँटाया है। किसी ने किसी को विवश बाधित नहीं किया। दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति समान रही। हमें इसी प्रचलन का शुभारम्भ करना चाहिए। विदेशों में भी विवाह होते हैं, पर उनका स्वरूप ऐसी ही सादगी से जुड़ा रहता है। किसी को इसके लिए आर्थिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती। छोटे घरेलू उत्सव में धन-दौलत की बड़ी सी फिजूलखर्ची हो भी नहीं सकती। बौद्धों, ईसाइयों, मुसलमानों में भी विवाह संस्कार कुछ घण्टों में निपट जाते हैं। जो बहुत दूर से आये हैं वे रात को ठहर भी जाते हैं अन्यथा निकटवर्ती, पड़ोसी, सम्बन्धी उस आयोजन में अपनी हाजिरी दर्ज कराने के उपरान्त अपने-अपने घर जाते हैं।

इन दिनों अपने यहाँ वे रिवाज बने हुए हैं, जो सामन्तकाल में कन्या अपहरण के दिनों प्रयुक्त किए जाते थे। वर पक्ष के लोग डकैतों की तरह फौज बनाकर बन्दूकें चलाते हुए बेटी वाले के घर पर घाबा बोलते थे। लड़की को रोती-कलपती उठाकर ले जाते थे। बेटी वाले में यदि सामना करने की शक्ति न हुई तो आत्म समर्पण कर देता था। घर में जो थाली, बर्तन, कपड़ा, जेवर, पैसा आदि होता उसे विजेता की तरह लूट ले जाते थे। यह लूट उसने मान्य करली, इसके प्रमाणस्वरूप जो लुटेरा समुदाय आया था उसकी आव भगत करनी पड़ती थी। मिष्ठान, पकवानों की दावत-जेवनार देनी पड़ती थी और कन्या को सज-धज के साथ विदा करना पड़ता था। इसमें आक्रामकों की विजय और जिन पर आक्रमण हुआ उनकी पराजय माननी पड़ती थी। वे अपनी हार गिड़गिड़ाते हुए, भेंट-उपहार देते हुए स्वीकार करते थे। कन्या बलपूर्वक अपहरण की हुई मानी जाती थी। उस पर पूरा अधिकार ससुराल वालों का वैसा ही हो जाता था, जैसा खरीदे गए पशु पर। उसे दासी की तरह आजीवन इच्छा से, अनिच्छा से विजेताओं के घर उचित-अनुचित सेवा करनी पड़ती थी। प्रतिबन्ध में रहना और आदेश मानना पड़ता था।

उसी प्रकार के ध्वंसावशेष अभी तक बने हुए हैं। बरातियों की लम्बी-चौड़ी सेना की सज-धज करनी पड़ती है। तरह-तरह की फरमाइशें करते हैं। बेटी वालों की सभी खुशहाली दहेज के नाम पर लूट ली जाती है। चाहे उनके घर में पीछे के लिए गुजारे भर के लिए न रहे। चाहे ऋण लेना पड़े, पर ससुराल वालों को इसमें सहानुभूति जताने की आवश्यकता नहीं होती। वे जितनी राजी, बेराजी में हाथ लगे उतना निचोड़ लेते हैं। यह कृत्य-कौतुक हो जाने के उपरान्त भी लड़की को सताते रहते हैं कि वह बाप, भाइयों को अपनी कष्ट कथा सुनाये और जो कुछ अधिक से अधिक उनसे

रोकर-गिड़गिड़ाकर-खुशामद से ला सकती है वह बाद में भी लाती रहे। न ला सकने पर कितनी ही लड़कियों को परित्यक्ता बनना पड़ता है। आत्महत्या कर लेने के लिए विवश होना पड़ता है। हिन्दू समाज में हर साल इस प्रकार की आत्महत्याएँ बड़ी संख्या में होती हैं। कितनी ही उत्पीड़न सह-सहकर अपमानपूर्वक जीवन इसलिए जीती हैं कि वे ससुराल वालों की फरमाइशें पूरी न कर सकीं।

इस कुप्रथा का अब अन्त होना चाहिए। सामन्तकाल चला गया। आक्रमण, अपहरण की प्रथा भी अब नहीं है। इस परिवर्तन का कोई चिन्ह विवाह-शादियों में भी परिलक्षित नहीं होना चाहिए।

कन्या को विदा कराने के लिए वर परिवार के खास-खास व्यक्ति जाएँ। बरात के लिए जाने-अनजानों का जमघट एकत्रित न करें। बरात को सज-धज के साथ बाजार में निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। कन्या के पिता ने यदि लड़की को विदाई के समय कुछ वस्त्र उपहार दिया है, तो उसे विशुद्ध रूप में उसी का स्त्री धन माना जाय। इस पर ससुराल वाले किसी प्रकार अधिकार न जताएँ और न ऐसा प्रदर्शन करें जिससे बेटी वाले की सम्पन्नता या गरीबी का ढिंढोरा पिटता हो। दहेज तो वस्तुतः ससुराल वालों को देना चाहिए। जिन्हें सुयोग्य कन्या सम्मानपूर्वक मुफ्त में मिली है घर में गृहलक्ष्मी का प्रवेश हुआ है, इस सौभाग्य की अभिव्यक्ति करने के लिए वे लोग अपनी-अपनी इच्छा या हैसियत के अनुसार वधू को भेंट-उपहार प्रस्तुत करें और जो दोनों पक्षों से मिला है, उसे लड़की के नाम किसी बैंक में जमा कर दिया जाय ताकि वह ब्याज समेत बढ़ता रहे और जीवन में कभी कोई विपत्ति आ खड़ी हो तो काम आये।

अब हमें इसी प्रकार का नया प्रचलन आरम्भ करना चाहिए। इसमें पारिवारिक उत्सव से बढ़कर किसी प्रकार की अनावश्यक धूम-धाम या दान-दहेज का प्रसंग न चले। कन्यादान अपने आप में इतना बड़ा दान है जिसके लिए ससुराल वालों को आजीवन कृतज्ञ रहना चाहिए। वर को अपने जीवन में एक बड़े आभार की पूर्ति मानकर उन लोगों का चरण वंदन करना चाहिए जिनने कृपापूर्वक इतना बड़ा अनुदान प्रदान किया है। गृहीता को दानी का अहसान मानना चाहिए न कि उल्टे ऐंठ-अकड़ दिखाई जाय और ग्रहण करने में अपना बड़प्पन दिखाते हुए साथ ही और भी बहुत कुछ पाने का दबाव डाला जाय।

अब तक जिस प्रकार भी विवाह होते रहे उस बात को भूल जाना चाहिए। भूल का, अनुपयुक्तता का प्रायश्चित्त करना चाहिए। आगे के लिए सुधार किया जाना आवश्यक है। विवाहपूर्ण सादगी के साथ ही, उसका भार कन्या पक्ष पर तो किसी प्रकार पड़ना ही नहीं चाहिए। कुछ खर्च करना भी हो तो बेटे वालों के लिए अनायास

१.६ गृहस्थ एक तपोवन

ही कन्या पक्ष सह लेता है। उन्हीं को कृतज्ञ एवं विनम्र भी होना चाहिए।

विवाहोत्सव धूम-धाम से ही करने का मन हो तो गायत्री परिवार के किसी यज्ञ आयोजन में उसे कर लेना चाहिए। शान्तिकुञ्ज में भी वैसी व्यवस्था है। जिससे दोनों पक्ष वहाँ ठहर कर तीर्थयात्रा का आनन्द भी लें और विवाह भी विधि-पूर्वक करने के उपरान्त अपने-अपने घर लौट जायें। यहाँ देन-दहेज या वस्तु प्रदर्शन का कोई अड़ंगा खड़ा नहीं करने दिया जाता।

विवाह दिवसोत्सव कैसे मनावें ?

एकाकी मनुष्य अपूर्ण है। पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। स्त्री और पुरुष की अपनी-अपनी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं, जो दूसरे में नहीं। इन दोनों के समन्वय से वे अभाव दूर होते हैं, जिनके कारण मानसिक शान्ति और सांसारिक सुख-सुविधाओं का द्वार रुका पड़ा रहता है। गाड़ी के दो पहियों की तरह मानव-जीवन पति-पत्नी के दो आधारों पर चलता है। दो आँख, दो कान, दो हाथ, दो पैर की तरह मनुष्य जीवन भी दो अंगों में विभक्त है। दोनों से मिलकर शरीर शोभा पाता है अन्यथा एकाकीपन काने, लँगड़े, लूले, बूचे व्यक्ति की तरह कुरूप एवं अव्यवस्थित बनकर रह जाता है। उसमें एक अभाव का, एक कसक का निरन्तर अनुभव होता रहता है।

योगी, ज्ञानी, परमार्थी, महामानव अपनी सांसारिक आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समाप्त कर ज्ञान, परमार्थ एवं ब्रह्म चिन्तन के उस उच्चस्तर पर जा पहुँचते हैं, जहाँ जीवन की, लौकिक सुव्यवस्था की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। उनके लिए अविवाहित रहना उपयुक्त हो सकता है किन्तु जिन्हें स्वाभाविक एवं सरल जीवन जीना है, उनके लिए जोड़े से रहने में जो सुविधा है वह और किसी प्रकार नहीं। अपवाद सब में होते हैं, जो एकाकी जीवन बिना किसी क्षोभ या अभाव का अनुभव किये जी सकते हैं, वे सराहनीय हैं। पर उन्हें कहा अपवाद ही जायगा। साधारणतया हर मनुष्य को अपने समय पर गृहस्थ बनकर रहने की ही आवश्यकता पड़ती है। उसी में सुविधा भी है।

विवाह प्रगति में सहायक—कई व्यक्ति आध्यात्मिक प्रगति में दाम्पत्य-जीवन को बाधक मानते हैं और सोचते हैं कि एकाकी रहेंगे तो उन्हें वैरागी माना जायगा, भजन अच्छा बनेगा या स्वर्ग-मुक्ति का लाभ जल्दी भी मिल जायगा। ऐसे लोगों को प्राचीनकाल में ऋषियों के जीवन पर दृष्टिपात करना चाहिए, पुराण पढ़ने चाहिए। एक-दो को छोड़कर प्रायः सभी ऋषि गृहस्थ थे और सबके सन्तानें थीं। सिख धर्म के प्रायः सभी गुरु गृहस्थ हुए हैं। भगवान् राम, कृष्ण, शंकर एवं समस्त देवता गृहस्थ थे। यदि दाम्पत्य-व्यवस्था आध्यात्मिक प्रगति में बाधक रही

होती, तो हमारा सारा इतिहास ही दूसरे ढंग का होता, गृह-त्याग की व्यवस्था तो बुद्ध सम्प्रदाय की देन है। भारतीय धर्म का अंग वह कभी नहीं रही। चार आश्रमों की व्यवस्था में हर व्यक्ति को गृहस्थ होना चाहिए। तीसरेपन में वानप्रस्थ लेकर पत्नी समेत समाज सेवा में लगना चाहिए और अन्त में संन्यास लेना हो तो भी ऋषियों की तरह उस व्यवस्था में भी पत्नी को साथ रखा जा सकता है।

कहने का तात्पर्य इतना भर है कि दाम्पत्य जीवन की श्रेष्ठता, उपयोगिता एवं आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। उससे दो अभावग्रस्त पक्ष एकत्रित होकर अपनी विशेषता से दूसरे का अभाव पूरा करते और एक पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण की व्यवस्था बनाते हैं। मानव-जन्म पाने के बाद दूसरा सबसे बड़ा सौभाग्य विवाह ही माना गया है। इसी से तो 'या बेटा जाये या बेटा विवाहे' की उक्ति के अनुसार जन्म और विवाह की खुशी को समान माना गया है वरन् सच तो यह है कि जन्म से विवाह का आनन्द हमारे समाज में अधिक माना जाता है। जन्म के अवसर पर जितने गीत, मंगल, उत्सव, गाजे-बाजे आदि के खर्च की व्यवस्था होती है, उससे कई गुनी अधिक विवाह के अवसर पर होती है। जन्म की अपूर्णता को विवाह पूर्ण करता है, इसलिए आनन्द, उल्लास एवं लाभ किसी भी प्रकार कम नहीं। एक बैल से खेती करना मुश्किल पड़ता है। इसी प्रकार एकाकी जीवन में असुविधायें ही भरी रहती हैं। असुविधा को सुविधा में, अवरोध को प्रगति में, अवसाद को उल्लास में परिणत कर देने वाला विवाह सचमुच मानव प्राणी का असाधारण सौभाग्य ही है।

नये समाज का नया निर्माण—हर व्यक्ति एक निर्माता ब्रह्मा है, वह एक नये समाज का सृजन, निर्माण एवं विकास करता है। कहते हैं कि यह सृष्टि आदम और हब्बा, मनु-शतरूपा ने मिलकर बनाई। हर गृहस्थ अपने आप में एक आदम-हब्बा, मनु-शतरूपा बनता है और एक नई सृष्टि का सृजन, पालन एवं विकास करता है। यदि यह उतरदायित्व ठीक तरह निबाहा जा सके, तो उससे नये समाज का, नये संसार का निर्माण होगा। हर गृहस्थ अपना दाम्पत्य कर्तव्य, गृहस्थ संचालन ठीक तरह करने लगे तो बीस वर्ष उपरान्त नये युग, नये समाज, नये संसार का वातावरण आँखों के सामने उपस्थित हो सकता है। हर गृहस्थ एक गुरुकुल है। जगमं जन्मे, पले-बढ़े बालक वैसे ही बनते हैं, जैसे कि उस गुरुकुल के संचालक माता-पिता होते हैं। हर गृहस्थ, विशाल मानव समाज की एक सुगठित इकाई है। समाज परिवारों के रूप में ही तो विभक्त है। शासन को जैसे छोटे-छोटे थानों में बाँट दिया जाता है, उसी तरह यह विश्व या समाज गृहस्थों के रूप में विभक्त है। इन घटनाओं की जैसी भली-बुरी स्थिति होती है, उसी के अनुरूप समाज

बन जाता है। समाज का जैसा भी स्वरूप अभीष्ट हो हमें उसका ढाँचा गृहस्थ जीवन में खड़ा करना होगा। राष्ट्र का नया निर्माण गृहस्थ जीवन से ही संभव है। पूरे खेत में एक साथ पानी नहीं भरा जा सकता, सिंचाई क्यारियों द्वारा ही होती है। युग का निर्माण, गृहस्थ निर्माण के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

विकृतियों का समाधान—आज हमारा समाज अगणित उलझनों और समस्याओं से घिरा, व्यथा-वेदनाओं से, क्लेश-क्लह से, दुःख-दारिद्र्य से संतप्त हो रहा है। इसका कारण हमारे गृहस्थ जीवन में, दाम्पत्य सम्बन्धों में फैल रही विकृतियाँ ही हैं। ऐसे सौभाग्यशाली गृहस्थ बहुत कम ही मिलेंगे, जिनमें पति-पत्नी दूध-पानी की तरह एक होकर रहे हों, अपना आपा दूसरे में घुला चुके हों, दो मिलकर एक हो चुके हों, जिनमें तनिक भी दुःख, अविश्वास या सन्देह न हो, जिनमें दोनों की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ मिलकर एक हो गई हों, जिनने जीवन के कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का भार समान रूप से उसी तरह अपने कंधों पर लाद लिया हो जैसे दो बैल एक जुए को कंधों पर रखकर बहन करते हैं।

आज तो इससे सर्वथा विपरीत स्थिति है। लोक-लज्जा, बच्चों का मोह, गृह व्यवस्था, वासना आदि के कच्चे धागों से परस्पर किसी प्रकार बँधे तो हुए हैं, पर मन जिनके सर्वथा विपरीत हैं। एक-दूसरे के प्रति असीम घृणा और अविश्वास भरे हुए हैं। मजबूरियों ने उन्हें जोड़ तो रखा है, पर मन एक-दूसरे से फटे दूध की तरह बिलग-बिलग बने हुए हैं। सांसारिक व्यवस्था तो एक को दूसरे की रखनी पड़ती है, पर मन में भावना नहीं, जिससे एक को देख दूसरा जिये-जैसी स्थिति का अनुभव हो। मनों में भरा हुआ यह दुर्भाव सन्तान के मन-क्षेत्र का विकृत सृजन करता है। पति-पत्नी के शरीरों में मिल कर बच्चे का शरीर बनता है और मनो से मिलकर मना। मात-पिता का जैसा रंग-रूप, कद, कलेवर, ढाँचा तथा स्वास्थ्य होगा, उसी से मिलता-जुलता बच्चों का भी होता है। ठीक इसी प्रकार पति-पत्नी के बीच जैसे सम्बन्ध, जैसे मनोभाव चल रहे होंगे, उसी भली या बुरी स्थिति के अनुरूप बालक का मन-क्षेत्र विनिर्मित होगा। परस्पर द्वेष, दुर्भाव रखने वाले पति-पत्नी केवल क्रोधी, उद्विग्न, उच्छ्वल, ईर्ष्यालु, द्वेषी, स्वार्थी एवं निकृष्ट धरातल के मन-क्षेत्र वाले बालकों को ही जन्म दे सकते हैं।

छोटे बच्चे अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। गर्भ से लेकर पाँच वर्ष की आयु तक वे अपनी मनोभूमि का ढाँचा खड़ा कर लेते हैं। इसके बाद तो स्कूली और कामकाजी पढ़ाई ही शेष रह जाती है। माता-पिता द्वारा घर का सूक्ष्म वातावरण जैसा भी कुछ बना रखा गया है, उसी के अनुरूप भाव तरंगें बालकों के कोमल अन्तःकरण पर स्वयमेव जमती चली जाती हैं। उनके व्यक्तित्व का

तीन-चौथाई निर्माण इसी स्थिति में हो जाता है। बड़े होकर वे वैसे ही बनते हैं। आज नई पीढ़ी में हमें जो दोष-दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं, इसका अधिकांश दोष उनके माता-पिता का है। यदि वे ठीक तरह अपने दाम्पत्य-प्रेम को सुरक्षित रख सके होते और दैनिक जीवन में सद्भावनाओं का उल्लास भरा वातावरण बनाये रख सके होते तो निश्चय ही उन घरों में महापुरुष, नर-रत्नों की फसल उपजी होती।

क्षोभ को उल्लास में बदलें—व्यक्तिगत जीवन के आनन्द-उल्लास एवं सामाजिक जीवन की सुख-शान्ति का आधार यदि सफल दाम्पत्य जीवन को कहा जाय तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। यह क्षेत्र जितना उपेक्षित एवं विकृत पड़ा रहेगा उसी अनुपात से हर व्यक्ति अतिरिक्त क्षोभ में जलता-कुदता प्रगति की ओर अग्रसर होने से वंचित बना रहेगा और उसी अनुपात से समाज में अशान्ति, विपत्ति एवं अव्यवस्था बनी रहेगी। इस स्थिति को यदि बदलना हो तो हमें नींव को सींचना होगा। दाम्पत्य सम्बन्धों में स्नेह-सद्भावना, कर्तव्य-उत्तरदायित्वों का परिपूर्ण समावेश ही एकमात्र वह उपाय है जिससे व्यक्ति, परिवार एवं समाज की प्रगति एवं समृद्धि सम्भव हो सकती है। इस तथ्य की उपेक्षा करके हम सुख-शान्ति की अभिवृद्धि के जो भी उपाय करेंगे वे अधूरे एवं अवास्तविक होने के कारण असफल ही रहेंगे। उपवन को हरा-भरा, फला-फूला देखना हो तो धोने से नहीं, जड़ सींचने से काम चलेगा, हमें वस्तुस्थिति समझनी चाहिए और समस्याओं का उद्भव जहाँ से होता है, उसी स्थान पर उनके सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन की सफलता रूप, सौन्दर्य, शिक्षा, आजीविका, सुविधा आदि पर ठहरी हुई नहीं है। यह बातें जहाँ परिपूर्ण मात्रा में मौजूद हैं। वहाँ भी परस्पर घोर दुर्भाव रहना पाया जाता है। इसके विपरीत कुरूप, दरिद्र, अशिक्षित एवं नासमझ पति-पत्नी के बीच भी गहरी निष्ठा एवं आत्मीयता पाई जाती है। कारण भावना की उत्कृष्टता-निकृष्टता है। जहाँ भावना और कर्तव्य निबाहने की समुचित मात्रा होगी वहाँ सारी कमियाँ एक ओर रखी रह जायेंगी और ममता, आत्मीयता एवं जिम्मेदारी का तनिक-सा उभार सारे अभावों और कठिनाइयों को सहन कर लेगा। इसके विपरीत यदि उस आत्मीय उत्कृष्टता में कमी रही तो छोटे-छोटे अभाव एवं दोष पहाड़ जैसे दिखाई देंगे और तिल का ताड़ बनता रहेगा। सारे अभाव या सारे अग्रिय प्रसंग दूर नहीं हो सकते, अपूर्ण मानव-जीवन में कुछ तो अपूर्णताये बनी ही रहेगी। उनका समाधान पारस्परिक विश्वास, प्रेम, उत्सर्ग की भावनाओं द्वारा ही हो सकता है। यह भावना जिन पति-पत्नियों के बीच जितनी मात्रा में भी बढ़ सकी, उनका वैवाहिक जीवन उतना ही सफल माना जायेगा। हमारे प्रयत्न यह

१.८ गृहस्थ एक तपोवन

होने चाहिए कि हम दाम्पत्य जीवन में कर्तव्य, उत्तरदायित्व, प्रेम, सद्भावना, आत्मीयता और सहिष्णुता की भावना अधिकाधिक मात्रा में बढ़ावें। इस रचनात्मक कार्य में जितनी सफलता मिल सकेगी उतना ही सुख-शान्ति भरा वातावरण, वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विनिर्मित होगा। नव निर्माण का केन्द्र बिन्दु यही कार्यस्थल है।

विवाह संस्कार की महत्ता—भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं ने विवाह संस्कार का महान् विधि-विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विनिर्मित किया था। उस समय बोले जाने वाले मंत्र, देवाह्वान, यज्ञ एवं अन्यान्य कर्मकाण्डों का एक वैज्ञानिक महत्त्व है। उनके कारण वर-वधू के अन्तःकरणों में एक विशेष प्रकार की आद्रता आती है और वे अनायास ही एक-दूसरे में घुलने लगते हैं। प्राचीनकाल के सुयोग्य कर्मकाण्डी पण्डित जिन विवाहों को पूर्ण विधि-व्यवस्था के साथ कराते थे, उनमें आजीवन मधुरता बनी रहती थी और दुर्भाव के दोष नहीं आने पाते थे। अब जल्दी से बेगार भुगताने की तरह विवाह संस्कार निपटा दिये जाते हैं। उस समय जो प्रशिक्षण वर-वधू को होता था, उसका तो अब नामोनिशान भी नहीं रह गया। दोनों पक्ष के पण्डित अडंग-पडंग करते रहते हैं। उस समय की बर्बादी में उस उत्सव-आयोजन में आये हुए लोगों में से बहुत कम सम्मिलित होते हैं। वर-वधू भी यह चाहते हैं कि यह जंजाल जितनी जल्दी सिमट जाय उतना अच्छा। ऐसे औंधे ढंग से कराये गये विवाह संस्कार का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते। इसके लिए तो हर दृष्टि से प्रभावोत्पादक वातावरण बनाना होगा और वर-वधू को उनके कर्तव्य-उत्तरदायित्वों के प्रशिक्षण की भावनापूर्ण व्यवस्था करनी पड़ेगी। तभी ऋषि परम्परा का लाभ मिल सकने की सम्भावना रहेगी।

मंगल पर्व की जयन्ती—जिनके विवाह नहीं हुए हैं, उनके संस्कार को सुयोग्य व्यवस्थापकों एवं पुरोहितों द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनाया जाना चाहिए। पर जिनके विवाह हो चुके हैं, उनके सम्बन्ध में हो गया सो हो गया कहकर छुटकारा नहीं पाया जा सकता। उनको वह लाभ पुनः मिलना चाहिए जो औंधे-सीधे ढंग से बेगार भुगताने की भगदड़ में उन्हें नहीं मिल पाया है। इसके लिए सबसे उत्तम, सरल और उपयोगी तरीका विवाह दिवसोत्सव मनाया जाना ही हो सकता है। जिस दिन विवाह हुआ था, हर वर्ष उस दिन एक छोटा-सा उत्सव समारोह मनाया जाय। मित्र-परिजन एकत्रित हों, विवाह का पूरा कर्मकाण्ड तो नहीं पर उनमें प्रयुक्त होने वाली कुछ क्रियायें फिर की जायें और जो मोटे-मोटे संकल्प हैं वे पति-पत्नी द्वारा हर वर्ष किये जायें तथा विवाह के कर्तव्य उत्तरदायित्वों को नये सिरे से पुनः समझा-समझाया जाय।

हर वर्ष इस प्रकार का व्रत धारण, प्रशिक्षण, संकल्प एवं धर्मानुष्ठान किया जाता रहे तो उससे दोनों

को अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों को पालने, निबाहने की निश्चय ही अधिक प्रेरणा मिलेगी। उसी दिन दोनों परस्पर विचार-विनिमय करके अपनी-अपनी भूलों को सुधारने तथा एक-दूसरे के अधिक समीप आने के उपाय सुझाने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। विवाह दिन की पुरानी आनन्दमयी-स्मृति का स्मरण कर पुनः अन्तःकरण को प्रफुल्लित कर सकते हैं। इस प्रकार वह सुनहरा दिन एक दिन के लिए हर साल नस-नाड़ियों में उल्लास भरने के लिए आ सकता है और विवाह कर्तव्य को नये सिरे से निबाहने की प्रेरणा दे सकता है।

परम्परा प्रचलन—जन्मदिवसोत्सव की तरह विवाह दिवसोत्सव मनाने की परम्परा भी हमें प्रचलित करनी चाहिए। यदि यह प्रचलन हो सकता तो लोगों को अपने वैवाहिक उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों को निबाहने की प्रेरणा का हर वर्ष एक भावनात्मक अवसर मिलता रहेगा। उपस्थित इष्ट-मित्रों के सामने जो हर वर्ष उन पुण्य-प्रतिज्ञाओं को दुहराते हैं यदि वे उन्हें तोड़ेंगे तो लोग-हँसाई होगी। इस लोक-लाज से भी उन्हें अपने को संभाले रहना पड़ेगा। अपने भीतर जो हलचल इस धर्मानुष्ठान के द्वारा उत्पन्न होगी, उससे भी लोगों को अपने स्वयं को सुधारने-सम्भालने की कम प्रेरणा न मिलेगी। फिर उस उत्सव में जो लोग उपस्थित हैं, उन्हें भी तो यह सब देखने-सुनने को अवसर मिलेगा, जिससे उनमें भी आत्म-निरीक्षण करने और अपने को सुधारने की भावना उठेगी। विवाह दिवसोत्सवों का यदि प्रचलन हो सके तो उससे दाम्पत्य कर्तव्यों के पालन में आशातीत प्रगति होगी और फलस्वरूप नये समाज का निर्माण सरल हो जायगा।

बन्दूकों के लाइसेन्स हर साल बदलने पड़ते हैं, मोटरों के लाइसेन्स का भी हर साल नवीनीकरण कराना पड़ता है। 'युग निर्माण पत्रिका' का हर साल रजिस्टर नम्बर नया कराना पड़ता है। अखवारी कागज का परामिट प्राप्त करने के लिए हमें हर वर्ष अर्जी देनी पड़ती है। विवाह के कर्तव्यों को ठीक तरह पालने का लेखा-जोखा उपस्थित करने, भूल-चूक को सुधारने और अगले वर्ष अधिक सावधानी बरतने को विवाह-लाइसेन्स का यदि हर वर्ष नवीनीकरण कराया जाय तो इसमें कुछ हानि नहीं हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है। संसार के अन्य देशों में यह उत्सव सर्वत्र मनाये जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि वे केवल खुशी बढ़ाने के मनोरंजन तक ही उसे सीमित रखते हैं, हमें उसे धर्म-कर्तव्यों की प्रेरणा से ओत-प्रोत करने वाले धर्मानुष्ठानों की तरह नियोजित करना है।

संकोच अनावश्यक—इस प्रथा के प्रचलन में एक बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे देश में विवाह को, दाम्पत्य जीवन को एक झिझक, संकोच एवं लज्जा का विषय माना जाने लगा है। उसे लोग छिपाते हैं। दूसरों को देखकर स्त्रियाँ अपने पतियों से घूँघट काढ़ लेती हैं

और पति अपनी पत्नी की तरफ से आँखें नीची कर लेता है। विवाह के अवसर पर वधू बड़े संकोच के साथ डरती-झिझकती कदम उठाकर आती है। कहीं-कहीं तो उसे गोदी में उठाकर ले जाते हैं। यह अनावश्यक संकोचशीलता निरर्थक है। भाई-भाइयों की तरह पति-पत्नी भी दो साथी हैं। विवाह न तो चोरी है, न पाप। दो व्यक्तियों का धर्मपूर्वक द्वैत को अद्वैत में परिणत करने का व्रत-बंध ही विवाह अथवा दाम्पत्य संबंध है। अवश्य ही अश्लील चेष्टाएँ अथवा भाव-भंगिमाएँ खुले रूप से निषिद्ध मानी जानी चाहिए पर साथ-साथ बैठने-उठने, बात करने की मानवोचित रीति-नीति में अनावश्यक संकोच बरता जाय, इसमें न तो कोई समझदारी है न कोई तुका। इस बेतुकी को यदि हटा दिया जाय, तो इससे मर्यादा का तनिक भी उल्लंघन नहीं होता। जब अनेक अवसरों पर पति-पत्नी पास-पास बैठ सकते हैं, कोई हवन आदि धर्म कृत्य कर सकते हैं, साथ-साथ तीर्थयात्रा आदि कर सकते हैं, तो विवाह दिवसोत्सव पर किये जाने वाले साधारण से हवन में किसी को क्यों संकोच होना चाहिए ? गायत्री हवन के साथ-साथ चार-पाँच छोटे-छोटे अन्य विधि-विधान जुड़े हुए हैं और प्रवचनों का विषय दाम्पत्य जीवन होता है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी बात तो ऐसी नहीं है, जिसके लिए झिझक एवं संकोच किया जाय। विवाह की चर्चा करने पर जैसे वर-वधू सकुचाते हैं, वैसी ही कुछ झिझक विवाह दिवसोत्सव के अवसर पर दिखाई देती है। इसमें औचित्य, तनिक भी नहीं, विचारशील लोगों के लिए यह अकारण की संकोचशीलता छोड़ने में कुछ अधिक कठिनाई न होनी चाहिए।

संगठित प्रयास की आवश्यकता—जन्मदिन मनाने के लिए युग निर्माण शाखाएँ अपनी जो तीन या पाँच सदस्यों की समितियाँ बनावे, उन्हीं को जन्म दिवसोत्सव की तरह विवाह दिवसोत्सव मनाने का काम हाथ में लेना चाहिए। जो अधिक झेंपू-झों, उन्हें छोड़कर कुछ उत्साही एवं प्रगतिशील लोगों को इसके लिए तैयार करना चाहिए। हर महीने एक उत्सव भी इस प्रकार का मनाया जाने लगे और एक वर्ष तक यह क्रम चलता रहे तो झेंपू लोग अपनी झिझक एवं संकोच की निरर्थकता समझ जायेंगे और वे भी इस उत्सव के आधार पर मिल सकने वाले लाभों से लाभान्वित होने के लिए प्रस्तुत दिखाई देंगे।

जन्म दिवसोत्सव की तरह ही सारी तैयारी करनी होती है। उसी तरह तारीखें नोट करना, नियत तिथि पर हवन आदि की तैयारी, मण्डप-वेदी आदि को सुसज्जित, मित्र-परिचितों एवं शाखा सदस्यों को आमन्त्रण, अतिथियों का सस्ता आतिथ्य आदि सब कुछ उसी ढंग से होगा। पूजा स्थान पर पति-पत्नी दोनों जन्मदिन की भाँति ही बैठेंगे। पीत वस्त्र धारण करना जन्मदिन पर उतना आवश्यक नहीं था, पर विवाह के दिन पर तो यदि बहुत

अड़चन न हो तो दोनों को पीतवस्त्र ही धारण करने चाहिए। विवाह पर भी वर-वधू के वस्त्रों में कुछ विशेषता-नवीनता रहती है। इस अवसर पर भी रहे तो अच्छा है। मन्त्रोच्चार के लिए अधिकाधिक लोगों के हाथों में पुस्तकें रहें और जो भी ठीक तरह उन्हें पढ़ या बोल सकें एक लय, एक स्वर एवं कण्ठ में साथ-साथ उच्चारण करना चाहिए। इन उच्चारण-कर्ताओं को दूसरों का संस्कार कर सकने की ट्रेनिंग इस प्रकार होती चलेगी।

पाँच विशेष कृत्य—साधारण हर संस्कार में सामान्य गायत्री यज्ञ का विधान ही प्रमुख होता है। उसकी विधि सब के अभ्यास में रहनी चाहिए। उस विधान में, रक्षा विधान के पश्चात् और अग्नि स्थापना से पूर्व (१) ग्रन्थि बन्धन (२) अश्मारोहण (३) पाणिग्रहण (४) सप्तपदी (५) सुमंगली यह पाँच कृत्य विशेष रूप से करने पड़ते हैं। विवाह दिवसोत्सव का विशेष कृत्य इतना ही है। शेष सारी क्रिया गायत्री यज्ञ की ही रहती है।

(१) पति-पत्नी दोनों के कन्धों पर रहने वाले दुपट्टों के छोरों को लेकर उनके बीच में चावल, पुष्प, दूर्वा, हल्दी, सुपाड़ी रखकर कोई सम्मान्य माननीय व्यक्ति गाँठ बाँधते हैं। इस क्रिया को ग्रन्थि बन्धन कहते हैं। 'ॐ समंजनु विश्वे देवाः' इसका मंत्र है।

(२) एक पत्थर के टुकड़े पर पति-पत्नी दोनों अपना दाहिना पैर रखते हैं। इस क्रिया का नाम 'अश्मारोहण' है। 'ॐ आरोहे मश्मान' यह इसका मंत्र है।

(३) पत्नी का दाहिना हाथ पति और पति का बाँया हाथ पत्नी पकड़ती है। यह पाणिग्रहण क्रिया है। 'ॐ यदेधि मनसा दूरे' यह इसका मंत्र है।

(४) पति-पत्नी कदम मिलाकर सात बार पैर उठाते हैं। सात कदम साथ-साथ चलते हैं। 'ॐ इषे एक पदीयव' इसका मंत्र है।

(५) पति द्वारा पत्नी की माँग में सिन्दूर भरने अथवा मस्तक पर तिलक करने की क्रिया को सुमंगली कहते हैं। इसका मंत्र 'ॐ सुमंगलीरिय वधू' है।

ग्रन्थि बन्धन—ग्रन्थि बन्धन क्रिया कराते समय उपस्थित लोगों को तथा पति-पत्नी को समझाना चाहिए कि इस कृत्य का तात्पर्य दो आत्माओं के अलग अस्तित्वों का अब एक में घुल जाना है। दोनों ने परस्पर बँधकर अपने अस्तित्व को एक-दूसरे के लिए समर्पित कर दिया और एक नया साझे का, सामूहिक समग्र व्यक्तित्व विनिर्मित किया। इसे दाम्पत्य व्यक्तित्व कहा जायगा। इसमें दोनों की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को समान रूप से स्थान मिलेगा। दो तालाबों के पानी का स्तर नीचा-ऊँचा होने पर भी यदि एक नाली द्वारा उन्हें आपस में जोड़

१.१० गृहस्थ एक तपोवन

दिया जाय तो ऊँचे स्तर वाले तालाब का पानी नीचे में चलने लगता है और दोनों की सतह एक समान ऊँची हो जाती है। उसी तरह इस ग्रन्थि बन्धन को एक नाली माना जाय, जो दो तालाबों को एक करती है। इसका प्रभाव यह होना चाहिए कि दोनों में से जिसका व्यक्तित्व छोटा हो, उसे ऊँचे व्यक्तित्व वाला निरन्तर प्रयत्न करके अपने समान ही ऊँचा उठाने का प्रयत्न करे। अपनी शक्ति-सामर्थ्य उसे समर्पित करे, जिससे कोई नीचा-ऊँचा, अविकसित न रह जाये। जिस तरह एक सूत्र से गुँथे हुए पुष्प एक साथ ही माला बनकर रहते हैं और जीते हैं। उसी प्रकार पति-पत्नी को एक-दूसरे का सहचर बनकर रहना चाहिए। जीवन की रीति-नीति अब एक को ही निर्धारित नहीं करनी चाहिए, वरन् दोनों के सम्मिलित निर्णय से ही सारी विधि-व्यवस्था बना करेगी, कोई किसी पर अपनी इच्छा थोपेगा नहीं, वरन् एक-दूसरे की स्थिति, आवश्यकता और भावना का ध्यान रखते हुए समझौते की नीति पर चलेंगे। ग्रन्थि बन्धन ऐसा अटूट है जिसे जीवन भर निबाहने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। एक-दूसरे की कमियों को सहन करते हुए, सुधारते-सम्भालते हुए इस विश्वास के साथ रहें कि अब हर हालत में परस्पर एक-दूसरे को निबाहना ही है, यदि साथी में असंख्य त्रुटियाँ होंगी तो भी सुधारने के प्रयत्न करते हुए अन्ततः सहन करने को भी तत्पर रहा जायगा। छोटा बच्चा निपट अनाड़ी होता है फिर भी माता उसे अपार प्रेम के साथ छाती से लगाये रहती है और उसकी त्रुटियों पर उद्ध्विग्न न होकर उसे दुलारते-पुचकारते हुए सुयोग्य बनाने का प्रयत्न करती है। वैसी ही भावना, वैसी ही चेष्टा एक-दूसरे के लिए आजीवन करते रहें, यह ग्रन्थि बन्धन का उद्देश्य है।

अश्मारोहण—पत्थर की शिला पर पति-पत्नी अपने पैर इस विश्वास के साथ रखते हैं कि यह शिलाखण्ड जैसे अपने आप में सुदृढ़ है वैसे ही हम भी विवाह के साथ जुड़े हुए कर्तव्य एवं विश्वास के ऊपर सुदृढ़ रहेंगे। अंगद ने रावण की सभा में जिस तरह पैर गाढ़ दिया था और वह फिर किसी से भी नहीं हटा-उठा था, उसी प्रकार अश्मारोहण के संकल्प द्वारा भी पति-पत्नी को वैसी ही दृढ़ता प्रकट करनी होती है। प्रतिज्ञाओं को जवानी जमा खर्च का विषय नहीं बनाया जा सकता। एक-दूसरे से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की तो आशा रखें, पर साथ के साथ स्नेह का उत्तरदायित्व निवाहने में जो कष्ट सहना पड़ता है, त्याग करना पड़ता है उससे कतराये तो फिर ग्रन्थि बन्धन कहीं हुआ ? यह तो स्वार्थ बन्धन कहलाया। ऐसी दशा में तो जिसका स्वार्थ जिससे सिद्ध न होगा, अथवा कहीं अन्यत्र अधिक सुविधा दिखाई देगी तो वह उधर मुड़ जायगा। ऐसी दशा में विवाह-विवाह न रहकर वासना एवं सुविधा के लिए किया गया अस्थायी समझौता मात्र कहलायेगा। भारतीय धर्म में ऐसे ओछे समझौते घृणित, गर्हित, निन्दनीय एवं पाप माने गये हैं। विवाह

पाप के लिए नहीं, धर्म के लिए किया जाता है। इसी से पत्नी को धर्मपत्नी कहते हैं। पति तो धर्म का देवता है ही। विवाह का प्रयोजन है एक-दूसरे को अपना पूरा-पूरा प्रेम प्रदान करना। प्रेम की कसौटी लाभ नहीं त्याग है। जो अपने प्रेमी के लिए जितना अधिक त्याग कर सकता है, उससे जितनी कम अपेक्षाये करता है, उसका प्रेम उतना ही सच्चा माना जायगा। अश्मारोहण करते हुए, शिला पर पैर जमाते हुए दोनों को यह सोच लेना चाहिए कि मैं ग्रन्थि बन्धन के साथ कन्धों पर आये हुए उत्तरदायित्वों को भली प्रकार निबाहेंगे। दाम्पत्य जीवन को आदर्श बनाने के लिए बड़े से बड़ा कष्ट सहेंगे और त्याग करेंगे। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहेंगे। देवताओं की, अग्नि की साक्षी में, उपस्थित सभ्रान्त लोगों के सामने पत्थर पर पैर अड़ा देने का दृश्य उपस्थित करते हुए दोनों यह घोषणा करते हैं कि हमने उत्तरदायित्वों को समझा है और उसे पूरी दृढ़ता के साथ आजीवन निबाहने का निश्चय किया है। अश्मारोहण की भावना यही है।

पाणिग्रहण—एक-दूसरे को सहारा देकर ऊपर उठाना, संसार की हर विभीषिका एवं विषम परिस्थिति में एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहना, पाणिग्रहण क्रिया है। जीवन में ऐसे अवसर आ सकते हैं जब दूसरा साथी रुग्ण, विक्षिप्त, निर्धन, कुरूप, असमर्थ हो जाय और उसका साथ निबाहना अपने को घाटे का सौदा प्रतीत होने लगे। ऐसी स्थिति में भी उसी दृढ़ता से साथी का हाथ पकड़े रहना चाहिए, जैसा कि वह स्वस्थ, सानन्द, चतुर, सम्पन्न एवं सर्वसमर्थ होने पर अपनाया जाता। विवाह के माध्यम से एक-दूसरे पर अवलम्बित होते हैं, एक-दूसरे की नाव पर सवार होते हैं। एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर जीवन क्षेत्र में उतरते हैं। कुसमय में किसी को किसी का साथ नहीं छोड़ना है। ऐसा करना विश्वासघात होगा। दोनों में से कोई भी दूसरे के प्रति कभी भी विश्वासघाती न बने यह प्रेरणा पाणिग्रहण की है।

ऊँचे स्थान पर खड़ा साथी अपने जिस साथी का हाथ पकड़ेगा, उसे यदि वह नीचा खड़ा होगा तो नीचे ही नहीं रहने देगा वरन् हाथ का सहारा देकर ऊपर उठा लेगा और अपनी बराबर कर लेगा। पति-पत्नी में से जो कम शिक्षित, कम चतुर, कम अनुभवी, कम योग्य हो, उसकी कमियों को दूर करना उसका कर्तव्य है, जो ऊँचा है। रास्ते में दो मित्र हाथ पकड़ कर चले तो उन्हें एक सीध में रहकर ही कदम-कदम मिलाकर चलना पड़ता है। ऐसा नहीं हो सकता कि हाथ में हाथ मिला कर चलें पर एक पीछे और एक आगे रहे। जीवन क्षेत्र में भी यही होना चाहिए। यदि साथी अपने से कम पढ़ा या कम कुशल है तो उसकी इन कमियों को पूरा करने के लिए तुरन्त व्यवस्था बनानी चाहिए। केवल भोजन, वस्त्र, निवास, वासना जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देने से ही साथी का कर्तव्य पूरा नहीं होता वरन् उसे उसका

व्यक्तित्व भी संभालना-उठाना पड़ता है। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार दोनों एक-दूसरे को इस प्रकार ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील रहें और पाणिग्रहण का उद्देश्य पूरा करें।

सप्तपदी—सात बार कदम मिला कर आगे बढ़ने का प्रयोजन यह है कि गृहस्थ जीवन के साथ उद्देश्यों की पूर्ति दोनों कन्धे से कन्धा, पैर से पैर, हाथ से हाथ, मन से मन मिलाकर विचार और कर्म करते रहें। गाड़ी के दो पहिए जब साथ-साथ चलते हैं तभी गतिशीलता उत्पन्न होती है। जीवन में प्रगति के लिए पति-पत्नी का हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर फौजी सैनिकों की तरह आगे बढ़ चलना आवश्यक है।

(१) आहार व्यवस्था (२) शारीरिक बल-बुद्धि (३) अर्थ व्यवस्था (४) विनोद-मनोरंजन (५) पारिवारिक उत्तरदायित्व (६) गृह व्यवस्था (७) पारस्परिक स्नेह-सद्भाव यह सात उद्देश्य गृहस्थ निर्माण के होते हैं। पति-पत्नी इन सातों की सुव्यवस्था में ध्यान लगाये रहते हैं। गृहस्थ की सुख-शान्ति और प्रगति इन सात तथ्यों पर अवलम्बित रहती है।

(१) भोजन सात्विक, पौष्टिक, उपयोगी, सुरुचिपूर्ण हो। उसमें तामसिक, फूहड़पन एवं चटोरेपन का समावेश न रहे। आहार के अनुरूप ही विचार बनते हैं। विचारों पर ही जीवन का स्वरूप ही अवलम्बित है। इसलिए गृहस्थ का कर्तव्य है कि आहार की सात्विकता एवं पवित्रता नष्ट न होने दे। तामसी योजना दुर्भाव ही पैदा करेगी, उससे पति-पत्नी के सम्बन्ध ही नहीं बिगड़ेगे वरन् परिवार में अशान्ति फैलेगी और बच्चों का स्वभाव बिगड़ेगा। गृहस्थ के स्वस्थ विकास में आहार की सात्विकता का असाधारण योग होता है, इसे भुलाया नहीं जाना चाहिए।

(२) शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रहने के लिए उचित परिश्रम, उचित विश्राम, उचित ब्रह्मचर्य, उचित दिनचर्या, सफाई, परिचर्या, चिकित्सा आदि का आवश्यक ध्यान अपना ही नहीं साथी का भी रखना चाहिए। परिवार का एक भी सदस्य रुग्ण न रहने पावे, तभी गृहस्थ की सफलता है। इस दिशा में तनिक भी उपेक्षा न बरती जाय और बिगड़ती स्थिति संभाल ली जाय तो घर में नीरोगता का वातावरण रखा जा सकता है।

(३) अधिक उपार्जन के लिए अधिक श्रम और अधिक प्रयास करना होता है। फिजूलखर्ची एक पैसे के भी न होने दी जाय। पारिवारिक उत्कर्ष के दूरदर्शितापूर्ण कार्यों में मुक्तहस्त से खर्च किया जाय, कुसमय के लिए कुछ बचत हर गृहस्थ को रखनी चाहिए। बजट बनाकर खर्च करना चाहिए। ठग और धूर्तों से बचना चाहिए। सामाजिक उत्कर्ष के लिए अपनी कमाई का एक अंश नियमित रूप से देना चाहिए। फैशन, शेखीखोरी, निरर्थक शृंगार, नशेबाजी, व्यसन एवं सामाजिक कुरीतियों में होने वाले निरर्थक खर्च को कड़ाई के साथ रोकना चाहिए। घर

में जिनके पास जो समय बचता है, उसे वे उपार्जन में लगायें। कोई ठाली न बैठे, ऐसा प्रबन्ध करें। गृह उद्योगों व टूट-फूट ठीक करने का अभ्यास करें। इस प्रकार वे उपाय करने चाहिए जिससे घर की अर्थव्यवस्था सुसंतुलित बनी रहे।

(४) घर की मनहूसी, खिन्नता, कुढ़न, रूठना, मटकना, मनमुटाव, ताने कसना, लड़ना-झगड़ना, आवेश-उत्तेजना का वातावरण नहीं रहना चाहिए। कुढ़न से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नहीं टिकता है, प्रगति रुक जाती है और समृद्धि चली जाती है। ऐसे घरों में दुःख और दारिद्र्य डेरा डाले पड़े रहते हैं। ऐसा दुस्वभाव जिस किसी का भी हो, उसे एक बुरी किस्म का बीमार समझकर प्रेम एवं सौजन्य से सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। हँसी-खुशी का स्वभाव बनायें और जो समस्याएँ हों उन्हें सौम्यता, संज्वनता, नम्रता एवं शिष्टता के वातावरण में सुलझायें तो वे अपेक्षाकृत आसानी से सुलझ जाती हैं। घर में खेलकूद, गायन-वाद्य, कथा-कहानी, सुसज्जा, स्वच्छता का मनोरंजक वातावरण रहे, कभी-कभी घूमने-देखने भी जाया करे, उत्सव आयोजनों में भी सम्मिलित होते रहें। प्रसन्नता की स्थिति परिवार में बनाये रहना मानसिक स्वस्थता के विनोद-मनोरंजन का वातावरण रखने के लिए आवश्यक समझा जाना चाहिए।

(५) परिवार में जितने सदस्य हों उन सभी की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाय। ऐसा न हो कि पुरुष जो कमाये उस पर पत्नी ही पूरा अधिकार कर ले और अपने बच्चों के अतिरिक्त और किसी को उसका लाभ न लेने दे। माता-पिता, भाई-बहिन सभी तो एक भले कुटुम्ब के सदस्य होते हैं। उनके भरण-पोषण, शिक्षण, विवाह, चिकित्सा आदि में होने वाला खर्च निरर्थक न समझा जाय। कमाने के कारण अहंकार और न कमाने के कारण तिरस्कार नहीं होना चाहिए। घर के हर सदस्य को उचित सम्पत्ति, उचित प्रोत्साहन और उचित विकास साधन मिलते रहें, इसका पूरा ध्यान रखना भी विवाह का उद्देश्य है। सप्तपदी का पाँचवा कदम इसी उत्तरदायित्व को निबाहने के लिए उठाया जाता है।

(६) गृह प्रबन्ध में उपयोगी हर वस्तु की, हर कार्य की सुव्यवस्था रखनी चाहिए। कपड़े, बर्तन, खाद्य पदार्थ, जूते, पुस्तकें, बिस्तर, फर्नीचर आदि हर चीज यथास्थान, ठीक क्रम से, संभाल कर रखी जानी चाहिए। चीजों का फटे-टूटे, बिखरे, अव्यवस्थित रीति से पटके रहना घर को कुरुचिपूर्ण बनाना तो है ही, दरिद्रता का आह्वान करना भी है। घर की हर चीज को यथास्थान, सुव्यवस्थित और सुन्दर रीति से संभाल कर रखा जाना सद्गृहस्थ का लक्षण है। छतों पर जाले, कौने में कूड़ा, टूटी और निरर्थक चीजों का झंझट नहीं लगा रहना चाहिए। नाली, टट्टी, पाखाने गंदे नहीं रहने चाहिए। हर चीज का स्थान नियत रहे और वह वही रखी जाय।

टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत करने की कला आनी चाहिए, यदि स्वयं वैसा न कर सकें तो बाहर मरम्मत करा लें। इस प्रकार गृह व्यवस्था का उचित ध्यान रखा जाना पत्नी का ही नहीं, पति का भी काम है। दोनों इस प्रक्रिया में सहयोग करें और घर के सब लोगों को ऐसा शिक्षण दें कि वे भी सफाई और व्यवस्था के लिए सावधानी बरतें और श्रम करें। गन्दगी एवं अव्यवस्था घर में न फैलने पावे, सप्तपदी का छठा कदम इसी कर्तव्य के पालन करने के लिए है।

(७) पारस्परिक सद्भाव एवं विश्वास गृहस्थ के सफल होने का मूल आधार है। एक-दूसरे को अविश्वास और सन्देह की दृष्टि से देखें तो उसकी छोटी-छोटी आकस्मिक भूलें भी जानबूझ कर की गई दुष्टता जैसी प्रतीत होती हैं। सन्देह से सन्देह और अविश्वास से अविश्वास बढ़ता है। इसलिए परस्पर छिद्रान्वेषण करने और अपने प्रति दुर्भाव रखने की बात को गृहस्थ-जीवन में आग लगाने वाली चिंगारी की तरह सदा दूर ही रखना चाहिए। गलतियों को भूल-विवशता या उपेक्षा या नादानी ही माना जाय और कभी सहन करने तथा कभी मीठी चुटकी लेते हुए उसे सुधारने के लिए सौहार्द्रपूर्वक अनुरोध करना चाहिए। यदि सुधार न भी हो सके तो भी सुधार न होने के साथ-साथ दुर्भाव बढ़ने की दूनी हानि वशो उठायी जाय ? सुधार नहीं होता है तो उससे एक हानि है, दुर्भाव बढ़ने से तो दूनी हानि होगी। इसलिए सुधार का कोई मार्ग न दीखे तो भी सद्भाव एवं विश्वास तो बनाये ही रखना चाहिए। मित्रता पर आँच किसी की कारण नहीं आने देनी चाहिए। सप्तपदी का सातवाँ कदम इसी तथ्य की पूर्ति के लिए उठाया जाता है।

यह व्याख्या सप्तपदी के सात कदम पति-पत्नी द्वारा साथ-साथ उठाये जाने की क्रिया का उद्देश्य समझाते हुए करनी चाहिए। ऊपर कुछ संकेत मात्र ही दिये गये हैं। कुशल वक्ता जिन्होंने गृहस्थ जीवन की समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया है, वे घटनाओं, उदाहरणों, प्रसंगों और समाचारों का पुट देकर उसे बहुत ही आकर्षक बना सकते हैं। इसके लिए दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का पढ़ना तथा उनसे उत्पन्न होती रहने वाली समस्याओं का स्वरूप तथा हल जानना आवश्यक है। वक्ताओं का इस क्षेत्र में विशाल अध्ययन तथा चिन्तन-मनन होना चाहिए।

सुमंगली—पाँचवी क्रिया विवाह-दिवसोत्सव की 'सुमंगली' है। पति पत्नी को और पत्नी पति को तिलक लगाती है। पति द्वारा पत्नी की माँग में सिन्दूर भरना उसके सुहाग को सफल एवं सार्थक बनाने के आश्वासन के रूप में होता है। पति इस क्रिया द्वारा यह आश्वासन देता है कि उसका सौभाग्य सिन्दूर निरर्थक सिद्ध न होगा। पत्नी को यह पश्चात्ताप न करना पड़ेगा कि ऐसे निखट्ट

पति की अपेक्षा तो अविवाहित रहना ही अच्छा था। वह भार नहीं सहारा बनेगा। दबाने या सताने में नहीं वरन् हँसाने और उठाने में विवाह की सार्थकता है।

इस प्रथा का दूसरा रूप एक-दूसरे के मस्तक पर तिलक करने का भी है। पति केवल पत्नी के तिलक करे इतना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह भी उचित है कि पत्नी भी पति के मस्तक पर तिलक करे। तिलक नीचे से ऊपर की ओर लकीर खींच कर किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मानसिक स्तर को ऊपर की ओर उठाने का प्रयास होना चाहिए। किसी का वास्तविक उत्थान-पतन उसकी भावना एवं आकांक्षा का ऊँचा या नीचा होने में ही है। पति-पत्नी में से हर एक का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपने साथी को किसी प्रलोभन या भय के कारण निकृष्ट मार्ग पर चल पड़ने की दुर्बलता में पड़ने से बचाये। कठिनाइयाँ रहकर भी धर्म-कर्तव्य और औचित्य को अपनाये रहने की हिम्मत बढ़ाता रहे।

मस्तिष्कीय ज्ञान, शिक्षा, विवेक, अनुभव एवं जानकारी की बढ़ोत्तरी भी मानसिक शक्ति के विकास का एक प्रकार है। दोनों में से जो भी अधिक ज्ञानवान् है उसे चाहिए कि साथी को वह अवसर दे, जिससे उसे अपना मानसिक स्तर कम से कम उतना ही अन्यथा और भी अधिक विकसित करने की सुविधा प्राप्त कर सकना सम्भव हो जाय। सुमंगली क्रिया के अवसर पर किया गया तिलक इसी प्रेरणा का प्रतीक माना गया है।

उपरोक्त पाँचों क्रियाओं को करते हुए उपरोक्त आधार पर विस्तृत व्याख्या-विवेचनाएँ की जानी चाहिए। जिनका विवाह-दिवसोत्सव मनाया जा सकता है, उनके दाम्पत्य-जीवन में क्या कमियाँ हैं, उनका पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए और उन अभावों की पूर्ति के संबंध में रचनात्मक उपाय प्रस्तुत करने चाहिए, यह सब कहने में रचनात्मक दृष्टि से एवं सामान्य विवेचना के ढंग से कहा जाना चाहिए अन्यथा जिसकी त्रुटि बताई जा रही होगी वह अपनी उस बात को प्रकट होने और सबके सामने हेय बात ठहराये जाने की बात सोचकर वक्ता पर कुपित होगा और सुधारने की अपेक्षा और अधिक चिढ़ जायगा। यह भूल किसी प्रवक्ता को नहीं करनी चाहिए। कहना इस ढंग से चाहिए कि न तो किसी का भेद खुले और न भर्त्सना प्रतीत हो। सुधारने का कार्य बड़ा कठिन है, समझाने के ढंग में समुचित प्रेम, आत्मीयता, प्रतीक्षा, प्रोत्साहन की मात्रा है तभी उससे किसी के सुधारने की आशा की जा सकती है। इस उत्सव का उद्देश्य जीवन में अधिक मधुरता उत्पन्न करना तथा विकृतियों का समाधान करना है, इसलिए प्रशिक्षण इस ढंग से होना चाहिए कि किसी को कटु, मर्मभेदी प्रतीत न हो। अपनी भूल बताने पर आमतौर से लोग रुष्ट होते, चिढ़ते तथा अपमान अनुभव करते हैं। इस मानवीय मनोवैज्ञानिक

दुर्बलता का ध्यान रखते हुए जब जो कहा-समझाया जायगा वह अवश्य श्रभावशाली सिद्ध होगा।

व्रत धारण की आवश्यकता—जिस प्रकार जन्मदिवस के अवसर पर कोई बुराई छोड़ने और कोई अच्छाई अपनाने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञायें की जाती हैं। इसी तरह विवाह के दिवस, उपलक्ष्य में भी पतिव्रत और पत्नीव्रत को परिपुष्ट करने वाले छोटे-छोटे नियमों का पालन करने की कम से कम एक-एक प्रतिज्ञा इस अवसर पर लेनी चाहिए। परस्पर 'आप या तुम' शब्द का उपयोग करना 'तू' का अशिष्ट एवं लघुता प्रकट करने वाला सम्बोधन न करना जैसी प्रतिज्ञायें तो आसानी से ली जा सकती हैं।

पति द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञायें ली जा सकती हैं। (१) कटु वचन या गाली आदि का प्रयोग न करना। (२) कोई दोष या भूल हो तो उसे एकान्त में ही बताना, समझना बाहर के लोगों के सामने उसकी तनिक भी चर्चा न करना (३) युवा स्त्रियों के साथ अकेले में बातें न करना (४) पत्नी पर सन्तानोत्पादन का कम से कम भार लादना (५) उसे पढ़ाने के लिए कुछ नियमित व्यवस्था बनाना (६) खर्च का बजट पत्नी की सलाह से बनाना और पैसे पर उसी का प्रभुत्व रखना (७) गृह व्यवस्था में पत्नी का हाथ बँटाना (८) उसके सदगुणों की समय-समय पर प्रशंसा करना (९) बच्चों की देखभाल, साज-संभाल तथा शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान देकर पत्नी का काम सरल करना (१०) पर्दा का प्रतिबन्ध न लगाकर उसे अनुभवी, स्वावलम्बी होने की दिशा में बढ़ने देना (११) पत्नी की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं पर समुचित ध्यान देना, आदि-आदि।

पत्नी द्वारा भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञायें की जा सकती हैं। जैसे—(१) छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ने, झल्लाने या रूठने की आदत छोड़ना (२) बच्चों से कटु शब्द कहना, गाली देना या मारना-पीटना बन्द करना (३) सास, ननद, जिठानी बड़ों आदि को अपशब्द या कटु शब्दों में उत्तर न देना (४) हँसने-मुस्कराते रहने और सहन कर लेने की आदत डालना (५) साबुन, सुई, बुहारी इन तीनों को दूर न जाने देना, सफाई और मरम्मत की ओर पूरा ध्यान रखना (६) उच्छृंखल फैशन बनाने में पैसा या समय तनिक भी खर्च न करना (७) पति से छिपा कर कोई काम न करना (८) अपनी शिक्षा, योग्यता बढ़ाने के लिए नित्य कुछ समय निकालना (९) पति को समाज सेवा एवं लोकहित के कार्यों में भाग लेने से रोकना नहीं वरन् प्रोत्साहित करना (१०) स्वास्थ्य के नियमों के पालन कराने में उपेक्षा न बरतना (११) घर में पूजा का वातावरण बनाये रखना, भगवान की पूजन आरती और भोग का नित्य क्रम रखना, (१२) पर्दा के बेकार बन्धन की उपेक्षा करना (१३) पति, सास आदि के नित्य चरण-स्पर्श करना आदि-आदि।

हर दाम्पत्य-जीवन की अपनी-अपनी समस्याएँ होती हैं। अपनी कमजोरियाँ, भूलों, दुर्बलताओं और आवश्यकताओं को वे स्वयं अच्छी तरह समझते हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही यह सोचना चाहिए कि किन बुराइयों-कमियों को उन्हें दूर करना है और किन अच्छाइयों को अभ्यास में लाना है। जो उन्हें उपयुक्त एवं सामयिक प्रतीत हों, उसकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और उपस्थित लोगों के सामने घोषणा भी करनी चाहिए ताकि उन्हें उसके पालने में लोक-लाज का ध्यान रहे, साथ ही जो उपस्थित हैं उन्हें भी वैसी ही प्रतिज्ञाएँ करने और उन पर आरुढ़ रहने के लिए प्रोत्साहन मिले।

यह तथ्य ध्यान में रखें—गृहस्थ एक प्रकार का प्रजातंत्र है, जिसमें डिक्टेटरशाही की गुञ्जायश नहीं। दोनों को एक-दूसरे को समझना, सहना और निबाहना होगा। दोनों में से जो हुक्म चलाना भर जानता है, अपना पूर्ण आशानुवर्ती बनाना चाहता है, वह गृह-शान्ति में आग लगाता है। दो मनुष्य अलग प्रकृति के ही होते और रहते हैं। उनका पूर्णतया एक में घुल-मिल जाना संभव नहीं। जिनमें अधिक सामंजस्य और कम मतभेद दिखाई पड़ता हो, समझना चाहिए कि वे गृहस्थ हैं। मतभेद और प्रकृति भेद को पूर्णतया मिटा सकना कठिन है। कोई आत्म समर्पण करने वाले महात्मा या खरीदे हुए गुलाम ही पूर्ण आशानुवर्ती हो सकते हैं। सामान्य स्थिति में कुछ न कुछ विभेद बना ही रहता है, इसे जो लोग शान्ति और सहिष्णुता के साथ सहन कर लेते हैं, वे समन्वयवादी व्यक्ति ही गृहस्थ का आनन्द ले पाते हैं।

यह आशा करना कि पत्नी वैसी ही मिलेगी जैसी कि कल्पना या आशा की गई थी-निरर्थक है। साथी को पक़वा हुआ पकवान नहीं कच्चा राशन समझना चाहिए जिसे अपनी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, सहनशीलता, उदारता एवं आत्मीयता के आधार पर अपने ढंग का, अपनी रुचि का बनाया जाता है। इसके लिए काफी धैर्य रखने की आवश्यकता पड़ती है। उतावली में काम बिगड़ जाता है। अमीर व्यक्ति कटुता, भर्त्सना, तिरस्कार, निन्दा, लांछनों का सहारा लेकर साथी का आन्तरिक सौमनस्य खो बैठते हैं। आत्मीयता के सम्बन्ध गहरे रहें तो दैनिक जीवन में जो मतभेद रहते हैं वे क्रोध या द्वेष का कारण नहीं बनते। एक-दूसरे को समझकर किसी प्रकार झंझट निपटा लेते हैं।

भूलना न चाहिए कि हर व्यक्ति अपना मान चाहता है। दूसरे को तिरस्कृत कर उसे सुधारने की आशा नहीं की जा सकती। अपमान से चिढ़ा हुआ व्यक्ति भीतर ही भीतर क्षुब्ध रहता है, उसकी शक्तियाँ रचनात्मक दिशा में नहीं विघटनात्मक दिशा में लगती हैं, पति या पत्नी में से कोई भी गृह व्यवस्था के बारे में उपेक्षा दिखाने लगे तो उसका परिणाम आर्थिक एवं भावनात्मक क्षेत्रों में

१.१४ गृहस्थ एक तपोवन

विघटनात्मक ही होते हैं। इसलिए यों तो क्रोध से सभी जगह सदा ही बचना चाहिए पर दाम्पत्य जीवन में तो इसका विशेष सत्कर्तत्वापूर्वक ध्यान रखना चाहिए। दोनों के बीच यह समझौता रहना चाहिए कि यदि किसी कारणवश एक को क्रोध आ गया तो दूसरा तब तक चुप रहेगा, जब तक कि दूसरे का क्रोध शान्त न हो जाय। क्रोधपूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर अनिष्टकर परिणाम ही प्रस्तुत करता है। इन तथ्यों को दोनों ही ध्यान में रखें।

हवन का शेष कृत्य समाप्त होने पर युग निर्माण का सत्संकल्प दुहराया जाय। यह कार्य प्रत्येक संस्कार में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। हर उत्सव आयोजन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को युग निर्माण की व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना और प्रेरणा को भी हृदयंगम करते हुए जाना चाहिए।

सभी संस्कारों में उपस्थित सभी लोग शुभ कामना के रूप में आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण करते हुए अक्षत वर्षा करते हैं। इस उत्सव में पुष्प वर्षा का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। पूरे फूल या गुलाब, गेंदा आदि बिखरने वाले फूलों की पंखुड़ियाँ पहले से ही एक टोकरी में रखी जायें जो उत्सव के अन्त में सभी को वितरित कर दी जायें। आयोजन समाप्त होने पर ग्रन्थि-बन्धन खोल दिया जाय और वे दोनों सभी उपस्थित लोगों का अभिवादन करें। इसके प्रत्युत्तर में उपस्थित लोग शुभकामना के प्रतीक रूप पुष्प अक्षत बरसायें, तिलक करें और मंगल वचन बोलें।

नया उत्साह, नया आरम्भ—पति-पत्नी को नये वर्ष का, नये उत्साह एवं नये आनन्द से परिपूर्ण जीवन बनाने-बिताने की नई प्रेरणा के साथ अपना नया कार्यक्रम बनाना चाहिए। अब तक का वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त रहा हो तो रहा हो, पर अब अगले वर्ष के लिए यह प्रेरणा लेनी चाहिए, ऐसी योजना बनानी चाहिए कि वह अधिकाधिक उत्कृष्ट, आदर्श एवं आनन्ददायक हो। उस दिन को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए छुट्टी के दिन के रूप में मनोरंजक कार्यक्रम के साथ बिताने की व्यवस्था बन सके, तो वैसा भी करना चाहिए। विवाह का दिन केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से ही नहीं भावना, उत्साह एवं उत्साह की दृष्टि से भी विवाह दिन की अभिव्यक्तियों के पुनःसंस्करण के रूप में मनाया जा सके, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। इस प्रेरणाप्रद दिन में एक कार्यक्रम यह भी होना चाहिए कि दोनों एकान्त में बैठ कर अब तक के जीवन की समीक्षा करें। जो भूलें हुई हों, उसके लिए एक-दूसरे से क्षमा माँगें। जो प्रसन्नतावर्धक काम हुए हों उसके लिए एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और भावी जीवन की ऐसी सुव्यवस्थित योजना बनावें जिस पर चलते हुए गृहस्थ में स्वर्ग के अवतरण का आनन्द लिया जा सके।

परिवार संस्था का सुसंचालन

विवाह में वर कन्या का ही गठबन्धन नहीं होता, दो परिवार भी आपस में बँधते हैं। एक दूसरे के सहयोग-परामर्श से अपनी कठिनाइयों से निबटने और उन्नति की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। दो पड़ोसी परस्पर सहानुभूति के आधार पर मित्र बन जाते हैं और दुःख बँटाने, सुख बाँटने में यथासम्भव सहायता करते हैं तो कोई कारण नहीं कि कन्या और वर के परिवार मिल-जुलकर एकता स्थापित न करें और एक दूसरे के शुभचिन्तक बनकर न रहें। उन्हें स्थिति के अनुरूप एक-दूसरे की सहायता भी करनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि कन्या पक्ष ही वर पक्ष की आजीवन सहायता करता रहे। यदि सम्भव हो तो और आवश्यकता पड़े तो वर पक्ष को भी कन्या पक्ष वालों की सहायता करनी चाहिए। घनिष्ठ सहानुभूति तो रखनी ही चाहिए। विवाह के बाद कन्या से पूरी तरह पल्ला नहीं छोड़ा लेना चाहिए। विवाह के बाद कन्या बिक नहीं जाती वरन् अपना अधिकार अभिभावकों पर भी बनाये रहती है। जिससे छुटकारा पा लेना आजीवन सम्भव नहीं होता। इस तथ्य को सदा ध्यान में रखा जाय और कन्या को समय-समय पर बुलाते चलाते रहा जाय। इसकी कुछ पारिवारिक गुत्थियाँ हों तो उन्हें सुलझाने में सहायता करते रहना भी कर्तव्य है। जिस प्रकार अपने घर परिवार के झगड़े-झंझट सुलझाये जाते हैं उसी प्रकार बेटी के घर की समस्याओं को सुलझाने में भी समुचित योगदान देते रहना चाहिए। बेटी को सर्वथा उपेक्षित-असहाय छोड़ देने पर उसके परिवार के कर्कश निष्ठुर लोगों की बन आती है। यह स्थिति नहीं ही बनने पाये इसके लिए कन्या पक्ष को भी ध्यान रखे रहने की आवश्यकता है।

विवाह पति-पत्नी के बीच ही नहीं होता वरन् उसके माध्यम से विवाहितों का पूरा परिवार उनकी सेवा-सहायता के लिए आकांक्षी बन जाता है। विवाह से पूर्व लड़के के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि में जो समय और धन लगाया जाता रहा है, उसे एक विश्वस्त व्यवसाय में लगी हुई पूँजी समझी जा सकती है। विवाह के दिनों दम्पति स्वावलम्बन के नजदीक पहुँच चुके होते हैं। वे समर्थ भी हो चले होते हैं। ऐसी दशा में उनका कर्तव्य हो जाता है कि परिवार को सुखी-समुन्नत, व्यवस्थित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए जो भी सम्भव हो सके वह करें। यह अहसान करना नहीं वरन् ऋण चुकाना है।

परिवार में कई सदस्य तो समर्थ और स्वावलम्बी होते हैं, पर कई बाल, वृद्ध ऐसे होते हैं जिन्हें आर्थिक एवं भावनात्मक सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। प्रौढ़ भी सम्मान-शिष्टाचार तो चाहते ही हैं। इन आवश्यकताओं को पूरी करते रहना दम्पति का कर्तव्य है। ऐसा भी होता है कि बड़े लड़कों को पढ़ाने में घर की पूँजी चुक जाती

है। सोचा जाता है कि लड़का जब समर्थ हो जायेगा तो उस पूँजी को लौटा देगा। घर के अन्य असमर्थों को समर्थ बनाने में अपना योगदान देगा, पर देखा जाता है कि उनका दृष्टिकोण बदल जाता है। सोचते हैं कि अपनी कमाई को पति-पत्नी के बीच ही खर्च करके अधिक विलासी और खुशहाल जीवन क्यों न बितायें ? घर वालों की सहायता में अपनी कमाई क्यों लगायें ? इस स्वार्थपरता से प्रेरित नवयुवक अलग हो जाते हैं या कहीं अन्यत्र बदली करा लेते हैं। जो कमाते हैं उसे अपने ऊपर ही खर्च कर लेते हैं। परिवार के लोगों को निराश ही रहना पड़ता है। यह बुरी बात है। होना यह चाहिए कि पति-पत्नी मिलकर पहले परिवार के अंग बनकर रहें। उन पर जो समय तथा धन खर्च हुआ है, उसे सेवा सहायता करते हुए चुकाने में लगे रहें। इस संदर्भ की सभी आवश्यकताएँ जब पूरी हो चले, छोटे बहिन-भाइयों की शिक्षा, शादी पूरी हो जाय तब इसके उपरान्त बच्चे पैदा करने की तथा घर-परिवार बसाने की बात सोचें अन्यथा यह परिवार का ऋण भार लेना ऐसा ही है जैसा कि किसी साहूकार या बैंक का दिया हुआ ऋण लेकर भाग जाना। यह स्थिति उत्पन्न न करना ही भलमनसाहत है अन्यथा अपनी पढ़ाई, शादी, भरण-पोषण में घर की अधिकांश राशि खर्च करा लेना और पीछे वालों को असहाय छोड़ देना बुरी बात है।

परिवार संस्था को हमें टूटने नहीं देना चाहिए। उसका वातावरण सही रहने में इस खदान से नर रत्नों का उत्पादन होता है। परिवार की एक कड़ी व्यक्ति निर्माण के साथ जुड़ती है। दूसरी समाज निर्माण के साथ। बच्चे और बड़े अपने गुण, कर्म, स्वभाव के भले-बुरे होने का अभ्यास परिवार की पाठशाला में ही करते हैं। इस प्रकार वह व्यक्ति निर्माण का आधार है। परिवारों की कड़ियाँ मिलकर ही समाज बनता है। समाज की अलग से कोई सत्ता नहीं, वह परिवारों का ही समुच्चय है। परिवारों की जो व्यवस्था तथा सभ्यता होती है, उसी को व्यक्ति अपनाते जायें तो वैसा ही समाज बन जायगा। इसलिए समाज निर्माण में नवदम्पति को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। क्योंकि नई प्रतिभा के रूप में उनका दबाव सब पर पड़ता है। फिर जो कमाकर लाते हैं वह घर में ही तो रखते हैं इसलिए उनका अहसान भी घर के सभी लोग मानते हैं। शत-प्रतिशत नहीं तो उनकी बातें अधिकांश में मानी जाती हैं।

विवाह के उपरान्त पति-पत्नी को परस्पर तनाव उत्पन्न नहीं करना चाहिए। लड़-झगड़ की राह अपनाने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। यह अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए कि दूसरा पक्ष अपने ही संकेतों पर चलेगा। उसका अपना भी मानस है, अपना स्वभाव भी, उसे पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। समझदारी इसी में है कि जितना सम्भव हो। उस हद तक तालमेल बिठा लिया जाय और

जो मतभेद रह जायँ, उन्हें उपेक्षा के गर्त में डाल दिया जाय। तेतीस प्रतिशत नम्बर लाने पर बच्चे पास हो जाते हैं। पचास प्रतिशत पर सैकिण्ड डिवीजन और साठ से ऊपर लाने पर फर्स्ट डिवीजन। पति-पत्नी का तालमेल जिस अनुपात में मिल जाता हो उसी को सौभाग्य और सुयोग मानकर संतोष करना चाहिए और प्रसन्न रहना चाहिए। दोषों को भुला दिया जाय, गुणों को स्मरण रखा जाय तो इतने भर से दाम्पत्य जीवन की अधिकांश सफलता सिद्ध हो जाती है। शत-प्रतिशत एक दूसरे के अनुगामी होंगे, इसकी अपेक्षा नहीं ही करनी चाहिए। गुणों को बढ़ाने का तरीका यह है कि दूसरों के सामने साथी के जो गुण हों उनकी प्रशंसा की जाय। जो दोष हों उनके सम्बन्ध में चुप्पी साध ली जाय। उन्हें चर्चा का विषय न बनाया जाय। मतभेदों को आपस में मिलजुल कर सुलझाया जाय। इसके लिए तर्क, उदाहरण प्रस्तुत किये जायँ। अहंकार को आगे रखकर रूठ बैठना और आवेश में भरकर अपमानजनक व्यवहार करने लगना ऐसा दुर्व्यवहार है जिसके आधार पर खाई चौड़ी होती है। गुत्थी सुलझाने की सम्भावना तो रहती ही नहीं। दबाव देकर साथी को इच्छानुरूप चलने के लिए बाधित करना जंगली कानून है। वह स्वाभिमानी मनुष्यों पर प्रयोग नहीं किया जा सकता, जो हठवादिता अपनाते हैं वे घाटे में रहते हैं। सरल और सुखी दाम्पत्य जीवन बिटाने का तरीका यही है कि दोनों में से कोई हठवादी न बने। विचार-विनिमय का द्वार खुला रखा जाय और जिस सीमा तक सहमति बन पड़े उसी में सन्तोष किया जाय।

परिवार के सदस्यों में शिष्टाचार, मितव्ययिता, श्रमशीलता, सुव्यवस्था और उदार सहकारिता का बीजारोपण करना चाहिए। किसी को भी उद्वेग, उच्छृंखल नहीं बनने देना चाहिए। अपनी गलती तलाश करने और उसे सुधारने की आदत सभी को डालनी चाहिए। नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनो को घर में प्रवेश नहीं करने दिया जाय। अपव्यय की आदत पड़ जाती है तो उचित-अनुचित किसी भी तरीके से धन प्राप्त करने की ललक बनी रहती है। इसका प्रतिफल चरित्र पतन के रूप में सामने आता है। आलसी व्यक्ति श्रम बचाता है, पर इसके बदले योग्यता बुद्धि से वंचित रह जाता है। जो दूसरों के काम में हाथ नहीं बँटाता उसे कामचोर, स्वार्थी और आलसी समझा जाता है। ऐसे स्वभाव वाले दूसरों की आँखों में खटकते हैं। भर्त्सना के पात्र बनते हैं। इसमें उनमें आत्महीनता या विद्वेष की भावना उत्पन्न होती है। हँसी-खुशी की उस सौगात से वंचित रह जाते हैं जो उत्साह, श्रमशील, सेवाभावी होने की स्थिति में उनको सहज ही मिलती रह सकती है।

परिवार में बड़े-बूढ़ों का आग्रह पुराणपंथी मान्यताओं में अटका रहता है। विवाह-शादियों में बाल-विवाह, धूम-धाम, दहेज का लेन-देन उन्हीं के आग्रह से होता है।

मृतक-भोज, भूत-पलीत, देवी-देवता, छूत-छात, पर्दा-धूँघट जैसा निरर्थक बुढ़िया पुराण उन्हीं का चलता है। पिर-फकीरों से वे ही ठगाती रहती हैं। हर पुरानी परिपाटी को वे पत्थर की लकीर मानती हैं। अपनी बातों पर बड़े-बूढ़े बहुत जोर देते हैं। कई बार तो उन्हें प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं। इन बातों को हँसी की उपेक्षा में टाल देना चाहिए। इन बातों पर झगड़ना तो नहीं चाहिए पर उन मूढ़-मान्यताओं को चलने भी नहीं दिया जाना चाहिए। सुधार के लिए उन्हें बदलते जमाने और समय की माँग को ही प्रधान तर्कों के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए, इन प्रसंगों में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए कि अन्धविश्वासों को प्रश्रय न भी मिलने पाये और कोई बड़ा सा झगड़ा-झड़प भी खड़ा न हो।

बड़े-बूढ़ों का पुराने ढंग का कड़ा अनुशासन और नई पीढ़ी का सामयिक स्वतन्त्रता का उपयोग इन दोनों ही बातों से आये दिन टकराहट होती रहती है और घर झगड़े-झड़पों के अखाड़े बने रहते हैं। इस गृह युद्ध को गम्भीर होकर नहीं हल्के-फुल्के मन से हँसी-मजाक में ही टाला जा सकता है। दोनों पक्षों को थोड़ा-थोड़ा झुकना चाहिए ताकि मिलकर चलने के बिन्दु पर आ सकें। जो इतना कर पायें उन्हें शासन चला सकने की नीति कुशलता में प्रवीण-पारंगत कहा जायगा।

जहाँ स्वार्थपरता, चालबाजी, धूर्तता, अनीति का समावेश हो उन बातों को नहीं ही चलने देना चाहिए। इसमें अपना सहयोग, विरोध या संघर्ष भी खड़ा किया जा सकता है, ऐसे प्रसंग पुराने ढंग की विवाह-शादियों के सम्बन्ध में हो सकते हैं। बालविवाह, दहेज, धूमधाम के प्रसंगों में नई पीढ़ी को बड़े-बूढ़ों के सामने अपनी आदर्शवादी मान्यता स्पष्ट कर देनी चाहिए। कहना चाहिए कि मूढ़ परम्परा उन्हें किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं। वे आजीवन कुंवारे रह सकते हैं, पर उनका रिश्ता स्वीकार नहीं करेंगे जो देन-दहेज या धूमधाम को आवश्यक मानते हैं। लड़की हो या लड़का दोनों को ही इस आदर्शवादिता पर अड़ जाना चाहिए। किसी गरीब को साथी बना लेना चाहिए, पर उस कुश्रथा को सहन नहीं करना चाहिए, जिससे घर बर्बाद होते हैं और समाज में गरीबी, बेईमानी का माहौल बनता है।

पाश्चात्य देशों में स्वेच्छाचार की बाढ़ आने से परिवार संस्था टूट गई। बूढ़ों को सरकारी बुढ़े खानों में आश्रय लेकर मौत के दिन पूरे करने पड़ते हैं। पति-पत्नी के बीच तनिक सा मनुमुटाव होते ही तलाक ले लिये जाते हैं। बिना विवाह के न स्त्रियाँ रह पाती हैं न पुरुष। ऐसी दशा में बच्चों को जहाँ-तहाँ छोड़कर नया घर बसाने की उतावली पड़ती है। ऐसे बच्चों, बच्चा खानों में पल जाते हैं पर अभिभावकों की स्वार्थपरता और हृदयहीनता उन्हें आजीवन खटकती रहती है। फलतः वे अनेक दुर्गुणों और मानसिक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

ऐसे परित्यक्त बालकों की संख्या उन देशों में निरन्तर बढ़ती जाती है।

भारत में दूसरे तरह की समस्याएँ हैं। पति-पत्नी की ओर से बदल जाने पर पूरा परिवार अपने-पराये के उस मतभेद में अपने की हिमायत करता है। पत्नी को ही दोषों की खान ठहराया जाता है और प्रयत्न यह किया जाता है कि किसी प्रकार उससे पीछा छुड़ाकर नई बहू लाने का जुगाड़ बिठाया जाय।

विधवा और परित्यक्ता की स्थिति प्रायः एक जैसी होती है। दोनों के ही बच्चे दुर्दशाग्रस्त रहते हैं और माताएँ, छाती पर पत्थर रखकर किसी प्रकार वह सब सहन करती रहती हैं। आवेश आने पर उन्हें नीच-ऊँच कदम भी उठाने पड़ते हैं।

पाश्चात्य देशों की ओर भारत की पारिवारिक स्थितियों में अन्तर तो है, पर दोनों को ही हेय अनुपयुक्त कहा जा सकता है। यह ढर्रा देर तक नहीं चल सकता। अतिवाद सदा निभता नहीं। उसके अपने-अपने ढंग के दुष्परिणाम खड़े होते रहते हैं।

सर्वसुलभ समाधान यह है कि 'लार्जर फेमिली' कम्प्यून स्तर की सहकारी समितियाँ गठित की जायँ। उसमें सभी सदस्यों की सुविधा, जिम्मेदारी तथा आदर्श व्यवस्था सुरक्षित रहे। सौदा खरीदना, बच्चों को खिलाना, पढ़ाना, भोजन बनाना, कपड़े धोना, मनोरंजन आदि काम सहकारी स्तर पर हों उसी में एक खण्ड ऐसा भी रहे कि सदस्यों में से जो अनाथ, अपंग हो जाय उसका भी लार्जर फेमिली द्वारा निर्वाह चलता रहे। ऐसी समितियाँ साम्यवादी देशों में गठित भी की गई हैं और वे सफलतापूर्वक चल भी रही हैं। सामर्थ्य भर श्रम करने, आवश्यकता के अनुरूप लेने का सिद्धान्त ऐसा है जिसे अपना लेने पर केन्द्रीय सम्पन्नता बढ़ती रहती है। उसका लाभ हर सदस्य को मिलता है। न कोई पिसता है—न कोई पीसता है। सभी की स्वतन्त्रता और जिम्मेदारी अक्षुण्ण बनी रहती है।

परिवार संस्था को जीवन्त और सक्षम रहना आवश्यक है। इसके लिए न्यायोचित और सुविधाजनक तरीका 'लार्जर फेमिली' वाला ही है। वह जहाँ जितने अंशों में सम्भव हो कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

परिवार का मूल—दाम्पत्य-जीवन

दाम्पत्य-जीवन के ऊपर पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत सभी तरह की उन्नति, विकास निर्भर करते हैं। पति-पत्नी के सहयोग, एकता, परस्पर आत्मोत्सर्ग, त्याग, सेवा आदि से दाम्पत्य जीवन की सुखद और स्वर्गीय अनुभूति सहज ही की जा सकती है। इससे मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जीवन के विकास में बड़ा योग मिलता है। सभी भाँति स्वस्थ, संतुलित, सुन्दर दाम्पत्य

जीवन स्वर्ग की सीढ़ी है और मानव विकास का प्रेरणा-स्रोत है।

जीवन लक्ष्य की लम्बी मंजिल को तय करने के लिए पति-पत्नी का अनन्य संयोग यात्रा को सहज और सुगम बना देता है। नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रह जाती है तो बिना शक्ति के पौरुष भी किसी काम नहीं आता, वह अपंग है। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह, संयोग एकता, नव-सृजन के लिए नव-निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी परस्पर असंगति, असमानता ही अवरोध, हानि, अवनति का कारण बन जाती है। पति-पत्नी में यदि परस्पर विग्रह, आपा-धापी, स्वार्थपरता, द्वेष, स्वेच्छाचार की आग सुलग जायगी तो दाम्पत्य जीवन का सौंदर्य विकास, प्रगति, महत्वपूर्ण संभावनाओं का स्वरूप अपने गर्भ में ही नष्ट हो जायगा।

पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन रथ के दो पहिए हैं, जिनमें एक की स्थिति पर दोनों की गति, प्रगति निर्भर करती है। दोनों का चुनाव जितना ठीक होगा दाम्पत्य जीवन उतना ही सुखद, स्वर्गीय, उन्नत एवं प्रगतिशील बनेगा। दोनों में से एक भी अयोग्य, कमजोर हो तो दाम्पत्य जीवन का रथ डगमगाने लगेगा और पता नहीं, वह कहीं भी दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अथवा मार्ग में ही अटक जायगा। इससे न केवल पति-पत्नी वरन् परिवार, समाज के जीवन में गतिरोध पैदा होगा। क्योंकि दाम्पत्य जीवन पर ही परिवार का भवन खड़ा होता है और परिवारों से ही समाज बनता है। इसलिए पति-पत्नी का चुनाव एक महत्वपूर्ण पहलू है।

बड़ी-बड़ी आशा, आकांक्षाओं के साथ नवयुवक और नवयुवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बँधते हैं। बड़ी-बड़ी रस्में अदा होती हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। गाजे-बाजे, रोशनी, दावतें, लेन-देन, बरात, जुलूस आदि के साथ दो प्राणी विवाह-सूत्र में बँधते हैं। परस्पर के नये आकर्षण से प्रारम्भिक दिनों दोनों का जीवन बड़ा सुखद बीतता है किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और दाम्पत्य-जीवन कलह, अशांति, द्वेष, असंतोष की आग में जलने लगता है।

परिपाटी के तौर पर जो प्रतिज्ञायें धर्म पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक जीवन में नाम भी नहीं रहता। दाम्पत्य-जीवन एक दूसरे के लिए बोझ बन जाता है। इसका कोई बाह्य कारण नहीं। अपितु पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार, आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है। यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाय तो दाम्पत्य-जीवन परस्पर सुख-शांति, आनन्द का केन्द्र बन जाय।

दाम्पत्य जीवन की सुख, समृद्धि एवं शान्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें। एक मोटा-सा सिद्धांत है कि मनुष्य दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है। पति-पत्नी भी सदैव एक दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे के विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता। व उन्हें निर्ममता के साथ कुचल भी देते हैं। इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असंतोष का उदय हो जाता है। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबरदस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना पति के प्रति पत्नी के मन में असंतोष की आग पैदा करना है। इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उन्हें उलझाये रखना चाहती हैं। फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझ-सा लगने लगता है। दाम्पत्य जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असंतोष होने लगता है और यही असंतोष उनके परस्पर के व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य जीवन को विषाक्त बना देता है। यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं। एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं।

पति-पत्नी का सदैव एक दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतंत्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसी के अभाव में आजकल दाम्पत्य जीवन एक अशांति का केन्द्र बन गया है। पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक स्थिति भी उपयुक्त न होने पर स्त्रियों की बड़े-बड़े मूल्य की साड़ियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन, सिनेमा आदि की माँग पतियों के लिए असंतोष का कारण बन जाती है। इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दाम्पत्य जीवन की अशांति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता जहाँ स्त्री-पुरुषों में आपस में नाराजगी-असंतोष दिखाई न देता हो।

परस्पर एक दूसरे की भावनाओं और स्वतंत्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं होता, जिसके कारण एक दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में मनुष्य को जानकारी नहीं मिलती। इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकाल पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-साथी का समक्ष होना आवश्यक है। अपने साथी की ज्ञानवृद्धि, विकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह

१.१८ गृहस्थ एक तपोवन

ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है किन्तु देखा जाता है अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता।

योग्य होकर भी, एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए कभी-कभी स्वभावतः ऐसा व्यवहार हो जाता है जो पति-पत्नी में से एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल को महसूस कर क्षमा माँग कर परस्पर मनो को साफ करना चाहिए, अन्यथा परस्पर मनोमालिन्य बढ़ जाता है और दाम्पत्य-जीवन में कटुता पैदा हो जाती है। महात्मा सुकरात, टालस्टाय, संत तुकाराम जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़ और लड़ाका स्त्रियों को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में निबाहा था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव, व्यवहार, निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी को चलाने में योग देती रही हैं। भारतीय नारी का महान् आदर्श इसी त्याग, सहिष्णुता और पतिव्रत-धर्म से निर्मित रहा है। पति-पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति-पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू है। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर को व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्द्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दाम्पत्य जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबंधन है। अतः परस्पर किसी तरह का दुराव, छिपाव, दिखावा, बनावटी व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास एक दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दाम्पत्य-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव-छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति-पत्नी को एक-दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करनी चाहिए। वैसे जहाँ तक बने प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे से बचना चाहिए। क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति-पत्नी एक दूसरे पर संदेह करने लगते हैं। वे सोचते हैं—“हो सकता है यही व्यवहार हमसे किया जा रहा हो।” और संदेह की भूल-भुलैया में ही अनेकों दम्पतियों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति-पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार

पर पति-पत्नी से ही विभिन्न समय में, सलाहकार की तरह मंत्री की-सी योग्यता, भोजन करते समय माँ की वात्सल्यता, आत्म-सेवा के लिए आज्ञापालक नौकर, जीवन-पथ में एक अभिन्न मित्र, गृहिणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी तरह पत्नी भी पति से जीवन-निर्वाह के क्षेत्र में माँ-बाप, दुःख-दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा-संरक्षण के लिए भाई आदि के कर्तव्यपूर्ति की आशा रखती है। जब परस्पर इन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो एक दूसरे में असंतोष, अशांति पैदा हो जाती है।

एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्द्धन में योग देकर परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक दूसरे की मानसिक तृप्ति करते हुए दाम्पत्य जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ-जीवन की काया पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, ज्ञानवृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करेंगे दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक दूसरे को समझते हुए अपने स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शांतिपूर्ण बनाया जा सकता है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर संबंधों में खटाई पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्त्री की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, वस्त्र, ओढ़ने-पहनने, बोलचाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझा-सी लगती है और वे उनकी उपेक्षा तक करने लग जाती हैं।

स्त्रियाँ सदैव यह चाहती हैं कि पति उनके काम, रहन-सहन आदि की प्रशंसा करें। वस्तुतः पति के मुँह से निकला हुआ प्रशंसा का एक शब्द पत्नी को वह प्रसन्नता प्रदान करता है जो किसी बाह्य साधन, वस्तु से उपलब्ध नहीं हो सकती। पति की प्रशंसा पाकर स्त्री अपनत्व तक भी भूल जाती है। दाम्पत्य-जीवन में जो परस्पर प्रशंसा करते नहीं अघाते वे सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

जिन स्त्रियों को पतियों की कटु आलोचना सुननी पड़ती है वे सदैव यह चाहती हैं कि कब यह यहाँ से हटे और पति की अनुपस्थिति में वह अन्य माध्यमों से अपने दबे हुए भावों की तृप्ति करती है। सखियों के साथ गप-शप लड़ाती है। तरह-तरह के बनाव, शृंगार

करके बाजार में निकलती हैं और यहाँ तक कि कई तो पर-पुरुषों की प्रशंसापात्र बनकर अपने भावों को तृप्त करने का भी प्रयत्न करती हैं जो प्रेम और प्रशंसा उसे पति से मिलने चाहिए थे, वह उन्हें अन्यत्र ढूँढ़ने का प्रयत्न करती हैं। कई स्त्रियाँ अन्य मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं अथवा क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव की झगड़ालू बन जाती हैं। घर-उन्हें सूना-सूना और उजड़ा हुआ-सा लगता है। जहाँ स्त्री को पति की प्रेमयुक्त प्रशंसा के स्थान पर कटु आलोचनाएँ सुननी पड़ती हैं, वहाँ सहज प्रेम तो धीरे-धीरे समाप्त हो ही जाता है। पतिगृह में नारी के लिए जो आकर्षण, प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण होना चाहिए वह निराशा, खिन्नता, रुखाई और शमशानवत् नीरवता में बदल जाता है, जहाँ सद्भावना, प्रेम, आत्मीयता के जीवन से रहित पति-पत्नी के जड़ शरीर हिलते-डुलते नजर आते हैं।

इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही विषैला है। पुरुषों को अपने काम से थक कर आने पर घर में प्रेम एवं उल्लास का उमड़ता हुआ समुद्र लहराता मिलना चाहिए, जिसमें उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी धुल जाय। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना, व्यंग्य-वाण, बच्चों की धर-पटक, हाथ-हल्ले का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या हालत होगी, भुक्तभोगी इसका सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

अच्छे-अच्छों का धैर्य उस समय डिंग जाता है जब पत्नी के कटु-कर्कश व्यवहार का सामना पुरुष को लगातार करना पड़ता है। फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय अपनी पत्नी की आलोचना और रुखाई से तंग आकर वेश्याओं के यहाँ जाने लगा था। उसने अंत में एक स्त्री से भी अपना संबंध बना लिया था। लेकिन जैसा महापुरुष अपने अच्छे स्वभाव और सद्गुणों के बल पर दाम्पत्य-जीवन को काफी समय तक निभाता रहा किन्तु अंत में उसे अलग होना पड़ा। महान् विचारक टालस्टाय अपनी स्त्री के कर्कश स्वभाव को सहते रहे किन्तु अंत में बयासी वर्ष की उम्र में परेशान होकर घर छोड़कर चले गये और मार्ग में ही निमोनिया के प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गई।

इस तरह के अनेकों उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। पत्नी की कर्कशता से तंग आकर व्यक्ति यदि आदर्शवादी होता है तो वह दार्शनिक विचार तथा क्रियाओं की ओर मुड़ जाता है-जैसे सुकरात, भर्तृहरि आदि। इसके विपरीत साधारण मानसिक शक्ति और सामान्य बुद्धि वाला हुआ तो वह वेश्यागामी, शराबी, व्यसनी बन जाता है। जिन लोगों को घर में स्त्रियों का प्रेम, सद्भाव नहीं मिलता वे अन्यत्र उस प्रेम की पूर्ति करना चाहते हैं अथवा नशेबाजी आदि व्यसनो में अपनी परेशानी भुलाना चाहते हैं। घर के कटुतापूर्ण, रूक्ष,

आलोचना प्रधान वातावरण के कारण कितने ही लोगों का जीवन अपराधी बन जाता है।

पति-पत्नी का एक समान संबंध है, जिसमें न कोई छोटा, न कोई बड़ा है। जीवन-यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न-हृदय साथियों की तरह होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्त्व है। पुरुष जीवन-क्षेत्र में पुरुषार्थ और श्रम के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन-रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन-रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद व्यवस्था और साधना-सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमानवश पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दाम्पत्य-जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर-भावनाओं का अभाव भी है।

पतिव्रत धर्म की गरिमा

शास्त्रों में पतिव्रत धर्म की महिमा का मुक्त कंठ से वर्णन किया गया है और बताया गया है कि पतिपरायण नारी वह सद्गति सहज में प्राप्त कर लेती है जो योगी-यती एवं ज्ञानी-ध्यानी बड़ी कठिनाइयाँ सहते हुए प्राप्त करते हैं। पतिव्रता नारियों के गौरवमय चरित्रों से भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है।

अधे पति से अपनी स्थिति अच्छी रहने देने की अनिच्छुक घृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने आँखों में आजीवन पट्टी बाँधे रहने का व्रत लिया और उसे सदैव निभाया। शैव्या ने हरिश्चन्द्र के साथ, दमयंती ने नल के साथ, सीता ने राम के साथ कठिन समय आने पर अपने त्याग और प्रेम का अद्भुत परिचय दिया। सत्यवती ने सत्यवान के साथ, सुकन्या ने वृद्ध च्यवन के साथ कितना उत्कृष्ट संबंध निबाहा ? अरुंधती, अनुसुइया, बेहुला, शकुंतला, भारती आदि कितनी ही नारियों के ऐसे दिव्य चरित्र मिलते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि पतिपरायणता को इस देश का नारी समाज अत्यंत उच्च भावनाओं के साथ निबाहता रहा है।

पतियों के साथ परलोक में भी रहने की भावना से प्रेरित होकर उनके मृत शरीरों के साथ जलकर कितनी ही नारियाँ इस बात का परिचय देती रही हैं कि उनमें आदर्श के लिए चिता में जीवित जलने का मर्मगत कष्ट सहकर भी भावनाओं को ऊँचा उठाये रहना उचित समझा। पतियों की शान पर रती भर भी आँच न आने देने और पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए चितौड़ की रानियों ने जो अपूर्व बलिदान का परिचय दिया, उसकी महिमा किन शब्दों में कही जाय ? अभी भी स्थान-स्थान पर सतियों के मंदिर और स्मारक जहाँ-तहाँ देखने-को मिलते हैं, इससे प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में भारतीय नारी ने अपने आदर्शवाद की कितने कष्ट सहकर भी रक्षा की है।

पतिव्रत धर्म को एक योग साधन माना गया है। उसका अवलंबन करने से नारी को आध्यात्मिक उत्कर्ष, श्रेष्ठ सद्गति का प्राप्त होना स्वाभाविक है। आत्मसमर्पण एक उच्चस्तरीय साधना है। भगवान को भक्त जब अपना समर्पण करता है तो वह अपने 'अहम्' को समाप्त कर देता है और स्वतन्त्र इच्छाओं का परित्याग कर भगवान की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेता है। इस प्रकार द्वैत को मिटाने और अद्वैत को प्राप्त करने का साधन बन जाता है। तृष्णा, अहंता, कामना, लोभ, मोह, मान और स्वार्थ की समाप्ति आत्म-समर्पण के साथ ही होती है और साधक को वह मनोभूमि प्राप्त होती है, जिसमें भक्तिमार्ग की सारी कठिनाइयों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। गीता में आत्म-समर्पण योग को साधना मार्ग का मुकुटमणि कहा है। योगी अरविंद तथा अन्य अनेक तत्त्वदर्शियों ने इसी माध्यम से आत्मोत्कर्ष का प्रयास किया और उसे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वैसा ही पाया भी जैसा कि शास्त्रकारों ने वर्णन किया है।

भगवान की उपासना उनका कोई भी रूप मानकर की जा सकती है। पौधों में तुलसी, वृक्षों में पीपल, नदियों में गंगा, पत्थरों में शालिग्राम भगवान का प्रतीक मानकर पूजे जाते हैं। मंदिर में देव प्रतिमाएँ पाषाण एवं धातुओं की होती हैं। उनमें श्रद्धा विश्वास का आरोपण कर जब यह आस्था जमा ली जाती है कि यह भगवान हैं तो उसी भावना की प्रतिध्वनि उन्हीं मान्य स्वरूपों से टकरा कर लौटती है और वही फल मिल जाता है जो साक्षात् भगवान की भक्ति करने पर उसके प्रत्यक्ष अनुग्रह द्वारा प्राप्त होता है। पतिव्रत धर्म को पालन करने में भी यही प्रयोजन सिद्ध होता है। पति को भगवान मानकर साधना करने में कोई अड़चन नहीं। जब पत्थर, नदी, वृक्ष, पौधों को भगवान माना जा सकता है और उनकी पूजा की जा सकती है तो मनुष्य शरीरधारी आत्मा के प्रति वैसी मान्यता बनाने में क्या कठिनाई हो सकती है ? योग साधना के प्रथम चरण में गुरुभक्ति को ईश्वर भक्ति का प्रारम्भ माना जाता है। गुरु को आत्मसमर्पण करके शिष्य ईश्वर परायणता का भी अभ्यास करता है और जब उसमें निष्ठा जम जाती है तब उसी का विकसित स्वरूप परमात्मा में आत्मा का लय करने देने का निमित्त बन जाता है। तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य को भी भगवान का स्वरूप मानकर उसके माध्यम से आत्मसमर्पण का अभ्यास किया जा सकता है और योग साधन का लक्ष्य प्राप्त करने में इस सरल माध्यम से आगे बढ़ा जा सकता है।

भारतीय नारियाँ इसी विचार से पतिव्रत धर्म को आत्म-कल्याण की भावना मानकर उसे अपनाती रही हैं। पति की दुर्बलताओं और त्रुटियों की उनसे अपेक्षा की है। अच्छी भावनाओं की उत्कृष्टता बनी रहना तभी संभव है जब साधक अपने इष्ट के दोष, दुर्गुण एवं दुर्बलताओं की

उपेक्षा करता हुआ अपने कर्तव्य एवं सद्भाव में रती भर भी कमी न आने दे। पतिव्रता यही तो करती है। पति को अपना सर्वस्व मानकर उसकी इच्छानुगामीनी कोई नारी जब उसे आत्मिक प्रगति का, आत्म-समर्पण साधना का माध्यम समझती हुई एक भावुक भक्त की भूमिका में उतरती है तो उसके लिए आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त कर लेना कुछ भी कठिन नहीं रह जाता।

आत्मिक प्रगति के साथ-साथ पतिव्रत धर्म के पालन में लौकिक प्रगति की असंख्य संभावनाएँ निहित रहती हैं। संघर्ष तभी होता है जब दोनों के मन में भिन्नता रहती है। एक की राह पूर्व, दूसरे की पश्चिम होती है तभी मन-मुटाव का अवसर आता है। यदि पति-पत्नी में से एक दूसरे का इच्छानुवर्ती बन जाय तो फिर संघर्ष का कोई कारण न रहेगा। सुधार की दृष्टि से प्रेमपूर्वक भी प्रयत्न किये जा सकते हैं, कुमारगामी को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रेम और त्याग की अपनत्व भरी लड़ाई भी की जा सकती है। इस प्रकार भी हृदय परिवर्तन हो सकता है। सुधार के लिए कटु संघर्ष अनिवार्य नहीं। पति-पत्नी के बीच कोई मतभेद हो तो उसे सुलझाने में बिना संघर्ष किये ही अपनी सद्भावना शक्ति से भी बहुत कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। त्याग से बढ़कर और कोई शक्ति नहीं, प्रेम से बढ़कर और कोई शस्त्र नहीं। इस शक्तिशाली शस्त्र को अपनाकर कोई भावनाशील पतिव्रता नारी अपने कुमारगामी पति को भी सन्मार्ग पर ला सकती है और यदि न भी ला सके तो वह अपना कर्तव्य करती हुई आत्मसंतोष कर ही सकती है। संघर्ष को तो बचा ही सकती है।

पति सुधार हुआ हो तब तो कहना ही क्या है पर यदि उसका स्तर घटिया हो, विचार, चरित्र एवं व्यवहार की दृष्टि से वह उपयुक्त स्थिति से नीचा हो तब भी उसे निबाहने की भावना रखने वाली नारी पारिवारिक कलह को बचा सकती है और दाम्पत्य जीवन को क्लेश-द्वेष की आग में जलने से तो सुरक्षित रख ही सकती है। पारिवारिक शांति का भौतिक जीवन में इतना बड़ा स्थान है कि उस पर धन, समृद्धि एवं अन्य अनेक सुख-सुविधाओं को निछावर किया जा सकता है। संतोषी स्वभाव की सहिष्णु परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने वाली, कर्तव्यपरायण एवं हंसमुख विनम्र स्वभाव की स्त्री को 'गृहलक्ष्मी' कहते हैं। जिस घर में ऐसी देवियाँ रहती हैं वहाँ सुख-शान्ति को भी विवश होकर रहना पड़ता है।

सत्यवादिता के एक ही सद्गुण को अपना लेने से छोटे-छोटे अनेकों सद्गुण मनुष्य में स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार पतिव्रत धर्म अपना लेने पर नारी में वे अनेकों विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण वह पति परिवार में साम्राज्ञी बनी रहे। महाभारत में द्रौपदी-सत्यभामा संवाद प्रसिद्ध है। उस प्रसंग में द्रौपदी ने

यही बताया है कि वह काली-कलूटी होते हुए भी अपने पतियों के हृदय पर अपने पतिव्रत एवं श्रेष्ठ स्वभाव के कारण किस प्रकार शासन करती है। उस प्रयोग को कोई भी स्वीकार सकती है और बुरे से बुरे पारिवारिक वातावरण को अपने सदगुणों के आधार पर स्वर्गीय सुख-शांति का केन्द्र बना सकती है। जहाँ पतिव्रत की प्रगाढ़ आस्था होगी, आत्मसमर्पण का भाव रहेगा वहाँ भावनागत कोमलता के कारण पति को सुखी और संतुष्ट बनाने की आकांक्षा की जायेगी और उस आकांक्षा की पूर्ति के लिए अपने गुण, कर्म, स्वभाव को उसी ढाँचे में ढालना पड़ेगा जिससे अभीष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकें। अपने सदगुणों से ही तो पति तथा उसके परिवार को सन्तुष्ट रखा जाता है। पतिव्रता नारी को अनिवार्यतः अपनी स्वेच्छाचारिता त्याग कर अपनी इच्छाओं एवं स्वभाव को नरम बनाकर अनुकूलता उत्पन्न करके कुछ बदलना पड़ता है। पतिव्रता में ऐसा परिवर्तन अनायास ही होता भी है।

पर-पुरुष से कुकर्म न करने का नाम ही पतिव्रत नहीं है। यह तो उसका एक छोटा-सा अंग-मात्र है। वस्तुतः आत्म-समर्पण की भावना का नाम ही पतिव्रत धर्म है। उसका स्तर ईश्वर भक्ति जैसा होता है। इस आध्यात्मिक साधना को अपनाने वाली नारी अहंताजन्य अगणित पाप-दोषों से मुक्त होकर द्वैत की मंजिल पर करती हुई अद्वैत की, ब्रह्म निर्माण की जीवन स्थिति प्राप्त करती है और अपने सदगुणों के कारण जिस घर में रहती है वहाँ स्वर्गीय सुख-शांति का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। पतिव्रत का यह एक ही लाभ भौतिक दृष्टि से इतना बड़ा है कि उसे अन्य सफलताओं एवं संपन्नताओं से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर माना जायगा। दो आत्माएँ एक बनकर जब जीवन-यापन करती हैं तो उनका बल, साहस एवं अंतस्तल इतना अधिक विकसित होने लगता है, जिसके माध्यम से अनेक कठिनाइयों से लड़ते हुए प्रगति पथ पर बढ़ते चलना और शक्तिमय, सार्थक जीवनयापन कर सकना सहज ही संभव हो जाता है। प्रगतिशील लोगों के जीवन में उनकी धर्मपत्नियों का भारी सहयोग रहा है। यदि उन्हें ऐसी नारी न मिली होती जो मनोबल बढ़ाने और जीवन को व्यवस्थित रखने में सहायता कर सके तो संभवतः वे गिरी स्थिति में ही गुजर करते और महापुरुष एवं प्रगतिशील बनने के लाभ से वंचित ही रह जाते। पतिव्रता नारी किसी पति के लिए दैवी वरदान ही कही जा सकती है।

सुसंतति का मूल आधार दाम्पति प्रेम है। बच्चे को विकसित, सुशिक्षित एवं सुसंस्कारी बनाने के लिए जितने भी उपाय हो सकते हैं, उन सबसे अधिक प्रभावशाली मार्ग यह है कि पति-पत्नी में आंतरिक प्रेम रहे। रज-वीर्य के मिलने से बच्चे का शरीर बनता है पर उसका

अंतःकरण माता-पिता के परस्पर प्रेम और सद्भाव पर निर्भर रहता है। जिन पति-पत्नी के बीच अगाध प्रेम होगा उसके गर्भोत्पादक परमाणु एक ही विद्युत धारा से प्रभावित होकर अनुकूलता की दिशा में गतिशील रहेंगे। गर्भ में बालक के शरीर की वृद्धि माता के रस व रक्त से होती है पर चेतना एवं भावना-संस्थान माता-पिता के परस्पर प्रेमभाव की विद्युत धाराओं के आधार पर ही विकसित होता है, उन दोनों के बीच यदि द्वेष, घृणा, मनोमालिन्य रहे, असंतोष के भाव रहें तो उसकी प्रतिक्रिया गर्भस्थ बालक के मानसिक विकास पर अत्यन्त घातक होती है। माता जैसी उद्विग्न, असंतुष्ट रहती है उसी के अनुरूप बालक का मन विकृतियों एवं मानसिक ग्रन्थियों से भर जाता है और बड़ा होने पर वह अवज्ञाकारी, उद्विग्न, अविवेकी, असंयमी, आसुरी प्रकृति का होता है। आज ऐसे ही दुर्गुणी बालकों का बाहुल्य हो रहा है। उसका प्रमुख कारण पति-पत्नी के बीच रहने वाला दुर्भाव होता है।

वर्णशंकर बालकों को हेय इसलिए माना गया है कि गुप्त व्यभिचार से उनका जन्म होने के कारण माता-पिता उसके आगमन को अशुभ मानते हैं, छिपाते हैं, पछताते हैं और गर्भस्थ आत्मा को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा न भी करें तो भी उस नव-निर्माण से उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं होती। उस स्थिति में माता-पिता के बीच परस्पर दुर्भाव ही बढ़ते रहते हैं। इसका प्रभाव बालक की मनोभूमि पर पड़ता है और वह बड़ा होने पर एक असभ्य नागरिक बनता है। विदेशों में कुमारी माताओं के गर्भ से उत्पन्न जारज संतानों के पालन का राज्य की ओर से प्रबंध है। हर वर्ष लाखों बच्चे इस प्रकार उत्पन्न होते और पलते हैं। पर देखा यह जाता है कि वे मानसिक दृष्टि से विकसित नहीं होते, ऊँची शिक्षा मिलने पर भी वे घटिया कामों के योग्य ही बन पाते हैं। यही बात उन बालकों के बारे में लागू होती है पर माता-पिता के मनोमालिन्य के कारण मानसिक दृष्टि से अविकसित ही रह जाते हैं। इन्हें स्पष्टतः वर्णशंकर नहीं कहा जा सकता पर लगभग वैसी ही मनोभूमि माता-पिता की रहने से बच्चे भी उत्कृष्ट भावना स्तर से वंचित रह जाते हैं। हमारी आगामी पीढ़ियों में नैतिकता, मानवता, चरित्र एवं आदर्शवादिता के तत्त्व क्रमशः घटते चले जा रहे हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण दाम्पत्य जीवन में आत्मीयता की प्रगाढ़ता न होना भी है ही।

पतिव्रत धर्म सुसंतति को जन्म देने के लिए नितांत आवश्यक है। बालकों से ही किसी परिवार का भविष्य उज्ज्वल बनता है। अपने वंश, कुल और परिवार का गौरव बढ़ाने वाले बालक वहीं जन्मेगे, जहाँ माता ने

१.२२ गृहस्थ एक तपोवन

पतिव्रत धर्म को उचित महत्त्व दिया होगा। यह तत्त्व जहाँ जितना ही कम होगा वहाँ उसी अनुपात से बालकों के शरीर और मन में अगणित विकृतियाँ भरी रहेंगी। जो अभिभावक अपनी संतान में मनोवांछित स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं सदगुण देखना चाहते हैं उन्हें उसकी सबसे बड़ी तैयारी यही करनी चाहिए कि पति-पत्नी के बीच प्रगाढ़ प्रेम और विश्वास बना रहे।

पत्नीव्रत-धर्म की आवश्यकता

नारी के लिए जो महत्त्व पतिव्रत का है वही ज्यों का त्यों नर के लिए पत्नीव्रत का है। जिस प्रकार नारी पतिव्रत धर्म का अवलंबन करके अपने आत्म-कल्याण, पारिवारिक स्वर्ग एवं सुसंतति की संभावना उत्पन्न करती है, उसी प्रकार पुरुष पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हुए इन्हीं विभूतियों एवं सिद्धियों को उपलब्ध करता है।

पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म एक दूसरे के पूरक हैं। नर और नारी की रचना इस प्रकार हुई है कि एक दूसरे की अपूर्णताओं को पूर्ण करके पारस्परिक सहयोग से एक सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करें। पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा गया है, यही बात पति के लिए भी कही जा सकती है। दोनों का सम्मिलित स्वरूप ही एक परिपूर्ण इकाई बनता है। दो हाथ, दो पैर, दो आँखें, दो नथुने, दो कान, दो फेंफड़े मिलकर जिस प्रकार एक जोड़ा बनता है, उसी प्रकार नर-नारी भी एक सर्वांगपूर्ण जीवन की आवश्यकता पूरी करते हैं। आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव, नथुने, फेंफड़े आदि युग्मों में से एक यदि नष्ट हो जाय, बीमार, अशक्त, दुर्बल या अव्यवस्थित हो तो शरीर में उपहासास्पद कुरूपता बढ़ती है। लोग उसे काना, भेंडा, लँगड़ा, टोंटा, नकटा आदि कहकर चिढ़ाते हैं। बात वास्तविक होती है फिर भी उसमें अपमान अनुभव किया जाता है, क्योंकि अपूर्णता अपमान की बात होती भी है। मानव जीवन भी गाड़ी के दो पहियों की तरह पति-पत्नी रूपी दो संतुलित माध्यमों पर ठीक प्रकार लुढ़कता है। इनका पारस्परिक ताल-मेल न खाता हो तो गाड़ी को कुछ दूर तक घसीट भले ही लिया जाय, उसमें लंबी यात्रा पूरी नहीं हो सकती। पति-पत्नी के बीच यदि संतुलन और सामंजस्य न हो तो किसी भी गृहस्थ का भविष्य अंधकारमय ही बना रहेगा।

जिन्हें सार्वजनिक सेवा या किसी विशेष लक्ष्य से इतनी तन्मयता होती है कि गृहस्थ पालन एवं आजीविका उत्पादन में समय का एक अंश भी बर्बाद न हो ऐसे विशिष्ट मनस्वी लोगों के लिए बिना गृहस्थ बनाये भी

काम चल सकता है। वे आजीवन अविवाहित रहना चाहें तो रह भी सकते हैं। जिन्हें कोई शारीरिक या मानसिक रोग है और गृहस्थ के उत्तरदायित्वों को निबाहने में असमर्थ है उनके लिए भी अविवाहित रहना ठीक है। पर सामान्य मनुष्य को गृहस्थ बनना ही पड़ता है, इसके बिना उसकी अपूर्णता प्रगति के पक्ष में भारी अड़चन उत्पन्न करती है और उस अड़चन के कारण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में मनुष्य पिछड़ा हुआ ही पड़ा रहता है।

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी ऋषि गृहस्थ थे। योग-साधन एवं वनवास में रहते समय भी उनकी पत्नियाँ साथ रहती थीं। ब्रह्मचर्य पालन या न पालन मनुष्य की मनोदशा पर निर्भर है। गृहस्थ में भी आवश्यक ब्रह्मचर्य रह सकता है और अविवाहित लोग भी अपना सत्यानाश करते रह सकते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए गृहस्थ मुनि भी सपत्नीक रहते थे। विशिष्ट ऋषि के बालकों को विश्वामित्र द्वारा मार डाले जाने की कथा प्रसिद्ध है। लोमश ऋषि के बालक श्रुगी ऋषि ने अपने पिता के अपमान से क्रुद्ध होकर परीक्षित को शाप दिया था। इस प्रकार की कथाओं का वर्णन यहाँ किया जाय तो प्रायः प्रत्येक ऋषि की धर्मपत्नी और बालकों की सुविस्तृत चर्चा की जा सकती है। पत्नी बच्चों को त्याग कर भाग खड़े होने का वैराग्य तो अवैदिक, अशास्त्रीय और अनैतिक है। यह प्रथा तो बुद्धकाल में पड़ी थी, जिसका वैदिक धर्मानुयायी सदा से विरोध करते चले आ रहे हैं। वानप्रस्थ तो पत्नी समेत होता ही है। संन्यास में पत्नी की रुचि और सुविधा प्रधान रहती है। वह चाहे तो अपने पुत्र-पौत्रों के साथ रहे, चाहे तो पति के साथ परिव्रजा या कुटीचक्र के रूप में उनका सहचरत्व ग्रहण करके वैराग्य धर्म का पालन करती रहे।

देवताओं में से सभी गृहस्थ हैं। ईश्वर के अवतारों में भी अधिकांश ने अपना गृहस्थ बनाया है। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की लक्ष्मी, शंकर की पार्वती, इन्द्र की शची, वृहस्पति की अरुंधती प्रसिद्ध हैं। भगवान राम और कृष्ण जिनका नाम लेकर हम भव-सागर से पार होते हैं, गृहस्थ ही तो थे। ये दाम्पत्य-जीवन की आवश्यकता एवं उपयोगिता को स्वीकार करते थे। उन्होंने मर्यादा पालन के लिए एक सदग्रहस्थ के रूप में ही अपना चरित्र प्रस्तुत किया है। जीवन की सुविधा तो दाम्पत्य-जीवन में बढ़ती है साथ ही कितने ही जीवन लक्ष्यों की पूर्ति में भी भारी सहायता मिलती है।

जो सुविधा नारी को नर का सान्निध्य स्वीकार करने में है वही नर के लिए नारी का आश्रय लेने में है। तत्त्वतः वे दोनों एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी-अपनी विशेषताओं के द्वारा पूर्ण करते हैं। इनमें से कोई न बड़ा है, न छोटा। न किसी का अधिकार कम है, न अधिक। न किसी का गौरव न्यून है, न अधिक। हाथ, पैर, कान, आँख में से किसे ऊँच कहा जाय, किसे नीचा ? किसे बड़ा माना जाय, किसे छोटा ? गाड़ी के दो पहियों में से किसे महत्वपूर्ण माना जाय, किसे महत्वहीन ? वस्तुतः दोनों ही महत्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी को भी तुच्छ नहीं कहा जा सकता। यदि श्रेष्ठता, कनिष्ठता ढूँढ़ी भी जाय तो नारी का पलड़ा ही भारी पड़ता है। बालक को जन्म देने में माता का अनुदान ही अधिक रहता है इसलिए पिता से माता को श्रेष्ठ माना गया है। पति-पत्नी में भी नारी प्रधान है। भगवान् के नाम-युग्मों में पत्नी का नाम पहले है पति का पीछे। लक्ष्मी-नारायण, उमाशंकर, सीताराम, राधेश्याम जैसे नामों में इसी तथ्य का प्रतिपादन होता है। पतिव्रत धर्म पालन करती हुई नारी जिस प्रकार अपने जीवन को सार्थक और संबंधित वातावरण को स्वर्गीय बनाती है, ठीक वही बात पत्नीव्रत धर्म पालन करते हुए पुरुष भी करता है। इसलिए शास्त्रकारों ने पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म को एक ही न्याय तुला में तौला है और नर-नारी को समान निष्ठा के साथ अपने-अपने इन धर्म-कर्तव्यों का पालन करने का निर्देश किया है। पत्नी को अपने शरीर का आधा अंग मानकर उसे आत्मसात् करने में, उसकी प्रगति, प्रसन्नता एवं सुविधा के लिए अधिकाधिक त्याग-बलिदान करने में पति की सदाशयता उसी प्रकार परखी जाती है, जैसी प्रती की आत्म-समर्पण करते हुए पतिव्रत पालन करने में। वह एकांगी हो तो फलप्रद न होगा, एक पक्ष चाहे तो कर्तव्य भावना में उसे किसी प्रकार निबाहता रह सकता है पर उसका विकास संभव न होगा, विकास तो दूसरे पक्ष के आवश्यक सहयोग पर ही निर्भर है। ताली दोनों हाथों से बजती है। राम का पत्नीव्रत सीता को पतिव्रता बनाये रहा पर मंदोदरी ने रावण को मरते ही विभीषण से पुनर्विवाह कर लिया। यह तथ्य बताते हैं कि सुविकसित सजीव पतिव्रत तभी संभव है, जब पति भी पत्नीव्रत के प्रति वैसा ही निष्ठावान हो जैसी कि सती-साध्वी नारियाँ अपने धर्म-कर्तव्य के प्रति गहन आस्था धारण किये रहती हैं।

पिछले दिनों परिस्थितियों से अनुचित लाभ उठाने की दुष्प्रवृत्ति ने मानव तन में घुस बैठने का जोरों से प्रयत्न किया है, फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भयानक प्रवृत्तियों का बोलवाला हो चला है। शिशुओं का पालन और गृह व्यवस्थापिका का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व संभालने के कारण नारी का कार्यक्षेत्र घर रहा है। घर में रहते हुए बौद्धिक विकास, चातुर्य एवं अनुभव संपादन करने के अवसर कम मिलते हैं। फलतः नारी बौद्धिक

दृष्टि से कुछ पिछड़ी रह जाती है। भाग-दौड़ एवं कठिन श्रम जैसा कि नर को करना पड़ता है वैसा नारी को नहीं करना पड़ता फिर प्रसव एवं शिशुपालन का प्रत्यक्ष दबाव उस पर पड़ता है, जिससे स्वास्थ्य भी कुछ न कुछ पिछड़ा ही रहता है। उपार्जन के माध्यम घर से बाहर होते हैं। पुरुष की स्थिति उसे इस कार्य के लिए समर्थ बनाती है इसलिए वह 'कमाऊ' कहलाता है और नारी उससे भी अधिक श्रम करती रहने पर भी 'बिना कमाऊ' रहती है। पुरुष कमाकर लाने पर गर्व करता है और इसके बदले में अपना वर्चस्व एवं अधिकार प्रदर्शित करता है। परिस्थितियों ने बुद्धि, स्वास्थ्य और उपार्जन की दृष्टि से नारी को नर से पिछड़ा रहने दिया है पर उसका अर्थ यह कदापि नहीं कि यह क्षमताएँ उनमें नहीं हैं या कम हैं। जिन देशों में उन्हें समुचित अवसर मिलता है, वहाँ के पुरुषों की तुलना में अपनी उपयोगिता कुछ बढ़-चढ़कर ही सिद्ध करती हैं।

शिक्षा, स्वास्थ्य और उपार्जन के कार्यक्षेत्र में समाज ने नारी को पीछे छोड़ा और नर को आगे बढ़ाया। इससे पुरुष को अधिक विनम्र, अधिक कृतज्ञ और अधिक उदार होना चाहिए था। नारी ने गृहक्षेत्र के कठिन उत्तरदायित्व को स्वीकार कर पुरुष को अधिक समर्थ बनने का अवसर दिया तो इसमें उदारता उसी की मानी जायगी। यदि नारी यह स्वीकार न करती, अपने स्वतंत्र विकास पर अड़ जाती तो नर को चूल्हा, चौका और गृह व्यवस्था स्वयं ही संभालनी पड़ती। कितने ही देशों में पुरुषों को शिशु-पालन, भोजन-छाजन तथा दूसरे गृह कार्य करने पड़ते हैं और नारी उपार्जन तथा अन्य सामाजिक कार्यों को संभालती हैं। वहाँ उनकी प्रतिभा एवं स्थिति नर से कहीं अच्छी होती है। ऐसे देशों की स्त्रियों के लिए यही उचित है कि वे पुरुषों को धन्यवाद दें कि गृह कार्यक्रम का अपेक्षाकृत कहीं अधिक कठिन कार्य उनसे अपने कंधे पर लेकर उन्हें बाहर का सरल और मनोरंजक कार्य करने की छूट दे दी। इसी प्रकार जिन देशों में वह सुविधा पुरुषों को प्राप्त है, वहाँ उनका धर्म है कि नारी की उदारता से प्राप्त हुए इस अवसर का आभार मानें और इसका प्रत्युपकार चुकाने के लिए उचित से भी अधिक सौहार्द, सज्जनता एवं उदारता का परिचय दें।

खेद की बात यह है कि नारी की उदारता से प्राप्त सुविधा का प्रत्युपकार चुकाने के स्थान पर उसे हेय और हीन माना जाने लगा और अपनी विकसित सामर्थ्य के अहंकार में नारी को पददलित, प्रतिबंधित एवं उत्पीड़ित किया गया। ऐसे नियम-उपनियम बनाये गये जिससे उसके मानवीय अधिकार भी छिन गये। पर्दा प्रथा भले ही यवन शासन काल में हिन्दू ललनाओं के सतीत्व की रक्षा के लिए सदुद्देश्य से प्रचलित की गई हो, पीछे तो उसने एक कानून एवं परंपरा का रूप धारण कर लिया। पुरुष की अपेक्षा हेय एवं हीन, असमर्थ एवं अविश्वस्त होने की क्रूरता आधी मानवता की नियति पर

१.२४ गृहस्थ एक तपोवन

मानवता पर्दा प्रथा के पीछे छिप-छिप कर व्यंग्य करती रहती है। मनुष्य को मनुष्य के आगे मुँह ढँक कर रहना पड़े, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के आगे खुले शब्दों में बोल न सके यह प्रतिबंध मानवीय सभ्यता का इतना बड़ा तिरस्कार है कि हमें अपनी इस अनैतिकता को धर्म-मान्यता घोषित करते हुए शर्म से डूब कर ही मर जाना चाहिए।

भारतीय नारी का वर्तमान पिछड़ापन पुरुष वर्ग की अमानुषिक क्रूरता का प्रतिफल है। इस पिछड़ेपन को उसने ईश्वर प्रदत्त वरदान माना और प्राप्त सुविधा का बुरे से बुरा दुरुपयोग करने का प्रयत्न किया। इसी दुरुपयोग का एक बड़ा प्रमाण यह है कि पतिव्रत धर्म नारी के लिए तो आवश्यक माना जाता है पर पुरुष उस प्रतिबंध से बचा रहना चाहता है और स्वयं इस संबंध में अनैतिकता एवं स्वच्छंदता का आचरण करना चाहता है। कमी, विषयी, लंपटी, दुराचारी और अनेकों अश्लील कुकर्मों में लगे हुए पुरुष भी अपनी पत्नी को सीता, सावित्री से कम नहीं देखना चाहते।

बंधन, उत्पीड़न, त्रास एवं दमन के बल पर नारी को शारीरिक काम-वासनात्मक पतिव्रत निभाने के लिए विवश किया जा सकता है। पर पतिव्रत तो एक योग-साधन है, इसका संबंध श्रद्धा से है। श्रद्धा सज्जन के लिए, सदगुणों के लिए उत्पन्न होती है, दुराचारी के लिए तो घृणा और द्वेष का उठना ही स्वाभाविक है। साधक भगवान्, देवताओं की उपासना, आराधना इसलिए करते हैं कि अनेकों श्रेष्ठताओं की परिपूर्णता पर विश्वास रहता है। भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस की पूजा कोई दुष्ट-दुरात्मा ही कर सकता है। आमतौर से उनके प्रति सार्वभौम घृणा ही रहती है। उनके न तो कहीं मंदिर देखे जाते हैं और न कोई विवेकशील उनकी आराधना करता है। यही बात सदाचारी एवं दुराचारी पुरुषों के बारे में लागू होती है। जिन पुरुषों ने शारीरिक और मानसिक व्यभिचार के लिए अपने को स्वच्छंद माना है वे पत्नी से उस श्रद्धा की आशा नहीं कर सकते जो पतिव्रत धर्म का मूल है।

मनुष्यों की सद्भावनाएँ एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, प्रेम से प्रेम और द्वेष से द्वेष की वृद्धि होती है। बलवान का उत्तरदायित्व दुर्बल से अधिक है। आज पुरुष समर्थ है तो उसका कर्तव्य है कि अपने आचरण और व्यवहार से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे, जिनके रहते हुए पत्नी पत्नीव्रत के अतिरिक्त और कोई बात सोच ही न सके। स्त्रियाँ स्वभावतः देवी होती हैं। उनके नाक के आगे देवी शर्त लगाने की प्रथा, परंपरा वास्तविकता के आधार पर ही प्रचलित हुई है। भगवती देवी, शकुंतला देवी, राधा देवी, सावित्री देवी, विमला देवी आदि नामों से इस सचाई का ही उद्घोष है कि नारी में दैवी तत्त्व अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। यह

मात्रा अक्षुण्ण बनी रहे, सुविकसित हो और परिपुष्ट होती चले इसके लिए यह आवश्यक है कि पुरुष अपना आंतरिक स्वरूप देवताओं जैसा बनाये रहे। भारतीय नारी स्वभावतः पतिव्रता होती है। कुलटा तो उसे पुरुषों की दुष्टता बहका कर ही बना देती है। पति परायणता की भावनाएँ विद्रोह न करने लगे, इतना ध्यान रखना पति का काम है। उसे अपने को आदर्श पति के रूप में रखना चाहिए और निष्ठापूर्वक पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिए, जैसे सती-साध्वी नारी पतिव्रत धर्म का पालन करती है। उभय-पक्षीय कर्तव्य पालन से ही वह परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जिसमें मनुष्य का गृहस्थ जीवन सार्थक हो और परिवार में स्वर्गीय वातावरण का आनंद लाभ किया जा सके।

दाम्पत्य जीवन आदर्शों पर आधारित रहे

विवाहित जीवन बिताना एक बड़ा उत्तरदायित्व है। इसे उन्हीं को वहन करना चाहिए जो वर-वधू अपने को इस योग्य समझते हों। साथी पर भार बनने की अपेक्षा उसे ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने, आवश्यक सहयोग, सहायता कर सकने में अपने को उपयुक्त समझते हों। जो अपना निज का भार नहीं उठा सकते, उन्हें दूसरे को सुखी-समुन्नत बनाने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नहीं लेनी चाहिए। अच्छा हो असमर्थ पक्ष स्वेच्छापूर्वक अविवाहित रहे। उसके स्वजन-संबंधी भी ऐसा ही परामर्श दें। असमर्थों को उकसाया-भड़काया न जाय, यह अनिवार्य न माना जाय कि हर किसी का विवाह होना ही चाहिए, सेना में भर्ती होने वाले सैनिकों की हर प्रकार जॉब-पड़ताल कर ली जाती है। ठीक इसी प्रकार जिनको विवाह का उत्तरदायित्व वहन करना है, उन्हें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से इतना समर्थ होना चाहिए कि अपना निज का भार तो स्वयं वहन कर ही सके। साथ ही साथी के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी जुटा सके। जिन्हें पीढ़ियों तक चलने वाला रोग किसी प्रकार लग गया हो उन्हें विवाह का विचार ही छोड़ देना चाहिए। इसे अनिवार्य विषय न बनाया जाय। ऐच्छिक ही रखा जाय। जो इच्छुक हैं उनकी भी जॉब-पड़ताल कर ली जाय कि वे इस भार वहन में समर्थ हैं भी या नहीं।

दोनों पक्षों पर यह उत्तरदायित्व आता है कि साथी की योग्यता, समर्थता, प्रतिभा बढ़ाने में योगदान करें। कन्यादान का तात्पर्य ही यह है कि पिता अपनी भरण-पोषण से लेकर योग्यता बढ़ाने तक की सभी जिम्मेदारियाँ वर के कंधे पर स्थानान्तरण करता है। इस कार्य में ससुराल वालों को भी पूरा सहयोग करना चाहिए। पिता के घर कन्या जैसा स्वास्थ्य और जितनी शिक्षा-प्रतिभा साथ लेकर आई थी, उसमें काफ़ी समय तक

अभिवृद्धि होनी चाहिए। सोचा तो यह भी जा सकता है कि पिता ने कन्या का जितना विकास किया उतना ही ससुराल वालों को करके अपनी ली हुई जिम्मेदारी पूरी करनी चाहिए। उसे अधिक सुशिक्षित, अधिक स्वस्थ, अधिक सुसंस्कृत बनाने के लिए जो संभव हो शक्ति भर करना चाहिए। वर-वधू को इतना अवसर मिलना चाहिए कि वे एक दूसरे की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं, इसकी योजना बनायें और कार्यान्वित करें। इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि विवाह के उपरान्त कई वर्ष सन्तानोत्पादन से बचा जाय अन्यथा दम्पति प्रेम, सहयोग, विचार-विनिमय, विनोद, सहयोग आदि के सभी अवसर चले जाते हैं। उसकी शिक्षा प्रगति के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं। गर्भवती एक प्रकार से रोगिणी जैसी स्थिति में जा पहुँचती है। उसे अपनी परिचर्या के लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी दशा में वह अपने और दूसरों के लिए भारभूत होकर ही रह सकती है। बच्चे होने के बाद तो उसे इतना अवसर ही नहीं मिलता कि आगे की प्रगति का सिलसिला जारी रख सके। इसलिए विवाह के अवसर पर ही यह प्रतिज्ञा भी लेनी चाहिए कि कम से कम पाँच वर्ष पत्नी का दायित्व समझने और उससे लाभ लेने का अवसर उसे मिले। बच्चे की भारी आवश्यकता पड़ रही हो तो ही उस संदर्भ में विवाह के पाँच वर्ष बाद विचार करना चाहिए। इस संदर्भ में जल्दबाजी करने से कन्यादान का वह उद्देश्य नष्ट होता है जिसमें पिता ने अपनी पुत्री को अधिक समर्थ, अधिक शिक्षित एवं अधिक स्वावलम्बी-सुसंस्कृत बनाने के लिए वर के ससुराल वालों के सुपुर्द किया था। उस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए आवश्यक समय मिलना चाहिए। सन्तानोत्पादन के कुचक्र में आरम्भ से ही बाँध देने पर तो समझना चाहिए कि पिता के घर से जो स्वास्थ्य शिक्षा लेकर आई थी, उसमें भी बुरी तरह कटौती आरम्भ हो जायेगी। दाम्पति जीवन को सुखी-समुन्नत, हँसी-खुशी से भरे रहने का जो समय मिला था वह बेकार चला गया। बच्चे तो जन्म भर हो सकते हैं, पर यह अवसर लौटकर फिर कभी नहीं आ सकता, इसलिए आरम्भिक दिनों में पति-पत्नी एक दूसरे का सहयोग करके परस्पर अधिक प्रगतिशील बनने-बनाने में एक दूसरे की सहायता करें। इस बीच इतनी घनिष्ठ आत्मीयता सम्पादित कर लें जो जीवन भर संचित पूँजी की तरह काम देती रहे।

विवाह के दिन तो दोनों पक्ष एक दूसरे से अपरिचित होते हैं। बाद में पहचान आरम्भ होती है। इसे सुदृढ़ बनाने के लिए चार सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक निरन्तर प्रयोग करना चाहिए (१) स्नेह (२) सहयोग (३) सम्मान (४) विश्वास। आत्मीयता को सघन बनाने के ये चार स्तम्भ हैं, इन्हें जितना अधिक सम्भव हो सुदृढ़, परिपक्व एवं कार्यान्वित करना चाहिए।

स्नेह आत्मिक सम्पदा है। उसमें यह सोचा जाता है कि हम दूसरे पक्ष की सम्पत्ति हैं। साथ ही दूसरे को अपने लिए खरीद कर आत्मसात कर लिया गया है। दो शरीर एक णा। एक दूसरे पर निष्ठा। द्वैत में अद्वैत। इतनी घनिष्ठ मित्रता कि एक दूसरे की निकटता चाहें और एक दूसरे के लिए क्या कर सकते हैं यह सोचें। स्मरण रहे प्रेम में अपनी इच्छा-अभिलाषाओं, स्वार्थों को दूसरे के हित में विसर्जित किया जाता है। उसमें लेने का-बदला चाहने का भाव कभी भी नहीं होता। दूसरा यदि बदला भी नहीं चुका सके तो उसका कोई मलाल मन में न आने देना। यही मैत्री का चिह्न है। वह एकपक्षीय भी हो सकती है। अपनी ओर से घनिष्ठ आत्मीयता का प्रयोग-प्रदर्शन करते रहना और साथी की ओर से कुछ चढ़कर अपेक्षा न करना। हो सकता है कि साथी संकोची स्वभाव का हो, उसे मुखर होने की, खिल पड़ने की प्रकृति प्राप्त नहीं हुई हो। ऐसी दशा में दूसरे को अपने अनुरूप बनाने की अपेक्षा अपने को ही दूसरे के स्वभाव के साथ तालमेल बिठाने वाला परिवर्तन करना चाहिए। दूसरे को बदलना कठिन है पर अपने आपका परिवर्तन तो आसानी से किया जा सकता है। प्रेम का सुनिश्चित निर्वहण इसी प्रकार किया जाता है।

सहयोग का तात्पर्य है हाथ बढ़ाना। इनके जिम्मेवाले कार्यों में जान-बूझकर सहयोग देना। भले ही दूसरे को उनकी आवश्यकता प्रतीत न होती हो। पत्नी के घरेलू कार्यों में पति समय-समय पर हाथ बँटाता रहे तो इस क्रिया-कलाप में आनन्द भी बहुत आता है और सुविधा भी बहुत रहती है। पत्नियों आमतौर से पतियों के बीसियों काम प्रचलन के आधार पर भी करती रहती हैं, पर पति ही अपने बड़प्पन का अहंकर इसमें समझते हैं कि पत्नी के किसी काम में हाथ न बँटाये। उसके समय और सुविधा का ध्यान न रखें। इस प्रथा को उलटकर उसके बदले में श्रद्धा और आत्मीयता खरीदनी चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन के लिए व्यायाम, मालिस, शिक्षा संवर्धन के लिए अध्यापक की भूमिका निभाना, अनुभव बढ़ाने के लिए घर से बाहर साथ ले जाना जैसे छोटे-छोटे कार्यों में भी सहयोग की गंध आती है। होना यह चाहिए कि पत्नी के श्रम में हाथ बँटाना और उसे अधिक स्वस्थ-समुन्नत बनाने के लिए सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए कुछ कर गुजरने के लिए प्रयास करना आवश्यक है। इस दिशा में स्त्रियाँ पहले से ही सहयोगिनी से बढ़कर सेविका की भूमिका निभाती हैं। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सब बेगार भुगतने की तरह नहीं बरन् परिपूर्ण उत्साह और श्रद्धा के साथ करना चाहिए। इस प्रकार किया हुआ किसी भी पक्ष का कर्म अत्यधिक आनन्ददायक और उत्साहवर्धक बन जाता है। उसके बदले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष श्रद्धा भी मिलती है और मन जीत लिया जाता है। यह व्यवहार पति-पत्नी तक ही सीमित न रहे बरन् समूचे परिवार के साथ परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप

करना चाहिए। छुट-पुट कामों में से किसी का कुछ घिसता नहीं वरन् बदले में दूसरों की सद्भावना जितनी अधिक मात्रा में मिलती है। उसे असाधारण उपलब्धि ही कहा जा सकता है।

मैत्री की घनिष्ठता का तीसरा पक्ष है—सम्मान। आमतौर से स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे पुरुषों का सम्मान करें, पर पुरुष वैश्य वर्ग में अपनी हेटी समझते हैं। इस सम्मानता के युग में उस पुरातन परिपाटी को बदलकर दोनों ही पक्षों को एक दूसरे का समुचित सम्मान करना चाहिए। शिष्टाचार से किसी को भी च्युत नहीं होना चाहिए। अपने को छोटा और साथी को बड़ा मानकर चला जाय और अपने को सभ्य समाज का सदस्य माना जाय तो स्वभावतः मधुर भाषण, सम्मति सूचक सम्बोधन एवं शिष्टाचार के सभी पक्षों का अनायास ही निर्वाह होने लगेगा। आते-जाते समय प्रसन्नता, सात्वना जैसी मुद्राएँ बनती रहें तो बाह्य व्यवहार से भी यह प्रकट होता रहता है कि साथियों के बीच स्नेह की, सम्मान की समुचित भावना है। रूखा स्वभाव रखना अथवा उपेक्षा बरतना, अहंकार को आड़े देना सम्मान के प्रकटीकरण में बाधक होता है। इस बाधा को मैत्री में व्यवधान नहीं बनने देना चाहिए। आत्मीयता के प्रकटीकरण में सम्मान, शिष्टता को कार्यान्वित करते रहना भी आवश्यक मानकर चलना चाहिए। इस सामान्य सी प्रक्रिया से घनिष्ठता के संवर्धन में आशातीत योगदान मिलता देखा गया है।

चौथा आधार है विश्वास। एक दूसरे का परिपूर्ण विश्वास किया जाय। किसी प्रकार का छल करने की आवश्यकता न की जाय। कहीं कुछ ऐसा होता भी हो तो उसे भुला देना चाहिए और अपनी कल्पना की त्रुटि माननी चाहिए। कमाने का काम पुरुष का है, घर खर्च चलाने का स्त्री का। व्यावसायिक पूँजी को सुरक्षित रखने की बात दूसरी है। पर घर खर्च के निमित्त अर्जित आजीविका को पत्नी के या माता के हाथ पर रखना चाहिए और उन दोनों के परामर्श से ही बजट बनाकर खर्च करना चाहिए। माता के न होने पर या उसकी समझदारी में कमी होने पर उस अधिकार का उपयोग पत्नी ही करती है। खर्च में से कुछ बचा लिया होगा। फिजूलखर्ची के लिए घर की सम्पदा में से छिपाकर बचाया होगा, ऐसा संदेह नहीं ही करना चाहिए। कभी कुछ ऐसा होता भी हो तो उसे हँसी-उपहास तक ही रहने देना चाहिए। गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। ऐसा तभी होता है जब स्त्री समझती है कि मेरा धन और पति का धन अलग-अलग है। जब पूरी सम्पदा पर अधिकार का भाव बन चले तो चोरी करने जैसे प्रसंग का आरम्भ ही नहीं होता।

पति-पत्नी के बीच चरित्र, व्यभिचार संबंधी आशंका का जन्म भी नहीं होना चाहिए। विवाह से पूर्व किन्हीं का

किन्हीं से कुछ लगाव रहा हो तो उस बात को दर-गुजर कर देना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि इतने भर से कोई सदा के लिए अविश्वास-पात्र या चरित्रहीन हो गया। हो सकता है कि वहाँ विवाहवार्ता ही चल रही हो और बाद में टूट गई हो। पतिव्रत धर्म या पत्नीव्रत धर्म वस्तुतः विवाह हो जाने के बाद ही आरम्भ होता है। इससे पूर्व जो सिलसिला कहीं किसी प्रकार चलता रहा है, उसे लगभग पूर्व जन्म की घटना मानकर विवाह के बाद हुए इस नये जन्म पर कोई प्रभाव न डालने वाली ही मानकर चलना चाहिए। विवाह संस्कार के समय में एक प्रायश्चित्त होम भी होता है, जिसका तात्पर्य है कि विवाह से पूर्व यदि किसी ने किसी से सम्पर्क बनाया है तो उस घटना को विवाह के समय सदा के लिए भुलाकर सदा के लिए प्रायश्चित्त हुआ समझना चाहिए। विवाह से पूर्व की घटनाओं को लेकर जीवन भर उलाहना देते रहना व्यर्थ है। वस्तुतः विवाह के बाद ही एक दूसरे से परिचित होते हैं और वफ़ादार बनते हैं। मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील है। जो कभी गलत राह पर चल गया है, वह समझदारी-जिम्मेदारी आने पर अपनी राह को सुधार भी सकता है।

सामान्यतया मेले-ठेले, हाट-बाजार, विवाह-शादी आदि आयोजनों में कई नर-नारी मिल जुलकर जाते हैं तो उसमें अविश्वास को आड़े आने नहीं देना चाहिए। महिलायें काम-धन्धे के लिए, सौदा-सामान खरीदने के लिए बाहर जाती हैं तो उनके साहस को सराहना चाहिए। इन अवसरों का उपयोग वे दुश्चरित्रता के लिए करेंगी ऐसा संदेह नहीं उपजना चाहिए। विश्वास से विश्वास बढ़ता है और संदेह से संदेह। दुराचारी अपनी साँठ-गाँठ सौ प्रकार से लगा सकते हैं और साहसी अनाचारियों के बीच अपने शील की रक्षा कर सकते हैं। गाँव, घर, मुहल्ले का कोई व्यक्ति कुशल-क्षेम पूछने कहने यदि घर आया है तो उसका आतिथ्य करना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि इस प्रकार का आगमन सदा दुर्बुद्धि से ही होता है। कड़ी नजर उन्हीं पर रखनी चाहिए, जिनका स्वभाव एवं चरित्र संदिग्ध हो।

पर्दे की प्रथा अनुचित है। जबकि पुरुष स्त्रियों के बीच बिना घूँघट के आ जा सकते हैं तो स्त्रियों को ही किसलिए अप्रामाणिक माना जाय। वे भी पुरुषों की ही तरह निर्भीक, साहस, सदाचारी क्यों न समझी जायें ? संदेह, अविश्वास के कारण नारी को पर्दे में कैद रखने की परम्परा उनके साहस, मनोबल को गिराने और डरपोक, हीन भावना बनाने जैसी है।

मिल-जुलकर कार्य करने का अभ्यास घर में भी रहना चाहिए और दुकान व्यवसाय में भी। किसान, मजदूर अपनी स्त्रियों समेत काम निपटाते हैं, फिर व्यापार व्यवसाय में वैसा ही प्रयोग क्यों नहीं किया जा सकता ? इससे पुरुषों की भाँति नारी स्वावलम्बी अनुभवी

बनती है और समय पड़ने पर उस कर्म को बिना पुरुष की सहायता के भी चलाती रह सकती है।

नारी के प्रति समानता का भाव रखा जाय। उसे कामिनी, रमणी, भोग्या, वेश्या न माना जाय। दो भाई-भाई अथवा भाई-बहिन किन्हीं कार्यों को मिल-जुलकर कर सकते हैं तो पति-पत्नी के बीच भी ऐसी ही सहकारिता-विश्वसनीयता क्यों नहीं होनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में नर की ही भाँति नारियाँ भी सरकारी पद सम्भालती, व्यवसाय करती तथा सार्वजनिक सेवा में क्षेत्र में बढ़-चढ़कर काम करती हैं। हमें अपने घरों की महिलाओं को ऐसी ही निर्भीक, कर्मठ तथा स्वावलम्बी बनाना चाहिए। कुदृष्टि से न उन्हें देखना चाहिए और न देखने देना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का निर्वाह

बचपन अनाड़ीपन में बीत जाता है। बच्चे वस्तुओं, संबंधियों और अपने-पराये का भेद करना सीखते हैं, पदार्थों के रूप-गुण पहचानते और खेलने-कूदने में समय बिताते हैं। बहुत हुआ तो अपने बलबूते स्वच्छता का नियम पालने लगते हैं। दस वर्ष तक की आयु बचपन है। इसमें कुछ आरम्भिक पढ़ना-लिखना भी आरम्भ कर देते हैं, बुद्धि की पकड़ तो कमजोर ही होती है।

इसके बाद किशोरावस्था आरम्भ होती है। वह बीस वर्ष तक चलती है। इस अवधि में शरीर के कल-पुर्जे बढ़ते और परिपक्व होते हैं। बीस वर्ष की आयु तक परिपक्वावस्था आती है, समझ का विकास होता है और उत्तरदायित्वों का स्वरूप वह समझने लगता है। इसके उपरान्त ही यौवन का शरीर में प्रवेश होता है। स्त्रियों में यह एकाध वर्ष पहले भी आरम्भ हो जाता है।

विवाह की यही आयु है। विवाह का प्रयोजन प्रजनन है। संतानोत्पत्ति की वय इससे पूर्व नहीं होती; क्योंकि जिन अंगों का शरीर के प्रजनन अंगों से संबंध है वे तब तक पूर्ण नहीं होते हैं। कच्ची से काम लिया जाय तो प्रयत्न भी सफल नहीं होता और, साथ ही कच्चे फल को तोड़ने के समान हानि भी होती है।

आम-अमरूद पर फल तो जल्दी ही आ जाते हैं, पर वे कच्चे होने के कारण स्वाद एवम् उपयोग की दृष्टि से इस योग्य नहीं होते कि उनकी तुलना पके फलों में से की जा सके। समय के पहले तोड़ना एक प्रकार से उन्हें बर्बाद करना और अपनी हानि करना है। इससे पेड़ की नयी पीढ़ी बनना भी बन्द हो जाती है।

समय से पूर्व विवाह करने की विवेकहीनता

विवाह के संबंध में भी यही बात लागू होती है। उसके दो स्वरूप हैं—एक शारीरिक दूसरा मानसिक। शारीरिक दृष्टि से किशोरावस्था बढ़ने और परिपक्व होने की आयु है। उसे छेड़ा नहीं जाना चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन, शिक्षा-विकास एवं अनुभव का एकीकरण, यही सब बातें हैं जो किशोरावस्था के लिए निर्धारित हैं। बढ़ते पानी को निर्धारित दिशा में जाने देने की अपेक्षा यदि उसे इधर-उधर फैलने दिया जाय तो नियत स्थान तक उसका पहुँचना यत्किंचित ही हो पाता है। बीच के छेद ही उसे इधर-उधर फैला देते हैं और सिंचाई का प्रयोजन जहाँ पूरा होना है, वहाँ तक उसका पहुँचना ही ठीक तरह नहीं हो पाता।

उच्छुंखल लड़के गोंद के लोभ में नन्हें पेड़ों में जहाँ-तहाँ छेद कर देते हैं, फलतः वहाँ से गोंद निकलने लगता है। गोंद को बेच कर पैसे तो प्राप्त किये जाते हैं, पर उस पेड़ का बढ़ना रुक जाता है। वह दुर्बल होने लगता है बौना रह जाता है और सूख जाता है। यह बात उन लोगों पर लागू होती है, जो युवावस्था आने से पूर्व ही लड़कों या लड़कियों का विवाह कर देते हैं। मनुष्यों की बनावट एक सी ही है, चाहे नर हो, चाहे नारी। दोनों की परिपक्वता एक ही समय में आती है। यह सोचना गलत है कि लड़कियों का बारह-चौदह वर्ष की आयु में विवाह कर दिया जाय तो हर्ज नहीं। लड़कों की आयु के बारे में सोलह-अठारह की बात सोची जाती है। यह शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान दोनों की दृष्टि से अनुचित है। बीस वर्ष तक की आयु शारीरिक अभिवृद्धि के लिए है और बीस से पच्चीस वर्ष तक की मानसिक अभिवृद्धि के लिए।

पच्चीस वर्ष से कम की आयु को 'गधा पच्चीसी' कहते हैं। इसका मोटा अर्थ है कि इस आयु के होने तक मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से अपरिपक्व होता है। उसकी मानसिक क्षमता, अनुभव सम्पदा उतनी नहीं हो पाती, जिसे परिपक्व कहा जा सकता है। कच्ची शारीरिक या मानसिक स्थिति में प्रजनन कर्म की ओर कदम बढ़ने लगे तो उसका सीधा प्रभाव शारीरिक या मानसिक परिपक्वता विकसित होने से पहले ही व्यवधान उत्पन्न कर देता है। शरीरगत पुष्टि के बाद क्षमताएँ मस्तिष्क की ओर बढ़ती हैं। बीस से पच्चीस वर्ष तक की आयु मानसिक विकास के लिए है। निर्धारित समय से पूर्व छेड़ा-छाड़ कर देने का सीधा अर्थ है कि विकास का जो क्रम स्वाभाविक रूप से चलता है, उसे न चलने दिया जाय। जो लोग बाल-विवाह के खिलवाड़ के लिए आतुर रहते हैं वे प्रकारान्तर से अपने ही शारीरिक, मानसिक विकास में बाधा डालते हैं और जीवन भर इन दोनों ही क्षेत्रों में

१.२८ गृहस्थ एक तपोवन

दुर्बल बने रहते हैं। यह जल्दबाजी हर दृष्टि से हानिकारक है। यह तथ्य हर समझदार लड़की-लड़के या उनके अभिभावकों को समझ लेना चाहिए अन्यथा बाल-विवाह के शिकंजे में कस दिये जाने वाले बालक स्वयं तो कायिक और बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल रहते हैं, उनकी संतानें और भी गयी-गुजरी होती हैं। कच्चे बीज को बो देने पर यदि उनके अंकुर निकले भी तो वे हर दृष्टि से दुर्बल होंगे।

कच्ची नींद से बच्चे को जगा देने पर वह रोने-मचलने लगता है। पूरी नींद सो लेने के उपरान्त वह हँसता-खेलता हुआ उठता है। कच्ची उम्र में विवाह करने के दुष्परिणाम जनक-जननी को ही नहीं, उस बच्चे को भी भुगतना पड़ता है, जो कच्चे साधनों से उत्पन्न हुआ है। पिछड़े समुदायों में प्रायः जल्दी विवाह कर देने की प्रथा है। वे इसे बड़े भार से निश्चिन्त होना मान बैठते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि वे अपनी संतान और अगली पीढ़ियों के लिए कितना अनर्थ उपस्थित कर रहे हैं। बाल-विवाह की हानि हर वयस्क और अवयस्क को समझायी जानी चाहिए और कहा जाना चाहिए कि यदि शरीर को पूर्ण आयु तक दुर्बलता और रुग्णता रहित होकर जीना है, तो इस कुप्रथा से बचने में ही लाभ है।

सहकार की गहराई रहनी चाहिए। मुद्दतों पुराने यह कुसंस्कार चले आते हैं कि नारी को हेय और नर को श्रेष्ठ माना जाता है, इसलिए आमतौर से पुरुष पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार किया करते हैं, मानो वह हेय, हीन, नौकरानी स्तर की हो। यह मान्यता घातक है। हँसी-मजाक में कोई किसी पर व्यंग्य भी कर सकते हैं, पर जहाँ तक गम्भीरता का प्रश्न है, वहाँ ऐसी स्थिति न आने देनी चाहिए, जिसमें गाली-गलौज, मार-पीट, ताना-उलाहना आदि का पुट हो। विवाह से पूर्व देखा जा सकता है कि रंग-रूप अनुकूल रहा या नहीं, किन्तु विवाह के बाद इस प्रसंग की चर्चा छोड़ ही देनी चाहिए और साथी की सेवा और समर्पण के प्रति कृतज्ञता ही प्रकट करनी चाहिए। कुरूपतापरक व्यंग्य तो किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए। यह गाली-गलौज से भी बुरे किस्म का व्यंग्य है, जो कभी-कभी ऐसी गहरी खाई खड़ी कर देती है जो पटने में नहीं आती। साथी के रूप पर छीटाकशी करने का प्रयत्न का अर्थ यह होता है कि उससे संतोष नहीं है। इस आधार पर यह भी फलितार्थ निकलता है कि साथी चरित्रहीन है या उसकी प्रवृत्ति उस ओर मुड़ चली है।

रूप-लावण्य को प्रधानता न मिले

योग्यता संवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक

पुराने जमाने में यह रिवाज था कि मर्द कमाते थे और औरतें बैठ कर खाती थीं, पर आज की महँगाई और शिक्षा, चिकित्सा इतनी महँगी हो गई है कि मात्र लड़के को ही नहीं, लड़की को भी कमाने की स्थिति अर्जित कर लेना चाहिए। दुर्भाग्यवश पति किसी कारण न रहे, दुर्भाग्यग्रस्त हो जाय, परित्यक्ता या विधवा बनना पड़े तो पैतृक सम्पत्ति से नहीं, हाथ-पाँव की कमाई से गुजारा कर सकने की स्थिति, योग्यता लड़की की होनी चाहिए। संयुक्त परिवार में विधवा या परित्यक्ता के हाथ कुछ नहीं पड़ता। उसे अन्यायों की लूट-खसोट का ही सामना करना पड़ता है। इसलिए स्वावलम्बन, जीवन की महती आवश्यकता है, न केवल लड़के के लिए वरन् लड़की के लिए भी उतनी ही महत्त्व की बात है।

लड़के के हिस्से में पैतृक सम्पदा कितनी आती है, यह देखने की अपेक्षा दृष्टि यह रखी जानी चाहिए कि निजी कमाऊ योग्यता एवं प्रतिभा क्या है ? पैतृक सम्पदा का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब तक टिकेगी और काम आयेगी।

पारस्परिक आत्मीयता का व्यवहार हो

विवाह को लड़की-लड़के की आदर्शसम्मत भावपरी मित्रता समझा जाना चाहिए। दोनों के बीच सम्मान और

वस्तुतः अपने देश के निवासी मध्यम रंग-रूप के ही होते हैं। न भारत योरोप है, जहाँ गोरे-चिट्टे नर-नारी होते हैं और न यह अफ्रीका है, जहाँ की प्राकृतिक बनावट मोटे नाक और मोटे होठों जैसी हो, फिर जो जिस देश का निवासी है, वह अपने देशवासियों के मध्यवर्ती रंग-रूप से ही संतुष्ट होता है। यदि नख-शिख की बनावट को प्रधानता देते हुए किसी को स्वीकृत या अस्वीकृत किया है, तो उसे बाजारू किस्म के घटिया दृष्टिकोण का समझा जाना चाहिए। जब हमारी बहिन, माता, भतीजी, भावज, चाची, ताई आदि मध्यम निख-शिख की होते हुए भी गृहस्थ चला लेती हैं तो हमारे लिए यह कैसे उचित हो सकता है कि सिनेमा के एक्टर जैसे नख-शिख वाले साथी चाहिए ? रूप यौवन की चमक दो-चार वर्ष रहती है, बाल-बच्चे होते ही वह गायब हो जाती है और औसत नर या औसत नारी की तरह ही हर किसी को रहना पड़ता है। जो लड़की लड़का साथी की शक्ति-सूरत को अतिशय महत्त्व देता हो, एक को पसंद दूसरे को ना पसंद करता फिरता हो, अभिभावकों की पसंदगी पर विश्वास न करता हो, उसके बारे में समझना चाहिए कि यह व्यक्तित्व जोखिम है। कदाचित् अपने से अधिक कोई रंग-रूप आँखों में चढ़ गया तो अपनी ओर से आँखें भी फेर सकता। रूप-सौन्दर्य की तलाश वस्तुतः ओछी दृष्टि है।

सम्मान ऐसी वस्तु है जिसकी भूख हर प्राणी को होती है। यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्ली तक उनके पीछे लगते हैं, जो अपेक्षाकृत उन्हें अधिक प्यार देते हैं। छोटे बच्चों

तक में यह विशेषता पाई जाती है कि जो अधिक प्यार भरी दृष्टि से देखते हैं, उनकी गोदी में चढ़ने की कोशिश करते हैं। यद्यपि वे प्यार, तिरस्कार के वेषक शब्दों का अर्थ नहीं जानते किन्तु आँखों को देखने मात्र से पढ़ लेते हैं कि उन्हें कौन, कितना, किस स्तर का प्यार करता है उसी अनुपात से वे भी अपनी आत्मीयता और उपेक्षा करते हैं। यह बात वयस्क और समझदार व्यक्ति पर तो और भी अधिक मात्रा में लागू होती है। जब झूठा प्रेम प्रकट करके प्रवंचक दूसरों को ठग लेते हैं, वेश्याएँ कितनों को फँसा लेती हैं और ठग कितनों की शील सम्पदा पर हाथ साफ कर लेते हैं, तो सच्चे प्यार का तो कहना ही क्या ? आँखें आँखों को पढ़ती हैं और हृदय हृदय को। अक्षरों को पढ़ने-समझने में भूल हो सकती है, पर अन्तःकरण को पढ़ने में अन्तःकरण कदाचित् ही भूल करता हो।

ऐसी घटना तो अनेकों बार हुई है कि प्रेमपत्र यह सोचकर लिखे गये कि वे तथाकथित प्रेमी तक ही सीमित रहेंगे। पर हुआ उसी का उल्टा। उन्हें वे दूसरों को दिखा दिए और लिखने वाले को बदनाम कर दिया। कई बार तो इन्हें प्रकट कर देने की धमकी देकर चिरकाल तक शोषण किया जाता है। इसलिए समझदार माताएँ-बहनें नासमझ लड़कियों को सदा समझाती रहती हैं कि कदाचित् कहीं प्रेमालाप चल रहा हो तो उस संदर्भ में कोई पत्र लिखकर न दें अन्यथा वह लिखा पत्र ही कभी उनके लिए जान का बबाल बन जायेगा। प्रेम प्रसंगों में अनेक बार ऐसे विश्वासघात होते रहते हैं कि बहकावे में आने पर जान देकर भी पिण्ड नहीं छूटता। पर होता तभी है जब प्रेम का उन्माद छाया रहता है। वस्तुस्थिति को परखने के लिए यदि पहले से ही सावधानी रखी गई हो तो झूठ की कलाई खुलने में देर नहीं लगती और पक्षी जाल में फँसने से बच जाते हैं।

विवाह पूर्व की भूलों को अप्रकट ही रखें

इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि विवाह होने से पूर्व यदि कहीं कुछ अनुचित बन पड़ा हो उसे विवाह के समय होने वाले प्रायश्चित्त होम की आहुतियों में ही होम देना चाहिए। पीछे न कुछ पूछना चाहिए और न बताना चाहिए। गड़े मुर्दे उखाड़ने से लाभ कुछ नहीं और हानि असीम है। मनुष्य के स्वभाव में विश्वास की अपेक्षा अविश्वास अधिक मात्रा में भरा पड़ा है। भोलेपन और सच्चाई प्रकट करने के निमित्त भूतकाल की भूल प्रकट कर दी जाय तो आमतौर से साथी अपनी भूलें तो भूल जाता है और साथी के स्वभाव पर लांछन लगाता रहता है। उसमें प्रायः ऐसी उदारता कम ही पाई जाती है कि उस कटु प्रसंग को अनदेखा-अनजाना मान कर मन में से सदा-सर्वदा के लिए निकाल दे। इसलिए मनुष्य स्वभाव

को ध्यान में रखते हुए यही उचित है कि प्रायश्चित्त होम की आहुति देते हुए एक-दूसरे को परम पवित्र मानें। उस समय तक एक दूसरे को पूर्ण पतिव्रता और पत्नीव्रता मानें और किसी क्रोने में कोई विषाक्त आशंका के लिए स्थान न रहने दें। 'बीती ताहि बिसारि दे' की नीति को अपनायें। यह मान कर चलना चाहिए कि वह जमाना चला गया जब द्रोपदी पाँच पतियों के लिए समान प्राणप्रिय बन कर रहती थी। देहरादून प्रदेश के जौनसार बाबर क्षेत्र में अभी भी यह प्रथा है कि बड़े भाई का विवाह होता है और शेष भाई उसी को पत्नी के रूप में बिना किसी झगड़े-झड़ट के समान रूप से स्वीकार करते हैं। पिछला जमाना बहुपत्नीवाद का रहा है, पर ऐसे प्रसंग कदाचित् कभी आये हैं, जब बहुपति प्रथा को मान्यता मिली हो। कुंती-द्रोपदी जैसे अपवाद खोजने पर कदाचित् ही कहीं कभी मिलते हों। इस प्रकार जीवन में सदा ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विवाह के बाद ऐसे प्रसंग किसी ओर से भी प्रस्तुत न हों। दोनों पक्ष अपने प्रेम को एक बिन्दु पर केन्द्रित रखें और वफादारी का समुचित निर्वहण करें। इस प्रसंग में खाई पड़ने पर प्रायः ऐसा ही देखा गया कि मन फट जाते हैं और फिर वैसा सघन विश्वास उत्पन्न नहीं होता जैसा कि होना चाहिए।

एक-दूसरे का सम्मान करें

विवाह की सफलता में एक बहुमूल्य तथ्य यह है कि एक-दूसरे का भरपूर सम्मान करें। व्यंग्य-विनोद में भी हल्का-फुल्का असम्मान न करें। क्योंकि प्रेम की भाषा सम्मान ही है। जहाँ गहरे सदभाव होंगे वहाँ अपमान के प्रसंग न प्रत्यक्ष में आवेंगे न परोक्ष में। यहाँ तक कि क्रोध-आवेश में भी ऐसे शब्द मुँह से न निकलें जो अगले क्रो महत्त्वपूर्ण और दूसरे को हेय ठहराते हों। इसलिए यह अभ्यास आरम्भ से ही डालना चाहिए कि कटु वचनों का आदान-प्रदान किसी भी रूप में चलने न पाये।

वह समय गुजर गया जब लोग दास-दासियों से, स्त्री-बच्चों से कैसा भी अपमानजनक व्यवहार कर लिया करते थे और वे दूसरों का बड़प्पन अपनी लघुता को ध्यान में रखते हुये कटु और अपमानजनक व्यवहार को भी सहन कर लेते थे पर अब वह स्थिति बहुत पीछे रह गई। हर किसी को दूसरों से सम्मान की आकांक्षा रहती है। भले ही वह वास्तविक न होकर शिष्टाचार ही क्यों न हो। पत्नी पति के कटुवचन विवशता समझ कर सह तो सकती है पर उसके हृदय में चोट न लगती हो ऐसी बात नहीं है। अस्तु, यदि दाम्पत्य जीवन को सरल रखना है तो उसमें प्रेम भावना ही नहीं शिष्टाचार और मधुर भाषण का समावेश चाहिए। समय ने अशिष्ट आचरण और व्यवहार को एक प्रकार अस्वीकार ही कर दिया है। पिछड़ी प्रथाओं को फिर से प्रयोग करके उनके दुष्परिणामों को दुहराने वाले समझदार नहीं मूर्ख कहे जाते हैं।

दाम्पत्य जीवन की घनिष्ठता और एकता का एक स्वरूप यह है कि घर का बजट मिल-जुलकर बनाया और चलाया जाय। घर की आर्थिक स्थिति की जानकारी दोनों को समान रूप से होनी चाहिए और खर्च करने में समान सहमति भी। पुरुष कमाता है इसका उसे अहंकार न होना चाहिए और न स्त्री को इसलिए हेय मानना चाहिए कि वह कमाती नहीं है। वास्तविकता यह है कि घर का काम-काज करने, निरन्तर चौकीदारी करने में, भोजन बनाने, सफाई करने, कपड़े संभालने आदि का श्रम यदि पैसे के हिसाब से गिना जाय और वह जो खाती-पहनती है, उसका खर्च काट लिया जाय तो स्त्री की कमाई भी प्रायः उतनी ही होती है जितनी पुरुष की।

फिर माता के उपरान्त पत्नी का प्रेम ही ऐसा होता है जिसे अनन्य कह सकते हैं। उसका मूल्यांकन तो पैसे से हो ही नहीं सकता। सन्तानोत्पादन में उसे गर्भकाल से लेकर, प्रसव और शिशुपालन में जो एक-दो कष्ट उठाना पड़ता है उसका भी मूल्य जोड़ा जाय तो पत्नी का ऋण भार पति के ऊपर कम नहीं वरन् अधिक ही बैठता है। सुख-दुःख का बाँटकर ही उपयोग किया जा सकता है, इस बाँटवारे में पत्नी जितना हाथ बाँटती है उतना संसार का और कोई संबंधी कदाचित् ही बाँट पाता हो।

पत्नी अपना घर छोड़ कर पति के यहाँ जाती है और नौकरानी जैसा निर्वाह स्वीकार करती है। पति ऐसा नहीं करता। छोटी-छोटी बातों के लिए भी पति की इच्छा और आज्ञा का अनुशरण करती है, जबकि पति उस प्रकार का ब्यौरा देने के लिए बाधित नहीं होता।

सदा दानी का पद ऊँचा और ग्रीहीता का नीचा माना गया है। पत्नी दानी है और पति ग्रीहीता। इस दृष्टि से भी उसे सम्मान पाने और सहयोग लेने का अधिकार है। पति को इन दोनों के संबंध में कृपणता नहीं बरतनी चाहिए। वरन् स्त्रियों का मानस अधिक संवेदनशील होता है। उन्हें मान-अपमान अधिक प्रभावित करता है। इस दृष्टि से स्त्रियों कदाचित् ही चूक करती हैं पर पुरुष जान-अनजान में—उपेक्षा और अहंकार में—ऐसी भूलें प्रायः करते रहते हैं। इस संबंध में दोनों को ही एक-दूसरे की वरिष्ठता और प्रसन्नता का ध्यान रखना चाहिए। विशेषतया पति को। क्योंकि हृदय की संरचनाएँ ही ऐसी होती हैं जिस पर भावनाओं का अधिक भला-बुरा प्रभाव पड़ता है।

अक्सर आमदनी पति अपने हाथ रखते हैं और स्त्रियों को घर खर्च जितने ही पैसे देते हैं। यह व्यवहारतः कमाने वाले को अतिरिक्त श्रेय मिलना हुआ। होना यह चाहिए कि नौकरी आदि की जो निश्चित आमदनी हो वह पत्नी या माता के हाथ सौंपी जाय। उन्हें गृहलक्ष्मी माना जाय। जो खर्च हो बताकर या पूछकर कर लिया जाय। ऐसी नीति अपनाने से स्त्रियों का मान बढ़ता है। दूसरे अनावश्यक खर्च होने का डर भी नहीं रहता। पुरुष यदि सभी कमाई जेब में ही रखे रहें तो स्वभावतः

पैसा अधिक खर्च हो जायेगा और कोई दुर्व्यसन पीछे लग जाने का भी डर रहेगा। स्त्रियों का स्वभाव कम खर्च में काम चलाने का होता है इसलिए वे कुछ बचत भी कर लेती हैं, जो समय पड़ने पर काम आता है।

पति का कर्तव्य

स्त्री अपने पिता के घर से जैसा स्वास्थ्य, शिक्षा, ज्ञान, हर्षोल्लास, अधिकार साथ लेकर आई थी उसमें कमी न पड़ने पाये यह पति का कर्तव्य है। कन्यादान दिये जाने का तात्पर्य ही यह है कि अब तक जो जिम्मेदारियाँ कन्या को विकसित करने की पिता की थीं वे सब अब पति को सौंप दी गईं। कन्यादान सबसे बड़ा दान माना गया है। उसे ग्रहण करते समय उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की जिम्मेदारी पति के मस्तिष्क में निरन्तर रहनी चाहिए। स्त्रियों को प्रचलन में हेय समझा जाता है खासतौर से नववधुओं को जिन्हें श्रम भी अधिक करना पड़ता और अपमान अधिक सहना पड़ता है। पूरे परिवार में उन्हें बाहर से आया हुआ विराना समझा जाता है, इसलिए उनके साथ अनुचित बीतती है तो उसकी परवाह भी कोई नहीं करता। यह पति का कर्तव्य है कि जो साथी पर अनुचित बीते, उसके निराकरण में शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुये सहायता करे। जिस घर में पत्नी का मान पति करते हैं उनका दूसरे भी मान करते हैं और जहाँ पति की ओर से उपेक्षा-अवमानना होती है, वहाँ दूसरों को भी 'गिरे में दो लातें जमाने' की हिम्मत पड़ती रहती है। संयुक्त कुटुम्ब की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये पति का यह कर्तव्य है कि अनावश्यक रूप से ऐसा संकोच न बरते, जिससे उसे अपने को सर्वथा असहाय अनुभव करना पड़े। प्रायः ऐसे ही प्रसंगों में स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर बैठती हैं।

पत्नी का लगाव पिता के घर में भी होता है क्योंकि जीवन का प्रारम्भिक बड़ा भाग उन्हीं लोगों के यहाँ बीता है। उनकी हारी-बीमारी या कठिनाई में वह किसी काम न आये, यह भी बनता नहीं, इसलिए ससुराल वालों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पिता के घर आने-जाने पर अनुचित बंधन न लगाये।

अनुचित आग्रह करने पर प्रेम से समझाया या कड़ाई से धमकाया भी जा सकता है पर वह व्यवहार ऐसी भूमिका के साथ होना चाहिए, जिससे बात बिगड़ने तक की नौबत न आये। घर के छोटे दायरों में रहने के कारण स्त्रियों का व्यावहारिक ज्ञान कम होता है इसलिए कई बार उनके आग्रह ऐसे भी होते हैं जो अनुचित लगें। ऐसे प्रसंगों में तर्क, तथ्य, उदाहरण और प्रमाण प्रस्तुत करते हुये समझाने-बुझाने की नीति ही अपनानी चाहिए वह इतनी न बढ़ जाय कि छोटी सी बात बड़ी सी कटुता का निमित्त कारण बन जाय।

प्रजनन की विडम्बना

स्त्रियों के साथ बुरे किस्म का अत्याचार, अनावश्यक यौनाचार है। इसमें मर्दानगी नहीं अदूरदर्शिता का गहरा पुट है। स्त्रियों की जननेन्द्रिय अति कोमल होती है। उनमें अनावश्यक दबाव सहने की क्षमता नहीं होती। वासना की दृष्टि से भी स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत पीछे हैं। इसलिए प्रेम प्रदर्शन में यौनाचार को समेटना और सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में तो अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। उनके स्वास्थ्य को बिगड़ने का यही सबसे बड़ा कारण है। फिर अधिक संख्या में संतानें होने पर उनकी न तो समुचित देखभाल हो सकती है और न सुसंस्कारी ही बनाया जा सकता है। बच्चे लगते ही छोटे हैं उनकी प्रत्येक आदत और क्रिया का ध्यान रखना पड़ता है। यदि उपेक्षा बरती जाय तो आगे चल कर वही एक बड़ी कठिनाई के रूप में प्रकट होती है।

वे जमाने गये जब बच्चे जानवर चराने और घास खोदने के कारण घर वालों के लिए भारी नहीं पड़ते थे। अब शिक्षा, चिकित्सा, कपड़े से लेकर अनेक फरमाइशें ऐसी हो गयी हैं कि बच्चों को यदि आदमी की तरह रखा जाय तो उन पर लगभग बड़े आदमी जितना खर्च आता है। फिर वातावरण चारों ओर ऐसा है कि उससे बचा कर न रखा जाय तो वे बड़े होने पर आवारा हो जाते हैं और फिर काबू से बाहर की स्थिति में जा पहुँचते हैं। अब बच्चों की आधी पढ़ाई स्कूल में और आधी घर पर करनी होती है। यह बात पाठ्यपुस्तकों का गट्टर याद करने के संबंध में ही नहीं शिष्टता और सुसंस्कारिता सिखाने के संबंध में भी है। यह कर्म माता-पिता दोनों को मिलकर करना होता है। साथ ही परिवार के अन्य लोगों को भी सहयोग देना है। यदि ऐसा न बन पड़े तो समझना चाहिए कि बच्चे सिर दर्द बनेंगे और मुहल्ले-पड़ौस में बदनामी कराते फिरेंगे।

इन परिस्थितियों में कुत्ते-बिल्लियों की तरह दर्जनों बच्चे जन डालना माता का नहीं पिता का दोष है। वह चाहे तो आधुनिक उपायों को अपनाकर इस अनावश्यक भार भरे उत्तरदायित्व से अपने को बचा सकता है। एक दो बच्चे का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा का संस्कार भी ठीक तरह हो सकता है। फिर अगर पत्नी का स्वास्थ्य, ज्ञान, अनुभव, व्यक्तित्व बढ़ाना है तो उसके लिए संयम की ही आवश्यकता रहेगी। ढेरों बच्चे हो जाने पर इनमें से एक के लिए भी अवकाश नहीं बचता। पिता पर अधिक दबाव बढ़ता जाता है और समुचित सुसंस्कारिता एवम् सुविधा न मिलने पर बच्चों का भविष्य खराब होता है। बढ़ी हुई जनसंख्या समूचे समाज की प्रगति में प्रत्यक्ष बाधक तो है ही।

पुरुषों का दायित्व

दायित्व प्रेम एवं सहयोग की सफलता में जब पुरुष को पहल करनी पड़ेगी क्योंकि चिर अतीत में पुरुषों के हरम में लाखों स्त्रियों ने उत्पीड़न सहते और आँसू बहाते दिन बिताये हैं। सती होकर स्त्रियाँ अपनी वफादारी और सच्चाई की परीक्षाएँ दे चुकी हैं। पर अभी तक ऐसा नहीं हुआ कि इन्हीं कसौटियों को स्वीकार करके पुरुषों ने अपनी धर्मपत्नी के सहचर का प्रमाण प्रस्तुत किया हो। इसलिए इन पंक्तियों में जो लिखा जा रहा है, वह पुरुषों को उद्बोधन करने के लिए ही लिखा जा रहा है, ताकि वे अपनी पारी चुकायें, स्त्रियों को लाखों वर्ष हो गये वे शत-प्रतिशत उतीर्ण हुई हैं। अब पुरुषों को ही आगे आना होगा क्योंकि उन्हीं को अब तक घाटा उठाना पड़ता है और उन्हीं को भविष्य में उठाना पड़ेगा। आधी जनशक्ति को अपंग बना कर उनके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व उठाते हुए उनसे भी बुरा किया है जैसा कि दक्षिणी अमेरिका में अफ्रीकी जनसमुदाय को गुलाम बनाकर सारे संसार को अपने प्रतिकूल बना लिया था। आदत के दबाव से विवश होकर वह अनाचार उन्हें छोड़ना पड़ा। स्त्रियों की दशा उससे अच्छी नहीं बुरी ही है। चूँकि बात अभ्यास में आयी है इसलिए अखरती नहीं। अपने सगे-संबंधी की हत्या होते देख कर तिलमिला जाते हैं, पर जब किसी बकरे को कटता देखते हैं तो मुँह फेर कर चल देते हैं। स्त्रियाँ इतने लम्बे समय से उत्पीड़न की शिकार रही हैं इसलिए उनके कष्ट हमें विरानों के कष्ट लगते हैं। यह प्रतीत होता है कि उनके भाग्य में ही ऐसा लिखा है। भगवान ने उन्हें मछलियों की तरह सूजा ही इसलिए है कि किसी न किसी के पेट में आश्रय मिले।

अगला समय न्याय की प्रतिष्ठा का आ रहा है। माँसाहारी भी विचार कर रहे हैं कि जब सोयाबीन जैसे पदार्थ उसी स्तर के हैं तो क्यों मनुष्यता को कलंकित करें? यह प्रश्न भी विचाराधीन है कि प्राणियों को संज्ञाशून्य करके कटा जाय ताकि उन्हें कम कष्ट हो। यही तर्क स्त्रियों के सम्बन्ध में विज्ञ समाज के विचाराधीन है कि मनुष्य जाति की अविच्छिन्न होते हुए भी उन्हें क्यों उस उत्पीड़न का शिकार बने रहने दिया जाय, जिसके लिए न्याय का कोई समर्थन नहीं करता ?

नारी को पददलित बनाकर आधी जनसंख्या को गले के पथर की तरह लटकाये रखा है। यदि यह आधा वर्ग भी मनुष्य स्तर का रहा होता तो उनके पुरुषार्थ और कौशल का लाभ पुरुषों को मिला होता और समूचा समाज समुन्नत स्थिति में रह रहा होता। अपने ही पैरों कुल्हाड़ी मारने की जो भूल चिरकाल से होती चली आई है, उसका अब अन्त होना चाहिए और सामान्य विवेक को जगाकर यह सोचने के लिए विवश किया जाना

चाहिए कि अपनी ही पुत्रियों, बहनों, माताओं, धर्म पत्नियों पर अनाचार का ऐसा प्रयत्न न होना चाहिए, जैसा कि हो रहा है।

अर्थाग को समुन्नत बनाने में लाम-ही-लाम है

गाय को हरी घास खिलाना, स्वच्छ पानी पिलाना, सर्दी से बचाना, मालूम तो ऐसा पड़ता है मानो दयाई होकर कोई बड़ा उपकार किया जा रहा है किन्तु वास्तविकता यह है कि इसमें पालने वाले का ही हित है। अधिक दूध मिलना, कीमती बछड़े देना उसकी अपेक्षा कहीं उत्तम है, जिसमें उसके साथ क्रूर-कर्कशता बरतते हुए उसे अस्थिपंजर मात्र बना दिया जाय। ऐसी दशा में वह कसाई के यहाँ जाकर उतना पैसा न दे सकेगी जितना कि अधिक दूध और अच्छे बछड़े पालन करने पर मिलता। गौ पालन का पुण्य मिलता और प्रदर्शनी में जाने पर पुरस्कार मिलता। स्त्री को प्रताड़ना देकर उसे मनमर्जी पर चला लेना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है। ऐसा तो रीछ-बन्दर पालने वाले डंडे के बल पर भी करा लेते हैं।

असन्तुष्ट को अधिक उत्पीड़न देकर अधिक परिश्रम करा लेना यह कार्य तो कोई निष्ठुर और क्रूर भी कर सकता है। मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए। पिंजड़े में कैद कर उसे खुली हवा और रोशनी से वंचित करना किसी भी प्रकार न्याय निष्ठा नहीं है और न ऐसा बरताव करने पर मनुष्य का कोई गौरव बढ़ता है।

व्यभिचार प्रसंगों में प्रायः स्त्री की हत्या कर डालने जैसी ही घटनायें देखने में आती हैं जबकि बहकाने का दोष प्रधानतया पुरुष का होता है। पर पुरुष को दण्ड कौन दे ? वह तो खरी-खोटी भी सुना सकता है। स्त्री ही बकरी है जिसे उल्टी डाल कर भी काटा जा सकता है और सीधी डाल कर भी। उसकी आँखों के आँसू किसी को दीख न पड़ें, इसलिए ऐसा टोपा पहना दिया जाता है जैसा कि फाँसी पर चढ़ने वाले कैदी को पहनाया जाता है।

जेवर और रंग-विरंगे, चमक-दमक के कपड़े पहना कर यह उनका झूठा मनोरंजन किया जाता है ताकि वे अपने साथ बरते जा रहे अन्याय के विरुद्ध कुछ न कह सके। फुसलावे में अपनी वास्तविक व्यथा को भूल जाय।

अब हमें छलावे और भुलावे की नीति अपनाने की कुटिलता छोड़ देनी चाहिए। उसके अपहरण किये गये मौलिक मानवी अधिकार वापिस करने चाहिए, ताकि वह भी अपने आप को मनुष्य वर्ग का एक सदस्य अनुभव कर सके। अभी तो उसकी स्थिति पशु जैसी है, जिसे किसी के भी सुपुर्द किया जा सकता है। जिसे मृत्यु लेकर या देखकर खरीदा जा सकता है।

इन कुप्रथाओं को गिनाते रहने और उनके विरुद्ध कुछ लिखते या कहते रहने से काम बनने वाला नहीं है। उसके बन्धन काटें और समर्थ बनने के साधन जुटाये जाने चाहिए। हर विवेकशील के मन से यह मान्यता हटाई जानी चाहिए कि नारी, नर की तुलना में हेय है और उसे समता के अधिकार नहीं दिये जा सकते। जब तक यह स्थिति रहेगी, नर को नारी के स्नेह और सहयोग से वंचित ही रहना पड़ेगा।

उत्पीड़न के विरुद्ध आन्दोलन हो

समय-समय पर पीड़ितों के पक्ष में विचारशीलों ने आन्दोलन खड़े किये हैं। जिनके पीछे न्याय और जनमत रहा है, वे सफल भी हुए हैं। नारी उत्पीड़न के विरुद्ध हमें ऐसा ही आन्दोलन खड़ा करना चाहिए। आये दिन के अखबार रंगे रहते हैं कि बाप के घर से दहेज कम लाने के कारण इतनी बड़ी संख्या में ससुराल वालों ने जला दिया या गला घोट दिया। कुछ लड़कियाँ असह्य पीड़ा तथा अपमान न सहने के कारण आत्महत्या भी कर लेती हैं। यह सबसे बड़ी दुखती नस है। आन्दोलन का आरम्भ यहीं से किया जाय तो अच्छा। स्वयं लड़के और अभिभावक प्रतिज्ञा करें कि वे दहेज, धूमधाम, लम्बी बरात का विरोध करेंगे। न तो स्वयं ऐसा करेंगे और न अपने प्रभाव क्षेत्र में दूसरों को करने देंगे। जो न मानें उनके कार्यक्रम में न तो सम्मिलित हों और न सहयोग करें। दहेज की सीमा में वे लड़की वाले भी आते हैं जो वर पक्ष से रुपया या पदार्थ लेकर विवाह करते हैं। प्रथायें दोनों ही एक जैसी हैं, इन्हें जीवित बच्चों का माँस विक्रय कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। ऐसा जहाँ भी हो रहा है वहाँ असहयोग और विरोध का उपक्रम चलाया जाय।

अब कड़ा कानून भी इसमें बन गया है जिसमें तीन साल तक की जेल और दस हजार तक जुर्माना हो सकता है। इस कानून के अन्तर्गत पुलिस में रिपोर्ट करने और गवाही देने में यदि किसी से बुराई बँधती हो तो उसकी चिन्ता न करके दुष्टता से लोहा लेते हुए आक्रमण भी सहने चाहिए। जिस प्रकार सवर्णों के लड़के और अभिभावकों से शपथपूर्वक प्रतिज्ञायें कराई जायें, उसी प्रकार बेटी पक्ष में धन लेने वालों की लड़कियों, माताओं और पड़ोसियों से प्रतिज्ञायें कराई जायें कि वे इस अनर्थ का पूरी तरह असहयोग और विरोध करेंगी। कानून से जो काम हो सकते हैं, वह विरोधी आन्दोलन से भी हो सकता है। वस्तुतः जनमानस को इस सम्बन्ध में जागृत नहीं किया गया है। जो ढर्रा चल पड़ा है, उसे उपेक्षापूर्वक चलने दिया जा रहा है। होना यह चाहिए कि इस कुप्रथा के कारण होने वाली हानियों से जन-जन को अवगत कराया जाय और उसका विरोध करने के लिए तीखा वातावरण बनाया जाय।

गाँधीजी ने अँग्रेजी शासन हटाने के लिए असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह आन्दोलन चलाये थे। कम से कम प्रज्ञा परिजनों में से तो एक से ऐसा न हो जो दहेज दे या ले। रिश्वत लेना और देना दोनों ही अपव्यय हैं। जहाँ ऐसा होने जा रहा हो, वहाँ धरना, सत्याग्रह, बहिष्कार के आन्दोलन चलाये जा सकते हैं और कानून का भी अप्रय लिया जा सकता है। सामूहिक विवाहों में प्रदर्शन तो अच्छा हो जाता है पर उस आड़ में कितने बाल विवाह भी होने लगते हैं। दहेज या बाल विवाह चल पड़ा तो उससे भी समाज की उतनी ही हानि है।

इसके साथ ही कन्या शिक्षा का आन्दोलन भी चलाया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा, कन्या शिक्षा का कार्य शिक्षित महिलायें और वयोवृद्ध रिटायर लोग करें। गरीबी से अशिक्षा बनी रहती है जितना यह सही है उतना ही यह भी सही है कि जब तक अशिक्षा रहेगी और नारी अपना अधिकार एवम् स्वरूप नहीं समझेगी, तब तक वह लोग सहज ही पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं जिनने पशु की तरह नारी को काम में लाने की आदत अपना ली है। सच तो यह है कि यह आदत और भी बुरी है। जानवर खरीदने के लिए खरीदार को पैसा देना पड़ता है। पर यहाँ तो वह भी उलटा कि सुयोग्य लड़की भी लेना और ऊपर से उसके अभिभावकों का गला मरोड़कर दहेज ऐंठना। जिनके गले यह चस्का लग गया है, वे प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप में रकम ऐंठेंगे। इसका पूरी तरह मिटाना तभी संभव है जब इस कुप्रचलन के विरोध में तीव्र आन्दोलन किया जाय और जो सीधी तरह नहीं मानते, उन्हें भरपूर जलील किया जाय।

पुरानी पीढ़ी न मानें तो प्रह्लाद जैसे दृढ़व्रती युवक और युवतियाँ ऐसे तैयार करने चाहिए, जो आजीवन कुँवारे रहने जैसे व्यवधान आने पर भी इस दुष्ट प्रथा के आगे किसी भी प्रकार सिर न झुकायें, भले ही इससे तथाकथित बड़ों की अवज्ञा ही क्यों न करनी पड़ती हो।

दहेज का प्रतिद्वन्द्वी जेवर है। लड़की वालों को स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमारी लड़की को जेवरों की कोई आवश्यकता नहीं है। यही बात महँगे कपड़ों के सम्बन्ध में भी है। वे एक घण्टे पहनने के काम आते हैं और पीछे अनावश्यक सड़ते रहते हैं। विवाह की पोशाक पीली धोती, कुरता लड़के के लिए और पीली धोती, ब्लाउज लड़की के लिए। दोनों ओर से फूलों का आदान-प्रदान, बहुत हुआ तो अँगूठी का आपस में परिवर्तन हो सकता है। जो महँगा सोना नहीं खरीद सकें, वे चाँदी की अँगूठियाँ आपस में बदल सकते हैं। वे भी बाजार में कितने ही डिजाइनों की बिकने लगी हैं।

विवाह में लगने वाली राशि को कन्या शिक्षा में लगाया जाना चाहिए। जहाँ स्कूल न हों, वहाँ अपरान्ह की पाठशालायें चलाई जायें और प्रज्ञा-प्रशिक्षण ५२ पुस्तकों का पाठन क्रमशः करा दिया जाय, इसमें

साहित्यिक शब्द-कोष और व्याकरण का सामान्य ज्ञान सीखे और सिखाये जाने की पूरी गुंजाइश है। जीवन में कभी काम न आने वाले निरर्थक विषयों की अपेक्षा यह छोटी-छोटी पुस्तिकायें अधिक उपयोगी हैं, जिनमें जीवन के हर पक्ष पर आवश्यक प्रकाश डाला गया। शेष बातें सद्ग्रहस्थों का वातावरण ही लड़कियों को सभ्यता और शिष्टता का आवश्यक पाठ पढ़ा देता है। फिर निजी विवेक जाग्रत किये जाने पर वे निजी विवेक बुद्धि से भी उन गुणियों को सरलतापूर्वक समझा देती हैं, जो अनगढ़ों को पहाड़ के समान विषम मालूम पड़ती हैं।

विवेक और साहस की आवश्यकता

आदतें चाहे व्यक्तिगत हों, चाहे सामाजिक वे अचेतन मन में अपनी जड़ें जमा लेती हैं। तब वे स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत होने लगती हैं। बुरी आदतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उन्हें छोड़ने या तोड़ने के सम्बन्ध में विवेक और साहस का संयुक्त समन्वय चाहिए अन्यथा उनसे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है। नरोबाजी की तरह कुरीतियाँ भी स्वभाव की अंग बन जाती हैं और उनके कार्यान्वित किये बिना ऐसा लगता रहता है मानो कुछ खो गया, कुछ छूट गया। एक भय भी बना रहता है कि उन प्रथाओं का निर्वाह छोड़ देने पर कोई प्रेत-पितर या देवी-देवता नाराज होकर कुछ अनिष्ट न करने लगें। देववाद के पीछे यही भावना विशेष रूप से काम करती है। उनके द्वारा कुछ प्राप्त होने का लालच उतना काम नहीं करता जितना भय। मन में यह डर बना रहता है कि इस प्रथा का पालन न किया तो सम्बन्धित कोई देवी-देवता नाराज होकर अनिष्ट न करने लगें। यह भय ही अधिकांश लोगों को उन प्रथाओं के पालन करने के लिए विवश करती है। जो बुद्धिसंगत नहीं है। जिसका कोई औचित्य समझ में नहीं आता, उन पशु बलि प्रथाओं के पीछे जितना लालच काम करता है, उससे कहीं अधिक भय सताता है। यह भय सामाजिक भी होता है। सोचा जाता है कि इस कृत्य को न करने से कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय। यद्यपि वैसा कुछ होता भी नहीं तो भी अपडर तो अपडर ही है। लोभ से भय की शक्ति अधिक है। व्यक्ति लोभ आसानी से छोड़ सकता है किन्तु भय से पीछा छुड़ाना कठिन है। कुरीतियों की जड़ें अक्सर इसलिए गहरी जमी पाई जाती हैं।

इसलिए कुरीतियों को तोड़ने के लिए साहसी और विवेकशील लोगों को आगे आना पड़ता है। इसके बिना बुद्धि से औचित्य स्वीकार करने पर भी परिवर्तन के लिए जिस साहसिकता की आवश्यकता है उसे जुटा नहीं पाते। गाड़ी यहीं आकर रुक जाती है। प्रज्ञा परिजनों ने न केवल विवेक का पाठ पढ़ा है वरन् साहस अपनाने के लिए किस प्रकार अग्रगामी हुआ जाता है, यह भी उनसे सीखा है। उस शिक्षा को कार्यान्वित करने का ठीक समय

१.३४ गृहस्थ एक तपोवन

यही है। जब विवेकयुक्त शौर्य जमता है, तो उसमें जनमत के प्रचलनों की उपेक्षा करने की भी हिम्मत बढ़ती है और अदृश्य देवी-देवताओं द्वारा अनिष्ट किये जाने का डर भी चला जाता है। कुछ लोग हिम्मत करके जिस काम को आगे बढ़ाते हैं, ऐसे दुर्बल मन वाले भी उस साहस से प्रेरणा पाकर स्वयं भी करने लग जाते हैं। यह प्रयोग कुरीति सम्मेलन से सफल हो सकता है। हिन्दू धर्म में घुसी हुई अनेक कुरीतियाँ हैं जिनने समाज को छिन्न-भिन्न, दुर्बल मन और विवेकहीन होकर एक प्रकार से आलसी बनाकर रख दिया है। प्राचीनकाल में समाज को गिराकर वर्तमान पिछड़ी और हास्यास्पद स्थिति में ला पटकने का दोष अधिकतर इन्हीं कुरीतियों को है, जो एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं, जैसे विवाहों में गरीब द्वारा अमीरों का स्वाँग बनाया जाता है वैसे ही विडम्बनाएँ अन्य उपक्रमों में देखी जाती हैं।

इसी प्रकार छुट-पुट रीति-रिवाज भी विवाहों के साथ जुड़े हैं। उनकी पूर्ति के लिए ढेरों पैसा, समय बर्बाद करना और परेशानी उठानी पड़ती है। जब सुधार की

दिशा में कदम उठाना हो तो इस सारे खर-पतवार को एक साथ ही साफ कर देने की समझदारी किसी व्यवहार कुशल किसान से सीखनी चाहिए, वह खेत की निराई-गुड़ाई में सभी खरपतवार को एक साथ ही उखाड़ता चलता है। ऐसा नहीं है कि आज कंकड़ बीने कल काँटे, आज मोथा उखाड़े कल बथुआ। विवाह-शादियों से जुड़ी हुई अनेक कुरीतियाँ हैं जिनमें एक यह भी है कि एक जाति दूसरी जाति का पकवान तो खा लेती है पर चावल, दाल जैसी 'कच्ची' समझी जाने वाली वस्तु को प्रीतभोज में नहीं आने देती। यह प्रचलन भी मिटना चाहिए। 'पक्की' भी परिभाषा में आने वाले जहाँ पूड़ी-पकवान हों वहाँ 'कच्ची' की परिधि में धकेले जाने वाले दाल, चावल, खिचड़ी जैसी वस्तुयें भी अवश्य परोसी जायँ। हमें इन कुरीतियों के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ना चाहिए और उन्हें एक-एक करके नहीं वरन् सब का सफाया एक साथ ही करना चाहिए। इन्हीं कुरीतियों में एक पर्दे का रिवाज भी है।



सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत आधार

दाम्पत्य-जीवन में परस्पर समर्पण

ही सफल होता है

नारी निस्सन्देह समर्पण और त्याग की प्रतिमा है। यह समर्पण उसकी दुर्बलता नहीं, गरिमा है। विचारशील मनस्वियों ने इस गरिमा को सदा समझा है, इसीलिए नारी की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है किन्तु समर्पण की महत्ता और सार्थकता तभी है, जब वह विवेकपूर्ण हो। आत्महीनता के भाव से किया गया समर्पण दास्य-भाव कहलायेगा। समर्पण और गुलामी के अन्तर को सदा स्मरण रखना चाहिए। समर्पण सदा श्रेष्ठता के प्रति होता है। उससे मन में आस्था-उत्साह का भाव स्थिर व दृढ़ होता है। दासता किसी न किसी रूप में अनौचित्य को बढ़ाती है। उसमें विवशता की वेदना रहती है, समर्पण का स्वाभिमान भरा उल्लास-आनन्द नहीं।

विवेकपूर्ण समर्पण के लिए समर्थ व्यक्तित्व आवश्यक है। जो लोग नारी को दलित, अविकसित रखकर उसे समर्पण की सीख देते हैं, वे समर्पण का अर्थ ही नहीं समझते। जो मर्मज्ञ इस उच्च आदर्श की गरिमा समझते थे, उन्होंने नीति-निर्धारण के समय नारी के स्वाभिमान और उत्कृष्टता को अक्षुण्ण रखने का सदा ध्यान रखा तथा उसे गृह-व्यवस्थापिका और परिवार-संचालिका की प्रतिष्ठा प्रदान की।

एक अन्य तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है। किसी उच्च आदर्श, महान लक्ष्य के प्रति समर्पण होता है। नारी का समर्पण—पातिव्रत-धर्म, चारित्रिक-श्रेष्ठता, प्रेम और सेवा-भाव के आदर्शों के प्रति होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि समर्पण—पुरुष के शरीर या गुण-दोषमय व्यक्तित्व के प्रति होना चाहिए। नारी की आन्तरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए उसके स्वाभाविक समर्पण भाव की सराहना की गई है किन्तु इस समर्पण में गरिमा तभी है, जब वह उत्कृष्टता के प्रति ही हो।

जातीय-पतन के दौर में उच्च आदर्शों को विकृत रूप दे दिया गया। समर्पण की व्याख्या स्वार्थी मनुष्यों ने इस प्रकार की कि भारतीय-नारी के इस उच्च आदर्श को चरणदासी बनने के रूप में ढाल दिया। पर अब ऐसी धूर्ततापूर्ण चालबाजियों और शाब्दिक मायाजाल का युग

नहीं रहा। अतः अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरुष के प्रति नारी का समर्पण अन्धा और अविवेकपूर्ण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक पुरुष न तो ईश्वर है और न देवदूत। श्रेष्ठता के लिए उसे प्रयास करना होगा, तभी वह श्रद्धा का अधिकारी होगा। समर्पण कोई विवशता नहीं, व्यक्तित्व की उत्कृष्टता है। अतः वह पुरुष के लिए भी साध्य और इष्ट होनी चाहिए।

पति के समर्पण-भाव का अर्थ पत्नी के प्रति यौन-जीवन में निष्ठा तो है ही, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। उसकी संवेदनाओं, भावनाओं से तादात्म्य की अनुभूति भी इसका आवश्यक अंग है। शील का सम्बन्ध मात्र—यौन-जीवन से नहीं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व से है। जो लाभ स्त्रियों के शील-सम्पन्न होने से प्राप्त होता है, वही पुरुषों के भी शीलवान होने से मिलेगा। नर-नारी दोनों जीवन-विकास के समान उत्तरदायित्व लेकर धरती पर आते हैं। शील और सच्चरित्र्य दोनों के व्यक्तित्व-विकास के लिए समान रूप से अनिवार्य हैं। जो कर्तव्य स्त्री के लिए है, वही पुरुष के लिए भी। कार्यक्षेत्र में भिन्नता तो पुरुष-पुरुष के बीच भी होती ही है, किन्तु कर्तव्य-निष्ठा की मूल भावना तथा मर्यादाएँ सभी के लिए समान हैं।

आत्म-विकास और पारिवारिक-जीवन की सुख-शान्ति, दोनों के लिए स्त्री की ही तरह पुरुष में चारित्रिक दृढ़ता की आवश्यकता है। प्रेम तभी स्थायी रह सकता है, जब दोनों का अन्तःकरण शुद्ध हो और कोई भी नाटक न करता हो। घर में पत्नी से निष्ठा की आकांक्षा रखना और बाहर स्वैराचार के फेर में रहना, प्रेम को वास्तविक नहीं रहने दे सकता। जहाँ ऐसी दोहरी मानसिकता और बनावटीपन है, वहाँ आत्मीयता का सूत्र निश्चय ही खण्डित होता रहेगा। अकेली धर्मपत्नी का शील और सदाचरण, विनम्रता और सेवाभाव, पारिवारिक-जीवन को सुव्यवस्थित नहीं रख सकते। स्त्री-पुरुष के पौरुष, श्रम और संरक्षण के लिए उसकी कृतज्ञ होती है, तो पुरुष को नारी की मूक-सेवा, अक्षय-स्नेह और पारिवारिक-सुव्यवस्था का भार ढोते रहने के लिए और अधिक कृतज्ञ, विनम्र तथा उदार होना चाहिए। नारी को भी पुरुष के आत्म-समर्पण की उतनी ही अभिलाषा रहती है, जितनी पुरुष को नारी के समर्पण की। जिस तरह पातिव्रत का इतना भर अर्थ कोई नहीं स्वीकार कर पाता

२.२ गृहस्थ एक तपोवन

कि पत्नी काम-सदाचार तक सीमित रहे, फिर चाहे दिनभर लड़े-झगड़े, कटु बोले, क्रुद्ध हो उसी तरह पुरुष के भी पत्नीवत का अर्थ पत्नी को पर्याप्त सम्मान देना, उसकी भावनाओं का आदर करना तथा ध्यान रखना होता है। पुरुष में अपने को बड़ा मानने की हीन महत्वाकांक्षा रहती है, वह अपने कल्पित बड़प्पन के विपरीत जरा-सी भी बात दिखने पर उतेजित हो जाता है, हर छोटी-छोटी बात को पकड़ता और झल्लाता रहता है। बड़प्पन की इस कल्पना का आधार क्या है ? वास्तविकता तो सर्वथा विपरीत है। पुरुष, परिवार की कम ही आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, नारी तो शेष सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर खपती रहती है। अतः पुरुष को इस हीन अहमन्यता से मुक्त होना चाहिए। यदि परिवार में स्त्री व पुरुष की प्रतिष्ठा असमान हुई तो इससे गृहस्थी की गाड़ी ठीक से नहीं चल पाती, लड़खड़ाती रहती है।

घर में सहिष्णुता पत्नी के लिए जितनी आवश्यक है, पति के लिए उससे भी अधिक आवश्यक है। क्योंकि नारी शारीरिक दृष्टि से उससे दुर्बल होती है और जो अधिक सक्षम है, उसे ही अधिक सहिष्णु होना चाहिए। पत्नी नम्रतापूर्वक बात करे, बाहर से पति के घर आने पर कुशलक्षेम पूछे, तो पति को भी घर-सम्बन्धी उसकी कठिनाइयाँ इतनी ही विनम्रता से पूछनी चाहिए।

विवाहित-जीवन शरीर और हृदय के मिलने से तुष्ट, पुष्ट और विकसित होता है। यह मिलन उभय-पक्षीय निश्छलता से ही सम्भव है। इस मिलन का स्वरूप मात्र शारीरिक रहा, तो उससे अन्ततः थकान और अतृप्ति ही मिलने वाली है। वैचारिक तथा भावनात्मक एकात्मता के प्रबल प्रयास की अन्तर्मन्यन की क्रिया से ही हार्दिक-प्रेम और सहानुभूति का नवनीत निकल सकेगा। सभी सफल दम्पतियों का एक ही मत है कि यह हार्दिक-प्रेम ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ होता जाता है, भोग की व्यग्रता त्यों-त्यों घटती जाती है और आत्मीयता का अधिक गहरा आधार मन-बुद्धि में स्पष्ट होता जाता है। प्रयत्न इसी हार्दिक-मिलन के लिए किये जाने की आवश्यकता होती है। उसी में पुरुषार्थ और गरिमा भी है। भला शारीरिक-मिलन भी किसी प्रयत्न की अपेक्षा करता है ? शरीर की वृत्तियाँ तो स्वयं ही इतनी प्रबल हैं कि उस हेतु अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आवश्यकता वैचारिक तथा भावनात्मक मिलन के प्रयासों की होती है। उसी में मिलन का आनन्द है।

नारी तो पति को अपना हृदय देने के लिए तैयार ही आती है। आवश्यकता पुरुष के भी वैसा ही तत्पर होने की रहती है। विनम्र, मधुर व्यवहार, भावनाओं और सुविधाओं का ध्यान तथा सम्मान—पत्नी के जीवन को एक अपूर्व सुख से भर देते हैं। वैवाहिक-जीवन के प्रारम्भ में तो प्रायः सभी शिक्षित-पुरुष ऐसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनों बाद नारी को दासी मानने

की दूषित सामन्ती वृत्ति से च्युत होने लगते हैं। पत्नी फिर पति द्वारा वैसे ही उमड़ते हुए हृदय के साथ व्यवहार किये जाने की प्रतीक्षा ही करती रहती है। वे उमंगें फिर उसे पति में नहीं दिखाई पड़तीं। उसके भीतर ही भीतर काँटा करकता रहता है। वेदना उसे मथने लगती है। पति की उपेक्षा उसके जीवन का तो आनन्द ही छीन लेती है और पति को अपनी व्यस्तता में पत्नी से अपेक्षाएँ पालते रहने से ही अवकाश नहीं मिलता। यह निष्ठाहीनता है। आवश्यकता उस हार्दिक-उमंग को स्थायी बनाने की है। ऐसा कृत्रिम रूप से किया जाना सम्भव नहीं है। जब तक मन में पत्नी के प्रति समर्पण की, आत्मदान की भावना नहीं है। उमंग-उल्लास व्यवहार में टिके नहीं रह सकते। प्रत्येक नारी में पैनी अन्तर्दृष्टि होती है। परिवर्तित मनःस्थिति की झाँकी उसे मिल जाती है और गहरी टीस से उसका हृदय बिलख उठता है। इसीलिए जिन लोगों में चरित्र और व्यवहार की समरसता तथा अविच्छिन्नता नहीं है, जिनमें शील और निष्ठा का अभाव है, वे पुरुष दाम्पत्य-जीवन प्रारम्भ करने के पात्र नहीं। उन्हें नारी पर अन्याय करने की यह धृष्टता विवाह के नाम पर नहीं करनी चाहिए कि प्रारम्भ में तो उसके बिना मन को शान्ति ही न मिलती हुई बतायें और जब उस कोमल संवेदनामूर्ति में आत्मदान की भावना गहराई तक जड़ चमा चुकी हो, तब उन्हें अपने ही अहं के खोल से झाँकने की फुर्सत न मिले और अपनी कार्य-व्यस्तता को इतना बढ़ा-चढ़ाकर आँकें कि घर में खट रही पत्नी के श्रम का मूल्य ही समझ में न आ सके। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जो पति यह मानने लगे कि उसे अपना अवकाश का समय घर में व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं है, पत्नी से विनोदपूर्ण चर्चा की कोई जरूरत नहीं है, उसके मनोरंजन के लिए स्वयं चिन्ता करने की क्या आवश्यकता, पैसे तो सब उसे ही सौंप देता हूँ, वह काम-सदाचार का पालन करते हुए भी अन्यायी कहा जायेगा। जिसे पत्नी की भावनात्मक अपेक्षाएँ समझने का समय नहीं, उसे वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ करने की इच्छा व पहल भी नहीं करनी चाहिए। जो पत्नी को अपने से कुछ घटिया दर्जे का प्राणी मानता है, वह उससे सच्चे प्रेम की कल्पना व्यर्थ ही करता है, जो पत्नी के श्रम और सामर्थ्य का शोषण करने में ही खुश है, उसे पत्नी के रूप में सच्चा साथी पाने की कामना को भी तिलांजलि दे देनी चाहिए, क्योंकि शोषक और शोषित के बीच मैत्री-सम्बन्ध सम्भव नहीं है।

पति-पत्नी के बीच समर्पण सदा उभयपक्षीय ही हो सकता है। अपने अहं-केन्द्रित दुराग्रह से नये युग में पुरुष को मुक्त होना ही चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन मात्र समता की भावना से ही सफल व सार्थक हो सकता है। पत्नी के सभी कार्यों में पति का सहयोग भी आवश्यक है। घरेलू कार्यों में हाथ बँटाने का

भी प्रत्येक पति को अनिवार्य रूप से समय निकालना चाहिए। पत्नी के विग्राम की चिन्ता भी पति को ही करनी चाहिए। आज तो स्थिति सर्वथा भिन्न है। पति अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से पत्नी को निरन्तर त्रस्त रखते हैं। रात देर तक साथियों से व्यर्थ गपशप, अकेले ही मनोरंजन आदि में उलझे रहकर देर रात गये घर लौटते हैं, वह भी इस मुद्रा में, मानो रण से जूझकर आ रहे हैं। दिनभर के कामों से थकी-माँदी पत्नी बाट जोहती बैठी रहती है। न समय पर खा पाती, न सो पाती है। इन विचित्र हरकतों को उद्घण्टापूर्ण मूर्खता ही कहा जा सकता है। ये तो समाप्त होने ही चाहिए। साथ ही घर के कार्यों में सच्चे सहयोगी की भूमिका निभानी चाहिए। यदि किसी कारणवश पत्नी भोजन नहीं बना सकती तो उस दिन पति को उसी प्रेमपूर्ण भावना से भोजन बनाना चाहिए, जिससे नित्य पत्नी बनाती है।

सच्चा सौहार्द रहे तो पति-पत्नी की रुचियों में सामंजस्य तो हो ही सकता है, दोनों की अधिकांश रुचियाँ समान भी हो सकती हैं। पत्नी के स्वास्थ्य, विग्राम और मनोरंजन का ही नहीं, विकास का भी ध्यान पति को रखना चाहिए। जो लोग अकेले अपने ही विकास के इच्छुक हैं, उन्हें इस हेतु एक माध्यम से सहायक के रूप में पत्नी को पाने की इच्छा से विवाह नहीं करना चाहिए। पत्नी के श्रम और सेवा कार्यों का लाभ उठाकर मात्र अपना आत्मविकास करना भी नारी का शोषण है। पत्नी के आत्मविकास के लिए पति को भी अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं के एक अंश का उत्सर्ग करना चाहिए। दोनों का साथ-साथ आत्मविकास होता चले, तभी दाम्पत्य जीवन की सार्थकता है।

वस्तुतः पति और पत्नी दोनों मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जीवन-यात्रा इस सामूहिक व्यक्तित्व की संयुक्त जिम्मेदारी है। इस संयुक्त उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए दोनों को समर्पण और आत्मदान करना होगा।

पत्नी अपने पति की वास्तविक सहायक हों

पति-पत्नी जीवनरूपी रथ के दो पहियों के समान हैं, इसलिये उनका सशक्त होना, एक-सा होना एवं एक-दूसरे का सहकारी और सहयोगी होना अनिवार्य है। तभी यह जीवन-रथ सुचारु रूप से कार्यरत और उपयोगी हो सकता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक पति को अपनी पत्नी की सर्वांगीण उन्नति और विकास का प्रयत्न आवश्यक है। पति को अपनी पत्नी के अनुरूप और पत्नी को अपने पति के अनुरूप समन्वय करने वाला

बनना ही पड़ेगा। बिना सामंजस्य के निर्वाह होना कठिन होगा।

पत्नी अपनी योग्यता के आधार पर पति में परिवर्तन लाकर, उसे वास्तविकता की ओर लाकर उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, कर्तव्य-परायण और उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बना सकती है। अपने व्यवहार और कार्यों के द्वारा पति की आदतों, व्यवहार, आचार-विचार में, चाल-चलन में, आशातीत परिष्कार और सन्तुलन ला सकती है।

अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति द्वेष के स्थान पर सदभावना, सहकार और सहयोग के भाव रहना आवश्यक हैं। पत्नी का पति के प्रति सम्मान, समता और सराहना का दृष्टिकोण अपनाना ही सच्चा सहयोगी होना है। गृहस्थी की व्यवस्था और संचालन ऐसा हो कि एक स्वस्थ और पवित्र वातावरण निर्मित हो सके। ऐसा होने से परिवार में शान्ति और सन्तोष के भाव व्याप्त होकर आनन्द की प्राप्ति होती है।

पत्नी को अपने पति से पूर्णतया परिचित होकर उनके अनुकूल चलने में पारंगत होना चाहिए, जिससे उनके पतिदेव प्रसन्न और सन्तुष्ट रहें। अपने पति के हृदय को जीतकर उनकी अनुचरी बनने से पति अपनी पत्नी के हमेशा वशीभूत रहते हैं और आपस में एक-दूसरे के विश्वास और स्नेह के भाजन बने रहते हैं। जिस बात से कटुता पैदा होने की सम्भावना हो, उसे कदापि प्रस्तुत न होने दें।

अपने पति के सम्बन्ध में कभी भी निन्दा और छिद्रान्वेषण का अवसर न आने दें, क्योंकि यह कमी ही कटुता और गलतफहमी की जननी होती है। मृदु मुस्कान युक्त मधुर वाणी और उचित व्यवहार पति को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाता है। इससे जीवन स्वर्ग के तुल्य बनता है।

पति हमेशा पत्नी को ओर से अपनी प्रेम-पिपासा को मिटाने के लिए लालायित रहता है। यदि पत्नी इस पिपासा को मिटाने में समर्थ न हुई तो पति के मन में एक अभाव पनपने लगता है और परिणामस्वरूप नीरसता जीवन में प्रवेश पाने लगती है। इससे पत्नी को सतर्क रहकर इस अवसाद को जीवन में न आने देने का भागीरथ प्रयत्न करना चाहिए। पति का रुख समझकर उसकी मर्जी के मुताबिक अपने स्नेह से उसे प्लावित करने से पति अपने को बड़ा ही भाग्यवान समझेगा। इसके प्रतिकूलता का रुख पति को दुश्चरित्र बनाने में सहायक होकर, दाम्पत्य-जीवन में कटुता लाकर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इससे इस मामले में पत्नी को सावधानी और सतर्कता बरतनी अनिवार्य है।

पति की रुचि के अनुसार उत्तम सन्तोष प्रदान करने वाला पौष्टिक-भोजन कराना, उचित और नीति के अनुसार

२.४ गृहस्थ एक तपोवन

प्रेम-स्नेहयुक्त इच्छा-पूर्ति करना और वांछित अवसरों पर सहयोग देकर पति की सहायक होकर दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग के समान बनाने वाली पत्नी धन्य होती है।

स्त्री-शिक्षा के महत्त्व से आज भारत की नारी पुराने जमाने की अशिक्षित, निरीह, अज्ञानी और परावलम्बी नारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, स्वच्छन्द, स्वावलम्बी-जीवन जीने के योग्य हो गई है। उसमें विवेक जागा है। उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, सुख-दुःख, भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का समन्वय जीवन में लाने का प्रयास आज की नारी ने किया है। वह जीवन का मूल्यांकन करने में समर्थ हुई है। अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति आज नारी जागरूक है और इसके फलस्वरूप वह गृहस्थ-जीवन और समाज में नव-चेतना भरने के योग्य हो गई है। जीवन की कटुता और अशान्ति नारी की इस प्रगति से दिनों-दिन कम होने की सम्भावना प्रतीत होती है। यदि नारी ने वर्तमान प्रचलित केवल पाश्चात्य-सभ्यता और संस्कृति को ही अपनाया और भारतीयता को तिलांजलि दे दी तो हो सकता है कि जीवन में कलह, कटुता, विच्छिन्नता और अशान्ति का स्रोत प्रवाहित होने लगे। नहीं तो समन्वय से कोई विशेष खतरा की सम्भावना नहीं।

भारतीयता के संस्कारों से संस्कृत-नारी समर्पण-भाव से ओत-प्रोत रहने के कारण पाश्चात्य दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत नहीं होती। विचार स्वातन्त्र्य और विवेक के आधार पर पति-पत्नी में समन्वय और सामंजस्य के भाव होने से कटुता उत्पन्न नहीं हो सकती। स्नेह और सहकार्य से आपसी सम्बन्ध दृढ़ और स्वस्थ होते जायेंगे और आपस में एक-दूसरे के पूरक होकर सुखी-जीवन जीने वाले होंगे।

पति-पत्नी में आपसी मन-मुटाव उत्पन्न करने वाले प्रसंगों का चतुरता से उड़ा देना भी जीवन की खुशी को कायम रखने का एक अच्छा तरीका है। इसके लिये भी दोनों को विस्तृत दृष्टिकोण वाला होना अनिवार्य है।

सन्तान के प्रति अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को निभाते हुए विवेकी पत्नी का अपने पति की इच्छापूर्ति, स्नेह और व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता। अतः जीवन में सरसता रहे, इसके लिये प्रबुद्ध नारियाँ सतर्कता से दोनों पक्षों का चतुराई से सन्तुलन करती रहती हैं। परिणामस्वरूप कलह और अशान्ति उनसे कोसों दूर रहती है।

आज के युग में नर-नारी साथ-साथ घर-बाहर कार्यरत रहने लगे हैं और समय, परिस्थितियों के अनुसार अपने-आप को चलाने योग्य बनाते हैं। जहाँ कहीं गलतफहमी या विरोध की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना होती है, वहाँ कुशल-गृहिणी मौन रहकर एकान्त में सब बातों, समस्याओं आदि को हल करके कटुता और विरोध पैदा नहीं होने देती। पति के प्रति सम्मान

और स्नेह का प्रदर्शन—गलतफहमी और विरोध को पनपने नहीं देता।

पत्नी को पति के समक्ष समभाव से व्यवहार करना शोभनीय होता है। उसे अपने पौरुष-योग्यता का अभिमान न होकर सौम्य, सरल और उदार होना अधिक श्रेयस्करो है। इससे दाम्पत्य-जीवन सरस और सफल होता है।

दाम्पत्य-जीवन में सरसता, सरलता, सहयोग, स्नेह, सहकार्य, आनन्द एवं शान्ति के स्रोतों के प्रवाहित होने से सन्तान भी संस्कारित होकर आदर्श-सन्तान बनती है।

स्त्रियों के विषय में कर्तव्य-पालन और पातिव्रत्य धर्म को निभाने के सम्बन्ध में स्वाभाविक प्रवृत्ति का होना हमेशा पाया जाता है। नारियाँ और कन्याएँ स्वभाव से घर-गृहस्थी में व्यस्त रहती हैं और किसी भी एक पुरुष, जो कि उनका पति ही होता है, पर समर्पित रहती हैं। यह उनकी विशेषता है। यहाँ तक कि यह भी देखा गया है कि दुश्चरित्र नारियाँ मजबूरियों के कारण कुछ भी करती हों, पर उनकी आत्मीयता एक विशेष व्यक्ति में ही रहती है। उसका निरपेक्ष आत्म-समर्पण भी उसी व्यक्ति की ओर रहता है।

पातिव्रत्य-धर्म को पालन करने वाली नारी वासनारहित होकर पति-परायण रहती है। धर्म-कर्म में सहधर्मिणी होती है। उसके भाव पति के प्रति भगवान के समक्ष होते हैं। भावना की दृष्टि से उसका भगवान पति ही रहता है। पतिव्रता की पति-सेवा, आचरण, व्यवहार निष्काम-भाव से होता है। यह सर्वस्व समर्पण नारी में तेज; विशालता एवं उच्चता को विकसित करता है। पूजा, पाठ, दान, धर्म, जप, तप, तीर्थ, यज्ञ आदि सभी के फल पति-सेवा से प्राप्त होते हैं। नारी की यह भावना स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति कराती है। भौतिकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से भी पति-परायणता नारी जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। पति-सेवा व्रत के प्रभाव से वासना का अन्त होकर—लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मद-मत्सर पर भी विजय प्राप्त होती है। इसकी पुष्टि के लिये हमारे साहित्य, शास्त्रों, ग्रन्थों और वेद, उपनिषदों, पुराणों आदि में असंख्य आख्यानों का भण्डार भरा पड़ा है।

नारी को अपने पति के प्रति मन, कर्म एवं वचन से पवित्र, भावपूर्ण व्यवहार और आचरण करना श्रेयस्करो है। शास्त्रों में पति की अर्धांगिनी के उद्बोधन द्वारा नारी को सम्मानित कर उसे बराबरी का अधिकार प्रदान किया गया है। इसी समता की भावना से नारी धर्म, कर्म, यज्ञ, दान, तीर्थ आदि में पति के साथ-साथ रहती है और बराबरी से कार्य करती है। कभी दायें बाजू और कभी बायें बाजू बैठ अपने पति की शोभा और सम्पन्नता में चार चाँद लगाती है।

सच्ची पतिव्रता नारी को पति का अभाव मृत्युवत् होता है। कई ऐसी मिशालें भी हैं कि पतिव्रताओं ने अपने पति के साथ-साथ अपने प्राणों को सहज और स्वाभाविक रूप से विसर्जित कर दिया। इसकी और अधिक क्या विवेचना की जाय ? सत्यवान और सावित्री के आख्यान से यह सिद्ध है कि मृत्यु से भी अपने पति का छुटकारा कराने में नारी समर्थ होती है—अपने पतिव्रत-धर्म के कारण। सीताजी को पतिव्रत-धर्म के निर्वाह के सन्दर्भ में अनुसुइयाजी के उपदेश स्मरणीय हैं।

पति-परायण साध्वी स्त्रियाँ इस भारतवर्ष में ऐसी प्रभावशाली हो गई हैं कि उन्होंने अपने सतीत्व के प्रताप से सूर्य की गति को भी कुछ समय के लिये रोक दिया था। इस प्रकार प्रकृति की गतिविधियों को नियन्त्रित करने तक की शक्ति पतिव्रता को अपनी पति-सेवा से प्राप्त करते देखा गया है। रोहिणी और चन्द्रमा की एकरूपता भी प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। पतिव्रत धर्म के आदर्शों की भरमार हमारी भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है, जो भौतिकता से ऊपर है।

इसी सबके आधार पर नारी को देवी की संज्ञा और सम्बोधन प्राप्त हुआ। सम्मान और अधिकार भी नारी के त्याग और तपस्या के फल हैं। चैत्र, आश्विन आदि में देवी-पूजन, गौरी-पूजन, महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली का आह्वान नारी के आदर्शों के प्रतीक रूप बार-बार याद कराकर हमें कर्तव्य-परायण बनने के लिए उत्साहित करता है।

सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती तक के गर्व-हरण का उदाहरण और ऋषि-पत्नी के पतिव्रत धर्म का निर्वाह और सूझ-बूझ का आदर्श-दत्तात्रेय की माँ के रूप में भी स्थापित कराकर नारियों को जाग्रत किया गया है। यह देव और मानव के बीच की टक्कर और विजय का नमूना हमें सचेत और सावधान रहने और बनने के लिए उपस्थित किया गया है।

शंकर की सेवा पार्वती करती हैं, नारायण की सेवा लक्ष्मी करती हैं, राम की सेवा सीता करती हैं, द्रौपदी—पाण्डवों की सेवारत हैं आदि सेवा के आदर्शों को बार-बार हमारे सामने लाने का अर्थ है—हमें बार-बार संस्कारित करना, अभ्यास का महत्व दिखाना है, जिससे हम इन प्रवृत्तियों के अभ्यस्त बनें और आचरण में उन्हें उतारें।

द्रौपदी और सत्यभामा के संवाद द्वारा भी पतिव्रता नारियों की विस्तार में दिनचर्या का उल्लेख महाभारत में किया गया है। जिससे इस आदर्श के माध्यम से नारियों में कर्तव्य-परायणता का स्फुरण हो सके और वे अपने परिवार तथा समाज में अपने उत्तरदायित्व को निभा सकें।

मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में भी ये ही नीति-वचन स्त्रियों को कहे गये हैं कि सदा प्रसन्नचित्त

रहकर, पति की सेवा कर उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट रखो, सफल और कुशल-गृहिणी बनो, सादगी और कफायत का जीवनयापन करने वाली बनो, परिवार और समाज के विकास और संरक्षण में सहयोगी रहो आदि-आदि।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि पत्नी को अपने पति की शरीर, मन, प्राण, वाणी और कर्म से सहायक होकर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण करना चाहिए। इसी से नव-निर्माण होना सम्भव है। बिना नारी-शक्ति की सहायता और सहयोग से लोक-सेवा और जन-कल्याण असम्भव है। अर्धांगिनी और रथ के दोनों चाकों को समता के साथ अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को निभाने से ही विश्वकल्याण हो सकता है और उच्च जीवन जिया जा सकता है।

इतने व्यस्त न रहें कि दाम्पत्य

जीवन नीरस बन जाय

‘पति-पत्नी’ अपने आचरण, व्यवहार, सेवा-सहयोग द्वारा एक-दूसरे को सुख-शान्ति प्रदान करने का प्रयास करते हैं। इसी से परिवार संगठन की स्थिति सुदृढ़ होती है। परन्तु यदि पति-पत्नी अपने पारिवारिक उद्देश्यों की पूर्ति—परस्पर सेवा-सहयोग द्वारा, सुख-शान्ति की प्राप्ति तथा अन्य कर्तव्यों की पूर्ति न कर सकें तो यह पति-पत्नियों का सम्बन्ध मात्र विडम्बना ही कहा जा सकता है।

आजकल तो पति-पत्नी के वैवाहिक सम्बन्धों के कुछ दिनों के बाद कटुता पलने लगती है, कारण यह होता है कि जब पति-पत्नियों पर जीवन संघर्षों के थपेड़े आते हैं, तो परस्पर दोनों में झुंझलाहट उत्पन्न होने लगती है। दोनों एक-दूसरे से चिढ़ने लगते हैं और यह मात्रा यहाँ तक बढ़ जाती है कि परस्पर आकर्षण ही समाप्त हो जाता है। दोनों के बीच एक स्थायी कटुता जन्म ले लेती है और जिस सुख-शान्ति के लिए परिवार-गृहस्थी का निर्माण होता है, वह कोसों दूर चली जाती है।

ऐसे उदाहरण अनेक दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें पत्नी की अदूरदर्शिता के कारण निजी स्वार्थ, लोभ-मोह के कारण और अबुद्धिमत्ता के कारण पति की प्रतिभा, उसकी कला, उसकी कार्यक्षमता नष्ट हुई है। इसका कुफल किसी एक को ही नहीं भोगना पड़ा बल्कि घर-परिवार, पति-पत्नी, समाज, देश, राष्ट्र सभी को भुगतना पड़ता है। वैसे यदि देखा जाय तो पति की कार्य-कुशलता जीवन लक्ष्य प्राप्ति में सक्षमता तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे अपने प्रत्येक कार्य में पत्नी का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त होता है। कभी-कभी पत्नी, पति के कुछ फाइलें घर पर लाने या घर पर भी कुछ कार्य ऑफिस का करने से

२.६ गृहस्थ एक तपोवन

या मित्रों से बात-चीत करने से असंतुष्ट रहती है। इससे पति के हृदय में पत्नी को अदूरदर्शी मानने का भाव जागता है, जिसके परिणामस्वरूप पत्नी पति की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर पाती। इससे कभी-कभी पति नाराज होकर अधिक समय बाहर लगाने लगता है। परिणामतः पति-पत्नी दोनों में मन-मुटाव व असन्तोष हो जाता है और यही उभरकर जब-जब घर में झगड़ा-लड़ाई का अखाड़ा बन जाता है।

ऐसे भी अनेक व्यवसाय हैं जिसमें पति एकदम व्यस्त रहते हैं और जिनके कारण उनकी पत्नियों को व्यस्त रहना पड़ता है। वकील, लेखक, पत्रकार, सामाजिक व राजनीतिक, नेता, वैज्ञानिक आदि अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने कार्यों में एकदम व्यस्त होते हैं। इसी तरह शिल्पी, कारीगर भी होते हैं। आजकल अध्यापक, क्लर्क को भी अतिरिक्त कार्य करने होते हैं, महंगाई के कारण, जिससे वे भी अपने कार्यों में व्यस्त रहा करते हैं, जिससे स्वाभाविक ही उनकी पत्नियों को खीझ उत्पन्न हो सकती है, परन्तु परिवार व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु आवश्यक है कि पत्नी भी अपने को किन्हीं कार्यों में व्यस्त रखे, जिससे पति की व्यस्तता उसे अखरे नहीं। यदि पत्नी सुयोग्य है तो पति के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती हुई उसके कार्यों में सहयोग प्रदान कर सकती है। स्नेहपूर्ण व्यवहार करके पारस्परिक हार्मोलास का उद्भव कर सकती है। कभी-कभी व्यस्त पत्नियों से परेशान होकर उनकी पत्नियाँ उनसे हर बात में असहयोग करती हैं और उनके कार्यों में बाधा डालती हैं।

यदि पति-पत्नी को अपने पारिवारिक सम्बन्धों को मधुर, मंजुल एवं आनन्दयुक्त बनाना हो तो वे परस्पर एक-दूसरे की समस्याओं को नजदीक से समझने का प्रयास करें और एक-दूसरे की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करें। आयु की कमी को दूर करने हेतु पत्नी को कोई छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे चलाने चाहिए, जिससे उनकी आर्थिक परेशानी दूर हो सके।

पत्नी की एक भावनात्मक आकांक्षा और आवश्यकता है—पति का सान्निध्य। अकारण या छोटे कारणों से दोनों परस्पर जितने दूर रहते हैं, जितने कम समय साथ रहते हैं, उतनी ही उनके बीच खाई चौड़ी होती है। इसे पाटने के लिए विशेषतया पति को अधिक सावधान रहना चाहिए। पुरुष अपना मनोरंजन अन्य साथी, मित्रों तथा क्रिया-कलापों से कर लेता है, पर पत्नी के लिए तो सारे दिन कोल्हू के बैल की तरह जुते रहने के अतिरिक्त कहीं कोई उत्साह की झलक है तो पति के सान्निध्य में ही है। यों वह घर में भी बच्चों के नन्द, देवर आदि के साथ हँसती-खेलती है फिर भी पति के सान्निध्य की आकांक्षा अपने स्थान पर अनोखी और अकेली है। उसकी पूर्ति अन्य साधनों से नहीं हो सकती।

जो बहुत अधिक व्यस्त नहीं हैं, उन्हें हाट, बाजार जाते समय अपनी पत्नी को साथ ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। घर में रहें तब ऐसे काम सामने रहने चाहिए, जिनसे दोनों मिल-जुलकर सहयोग कर सकें। खाली समय को पत्नी के, बच्चों के तथा घर के लोगों के साथ बिताने, उनके साथ हँसने-खेलने या काम करने का प्रयत्न करना चाहिए। आखिर पैसा कमाना और घर चलाना ही तो एकमात्र परिवार निर्माण का उद्देश्य नहीं है। पत्नी नौकरानी नहीं है। उसकी भी कुछ अपनी आकांक्षा होती है। विवाह का उद्देश्य एक ऐसे समान स्तर के स्वजन-स्नेही का सहचरत्व होता है जो उसकी क्षमता विकसित करे—स्नेह, सहयोग प्रदान करे और सान्निध्य लाभ देकर नीरस जीवन यात्रा में सरसता का संचार करे। इस तथ्य को भुला देने पर किसी भी पति को अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं का लाभ प्राप्त करने से वंचित रहना पड़ सकता है।

पत्नी को भी इसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए। उसके घरेलू काम अनेकों हो सकते हैं, उन्हें यथासम्भव तब तक निपटा लेना चाहिए जब पति घर आवें। जो काम शेष रहें वे ऐसे होने चाहिए जिन्हें करते हुए पति की समीपता सम्भव हो सके। थोड़ी सावधानी बरतने और काम का क्रय व्यवस्थित कर देने से ऐसा सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है। आवश्यक नहीं है कि पति-पत्नी का सान्निध्य मनोरंजन के लिए ही हो। वे सामान्य काम-काज को एक-दूसरे के साथ मिलकर करें तो काम जल्दी तथा सुगम हो जाता है साथ ही उसमें मनोरंजन का लाभ भी मिल सकता है।

पत्नी को कहीं दूर देहात में रखना और स्वयं उपार्जन के सम्बन्ध में बहुत दूर रहना एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। वैसा तभी करना चाहिए जब और कोई उपाय ही शेष न रहे। उचित यही है कि दोनों साथ रहें। आर्थिक कठिनाई को हल करने के लिए परिवार छोटा रखना, मितव्ययता बरतना, किन्हीं उद्योगों का आश्रय लेना जैसे उपाय बरते जा सकते हैं। जहाँ दोनों नौकरी करते हैं और दूर-दूर रहते हैं वहाँ आर्थिक लाभ भले ही होता रहे पर दाम्पत्य जीवन का वह आनन्द जिसके लिए विवाह किया जाता है प्रायः हाथ से चला ही जाता है। अपवादों की बात दूसरी है। सामान्यतया पति-पत्नी के सद्भाव वृक्ष को स्नेह, सहयोग भरे सान्निध्य से ही सींचा जा सकता है। इस लक्ष्य की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का आचार संहिता

विवाह की आवश्यकता पति-पत्नी को इसलिए होती है कि वे एक-दूसरे के साथी-सहयोगी बनकर प्रगति पथ पर आगे बढ़ सकने में सहायक सिद्ध हो सकें। दुःख-दर्द में हिस्सा बैठा सकें। एकाकीपन की अपूर्णता दूर कर सकें। प्रेम जिसे जीवन का अमृत कहा जाता है, उसे

निरन्तर उत्पन्न करते और एक-दूसरे को उपलब्ध कराते रहें। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए मात्र गुण, कर्म, स्वभाव, दृष्टिकोण और काम में उत्साह परखा जाना चाहिए।

लावण्य को प्रधानता देने वाले जोड़े आरम्भ में भले ही उत्साह अनुभव करते हों, पर वह पानी का बबूला देर तक नहीं ठहरता। किशोरावस्था के अन्त और तरुणई के आरम्भ वाले कुछ वर्ष ही ऐसे होते हैं, जिनमें चेहरे की चमक-दमक बढ़ी-चढ़ी रहती है। इसके बाद परिपक्वता आते ही कोमलता का स्थान कठोरता लेने लगती है और चेहरा वैसा ही हो जाता है, जैसा आम लोगों का होता है। नवीनता में ही आकर्षण और उत्साह रहता है। अधिक दिनों तक साथ-साथ रहने पर तो स्वाभाविक पारिवारिकता मात्र शेष रह जाती है। तब उस उमंग का कोई आधार नहीं रह जाता, जिससे प्रेरित होकर अप्सरा-सी बहू और कामदेव जैसा दृष्टा तलाश करने की ललक रहती थी। अच्छा होता इस बच्चों की तरह चमकीले खिलौनों पर मचलने की दृष्टि को आरम्भ से ही निरर्थक मान लिया जाय और जोड़े मिलाते समय स्वास्थ्य, शिक्षा और स्वभाव को ही सब कुछ मानते हुए चयन किया जाय।

अति सुन्दरता की तलाश खतरे से भरी कोशिश है। उसमें नजर लगने का डर रहता है। चिकनी मिट्टी पर ही फिरालन होती है। दोनों में से जो पक्ष इस दृष्टि से कमजोर पड़ता है, तो दूसरा पक्ष उसकी अवमानना कर सकता है। जब रूप ही सब कुछ ठहरा तो ऐसी दृष्टि वाला अधिक सौन्दर्य दीख पड़ने पर अपनी पसंदगी दूसरी दिशा में भी मोड़ सकता है। इन खतरों को ध्यान में रखते हुए, अपने देश वालों की आकृति-प्रकृति को ध्यान में रखते हुए चमड़ी की चमक और चेहरे की बनावट को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा जाना चाहिए।

कामुकता को भी वर-वधू उपेक्षा की दृष्टि से ही देखें। उसकी छूट न हो। संयम बरतें और स्वस्थता तथा दीर्घ आयुष्य को अक्षुण्ण रखें। इस दिशा में अत्युत्साह बरतने पर सन्तानों की संख्या बढ़ने और उनके दुर्बल होने का खतरा भी रहता है। इसलिए विवाह-मर्यादाओं को समझना और समझाना चाहिए। इसी में यह अनुबन्ध भी जोड़ना चाहिए कि असंयम न अपनाया जाय और अपना तथा साथी का स्वास्थ्य बर्बाद न किया जाय।

विवाह के बाद से लेकर न्यूनतम पाँच वर्ष ऐसे रहने चाहिए, जिसमें एक-दूसरे की प्रगति में एकनिष्ठ होकर सहायता कर सकें। अधिक सुयोग्य बन सकें। इसी अवधि में बच्चों से लद जाना एक प्रकार से विवाह का उद्देश्य ही नष्ट करना है। परस्पर सहायता देने, अधिक समर्थ, सुयोग्य बनने-बनाने का प्रयास छोड़कर दोनों को अस्वस्थता, आर्थिक चिन्ता से लादना किसी भी प्रकार बुद्धिमत्ता नहीं है। विवाह के साथ जुड़े हुए इन अनुबन्धों

को न केवल पति-पत्नी समझें वरन् पूरे परिवार के लिए यही उचित है कि उपयोगी परामर्श देने और अनुकूल वातावरण बनाने में सहायक होते रहें।

विवाह दाम्पत्य-जीवन तक सीमित नहीं है। इसके साथ समूचे परिवार की सुविधा-असुविधा भी जुड़ी हुई है। यदि उद्देश्य के साथ नीतिमत्ता जुड़ी रहे तो घर में एक समर्थ व्यक्ति बढ़ जाने के कारण उसके ज्ञान एवं श्रम सहयोग का लाभ समूचे परिवार को मिलेगा। हर सदस्य को अपनी स्थिति में कुछ और सुविधा-प्रसन्नता जुड़ जाने का अवसर मिलेगा। किन्तु विवाह होते ही संयुक्त परिवार से छिटक कर अलग हो जाने का मन बनने लगे तो नये आगन्तुक से लाभ मिलना तो दूर पुराने का सहयोग भी परिवार के हाथ से चला जायेगा और वह घाटे में रहेगा। भले ही नव-दम्पति अलग होकर अपनी आजीविका को दो पर ही खर्च करने लगने में अधिक सुविधा अनुभव करें। यह नीति अपनाने वाले यह गाँठ बाँध लें कि आगे चलकर उसका भी परिवार बनना है। उनके भी बच्चों की शादियाँ होनी हैं। तब अपने अभिभावकों की कृति का वे भी अनुकरण कर सकते हैं और बुढ़ापे में उन्हें भी असुविधाओं के घेरे में छोड़कर अलग हो सकते हैं। यह अवसर तब आवे जब घर की वर्तमान पीढ़ी स्वावलम्बी हो चुकी हो और सम्मिलित जिम्मेदारियाँ शेष न रही हों।

नव-वधू को गृह लक्ष्मी कहा जाता है। उसे अपना दायित्व यह अनुभव करना चाहिए कि जिस घर में प्रवेश किया है, उसके वातावरण में रचनात्मक गतिविधियों का संचार करे। हर सदस्य को अधिक सुखी, समुन्नत, सुयोग्य बनाने में योगदान दे। वधूएँ यह कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं क्योंकि उन्हें परिवार के वातावरण में पूरे समय रहने का अवसर मिलता है, जबकि लड़के दिन भर काम-काज में जुटे रहकर सोने-खाने के लिए ही घर आते हैं।

परिवारों में लड़के-लड़की का अन्तर नहीं उपजने देना चाहिए। बहू और बेटों में अन्तर नहीं होना चाहिए। बेटी का जन्मना उदासी का कारण नहीं होना चाहिए। उन्हें बेटे की तुलना में किसी भी प्रकार कम मान या महत्त्व नहीं मिलना चाहिए। सोचा जाना चाहिए कि अपनी माता और पत्नी भी तो किसी के घर बेटी बनकर ही जन्मी होंगी। उनसे ही तो अपने परिवार की सुखद संरचना की है। अपनी बेटी अपने घर न रही तो न सही, किसी दूसरे का घर तो बसायेगी। अपने घर में भी जो महिलाएँ हैं वे किसी दूसरे के घर जन्मने के उद्भूत ही उस परिवार की सुव्यवस्था बनाने आई हैं। सृष्टि क्रम यही है। यदि बेटियों की उपेक्षा होने लगे। बेटे ही प्रिय लगे, तो यह भी सोचना चाहिए कि बेटियों के बिना संसार कैसे चलेगा। सर्वत्र बेटे ही बेटे होने लगे तो समझना चाहिए कि महिलाओं का अत्यधिक अभाव हो जाने पर एक

२.८ गृहस्थ एक तपोवन

प्रकार से मनुष्य का वंश ही समाप्त हो जायेगा। औचित्य इसी में है कि बेटियों को भी उतना ही मान दिया जाय जितना कि बेटों को मिलता है। अपना घर सँभालने के लिए जिस प्रकार सुयोग्य वधू की अपेक्षा रहती है, उसी प्रकार यह भी सोचा जाना चाहिए कि दूसरों का घर बसाने के लिए अपनी लड़क़ी को हर दृष्टि से सुयोग्य बनाकर भेजा जाय।

यहाँ एक बात और भी ध्यान रखने योग्य है कि हर किसी का विवाह होना आवश्यक नहीं है। रोगियों, अविकसितों और असमर्थों को विवाह नहीं ही करना चाहिए। स्वयं हैरानी की स्थिति में होने पर कोई दूसरे साथी की सेवा-सहायता करने का दायित्व कैसे निबाहा जा सकता है ? हर प्रश्न गम्भीरतापूर्वक सोचा जाना चाहिए और असमर्थता की स्थिति में बिना विवाह के रहने का ही निश्चय किया जाना चाहिए।

आज की परिस्थितियों में संतान न होना हर दृष्टि से सौभाग्य का चिह्न है। परिस्थितियाँ जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हैं। जिनकी संतानें नहीं हैं, वे कई दृष्टि से भाग्यशाली हैं। एक तो इसलिए कि वे देश-समाज पर पर अनावश्यक भार बढ़ाने के लांछन से बच जाते हैं। दूसरे इसलिए कि संतानरहित होने पर पति-पत्नी एक-दूसरे की अधिक सेवा-सहायता कर सकते हैं। अपनी क्षमता का लाभ परिवार और समाज को अधिक मात्रा में दे सकते हैं। समाज सेवा के लिए, पुण्य-परमार्थ के लिए उस बचत का उपयोग कर सकते हैं, जो संतान होने की दशा में खर्च हो जाती और अपने पास न समय बच पाता न धन। यदि इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाय तो गृहस्थ जीवन एक तपोवन व दाम्पत्य स्वर्गोपम बन सकता है।

संतुलित दाम्पत्य जीवन और पत्नी की भूमिका

संतुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता अर्थात् एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक होते देखा जाता है। तुला के दो पलड़ों को संतुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुएँ रखनी पड़ती हैं, नाव के दोनों सिरों पर बैठे दो लोग यदि संतुलन खो दें तो नाव डूबने का खतरा रहता है, इसी प्रकार परिवार रूपी नाव को संतुलित रखने अर्थात् डूबने से बचाये रखने में दोनों व्यक्तियों अर्थात् दम्पति का पारस्परिक सहयोग एवं सहकार आवश्यक है, अन्यथा एक-दूसरे किनारे पर ले जाना चाहता है और दूसरा दूसरे किनारे पर, तो फिर कशमकश की स्थिति का निर्माण हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति में सामंजस्य द्वारा संतुलन बनाया जा सकता है। कार में बैठने वाले अनेक लोग होते हैं किन्तु चालक एक ही। इसी प्रकार मोटर, ट्रेन, वायुयान को एक ही

चालक द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, किन्तु चालक यदि संतुलन खो देता है तो भीषण दुर्घटनाएँ होती देखी गई हैं। इस कसौटी में पत्नी ही खरी उतरती है क्योंकि वह अहर्निश परिवार के सम्पर्क एवं सान्निध्य में रहती है पति तो बाहर रहकर, नौकरी अथवा काम-धन्धे द्वारा परिवार की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है। प्रश्न यह उठता है कि संचालक यदि प्रशिक्षित नहीं तो दुर्घटना की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

परिवार को हम एक गाड़ी ही मानें और उस गाड़ी की आवश्यकताएँ जुटाने वाला अर्थात् ईंधन, पानी की व्यवस्था करने वाले व्यवस्थापक पति को मान सकते हैं, तो परिवार को संचालित एवं सम्पादित करने के लिए एक संयोजक की भी आवश्यकता रहती है। चालक की थोड़ी-सी असावधानी ही गाड़ी को क्षतिग्रस्त कर सकती—अर्थात् परिवार संस्था चौपट हो सकती है। बनाना सरल है। किन्तु चलाना कठिन है, कमाना जितना सरल है खर्च करना उतना ही कठिन है, आदमी की समझदारी इस बात में नहीं निहित है कि वह कितना और कैसे कमाता है ? वरन् कैसे और कितना खर्च करता है ? इस दृष्टि से भी पत्नी का दायित्व पति से अधिक माना जा सकता है। पत्नी ही परिवार की वास्तविक कर्ता-धर्ता होती है, उसी के विवेक से परिवार सुखी एवं समुन्नत होता चला जाता है और अविवेक से दुःखी एवं अवनत होता जाता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने 'गवन' उपन्यास में पत्नी की उस कमजोरी का चित्रण किया है, जिससे पति को गवन करना पड़ा और सजा भी काटनी पड़ी।

इसके विपरीत पत्नी द्वारा पतियों को जीवन दृष्टि देने वाले ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जिससे वे अपने जीवन में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह कर सके—अन्यथा उनका जीवन आरम्भ में धिनौना ही था, इस सन्दर्भ में रत्नावली, विद्योत्तमा एवं वाल्मीकि की पत्नी का स्मरण यहाँ समीचीन ही है। पति को प्रत्येक दृष्टि से पत्नी सहायक सिद्ध हो सकती है, साहित्य साधना में भामती का उदाहरण, रणभूमि में कैकयी एवं हाँडारानी अविस्मरणीय हैं। अभिप्राय स्पष्ट है कि ये पत्नियाँ स्वयं संतुलन खो देतीं तो हम ऐसे महापुरुषों से वंचित रह जाते। नैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से इनकी संतुलन क्षमता अद्वितीय मानी जा सकती है क्योंकि दाम्पत्य जीवन की आधारशिला में दोनों की उपादेयता अप्रतिम ही मानी जाती है। दाम्पत्य-जीवन रूपी संस्था को संविधान की सफलता विशेष रूप से नारी की ही गुणवत्ता पर आधारित है। पत्नी की व्यवहारकुशलता ही बिगाड़े मिजाज पतियों को रामबाण औषधि सिद्ध हुई है, पति की साज और सँभाल के प्रति सतर्कता, उसकी आवश्यकताओं का यथासम्भव ध्यान आयु के अनुरूप प्रेम और सम्मान का

आदान-प्रदान, पति को संतुष्ट बनाये रखने में पत्नी की सफलता, उसकी बुद्धि कौशल एवं प्रत्युत्पन्नमति पर निर्भर करता है। अतः दाम्पत्य जीवन के संतुलन की कुंजी पत्नी ही कही जा सकती है। जो पत्नी प्रेम, सम्मान, सौहार्द एवं सद्भाव के गुणों से ओत-प्रोत है तथा जिसे अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का बोध है। वह पति के लिए वरदान ही कही जा सकती है। ऐसे दाम्पत्य ही सही अर्थों में सुखी एवं सम्पन्न कहे जा सकते हैं। सम्पन्नता का अभिप्राय धन एवं वैभव से नहीं है। बल्कि दाम्पत्य जीवन के स्वर्ण सूत्रों को जीवन में सफलतापूर्वक चरितार्थ करने से है अन्यथा अनेक धन की दृष्टि से सम्पन्न कहे जाने वाले दम्पति नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं। वहीं दूसरी ओर सुमन के अर्थात् सुन्दर मन के विचारों की सम्पदा के धनी दम्पति गौरवशाली एवं गरिमामय जीवन जीते हैं जो अनुकरणीय एवं आदर्श कहे जाते हैं।

नारी भावना की साक्षात् प्रतिमूर्ति एवं देवी होती है। सद्भावना ही मनुष्यों को जोड़ने एवं दुर्भावना तोड़ने का कार्य करती है। किन्तु पति-पत्नी में निर्मल प्रेम है तो दोनों में सदैव वैचारिक एवं भावनात्मक तादात्म्य रहेगा और घृणा एवं द्वेष है तो कटुता रहेगी—यह वैज्ञानिक सत्य है कि क्रिया की प्रतिक्रिया समान रूप से होती है।

जिस प्रकार ध्वनि की प्रतिध्वनि एवं बिम्ब का प्रतिबिम्ब समानधर्मा होता है। उसी प्रकार प्रेम की प्रतिक्रिया प्रेम होती है और क्रोध एवं घृणा की क्रोध एवं घृणा। गंद को जितनी जोर से दीवार पर मारेगे उतने ही जोर से लौटकर आएगी। प्रेम वह पारस है, जिस किसी लौह कण को संस्पर्श करता है, स्वर्ण में परिणित कर देता है। पति-पत्नी में यदि परस्पर प्रेम हो तो वे एक-दूसरे को विश्वसुन्दर एवं विश्वसुन्दरी से कम नहीं मानते, भले चर्मचक्षुओं से वे कुरूप प्रतियोगिता में प्रथम आने वाले हैं। दम्पति के लिए प्रेमचक्षुओं की महत्ता को रखना संतुलन के लिए अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए मात्र वाणी ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह कहना अत्युक्ति न होगा कि प्रेम की भाषा मौन होती है। मात्र सांकेतिक रूप से दूसरे के भावों को समझने में सक्षम हो जाते हैं, जैसे सीताजी रामचन्द्र जी की आन्तरिक भावना को समझकर ही केवट को देने के लिए मुंदरी देने लगी थी—पत्नी अपने पति के हृदय से सुपरिचित रहती है, तभी उसकी दाम्पत्य जीवन की सच्ची सफलता मानी जा सकती है।

आत्मीयता की अनुभूति के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होता है—आत्मीयता की अभिव्यक्ति भी वाणी द्वारा सम्भव नहीं, यदि की भी जाती है तो कृत्रिमता परिलक्षित होती है। आत्मीयता जिससे होती है, उसे दिया जाता है, सम्मान, प्रेम, सद्भाव आदि पाने के पूर्व देने ही पड़ते हैं। यदि पाने की इच्छा है और देना नहीं जानते, तो संतुलन बिगड़ने की ही सम्भावना रहती है।

प्रशंसा एक ऐसा अचूक बहाख है, जिस पर चलाया जाता है खाली नहीं जा सकता है। इसे प्रशंसा-पाश भी कहा जा सकता है। जैसे प्रेमपाश में आबद्ध प्राणियों को अलग नहीं किया जा सकता वैसे प्रशंसा में बँधकर सहज उन्मुक्ति सम्भव नहीं। मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपनी प्रशंसा सुनकर हर व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। फिर ऐसे अस्त्र का प्रयोग पति-पत्नी क्यों नहीं करते ? पति की सहानुभूति अर्जित करने एवं सन्तुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि प्रशंसा का सहारा लिया जाय। परस्पर प्रशंसा से सद्भावना का संचार होता है।

प्रशंसा का अभिप्राय गुणों की, सत्कर्मों की ही प्रशंसा की जाय। जिससे एक-दूसरे को प्रोत्साहन भी मिलता रहेगा और प्रेरणा भी। असद्वृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों की प्रशंसा अहितकर होगी—असद्वृत्तियों की आलोचना में दाम्पत्य का संतुलन वर्तमान में तो डगमगता दीखे, किन्तु दूरगामी परिणाम अनुकूल ही होंगे। दुर्विचार की आलोचना से अवमानना भी हो सकती है। किन्तु मन्दोदरी इस भय से अपने पति रावण को न समझावे ऐसा नहीं हो सकता।

नवदम्पति द्वारा जब एक नूतन सदस्य परिवार में संतान के रूप में जुड़ जाता है, तब कुछ ऐसी अनुभूति करने लगते हैं कि खास पति महोदय की पत्नी का प्रेम कुछ कम हो गया है। वस्तुतः ऐसा है नहीं तथापि संतान स्वाभाविक रूप से प्रेम विभाजन का कारण तो होती है।

माँ का वात्सल्य जब पराकाष्ठा पर पहुँचने लगता है तो पति की उपेक्षा की सम्भावना हो सकती है, ऐसे अवसर पर भी पत्नी को विशेष सतर्कता से संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता होती है, पति को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसके, प्रति अब पत्नी के प्रेम में कुछ कमी आई है। संतान के प्रति पिता का भी तो प्रेम होता है, उसकी भी सन्तति है। एक और महत्वपूर्ण बात दाम्पत्य जीवन में सन्तुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है, जहाँ कहीं गत्यावरोध होता है, तो उसकी प्रतिक्रिया होती है, बर्तन आपस में टकराने पर आवाज करते हैं। नीड़ों के समीप कलरव होता है, इसी प्रकार पति-पत्नी का स्वाभाविक रूप से कभी-कभी किसी भी विषय में मतभेद हो सकता है, ऐसी स्थिति में जब कभी उत्तेजना अथवा आवेश का जन्म हो तो उसे एकान्त में ही अभिव्यक्ति करना श्रेयस्कर है। आपसी मत-भेद के मनोमालिन्य को दूसरे के सामने प्रकट करने से अहम को ठेस पहुँचती है। अकेले में डॉट-डपट, पुचकार-फटकार, प्रेम से और क्रोध विज्ञापित नहीं हो पाता, जिससे वह पड़ौस में अथवा मुहल्ले में चर्चा का विषय नहीं बनता। आपसी मनोमालिन्य का विज्ञापन कटुता एवं मनोगुणियों को बढ़ाता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है जो बात किसी व्यक्ति से मनवाना चाहते हो, यदि दोस्तों अथवा भीड़ के

२.१० गृहस्थ एक तपोवन

बीच है तो उसका अहम् गलत बात की भी पैरवी करेगा अर्थात् आड़े आयेगा किन्तु उसी बात को अकेले में समझा दो तो अहम् की तुष्टि हो जाती है और सन्तुलन बिगड़ने से बच जाता है। असन्तुलन प्रत्येक स्थिति में अलाभकर है। विशेषकर दाम्पत्य जीवन के लिए तो यह अभिशाप कहा जा सकता है।

- दाम्पत्य-जीवन ढोयें नहीं सँजोयें

प्रजनन प्रक्रिया में जो आवेश-उद्वेग है, नर-नारी के बीच जो आकर्षण है, वह प्रकृति ने इस प्रयोजन के लिए सँजोया है कि उस आधार पर दो व्यक्तियों के मिलन की भावनात्मक एवं रासायनिक क्रिया, इस जगती के लिए कुछ उपयुक्त अनुदान प्रस्तुत करती रहे।

दो वस्तुओं के मिश्रण से तीसरी वस्तु बनाने की रासायनिक प्रक्रिया से हर कोई परिचित है। औषधिशास्त्री जानते हैं कि यदि अमुक वनस्पतियों, धातुओं अथवा क्षारों का अलग-अलग सेवन किया जाय तो उससे सामान्य परिणाम ही रहेगा, पर यदि उन्हें मिला दिया जाय तो इस मिश्रण से एक नई वस्तु, नई प्रक्रिया उत्पन्न होगी। रासायन-शास्त्र इस रीति-नीति को खोजता रहता है और उपलब्ध ज्ञान के आधार पर नित नये आविष्कार करता रहता है।

यही मिश्रण सृष्टि-निर्माण क्रम में चलता रहने से रंग-बिरंगे और विविध प्रतिभाओं से सुसम्पन्न फूल और तरह-तरह के स्वाद वाले फल उत्पन्न होते हैं। नर-नारी के बीच ऐसे अदभुत घुलनशील तथ्य हैं कि यदि वे गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से दोनों अपना पुराना स्तर छोड़कर नये स्तर के बन जाते हैं। कुमारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, उसमें विवाह के बाद काया-कल्प जैसा परिवर्तन होता है और किशोर लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के थे, विवाह बाद वे इतने बदल जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है, प्रकृति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित होता है। पर यह होगा तभी जब वे दोनों भाव-गह्वर में गहराई तक उतर कर एक-दूसरे में घुस जाने की स्थिति प्राप्त कर लें। शारीरिक संयोग बहुत उथला है। वह नाई की दुकान पर हजामत बनवा लेने या तेल मालिश करा लेने, दाद खुजाने जैसी नगण्य और तुच्छ क्रिया है, वह भी विवाह का एक प्रयोजन है, पर उतने भर से व्यक्तियों का मिलन या घुलन पूरा नहीं होता, उसके लिए ममता, आत्मीयता, भावुकता, बफादारी और आत्म-समर्पण के भाव गहन स्तर पर उतर कर एकत्व में परिणित होने चाहिए।

व्यक्तित्व के घुलन का अर्थ है भावनात्मक इतनी सघनता जिसमें शरीरों की भिन्नता का आभास ही नष्ट हो जाय। एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। इतनी सघनता के प्रतिफल दो होते हैं, एक प्रखर, एक अभिनव

व्यक्तित्व का ऐसा नवनिर्माण जिसकी आभा से दोनों शरीर समान रूप से जगमगा उठें। दूसरा प्रतिफल होता है सन्तान की ऐसी उपलब्धि भी जो अगणित प्रतिभाओं और विशेषताओं से सम्पन्न हो। विवाह का मूल प्रयोजन यही है। नर-नारी के बीच स्वाभाविक आकर्षण का कारण यही है। रतिक्रिया में जिस आनन्द, आवेश का समावेश है उसका कारण यही है। प्रकृति चाहती है उसकी दुनिया में जीवधारियों का वंश ही न बना रहे वरन् उनका स्तर भी विकसित होता रहे, भावनात्मक सघनता का सम्मिश्रण व्यक्तित्वों का स्तर विकसित करता है और पीढ़ियों में विशेषता भरता है। यही प्रतिक्रिया जब शारीरिक सघनता में परिणित होती है, उच्चकोटि के गुणों से सम्पन्न सन्तति का जन्म होता है। दो भिन्न लिंगी प्राणियों की अपूर्णताओं का समाधान करके एक-दूसरे का पूरक बनते हुए पूर्णता को प्राप्त करें, यही दाम्पत्य-जीवन का मूलभूत प्रयोजन है।

जहाँ पति-पत्नी की प्रकृति मिल जाती है और दोनों में परस्पर सघन सहयोग होता है, वहाँ इच्छित सन्तान का होना सुनिश्चित है।

कोर्टफ्रील्ड (इंग्लैण्ड) के कर्नल जान फ्रान्सिवान की पत्नी लुईस एलिजाबेथ अत्यन्त धार्मिक प्रकृति की विदुषी महिला थी। पति भी उनके ठीक उसी प्रकृति के थे। दोनों दूध-पानी की तरह एक थे। सन्तान के सम्बन्ध में दोनों की इच्छायें भी एक-सी थीं। पति को जब अवसर मिलता गिरजा जाते पर पत्नी तो बहुत ही भक्ति-भाव सम्पन्न थीं। वे घण्टों उपासना करती थीं और यही प्रार्थना करती थीं कि उनकी सभी सन्तानें धर्म की सेवा में ही अपने जीवन का उत्सर्ग करें। उनकी यह मनोकामना पूर्णतः सफलीभूत हुई। लुईस के ८ लड़के और ५ लड़कियाँ थीं। वे सभी धर्मसेवी बने, अविवाहित रहे और सारा जीवन ईसाई मिशन के लिए दान कर दिया। पादरी और ननों के रूप में पवित्र जीवन बिताने वाले पवित्र माता के इन पवित्र बच्चों की चर्चा पाश्चात्य जगत में शताब्दियों तक चर्चा का विषय रही है।

दो व्यक्तित्वों की मिलन की जादूगरी रासायनिक प्रक्रिया—भावनात्मक प्रक्रिया उत्पन्न करने की असाधारण उपलब्धि के लिए पति-पत्नी के बीच सघन प्यार और विश्वास होना चाहिए। उसमें आशंकाओं और तुनक-मिजाजी के लिए कोई स्थान नहीं। जब साथी के गुण ही गुण दिखाई पड़ें और भूल, अपेक्षा अथवा विनोद, उपहास की वस्तु बन जाय उसके कारण मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना ही न हो तब समझना चाहिए कि सच्चे मन से समर्पण या घुलने की बात पूरी हुई। आशंकाओं, सन्देहों, अविश्वासों, छिद्रावेष्टियों के बीच यह सघनता फलती-फूलती नहीं, उसे विश्वास और ममत्व का उन्मुक्त आकाश चाहिए।

जर्मनी का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, लेखक और कवि कार्ल्स हम्बोर अपनी पत्नी को अत्यधिक प्यार करता था। पत्नी का नाम था—कैटोलिनवाना। पत्नी यों गुणवती और सुयोग्य भी थी पर पति के प्यार ने उसकी दृष्टि में उसे मानवी नहीं देवी बना लिया था। वह उसके सम्बन्ध में प्रायः प्रतिदिन १०० पंक्तियों की कविता लिखता था। ३८ वर्ष की उम्र में उसने यह विवाह किया था। पत्नी अधिक दिन जीवित न रही। पर उसने दूसरा विवाह नहीं किया और सौ पंक्तियों की कविता करने का क्रम उसने बिधुर होने के बाद भी जारी रखा। जब तक वह इस श्रद्धांजलि को उसकी कब्र पर चढ़ा नहीं देता था तब तक वह सोता नहीं था।

यदि इतनी सघनता न हो, तो दोनों में से जिसका व्यक्तित्व अधिक प्रतिभासम्पन्न और जबरदस्त होता है उसी की छाप सन्तान पर पड़ती है। इसलिए सन्तान का स्तर उसी दिशा में विकसित होता है। हल्के स्तर का सरल व्यक्तित्व अपनी कोमलता के कारण दब जाता है। ऐसे गृहस्थ तो चलता रह सकता है पर एकपक्षीय प्रयत्न, एक हाथ से ताली बजाने की तरह अपूर्ण ही रहता है।

फ्रांस के एक पादरी यह सिद्ध करना चाहते थे कि यदि एक पक्ष सज्जन है तो दूसरे को अपने में ढाल सकता है। यह बात तभी हो सकती है जब दूसरा पक्ष जैसा भी कुछ है अपना पूर्ण समर्पण करदे। यदि दोनों व्यक्तित्व अपनी अहंता अलग-अलग बनाये रहें तो उनमें जो जबरदस्त होगा उसी की विजय होगी। पर सज्जन पादरी एकांगी बात सोचते थे, वे पुरुष की सज्जनता के महत्त्व को ही सब कुछ मानते थे। उनसे अपनी बात यही सिद्ध करने के लिये विपरीत गुण, स्वभाव वाली पत्नी से विवाह करके सुयोग्य सन्तान की बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके।

क्लारमण्ड (फ्रांस) के पादरी क्रेटीन यह दावा करते थे कि वंश परम्परा से अपराधों का कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य का भला या बुरा होना शिक्षा, संस्कार तथा वातावरण पर निर्भर है। वंशानुक्रम की अदभुत विशेषताओं पर बल देने वाले वैज्ञानिकों को चुनौती देने के लिए उन्होंने गृहस्थ जीवन स्वीकार किया और एक अपराधी वंश की लड़की से विवाह कर लिया। उसका बाप पड़ोसी के घर में ईर्ष्यावश आग लगाने के अपराध में जेल काट चुका था। विवाह के बाद सन्तान भी हुई। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर भी यथासम्भव ध्यान दिया गया, किन्तु वंश परम्परा का प्रभाव सन्तान पर समयानुसार उभरता ही गया और वे कई पीढ़ियों तक आगे भी अपराध करते रहे।

क्रेटीन के तीन लड़के हुए। पियरी, टामस और वैयातिस। तीनों ही समयानुसार अपराधी प्रकृति के बने और डाकेजनी, हत्या जैसे अपराधों में समय-समय पर वे तीनों ही फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

पियरी फाँसी पर चढ़ने से पूर्व अपनी एकमात्र सन्तान छोड़ गया था—जीन फ्रान्सिस। बड़ा होने पर वह भी एक डकैती में पकड़ा गया और बाप की तरह वह भी मौत के घाट उतार दिया गया।

टामस के दो लड़के थे—मार्टिन तथा जान फ्रान्सिस यह दोनों भी तलवार के घाट उतारे गये।

मार्टिन का बेटा भी अपराधी प्रवृत्तियों में व्यस्त रहा और केने फ्रान्स की जेल में सड़-सड़ कर मरा।

पादरी के तीसरे लड़के की सन्तान का भी यही हाल हुआ। वैपतिस का एकमात्र लड़का भी अपनी पत्नी के साथ आजीवन कैद की सजा भुगतते-भुगतते जेल में ही मरा। जेल जाने से पूर्व वे सात बच्चे उत्पन्न कर चुके थे। वे भी जब बड़े हुए तो अपराधों का ही धन्या अपनाया और उन सबने भी अपने बाप-दादों की परम्परा निवाही और जेल काटते-फाँसी खाते समाप्त हुए।

कईयों का वंश परम्परा की रक्षा और रक्त शुद्धि पर बहुत ध्यान रहा है। उनका कहना है यह रहा है कि अपना रक्त अपने रक्त से धुलकर ही शुद्ध रह सकता है। दूसरी जाति या स्वभाव के लोगों के साथ रक्त का सम्मिश्रण नहीं होना चाहिए। इससे रक्त दूषित होता है और अवांछनीय सन्तान उत्पन्न होती है। अभी भी रोटी बेटी को वंश-कुल की मर्यादाओं में सीमित रखने की बात यहीं सोचकर की जाती है। इस सम्बन्ध में मिश्र में तो अति ही बरती गई। वहाँ के शासक सोचते थे कि राज वंश का रक्त अत्यन्त पवित्र है। उसे दूसरे रक्त के साथ धुलकर अपनी विशेषता नहीं खोनी चाहिए, इसलिए विवाह-शादी अपने घर-परिवार में नहीं, सगे बहिन-भाइयों में ही सीमित रखी जाय। यह प्रयोग किया तो बहुत दिन गया, पर सफल नहीं हुआ।

मिश्र के टाल्मी राजवंश में प्राचीनकाल में—भाई-बहिन की शादी का प्रचलन था। वह वंश अपने को दैवी शक्तियों से उत्पन्न मानता था और दूसरे लोगों के साधारण रक्त के साथ अपना रक्त नहीं मिलाना चाहता था। रक्त शुद्धि की दृष्टि से उन लोगों ने यह प्रथा चलाई और बहुत समय तक चलती भी रही। इतिहासकारों के अनुसार यह क्रम तेरह पीढ़ियों तक चला और वह तब बन्द हुआ जबकि एक बार सब लड़के ही लड़के पैदा हो गये और बाहरी लड़की लिये बिना वंश डूबने का ही खतरा पैदा हो गया।

मिश्र के दूसरे उच्च समझे जाने वाले घरानों में भी राजवंश की देखा-देखी यह प्रथा चल पड़ी थी। मिश्र की अति सुन्दर साम्राज्ञी 'क्लियोपात्रा' अपने रूप-लावण्य के लिए प्रख्यात थी। उसने अपने विनोद कौतुक की तृप्ति के लिये एक-एक करके दोनों सगे भाइयों से विवाह किया और पसन्दगी से उतर जाने पर दोनों को मरवा भी डाला।

टैक्सास के गवर्नर हेनरी स्मिथ ने एक-एक करके अपनी तीनों सगी बहिनों से खुद ही विवाह किया था। लोग जब उसकी निन्दा करते थे, तो वह यही कहता—नर-नारी की घनिष्ठता को आवश्यकतानुसार प्रणय से बदलना प्रकृति के कानून में दोषयुक्त नहीं—मनुष्य समाज ने भले ही उस पर बन्धन लगाये हों।

मूल प्रश्न रक्त शुद्धि का नहीं व्यक्तियों की घुलनशीलता का है। इसके लिए एक पक्ष का प्रयास सफल नहीं हो सकता, इसमें दोनों को ही पिघलना पड़ता है और यह प्रयत्न करना पड़ता है कि घनिष्ठ एकता को हर कीमत पर बनाये रहा जाय। यदि ऐसा न हुआ तो फिर जो पक्ष अधिक सबल होगा, दूसरे पर छा जाने का प्रयत्न करेगा। यहाँ समर्थता का अर्थ शारीरिक या बौद्धिकता, सबलता से नहीं वरन् भावनात्मक प्रचण्डता से है। यदि किसी में घृणा या प्रतिहिंसा की भावना तीव्र है तो उसी की तीव्रता रहेगी। सीधा, सरल स्वभाव उसके भावनात्मक दबाव से अपना प्रभाव खो बैठेगा। भले ही वह शारीरिक या बौद्धिक दृष्टि से बलिष्ठ या विकसित ही क्यों न दिखाई पड़े ?

बर्लिन (जर्मनी) की एक महिला इमगार्डवन्स ने पाँच बार विवाह किये। उनमें से प्रत्येक को क्रमशः आत्महत्या करके ही अपने जीवन का अन्त करना पड़ा। उसकी भावात्मक प्रचण्डता इतनी तीव्र थी कि पति उसके शिकार होकर अपना सन्तुलन खोते चले गये।

कई बार कई व्यक्तियों को यह सनक सवार रही है कि चूँकि पुरुष पक्ष बहुत स्वस्थ, सुयोग्य एवं समर्थ है इसलिये उसे बहुत विवाह करने चाहिए और बहुत बच्चे पैदा करने चाहिए ताकि वे उसी के जैसे गुण वाले हों और उनका नाम या वंश अधिक ख्याति प्राप्त करे। यह प्रयोग अनेक जगह हुए हैं, पर उससे संख्या मात्र बढ़ी। पति-पत्नी में सघन विश्वास का वातावरण न बना, प्रेम और सौहार्द भी पैदा न हुआ, फलस्वरूप सन्तान संख्या वृद्धि की बात तो सहज थी, सो पूरी हो गई पर पिता के गुण ही सब सन्तान में होंगे, यह प्रयोजन पूरा न हुआ। घृणा और अविश्वास के वातावरण में चलने वाले दाम्पत्य-जीवन किसी प्रकार गाड़ी धकेलते तो रहते हैं पर उनको जो शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं वंश परम्परागत लाभ मिलना चाहिए वह बिल्कुल भी नहीं मिलता।

मोरक्को का एक नगर है। यहाँ के सभी निवासी अपने को राजकुमार कहते हैं। इस नगर का संस्थापक था मुलाई इस्माइल नामक एक मुसलमान राजा। उसने कितने ही युद्ध किये और गुलाम पकड़े। पकड़े गये पुरुषों को उसने शहर की इमारतें बनाने में लगाया और स्त्रियों को बच्चे उत्पन्न करने में लगाया। इन दो शौकों को पूरा करने के लिए वह युद्ध लड़ता और आक्रमण करता था। उसकी मृत्यु के समय तक जीवित और समर्थ बच्चों की

संख्या ८८८ हो गई थी और गुलाम इतना बड़ा नगर बना चुके थे, जिसमें इन सब बच्चों के स्वतन्त्र परिवार रह सकें। इस कार्य में उसे बीस वर्ष लगे। उसकी छोड़ी हुई इन ८८८ सन्तानों की वंश वृद्धि से ही यह पूरा नगर बसा है। अस्तु, वे सभी राजा के वंशज होने के कारण अपने को राजकुमार या राजकुमारी कहते हैं।

हाँ कई पत्नियाँ होते हुए भी उनके बीच स्नेह, सौहार्द, विश्वास और प्रेम का वातावरण बना रहे तो उस विषमता के बीच भी सन्तुलन बना रह सकता है और सामूहिकता के साथ सौजन्य का एकत्रीकरण भी सफल हो सकता है।

हंगरी के प्रसिद्ध बायलिन वादक रैक्ज पाली—अपनी कई पत्नियों द्वारा उत्पन्न तथा गोद लिये हुए ४९ बच्चों के पिता थे। उन्हें अपनी वायलिन वादन कला की ही तरह बालकों के समूह में खेलने में भी आनन्द आता है। उनसे अपनी इन दोनों अभिरुचियों को परस्पर मिलाकर रखा। सभी बच्चों को वायलिन वादन सिखाया और उनमें से एक को छोड़कर शेष सभी अपने पिता की तरह वायलिन कलाविदों के रूप में प्रख्यात हुए।

भारत में बहुपत्नी प्रथा कभी थी। इनमें श्रीकृष्ण भगवान को भी सम्मिलित बताया जाता है। पर यह प्रयोग सफल तभी हो सकता है, जब इस सारे समूह का स्तर बहुत ही उच्चकोटि का हो, अन्यथा ईर्ष्या-द्वेष की आग जब एक पत्नी, एक पति वाली स्थिति में नरक उत्पन्न कर देती है तब बहुपत्नी या बहुपति वाली स्थिति घटिया स्तर से तो सर्वनाश ही प्रस्तुत करेगी।

विवाह का उद्देश्य यदि संख्या वृद्धि करने वाला पशु प्रजनन हो तो बात दूसरी है अन्यथा व्यक्तित्वों में प्रखर प्रत्यावर्तन उत्पन्न करना और प्रतिभाशाली सन्तान प्राप्त होना तभी सम्भव है, जब नर-नारी के बीच अत्यन्त गहरे एवं सघन स्तर की आत्मीयता स्थापित हो सके। ऐसे ही विवाह सच्चे अर्थों में विवाह हैं अन्यथा उन्हें एक मजबूरी का निर्वाह मात्र ही कहा जा सकता है।

सहधर्मिणी के प्रति कर्तव्य-निष्ठ

रहिए

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर-संरचना को छोड़कर और कोई भेद नहीं रखा है। उसका कारण कुछ प्राकृतिक आवश्यकतायें भर हैं, अन्यथा जीवन, श्वास, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखें और माँस दोनों में एक जैसे ही हैं। उन प्राकृतिक आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए साथ रहना भी जरूरी है और यहीं से वे पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता तक सघन हो जाता है। प्रेम और आत्मीयता का पाठ मनुष्य

परिवार से ही आरम्भ करता है, यहाँ तक कि परिवार के बिना उसका जीना भी दूभर हो जाता है।

परिवार-निर्माण और उसकी अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का कार्य तथा दायित्व विभाजन एवं उन्हें पूरा करने की परम्परा चली, जो उचित भी है। एक व्यक्ति निर्वाह के साधन जुटाता है, तो दूसरा उसे उपयोग लायक बनाये, एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है, तो दूसरा अन्दरूनी व्यवस्थाये देखे। यहाँ तक बात समझ में आती है और ठीक भी लगती है, परन्तु इसी कारण एक अपने को बड़ा समझने लगे और दूसरे का शोषण करे, यह जरा भी उचित नहीं जँचता। दोनों अपने-अपने कार्यों को ही लक्ष्मण-रेखा समझ लें और किन्हीं भी परिस्थितियों में एक-दूसरे का काम न सम्हालें—यह विकृति ही नहीं, तो क्या है ? स्त्री के जिम्मे घर के काम—रसोई बनाना, सफाई करना, बच्चों की देख-रेख करना आदि कार्य हैं और पुरुष ने बाहर कमाना, खेती या नौकरी-पेशा करना अपने लिए रखा है। परन्तु वह समय पर आवश्यक होते ही घर के अन्दरूनी कामों को देखने, करने में अपनी हेठी समझता है। महिलाये तो बेचारी आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती है, पर बीमारी और रुग्णावस्था में भी पति-पत्नी से ही यह अपेक्षा करता है—वह उसे खाना बनाकर खिलाये और बच्चों को सम्हाले। जिस आधार पर—सहचरत्व का पालन करने के लिए दाम्पत्य-जीवन आरम्भ किया गया, यह तो उसकी उपेक्षा ही हुई।

‘विवाह’ के समय वर और वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम परस्पर एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और दोनों प्रगति के पथ पर एक साथ अग्रसर होंगे पर आगे चलकर यह प्रतिज्ञा अधूरी हो रह जाती है तथा पुरुष जहाँ पत्नी के काम करने में अपना छोटापन समझता है, वहीं पत्नी को पुरुष के क्षेत्र में पदार्पण करने से भी रोकता है।

अपने-अपने कार्यों को ही अपनी अन्तिम सीमा-रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता। सच्चाई तो यह है कि पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर ही जीवन पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं। सहयोग की दृष्टि से कामों का विभाजन बात और है, परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा जाय। औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार और कर्तव्यनिष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों, चाहे बाहर के।

पत्नी-स्त्री प्रायः अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती, पर पति अपने आपको घर का मुखिया (स्वामी) समझने

के कारण दूसरे कार्यों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है। जैसे पत्नी को परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है; लेकिन कभी वह बीमार हो जाय तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में ही खाना बनाकर दे। या वे होटल में खाने अथवा बच्चे घर में हों तो उनके हाथ से खाना बनवाने की ही बात सोचेगा। पत्नी के होते हुए भी उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है। सहज भाव से पत्नी ने किसी कारणवश पति को भोजन बनाने के लिए कह दिया तो पति महोदय इस प्रकार तुनक उठेंगे, जैसे सरे-बाजार उन पर किसी ने जूता फेंक दिया हो।

पत्नी को अपना साथी-सहचर मानने वाले, उसे सहधर्मिणी समझने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते। प्राचीनकाल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भाँति लड़के भी पाक-विद्या और गृहकला सीखते थे। गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही सभी बच्चों की देख-भाल करते और भोजन बनाने से लेकर, आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच न करते थे। राजा नल पाक विद्या में पारंगत थे और इसी गुण के कारण ऋतुपर्ण के सारथी के रूप में उन्हें दमयन्ती ने पहचाना था। जनक को पाक-कला का विशेषज्ञ समझा जाता था, यद्यपि वे सम्राट थे। गदाधारी भीम अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ रसोइये के रूप में नियुक्त हुए थे।

प्राचीनकाल की ही बात क्यों करें, इसी युग में महात्मा गाँधी का उदाहरण ताजा है। वे कस्तूरबा के साथ रसोई में काम करने और आश्रमवासियों को खाना परोसने के बेहद शौकीन थे। स्वामी विवेकानन्द अपने हाथों से बहुत स्वादिष्ट खाना बनाते थे। जवाहर लाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री आदि प्रख्यात नेता अपनी पत्नी के हर कार्यों में सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। कमला नेहरू जब अपने आखिरी दिनों में बीमार रहने लगीं तो नेहरूजी ने कई बार घर के अन्दरूनी काम देखे। हमारे यहाँ कोई भी महापुरुष ऐसा नहीं रहा है, जिसने घर के कामों को—जिनके लिए केवल पत्नी पर ही निर्भर रहा जाता है—करने में संकोच अनुभव किया हो।

भोजन बनाने की तरह ही पति और बच्चों के कपड़े धोने, घर की सफाई करने, देख-भाल और सार-सम्हाल रखने के कार्य भी पत्नी के समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त परिवार का कोई भी सदस्य जब बीमार पड़ता है, तो उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए भी पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है। लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े निचोड़ने या उसके वस्त्र उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो हम उसे गृह-लक्ष्मी,

अर्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघाते और कहाँ उसका छोटा-सा काम करने में भी घबड़ाते हैं।

कई परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं। उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज-मजे करने और ताश-शतरंज खेलने में ही गुजार देते हैं। जबकि जरूरी यह है कि यदि अपने पास समय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाय। ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना सम्भव हो सके उसे बचाया जा सके।

काम-काज में सहयोग करना तो दूर, अनेकों लोग अपनी पत्नी के प्रति सहानुभूति भी नहीं रखते, उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं। रात को देर तक साथियों से गपशप, सिनेमा मनोरंजन-गृहों से देकर घर लौटना, उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी भूखी बैठी उनकी बाट जोहती रहती है। भारतवर्ष में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है पतिव्रत के नाम पर कि वह बेचारी पति के खाना खाने से पहले कुछ खा-पी भी नहीं सकती। भले ही पति होटलों में चाटते फिरते हों।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए इन बातों के अतिरिक्त और भी ऐसी कई सावधानियाँ रखने की आवश्यकता है; जिनका एक मोटा आधार यही हो सकता है कि हम पत्नी के प्रति सच्चे भावनिष्ठ रहें। उसमें और अपने में कोई छोटे-बड़े का भेद-भाव न रखें। प्रेम और हार्दिक एकता में न कोई छोटा है और न बड़ा। अतः उसे बराबर का साथी मानकर ही व्यवहार करें।

धर्मपत्नी की उपेक्षा न करें

हमारे यहाँ नारी और पुरुष के कार्यों की एक सीमा रेखा-सी मान ली गई है। घर के काम, रसोई बनाना, बच्चों की देखभाल, सफाई आदि के कार्य स्त्री के माने गये हैं तो घर से बाहर कमाई करना, खेती-नौकरी या कोई पेशा आदि करना पुरुष का काम रहा और यह विभाजन इतना दृढ़ हो गया कि नारी सुलभ कार्यों को करने में पुरुष शर्म-संकोच का अनुभव करता है तो घर की सीमा से बाहर के कार्यों में नारी का प्रयत्न निन्दनीय समझा जाता है। यद्यपि आज के युग में ये सीमाएँ टूटती जा रही हैं तथापि पूर्व संस्कारों के कारण कम से कम हमारे देश में तो अभी उक्त धारणायें व्यापक रूप में फैली हुई हैं। आज भी नारी और पुरुष के कार्यक्षेत्र की यह विभाजन रेखा टूटी नहीं है।

भले ही इसका कारण कुछ भी रहा हो लेकिन आज की परिस्थितियों में विकास की माँग के अनुसार इस विभाजन को लक्ष्मण-रेखा नहीं माना जा सकता। आज

हमें इसकी अनुपयुक्तता पर विचार करना होगा साथ ही इसको मिटाना होगा।

वस्तुतः पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। दोनों का एक-दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति-पत्नी के कार्यों का विभाजन, उसकी सीमा रेखा कभी निश्चित नहीं की जा सकती। दाम्पत्य-जीवन का सार इसी में है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, योग दें। चाहे यह काम घर के अन्दर का हो या बाहर का।

बहुधा भोजन बनाना पत्नी का काम समझा जाता है और यह ठीक भी है कि यदि पति बाहर काम पर गया है और पत्नी को अन्य कोई काम नहीं है, वह घर पर रहकर भोजन बनाये। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पति को भी इस काम को उसी उत्साह से करना चाहिए जैसे पत्नी करती है। लेकिन बहुत-से लोग इसे अपना अपमान समझते हैं। पत्नी के सामने चूल्हा फूँकने में शर्म महसूस करते हैं। कैसी विडम्बना है, जो स्त्री जीवन भर चूल्हा फूँकती है, पति को भोजन बनाकर हमेशा देती है, यदि बीमारी-हारी में या किसी परेशानी के समय वह इसमें असमर्थ होती है तो वही पति इसमें अपना अपमान समझता है।

लेकिन समझदार पति जो पत्नी को अपने बराबर साथी की तरह समझता है, कभी इससे संकोच न करेगा। महान लेनिन के गृहस्थ-जीवन का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि वह पत्नी के हर काम में हाथ बँटाता था। पैदल ही चलकर एक साधारण नागरिक की तरह बाजार से घर का सामान, साग-सब्जी लाता था। कई वर्षों तक तो भोजन एक समय उनकी पत्नी बनाती थी और एक समय वे स्वयं।

पत्नी जीवनभर अपने पति-बच्चों के वस्त्र धोती है, उनकी सेवा करती है, जो भी करना आवश्यक होता है उसमें संकोच का अनुभव नहीं करती। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के कपड़े तक उठाकर धरने में, बीमारी-हारी में उसकी कुछ सेवा-सुश्रूषा करने में बहुत-से पति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अपना अपमान समझते हैं। क्या इसी रूप में वे पत्नी की सेवा से उक्रुण होना चाहते हैं ? सचमुच ऐसे व्यक्ति कभी नारी से उक्रुण नहीं हो सकते।

बहुत-से परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं, उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि कुछ विश्राम करें। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ आलस्य में पड़े रहकर, मौज-मजे करने में, ताश-शतरंज खेलने में बिताते हैं, लेकिन पत्नी को घर के काम में, कुछ सहारा नहीं देते ताकि वह भी बेचारी कुछ सुस्ता

सके, विश्राम कर सके। पति का कर्तव्य है कि जिस तरह पत्नी हमेशा निःसंकोच भाव से सेवा करती है, उसी तरह वह भी आवश्यकता पड़ने पर पत्नी की सेवा करे। उसके आराम-स्वास्थ्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

काम-काज की ही बात नहीं बहुत-से लोग अपनी स्त्री के प्रति सहानुभूति और सहयोग का रुख भी तो नहीं रखते। उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से उसे परेशानी पैदा कर देते हैं। रात को साथियों की गपशप, सिनेमा आदि के कारण देर से घर आते हैं। उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी उनकी बाट जोहती रहती है। न वह स्वयं समय पर खा पाती है न सो पाती है। पति इस तरह की व्यर्थ परेशानी से पत्नी को छुटकारा दिला सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि पत्नी के प्रति सद्भावना रहे, उसकी सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। ऐसी बहुत-सी कृत्रिम परेशानियों को दूर किया जा सकता है।

यदि आप अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी पत्नी के स्वस्थ विकास की क्षमता रखते हैं, अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति सच्चे बनना चाहते हैं तो सभी प्रकार पत्नी के कार्यों में सहयोग करें। किसी कारणवश आपकी पत्नी भोजन नहीं बना पाती तो आपका कर्तव्य है कि आप उसी भावना से भोजन बनायें, जिस तरह प्रतिदिन आपकी पत्नी बनाती है।

बीमारी पाने पर या किसी तकलीफ में पत्नी की सेवा-सुश्रूषा करने में कंजूसी न करें। यही वह अवसर होता है जब आप अपनी स्त्री के ऋण से, जो जीवनभर आपके ऊपर चढ़ता रहता है मुक्त हो सकते हैं। फिर अपने जीवन साथी की सेवा करने में शर्म क्यों ? इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखें कि आपके द्वारा अकारण ही आपकी पत्नी को परेशानी न उठानी पड़े। इसके लिए अपनी आदतों में, अपने रहन-सहन और कार्यक्रम में सुधार करें। पत्नी के भी स्वास्थ्य, मनोरंजन, घूमने-फिरने का ध्यान रखें। किसी पर्व-त्यौहार पर आपकी पत्नी यदि सहेलियों के साथ उत्सव मनाना चाहे तो घर के आवश्यक कार्य आप स्वयं सम्हाल लें और उसे स्वतन्त्रता के साथ आमोद-प्रमोद का अवसर प्रदान करें। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं और पत्नी के बीच में किसी तरह का भेद-भावपूर्ण व्यवहार की कोई सीमा-रेखा न मानें। वरन् एक बराबर साथी की तरह व्यवहार करें।

सफल दाम्पत्य के सुदृढ़ आधार

विवाह के पूर्व वर-वधू न जाने क्या आशाएँ सजाते हैं ? अपने जीवन साथी के प्रति सुनहरे सपने देखते हैं और एक-दूसरे को लेकर तरह-तरह की मधुर कल्पनाएँ करते हैं। बहुत-सी आशाओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के साथ युवक-युवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के बन्धन में बँधते हैं। समाज के सामने दोनों विविध रस्म-रिवाज सम्पन्न कर

एक-दूसरे को अपना जीवन साथी घोषित करते हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। बैण्ड बाजे, रोशनी, दावतें, लेन-देन, बारात, भोज और जुलूस, जलसों के साथ दो व्यक्ति विवाह सूत्र में बँधते हैं। विवाह के बाद कुछ दिनों तक तो दोनों का जीवन परस्पर के नये आकर्षण में बड़ा ही सुखद बीतता है, किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और अधिकांश दम्पतियों का जीवन कलह-क्लेश तथा अशान्ति-असंतोष की आग में जलने लगता है।

ऐसा क्यों होता है ? परिपाटी के तौर पर पुरोहित जिन प्रतिज्ञाओं का उच्चारण वर-वधू से करवाते हैं, उन्हें शीघ्र ही क्यों भुला दिया जाता है ? व्यावहारिक जीवन में उन्हें चरितार्थ होते क्यों नहीं देखा जाता ? और क्यों दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के लिए बोझ बन जाता है ? यह विचारणीय है, गम्भीरता से विचार करने पर इसके कोई बाहरी कारण होते भी नहीं हैं। होता यह है कि पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे से तालमेल और सामंजस्य नहीं बना पाते। उनका आपसी व्यवहार एक-दूसरे को संतुष्ट नहीं कर पाता और परिणामस्वरूप उनका गृहस्थ जीवन असंतोष की अग्नि में जलने लगता है। असंतोष के इन कारणों को यदि आरम्भ में ही उत्पन्न न होने देने की सावधानी बरती जाए, तो दाम्पत्य-जीवन वास्तव में सुख, शान्ति और आनन्द का स्रोत बन सकता है।

विवाह के समय वर-वधू एक-दूसरे से जो आशा, अपेक्षाएँ करते हैं, एक-दूसरे को सुखी-संतुष्ट रखने की जो कामनाएँ करते हैं, उनमें अधिकांश तो रूमानी ही होती हैं। इन रूमानी भावनाओं को छोड़ दिया जाए और एक-दूसरे को सुखी-संतुष्ट रखने की बात को ही ध्यान में रखा जाए, तो ये अपेक्षाएँ पूरी होती रहें, इसके लिए कोई बहुत बड़ी रुकावट नहीं है। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है कि व्यवहार में एक-दूसरे की भावनाओं का आदर किया जाय। एक मोटा-सा सिद्धान्त है कि मनुष्य दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करता है, दूसरों से भी उसे वैसा ही व्यवहार मिलता है। यही बात पति-पत्नी के सम्बन्ध में भी लागू होती है। पति-पत्नी को चाहिए कि वे सदैव एक-दूसरे की भावनाओं और विश्वासों का ध्यान रखें।

प्रायः देखा जाता है कि दम्पति अपनी भावनाओं, विचारों, मान्यताओं और अपेक्षाओं को इतना अधिक महत्व देते हैं कि उन्हें दूसरे की भावनाओं और अपेक्षाओं का कोई ध्यान नहीं रहता। एकता और सहयोग के स्थान पर असंतोष और क्षोभ की भावनाएँ यहीं से जन्म लेती हैं। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबरन किसी काम के लिए मजबूर करना उसकी इच्छा न होने हुए भी उस पर दबाव डालने जैसी प्रवृत्तियाँ पति के प्रति पत्नी के मन में असंतोष की चिंगारी छोड़ती हैं और वह क्रमशः बढ़ती ही जाती है। इसी प्रकार कई स्त्रियाँ अपने पति के

२.१६ गृहस्थ एक तपोवन

स्वभाव, उसकी रुचियों और आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उलझी रहती हैं और पति से यह अपेक्षा करती हैं कि वह भी उन बातों को उसी प्रकार महत्व दे, जैसा कि वह स्वयं देती है। फलतः पति के मन में असंतोष और क्षोभ उत्पन्न होता है। गलती किसी भी पक्ष की हो सकती है। कौन पक्ष कितना दोषी है ? यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। कोई भी पक्ष दोषी हो सकता है, पर उसका परिणाम-प्रतिफल दोनों ही पक्षों को असंतोष के रूप में सहना पड़ता है। यह असंतोष उनके परस्पर के व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देता है।

दाम्पत्य-जीवन सुखी, संतुष्ट और स्निग्ध बना रहे, पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर और प्रेमपूर्ण बने रहें इसके लिए आवश्यक है कि दोनों एक-दूसरे की भावनाओं, विचारों तथा अपेक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए एक-दूसरे से व्यवहार करें। इस समझ या गुण का अभाव होने के कारण ही इन दिनों अधिकांश गृहस्थ अशान्ति का भेद बने हुए हैं। लोग क्यों नहीं एक-दूसरे की इच्छाओं और भावनाओं को समझ पाते ? क्यों नहीं एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करते और अपेक्षाएँ पूरी कर पाते ? क्या कारण है कि एक-दूसरे को अपना अभिन्न साथी-सहचर समझते हुए भी अपने साथी का स्वभाव, प्रकृति नहीं समझ पाते और सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते ? इसका एक बड़ा कारण तो अशिक्षा ही है।

अपने देश में वैसे भी इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं है कि पति-पत्नी को पारिवारिक जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए ? यह बताया, समझाया जाय। सामान्य स्कूली शिक्षा का प्रचलन ही संतोषजनक नहीं है, तो ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना और उससे अधिकाधिक लोगों को लाभ उठाने की प्रेरणा बहुत आगे की बात है। सामान्यतः लोग शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं उसमें भी स्त्रियाँ तो और भी ज्यादा। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव में उनका आवश्यक मानसिक विकास नहीं हो पाता। इस अभाव के कारण उन्हें दूसरों की भावनाओं और व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में आवश्यक जानकारी नहीं मिल पाती। इस अभाव को दूर करने के लिए शिक्षित पुरुषों को अपनी पत्नियों के सम्बन्ध में तो सहयोगी रुख अपनाया ही जाना चाहिए। वे कुछ समय निकालें अपनी पत्नी को पढ़ाएँ और उनकी ज्ञानवृद्धि के लिए समुचित प्रयास करें।

दाम्पत्य-जीवन जब बराबरी के सम्बन्धों पर आधारित है तो यह भी आवश्यक है कि जीवन साथी व्यक्तित्व और योग्यता की दृष्टि से बराबर हो। उनीस-बीस का अन्तर तो फिर भी चल सकता है, पर एक शिक्षित और दूसरा अशिक्षित, निरक्षर रहे यह स्थिति असंतुलन ही पैदा करती है। अस्तु, पति के लिए वह आवश्यक दायित्वों का निर्वाह करते हुए उसकी ज्ञानवृद्धि तथा विकास के

लिए भी समुचित प्रयास करें। तभी दाम्पत्य-जीवन में सहयोग, एकता और सामंजस्य का आधार बनता है, किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इस दिशा में कोई रुचि नहीं लेते और अपेक्षा ही बरतते हैं।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी, सफल और मधुर बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पति-पत्नी दोनों का मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से समान विकास हो। कई बार ऐसा भी होता है कि पति-पत्नी दोनों योग्य हैं, सुशिक्षित हैं फिर भी वे एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान नहीं रख पाते और उनका आपसी व्यवहार इस तरह का हो जाता है तो स्वभावतः ही एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता और सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो परस्पर मनोमालिन्य बढ़ने लगता है।

और देशों में पति-पत्नी के सम्बन्धों को लेकर चाहे जो मान्यताएँ प्रचलित हों, परन्तु भारतीय मनीषियों ने तो पति-पत्नी को एक सम्पूर्ण इकाई माना है। उनकी दृष्टि में दोनों अभिन्न और अद्वैत हैं। पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्धांगिनी कहा गया है। इस प्रकार भारतीय मनीषियों की दृष्टि में दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबन्धन है। उनमें एक-दूसरे से दुराव-छुपाव, दिखावे या बनावटीपन का कहीं कोई स्थान नहीं है। इन मान्यताओं को अपने सम्बन्धों में साकार रूप देकर ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन में सार्थकता की समान कसौटी

प्रख्यात फ्रेंच लेखिका सिमोन द्युबुआर ने नर-नारी सम्बन्धों का विश्लेषण मानवीय इतिहास के आधार पर किया है और निष्कर्ष निकाला है कि नर-नारी सम्बन्धों की दो परस्पर विरोधी धुरियाँ रही हैं, एक तो नर यह प्रयास करता रहता है कि नारी पूरी तरह उसके मन की हो, जैसा वह चाहता है, वैसी बने। दूसरे, वह यह भी चाहता है कि नारी सजीव और स्वतन्त्र हो, वह विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी हो, ताकि उससे सम्बन्ध रखने में आनन्द प्राप्त हो।

पुरुषों की यह ग्रन्थि मानव-मन की संरचना पर प्रकाश डालती है। लेखिका के विश्लेषण को यदि हम अधिक सरल ढंग से रखना चाहें, तो यही कह सकते हैं कि नर की वास्तविक आकांक्षा यह रहती है कि नारी उसी जैसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की हो, पर साथ ही वह उसके पूरी तरह अधीन हो। यह तो हुई ऐसे नर की बात, जिसे समुचित मानसिक, बौद्धिक विकास के अवसर

दीर्घकाल तक मिलते रहे हैं। यदि किसी सुशिक्षित, सुविकसित नारी से पूछा जाय, तो वह भी यही कह सकती है कि पति स्वतन्त्र, तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी हो, पर मेरी ही तरह समर्पित, प्रेमपूर्ण विनम्र हो।

पाश्चात्य लेखकों-लेखिकाओं को ऐसी आकांक्षा में अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि वे यह मान बैठे हैं कि स्वतन्त्र व्यक्तित्व अनिवार्यतः अभिमानी भी होगा और वह किसी की अधीनता नहीं स्वीकार करना चाहेगा।

किन्तु यदि इसे अधीनता नहीं, अति सघन आत्मीयता माना जाये, तब ऐसी आकांक्षा स्वाभाविक, उचित एवं सुसंगत लगने लगेगी। आखिर हम खुद अपने शरीर-मन को तो अपने अनुकूल ही रखना चाहते हैं। हमारी बुद्धि स्वतन्त्र हो और समय पर हमारे लिए हितकर, नीतिपूर्ण निर्णय ले, हमारा शरीर स्वस्थ रहे और वांछित प्रगति के लिये अनुकूल क्रियाशीलता उसमें रहे, यह हम में से हर एक चाहता है। पति या पत्नी के प्रति भी ऐसा ही भाव स्वाभाविक है। वह स्वस्थ-सहज-स्वतन्त्र रहे, साथ ही पूरी तरह हमारा अपना रहे, हममें घुला-मिला रहे जैसे हमारा अपना ही अर्धांग हो। इस आकांक्षा में अन्तर्विरोध नहीं, सुसंगति ही है, बशर्ते सार्थकता और स्वतन्त्रता की कसौटियाँ दोनों के लिए एक-सी हों।

स्वतन्त्र व्यक्तित्व और समर्पण को परस्पर विरोधी मानकर देखा जाता है किन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है, जो व्यक्ति स्वतन्त्र-सुविकसित है, जिसके अपने स्वतः के मन पर नियन्त्रण है, वही तो किसी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए समर्पण कर सकता है। जो अस्थिर, चपल, अशांत है, उसका समर्पण भी संदिग्ध ही होगा। विरोधी भावावेग उसे कभी भी उस आदर्श की विपरीत दिशा में धकेल सकते हैं, जिसके लिये समर्पण किया गया है। अतः प्रेम, साहचर्य तथा सम्मिलित व्यक्तित्व के विकास के लिए, श्रेष्ठता-अग्रगमिता की दिशा में निरन्तर साथ-साथ चलते रहने के लिए समर्पण करने की क्षमता उन्हीं नर-नारियों में हो सकती है, जो सुसंस्कृत-समृद्ध व्यक्तित्व के धनी हों।

नर-नारी का समर्पण कोई एक बारगी ही सम्पन्न हो जाने वाली और फिर अन्य किसी जागरूकता की अपेक्षा न रखने वाली क्रिया नहीं होती। पति या पत्नी कोई फल-फूल, प्रसाद आदि नहीं, जो देवता को समर्पित कर दिया गया, सो कर दिया गया। चेतन, स्पन्दनशील प्राणी को अपने उस समर्पण-पथ पर निरन्तर चलते रहने के लिए सतत सचेत क्रियाशीलता बरतनी होती है। यह दोनों ओर से एक जैसी होने पर ही बात बनती है। नर-नारी के बीच एकतरफा समर्पण, एकतरफा निष्ठा या एकपक्षीय सेवा भाव वस्तुतः अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करने में अमसर्थ ही रहता है। उससे न तो स्वयं को ही

सन्तोष, आनन्द की अनुभूति हो पाती है, न ही सहचर या सहचरी का कोई वास्तविक उपकार हो पाता है।

यदि पति या पत्नी में से एक व्यक्ति, निष्ठाहीन और कठोर है तथा वे त्रुटियाँ उसके स्वभाव का अंग बन चुकी हैं, तो दूसरे पक्ष के मौन समर्पण से उसे इन मनमानी कुचालों में प्रवृत्त रहे आने का ही प्रोत्साहन मिलेगा। यदि एकपक्ष सेवाभावी हुआ और दूसरे ने उसे अपना स्वाभाविक अधिकार मान लिया, तो आजीवन एक पक्ष कर्तव्य की बलिबेदी पर न्यौछावर होता रहेगा, दूसरा कृतघ्न ही बना रहेगा। इससे समाज में भी असन्तुलन तथा अनुचित उदाहरण ही स्थापित होगा।

व्यक्तित्व की घुलनशीलता के नाम पर यदि व्यक्तित्व के एक हिस्से का कार्य दूसरे से ही लिया जाता रहे, तो एक अंग अति भार के कारण, दूसरा निष्क्रियता के कारण रुग्ण हो जायेगा और परिणाम दोनों ही हिस्सों को उठाना पड़ेगा।

नर-नारी के बीच दोहरे मानदण्डों को कर्म किये जाने का परिणाम यही हुआ है। नारी के लिए पतिव्रतनिष्ठा पर तो बल दिया गया, किन्तु नर के स्वैराचार पर तीखा अंकुश नहीं रखा गया तो इससे नारी दबी-दबी-सी तथा पुरुष उच्छृंखल, उद्विग्न ही होता गया। सेवा का भार मात्र नारी के सिर लाद दिया गया, तो नर अहंकारी, कृतघ्न तथा लघु ही हुआ। शिक्षा का अधिकारी मात्र अपने को बनाने वाला नर आध्यात्मिकता तथा संस्कृति की सुरभि से रहित ही होता गया। नारी की उदारता का प्रत्युपकार न चुकाने पर स्वयं के हाथ संकीर्णता और पारिवारिक समता के अभाव से उत्पन्न ग्लानि ही तो लगी।

अतः अब यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं। पतिव्रत को जितना आवश्यक माना जाय, पतिव्रत के प्रति भी वैसी ही निष्ठा रखी जाय। पतिव्रता नारी से वातावरण सुवासित तथा जीवन सार्थक बनता है, तो पत्नीव्रती पति द्वारा भी ऐसा ही परिणाम सामने आयेगा। यह कदापि नहीं हो सकता कि उनसे वातावरण में विकृति या विरसता आ जाये अथवा जीवन नीरस-निरर्थक बन जाये।

एकांगी कर्तव्य-पालन का निर्वाह दुष्कर हो जाता है। उसके विकास का पथ तो कदापि प्रशस्त हो ही नहीं सकता। दूसरे पक्ष की भूमिका का प्रभाव भी अवश्यम्भावी है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी कम नहीं हैं। राम स्वयं पत्नीव्रती थे, तो सीता एवम् की लंका में रहकर भी सदा राम के प्रति ही निष्ठावान रहीं। उनकी इस निष्ठा के ही कारण रावण उन्हें राजमहल में रखने का साहस न सँजो सका, अशोक वाटिका में ही रखने की उसे बाध्यात-जैसी प्रतीत हुई परन्तु बहुनारीयामी रावण की मृत्यु के बाद उसकी पट्टमहिषी मन्दोदरी को नये राजा

२.१८ गृहस्थ एक तपोवन

विभीषण की पत्नी बनने में कोई झिझक नहीं लगी, क्योंकि जीवनभर उसने एकनिष्ठा-विहीनता का ही प्रत्यक्ष प्रशिक्षण तो प्राप्त किया था। यदि पत्नी सचमुच स्वजन, सुहृदय है, आत्मीय है, तब उसके लिए वही मानदण्ड बनाये जाने चाहिए, जो अपने लिए अन्यथा उसे अप्राप्त कहना-मानना या तो मूर्खता मानी जायेगी या फिर दुष्टता।

यदि दोनों को मिलाकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व माना जाता है, तो उनमें परस्पर पूरकता होनी ही चाहिए। साथ ही दोनों की कसौटियाँ भी एक जैसी होनी चाहिए, सेवा, विनम्रता, सहिष्णुता यदि पत्नी के गुण हैं, तो पति के भी होंगे। पति का व्यक्तित्व जीवन्त, सक्रिय, गतिशील होना आवश्यक है, तो पत्नी को छुई-मुई, सहमी-सिकुड़ी, ठहरी-रुकी-सी, बँधी हुई और कैद क्यों बनाये रखा जाय ?

एक ओर तो यह कह दिया जाता है कि घर का काम कुछ कम नहीं होता, आखिर उसे अभ्यस्त-निपुण पत्नी ही क्यों न सम्हाले। दूसरी ओर बाहर काम कर घर लौटने वाला पति-पत्नी के श्रम को गण्य मान बैठता है तथा उससे अपनी सेवा की ही अपेक्षा करता है। दिनभर के काम में जुटी नारी को आखिर सहयोग की जरूरत क्यों नहीं पड़ेगी ? आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेवा में लज्जा क्यों लगनी चाहिए ? पर देखा तो यह जाता है कि वर्षों से पति बच्चों की साज-समहाल में जुटी पत्नी बीमार पड़ी, तो उसकी सेवा-टहल को पति अपना अपमान मानते हैं और यदि कुछ भी सहयोग कर दिया या घर का काम किसी प्रकार समेट लिया तो उसे पत्नी पर एहसान माना जाता है। यदि घर का काम करना साथी पर एहसान करना है, तब पत्नी तो यह एहसान प्रतिदिन करती है। उसका आधार क्यों न माना जाय ?

शिक्षा, सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियाँ, व्यायाम, खेल-कूद यदि व्यक्तित्व-विकास के लिए आवश्यक हैं तो उनकी सुविधामात्र गृहपति को ही क्यों मिले ? गृहिणी इनकी अधिकारिणी क्यों न मानी जाय ? क्या आधे जीवन, आधे मृत शरीर को ही दम्पति कहा जाएगा ? दोनों समान रूप में जीवन्त शक्तिशाली हुए तो क्या दाम्पत्य खटाई में पड़ जायेगा ? वस्तु-स्थिति तो इसके विपरीत है। जिस शरीर का आधा हिस्सा लगभग निष्क्रिय, निस्तेज हो जाये, उसे पक्षाघात-ग्रस्त माना जाता है तथा दया, सहानुभूति एवं चिकित्सा का पात्र समझा जाता है, प्रशंसा का नहीं।

अतः नर-नारी के बीच भेदभावपूर्ण व्यवहार की विभाजक रेखाएँ समाप्त होनी चाहिए। दोनों के सम्मिलित व्यक्तित्व के लिए सार्थकता की समान कसौटियाँ लागू की जानी चाहिए। तब दोनों में न तो कोई अन्तर्विरोध उभरेगा, न ही सन्तुलन की समस्या पैदा होगी।

पारिवारिक सुख-शान्ति का मार्ग

भगवान मनु ने सुखमय दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध में लिखा है—कि जिस परिवार में स्त्री और पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य कल्याण होता रहता है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ की प्रत्येक क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस कुल की स्त्रियों में शोक होता है अर्थात् जिस कुल में स्त्रियाँ शोकातुर रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं उस कुल की वृद्धि होती है।

सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का प्रसन्न रहना आवश्यक है। जब तक दोनों व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं रहेंगे तब तक सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

किस प्रकार यह प्रसन्नता प्राप्त हो, यह प्रश्न टेढ़ा है और इसका उत्तर बहुत विशाल है। पति-पत्नी की प्रसन्नता की कोई परिभाषा नहीं बनायी जा सकती। कोई पति किसी बात पर प्रसन्न होता है तो कोई उसी बात पर अप्रसन्न भी हो सकता है। संसार के प्रत्येक प्राणी का स्वभाव भिन्न होता है और रुचि भी भिन्न। ऐसी स्थिति में तब एक सर्वमान्य उत्तर होना चाहिए, जो सब पर लागू हो सके। विचार किया जाय तो पारिवारिक प्रसन्नता निम्नलिखित बातों पर अवलम्बित रहती है—

(१) स्वास्थ्य और सौन्दर्य।

(२) शील तथा प्रेम।

(३) विद्या और गृहप्रबन्ध की योग्यता।

अधिकतर इन्हीं तीन बातों पर ध्यान देने से दाम्पत्य जीवन सुखमय हो सकता है।

स्वास्थ्य और सौन्दर्य—स्त्री स्वास्थ्य पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होगा कि स्त्रियों का आजकल स्वास्थ्य अधिक गिरा हुआ है। जब स्वास्थ्य ही ठीक नहीं रहेगा, तो सौन्दर्य नहीं रह सकता। वस्तुतः स्वास्थ्य का नाम ही सौन्दर्य है। जो हँस-मुख होगी, वह सुन्दरी लगेगी। सुन्दरी स्त्री पति के हृदय की स्वामी होगी और जब स्त्री पति हृदय को अपने वश में रखेगी तो उसका जीवन सर्वदा सुखी रहेगा। रोगी स्त्री या चिड़चिड़ी स्त्री को पति का प्रेम कभी प्राप्त हो नहीं हो सकता और जब तक स्त्री को पति का प्रेम न प्राप्त हो वह सुन्दर नहीं रह सकती।

कल्पना कीजिए, आप दिन भर के श्रम से थककर विश्राम के लिए संध्या समय पर घर लौटे और देखा पत्नी खाट पर लेटी है, चूल्हे में आग नहीं जली है। कभी सिर की पीड़ा है, कभी ज्वर आ रहा है। आप सोच रहे हैं घर चलकर आराम करें और यहाँ आकर डाक्टर के घर जाना पड़ता है। कभी आप स्वयं को कोसते हैं कभी पत्नी को, लेकिन हार मानकर दवा लेने

जाना ही पड़ता है। कभी सुख-सन्तोष नहीं। दिन भर ऑफिस के काम से थके-माँदा घर आये पर यहाँ भी शान्ति नहीं मिली। आप इस पर खीज तो उठते हैं लेकिन कभी आपने सोचा ऐसा हुआ क्यों ? आइए, हम आप विचार करें कि पत्नी के बीमार होने का क्या कारण है ?

खान-पान में असावधानी, बेकारी, चिन्ता अथवा भोगविलास की अधिकता से तो वह अस्वस्थ नहीं हो गयी। अवश्य ! तो इन्हीं कारणों में से कोई कारण होगा या तो पत्नी की गल्ती होगी या फिर आपकी।

खान-पान में असावधानी—स्त्रियाँ प्रायः भोजन में बड़ी असावधानी करती हैं। जो मिला खा लिया, पेट भरने से काम रहता है। आपको यह देखना है कि क्या खाती हैं और कब खाती हैं ? यह नहीं कि रूखा-सूखा जो मिला गया खा लिया। जब मन में आया खा लिया। दोहपरा का खाना तीन बजे और शाम का भोजन रात के १० बजे। यह सब असावधानी है। भोजन नित्य नियत समय पर करना चाहिए।

अनेक स्त्रियाँ वासी खाने की शौकीन होती हैं। ऐसा भोजन बहुत हानिकारक होता है। कुछ लालची होकर भी वासी खाती हैं। रात का भोजन बच गया, घर में और कोई नहीं खा सकता, पति और बच्चों को ताजा खिलाकर स्वयं वासी खाकर रह जाना अच्छा नहीं होता। चाहिए तो यह कि भोजन इस परिणाम से बनाया जाय कि वासी बचे ही नहीं।

बहुतेरी स्त्रियाँ खटाई, मिर्च और अचार बहुत खाती हैं। इससे स्वास्थ्य की हानि होती है, पेट खराब हो जाता है, आँखों की रोशनी धूमिल हो जाती है। मासिक धर्म सम्बन्धी अनेक शिकायतें उपस्थित हो जाती हैं। स्वाद के लिए जो भोजन किया जाता है, वह तो पहले अच्छा लगता है, पर बराबर मसालेदार और चटपटा भोजन करने से पाचनशक्ति खराब हो जाती है। भोजन सादा होना चाहिये और पौष्टिक।

भोजन का समय नियत रखना चाहिये। प्रातःकाल का भोजन १०-११ बजे तक तथा शाम का ७-८ बजे तक कर लेना चाहिये। भोजन करने के २-३ घण्टे बाद सोना चाहिये। नियत समय पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है।

बेकारी—इन्हीं सब बातों पर ध्यान न देने से स्त्रियाँ रोगी बनी रहती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बेकार रहने से भी स्त्रियाँ रोगी हो जाती हैं। आलस्य में पड़े रहने से भी शरीर रोगी हो जाता है। व्यायाम करते रहने से शरीर के प्रत्येक अंग गठित रहते हैं, शरीर में फुर्ती रहती है।

स्त्रियों का सबसे अच्छा व्यायाम चक्की चलाना है, लेकिन आजकल इसका रिवाज केवल देहातों तक ही

सीमित है। आजकल तो देहातों में भी चक्की मिल खुल गयी हैं। मिल का चावल और मशीन का आटा खाते-खाते हम निर्बल होते जा रहे हैं।

आजकल की स्त्रियाँ चक्की चलाना, बर्तन मलना, झाड़ू देना आदि बुरा समझती हैं। इन कामों को नौकरों का काम समझती हैं। पहले स्त्रियाँ अँधेरे उठकर झाड़ू हाथ में लेतीं और सारा घर झाड़ू-पोंछकर, दो-तीन सेर गेहूँ पीसती थीं। बर्तन वगैरह मलकर भोजन की व्यवस्था करती थीं। लेकिन आज की कुमारियाँ बिस्तर पर पड़े-पड़े अजीर्ण तथा मासिकधर्म सम्बन्धी शिकायत से परेशान रहती हैं।

कुछ स्त्रियाँ, जो अकेले पति के साथ ही रहती हैं, बेकार रहती हैं। उन्हें चाहिये कि कोई गृह-उद्योग सीखें जिसमें उनका मन लगा रहे। शिल्प विद्या सीखना, वेल-बूटा काढ़ना, पीसना तथा सिलाई, कटाई का काम स्त्रियाँ बेकारी में कर सकती हैं। बेकार कभी नहीं बैठना चाहिये। प्रत्येक को कुछ न कुछ करते रहना चाहिये।

चिन्ता—घर में कई प्रकार की चिन्ताएँ लगी रहती हैं। रुपये-पैसे की चिन्ता, बच्चों की या घर के किसी और प्राणी की बीमारी की चिन्ता तथा पति के दुर्व्यसनी होने की चिन्ता।

चिन्ता को चिन्ता के समान कहा गया है। चिन्ता से बढ़कर स्वास्थ्य का नाश करने वाली कोई अन्य बात नहीं है। इसलिए चिन्ता से बचना चाहिये। चिन्ता शरीर में घुन की तरह है, जिससे शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है और मनुष्य दुबला-पतला हो जाता है। अन्त में चिन्ता पर ही उसे शान्ति मिलती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चिन्ता बरबस गले लग जाती है। संसार में धन ही सब कुछ है। इसलिए धन की रक्षा करनी चाहिए। कहा भी है—“सर्वे गुणाः कांचनमाग्नयन्ति।” सब कुछ कंचन में ही है। पैसा न हो तो कोई किसी से बात न करे। पैसे बिना मन में शान्ति नहीं रहती, सगे-सम्बन्धी सभी आदर करते हैं। नीतिशास्त्र में कहा गया है कि सम्बन्धियों के बीच निर्धन होकर रहने से मृत्यु श्रेष्ठ है। यदि सिर पर ऋण हो गया तो घबराना उचित नहीं है। परमात्मा पर भरोसा कर उद्योग करना चाहिए। चिन्ता या शोक करने से तो ऋण दिया नहीं जा सकता। ऐसी हालत में पत्नी को लज्जा त्याग कर पति के कष्टों में सहायता पहुँचानी चाहिए। उसे सान्त्वना देनी चाहिए और स्वयं भी कोई काम करना चाहिए जिससे चार पैसे मिलें। विलायत और अन्य देशों में जैसे चीन, जापान आदि में स्त्रियाँ कुछ न कुछ उद्यम करती ही रहती हैं। इस प्रकार वे पति पर भार न बनकर स्वयं कुछ उपार्जन कर लेने में अपनी बढ़ाई और सम्मान समझती हैं।

इन्द्र—बच्चों की चिन्ता स्त्री को बहुत रहती है। किसी के बच्चे होते ही नहीं। किसी के मर ही जाते हैं

या किसी को लड़कियाँ ही पैदा होती हैं। विवाहित लड़कियों की चिन्ता भी माता को अधिक रहती है। ससुराल में उस पर क्या बीत रही होगी, कैसे वह सबको प्रसन्न रखती होगी, आदि चिन्ताएँ माता को लगी रहती हैं। कभी-कभी अपनी बहू की भी चिन्ता रहती है। यदि बहू से सास-ससुर को सुख प्राप्ति न हो सक, तो यह बड़े दुःख की बात है।

बहू समझती है कि पति हमारा है। अतः हमारी बात प्रधान होनी चाहिए। सास समझती है पुत्र हमारा है, इससे हमारी बात प्रधान माननी चाहिये, हमारा इस पर अधिकार है। मरण विचारे लड़के का होता है, किसे क्या कहें ? नासमझ युवक कभी माँ के कारण बहू की और कभी बहू के कारण माँ की दुर्दशा करते हैं। इसलिए माता को बड़ी समझदारी से काम लेना चाहिए। सास को सोचना चाहिए कि उसकी बहू किसी की लड़की है। अतः अपनी ही लड़की के समान है। उसकी भूलों को प्रेम से क्षमा कर देना चाहिये और उचित मार्ग बतला देना चाहिए। यदि सास उसकी माता बनकर रह सकेगी तो वह भी पुत्री बनकर रहेगी ही।

घर में जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो उसकी देखभाल करने वाला भी एक प्रकार से बीमार हो जाता है। स्त्री को चाहिए कि वह पूरे मनोयोग से रोगी की सेवा करे। रोगी अक्सर चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं। उसी समय समझलना चाहिए, घबराने से काम नहीं चलता।

पति का दुर्व्यसनी होना भी स्त्री के लिये चिन्ता का कारण होता है। विशेषकर जब पति जुआरी, शराबी अथवा वेश्यागामी हो जाता है तो पत्नी बहुत चिन्तित हो जाती है। सचमुच वह चिन्ता का विषय है। कितने परिवारों का नाश इन्हीं दुर्व्यसनो के कारण हो गया, कितनी स्त्रियों ने आत्महत्या करली, कितनी स्त्रियाँ खुलेआम वेश्या हो गयीं। यह सामाजिक दुराचार तत्काल बन्द होना चाहिए। सरकार को चाहिए कि इस दुराचार को रोकने में कड़ाई से काम ले। स्त्री को चाहिये कि धैर्य से काम ले और विनय और प्रेम से पति का दुर्व्यवहार छुड़ाए। यद्यपि यह अत्यन्त कष्टसाध्य है परन्तु सिवा इसके और मार्ग भी नहीं है।

भोग-विलास की अधिकता भी स्वास्थ्य नाश का जबरदस्त कारण है। विवाह के प्रारम्भिक दिनों में प्रायः पति-पत्नी भोग-विलास की अधिकता के शिकार हो जाते हैं। किसी भी चीज की अति बुरी भयावह होती है। यौवन एक बरसाती नदी है, इसको मार्ग की कठिनाई का अनुभव नहीं होता। लेकिन यौवन की तरंग में बहकर अपना जीवन नष्ट कर लेना बुद्धिमानी नहीं है। तरंगों पर नियन्त्रण रखना चाहिये। स्त्री-पुरुष को संयम से रहना चाहिए।

इस प्रकार हमने देखा, स्त्री का स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रधान कारण है, जिससे वह पति की प्यारी बन सकती है। सौन्दर्य लिपिस्टक और पाउडर लगाने से नहीं बढ़ता। सुन्दरी स्त्री की शोभा वस्त्राभूषणों से नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य से होती है। जो स्त्री स्वस्थ है और सुन्दर है वह पति का हृदय जीत सकती है और उसका जीवन सुखमय हो सकता है।

शील और प्रेम—दाम्पत्य-जीवन में जिस प्रकार स्वास्थ्य और सौन्दर्य का प्रथम स्थान है, उसी प्रकार शील और प्रेम का भी द्वितीय स्थान है। सच तो यह है कि यदि स्त्री में शील और प्रेम नहीं तो वह लाख सुन्दरी रहकर भी गृहस्थ जीवन के अनुकूल नहीं रह सकती। चाहे पति उसके रूप माधुरी पर लट्टू रहे पर वह घर की और पड़ोस की दृष्टि में प्यारी नहीं बन सकती। पति भी चार दिन की चाँदनी की भाँति उसका मुँह जोहता रहेगा लेकिन फिर वह भी ऊब जायेगा। जिस स्त्री में शील है, पति के प्रति सच्चा प्रेम है, उसी को सच्ची सुन्दरी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ समझना चाहिए क्योंकि वह बीमारी, कुरूपता और वृद्धावस्था में भी अपने आन्तरिक सौन्दर्य के कारण सुन्दरी ही बनी रहेगी।

उपरोक्त बातें साधारण दिखाई पड़ती हैं, पर वस्तुतः ये इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इन पर समुचित ध्यान देने से हमारा पारिवारिक जीवन सुख-शान्तिमय बन सकता है।

सुखी दाम्पत्य-जीवन इस तरह बनता है

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयतापूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों; यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिये पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं; यह कर्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्व मनुष्य की अनेको कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलताओं तथा सद्प्रवृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें

सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जमी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक-दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थककर घर आने पर, उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी उसमें धुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े, तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी ? इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं, तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनाएँ और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हैं, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्रबिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वयं जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए भावनात्मक परिष्कार का उद्देश्य स्त्री-पुरुष को नेक और सुशील

बनाना होता है। पुरुष में पुरुषत्व के, स्त्री में स्त्रीत्व के गुण विद्यमान हों तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन सुख से न बीते। अन्य सारी योजनायें—इन्हीं गुणों के विकास की माध्यम हैं। मुख्य रूप से पुरुष में शक्ति, साहस, सक्रियता और निर्भयता आदि गुणों का समावेश हो और स्त्री में कोमलता, मृदुता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण होने चाहिए। दोनों के स्वभाव में अपने-अपने गुणों का पर्याप्त स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि का परिमार्जन अपने आप होता है और दाम्पत्य-जीवन में घनिष्ठता बढ़ती जाती है और उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती। ऐसे ही घरों में श्रेष्ठ और सद्गुणी सन्तानें जन्म लेती हैं और उनसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन सुखी एवं समुन्नत होता है। इसलिए दाम्पत्य-जीवन को पवित्र बनाना, उद्देश्यपूर्ण रखना प्रत्येक गृहस्थ का मूल धर्म कर्तव्य है।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम—दाम्पत्य-जीवन को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाये रखने के लिये जिस प्रेम की आवश्यकता है, जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है वे कभी भी किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिये तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष-दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नजर नहीं आता, प्रेम मानव अन्तःकरण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से यह आकांक्षा लेकर आती है कि उसे समुत्थल में सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में उठ खड़े होते हैं।

इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित की जा सके। मुरझाये हुए अन्तःकरण प्यार की हल्की-सी बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आप को न्यूछावर कर देने के लिए उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य-जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल, मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण होता है। सुख-सन्तोष का जीवन फूस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है, बशर्ते कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को स्थिर रख सकें।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित,

सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए, फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटाये, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें, यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम, आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए, तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।

पति-पत्नी परस्पर सामंजस्य रखें

पारिवारिक जीवन में सामान्य-सी बातों को लेकर आये दिन क्लेश-कलह उत्पन्न होने लगता है। साधारण-सी बातें, जिन्हें यदि गम्भीरता की दृष्टि से देखा जाय तो बिल्कुल सच ही मालुम देती हैं; परन्तु उनके कारण ही पारिवारिक जीवन में क्लेश-कलह खड़ा हो जाता है और पति-पत्नी बुरी तरह एक-दूसरे से नोंक-झोंक करने लगते हैं। उदाहरण के लिए, पति दफ्तर से थका-माँदा आया हुआ है। उसने अभी अपने कपड़े भी नहीं उतारे और उसके सामने पत्नी ने अपने दिनभर की घटनाओं का रोना-धोना शुरू कर दिया है। अपनी जरूरतों की लम्बी फेहरिस्त पति के सामने रख दी। पति दिनभर का हारा-थका आया है—इस बात की पत्नी को चिन्ता नहीं है और इधर पति दिनभर के काम के दबाव से थका हुआ है—वह इन सब बातों को सुनकर खीझने लगता है और परिवार का वातावरण कलहपूर्ण बनने लगता है।

एकाकी पति के त्याग और लचीलेपन से भी काम नहीं चलता और केवल पत्नी ही पति की हर इच्छा के आगे झुकती रहे यह भी अव्यावहारिक है। उचित तो यह है कि पति से यदि कहीं गलती होती है, तो पत्नी उसे सहने और सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहे और पत्नी से यदि कोई भूल होती है तो पति उसके प्रति उदारतापूर्वक विचार करे। इस प्रकार एक-दूसरे को सहते हुए पारिवारिक जीवन में स्वर्ग-सुख की सृष्टि की जा सकती है। कई अवसरों पर महापुरुषों ने ओछे स्वभाव की पत्नियों को भी समझदारी से निबाहा है और उसे प्रेम तथा उदारता से सुधारा है।

परिवार में ऐसी परिस्थितियाँ भी आती हैं, जिनमें अपने जीवन साथी की उपेक्षा मिलती है। ऐसे अवसरों

पर गलत प्रतिक्रिया व्यक्त करने से बचा जा सके तो जीवन साथी पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है और उसे अपने रवैये पर पुनर्विचार करने के लिए भी अनायास ही प्रेरित किया जा सकता है।

आपसी सम्बन्धों में तनाव की स्थिति आने पर उसका समाधान स्वयं भी वैसी ही प्रतिक्रिया करने से नहीं हो सकता। क्रोध एवं आवेग के क्षणों में पति या पत्नी में से कोई एक गरम हो तो दूसरा नरम की नीति अपनाने लगे, तो आपसी मतभेदों का समाधान सरलतापूर्वक किया जा सकता है अन्यथा दोनों पक्ष गर्मी से काम लेने लगे तो न केवल सम्बन्धों में चटख उत्पन्न होती है वरन् वे पारिवारिक घटनाएँ घरों से निकल कर चौराहों की लड़ाई बन जाती हैं।

कई परिवार हैं जहाँ ऐसे फूहड़ ढंग से झगड़े होते हैं जिनमें मारपीट होती है कि पड़ोसी भी उन्हें जान जाते हैं। ये बातें समाज के सामने भी खुल जाती हैं और पति अपने को अत्यधिक अपमानित महसूस करने लगता है, जिससे पत्नी के प्रति घृणा भावना बढ़ने लगती है। ऐसी दशा में झगड़े की जड़ शान्त चित्त से, चुपके से मिलकर हल कर लें अथवा ऐसे तीसरे व्यक्ति को बुलाकर फैसला करा लें जिससे अपनी बात को बाहर खोल देने का भय न हो तो वैसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती।

पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखने में पुरुष की भी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है, उसे नारी की कोमल भावनाओं, संवेदनाओं का सदैव ध्यान रखना चाहिए। नारी पुरुष से सर्वदा वस्तुएँ या उपहार ही नहीं चाहती, वह उससे अपनत्व एवं प्यार की भी कामना करती है। सहज स्वभाववश वह अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण होते देखना सहन नहीं कर सकती। पुरुष को उसकी इस मनोभूमि के अन्दर पैठकर असीम विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुरुषों को तो अत्यधिक समय घर के बाहर ही बिताना पड़ता है। अतः वे बाहर की दुनिया को अच्छी तरह देखने, परखने के आदी हो जाते हैं, परन्तु महिलाओं को घर के और बच्चों के दैनिक कार्यों से समय ही कम मिल पाता है कि बाहर की दुनिया का जायका ले सकें। इसके लिए पुरुषों को चाहिए, नियमानुसार उन्हें समय बचाकर बाहर घुमाने ले जायें। इससे उनका भी मानसिक विकास होता है। समूहों में घूमने से अन्य लोगों की सभ्यता और सुरुचि के समाचार तथा पहनने, ओढ़ने के कपड़े, उठने-बैठने के अन्य तौर-तरीके तथा शिष्टाचार सीखने का सुअवसर प्राप्त होता है।

कई बार पुरुष घर में उस तरह का वातावरण देखना चाहते हैं जैसा कि उसने किसी अन्य के घर जाकर देखा है, तो उसे चाहिये कि बाहर पत्नी को ले जाय या अनुमति देगा तभी तो पत्नी को तद्विषयक अनुभव प्राप्त होगा।

बच्चों के भावनात्मक विकास में भी पति-पत्नी के सम्बन्धों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि घर का सुमधुर वातावरण है तो बच्चों के मन भी प्रफुल्लित एवं कुसुमित होते हैं। यदि घर में तनाव एवं घुटन का माहौल पैदा कर दिया गया है, तो बच्चों में हीन ग्रन्थियाँ घर कर जाती हैं और उससे उनमें एक विशेष तरह की कुण्ठा का जन्म हो जाता है। अतः इस समस्या को ध्यान में रखते हुए हमें यह निर्धारित कर लेना है कि घर में निश्चित रूप से किसी तरह का द्वेष एवं कलहपूर्ण वातावरण उत्पन्न न होने दें। यह तभी सम्भव है जब पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं की इज्जत करते हुए जीवन की गाड़ी को चलने दें।

इस प्रकार की बहुत-सी छोटी-छोटी बातें हो सकती हैं, जिनका यदि ध्यान रखा जाय तो पति-पत्नी के सम्बन्ध सुमधुर और स्निग्ध, शान्तिपूर्ण बने रह सकते हैं। इसका प्रभाव बाहर के व्यक्तियों पर भी पड़ता है। पति-पत्नी यदि प्रेम और स्नेहपूर्वक रहें तो बाहर के लोग भी उन्हें श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उस स्थिति में प्राप्त होने वाला आन्तरिक सन्तोष, उल्लास और आनन्द कहते नहीं बनता। पति-पत्नी एक समर्थ इकाई और पूरक साथी के रूप में समाज का तथा स्वयं का निर्वाह करते चलते हैं और पारिवारिक जीवन की आनन्द सुधा का पान करते रह सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन इस तरह निभता है

बहुत-सी पत्नियाँ समझने लगती हैं कि विवाह का अर्थ—शृंगार, विलास और आलस्य है। हमारी फर्माइश हर तरह पूरी होनी ही चाहिए। मुझे मनाने, रिझाने आदि में पति को अधिक से अधिक शक्ति और समय लगाना ही चाहिए। इस तरह जो लोग बहुत अधिक आशा करते हैं, वे बहुत कुछ पाकर भी दुःखी हो जाते हैं, इसलिये कम से कम आशा करो और उससे जो अधिक मिल जाय, उसे सौभाग्य समझो।

यह ठीक है कि दाम्पत्य-जीवन इतने में ही सार्थक नहीं हो जाता, विशेष सेवा, विनोद, आकर्षण हर काम में सहयोग आदि बहुत-सी बातें दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता के लिए जरूरी हैं, सो इनके लिए यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए—बिना प्रयत्न के ही मिल जायँ तो सद्भाग्य ! पर उपर्युक्त पाँच बातों के मिल जाने पर अपने दाम्पत्य में असन्तुष्ट न होना चाहिए और असन्तोष प्रगट करना तो और भी ठीक नहीं। रूप, विद्या, कला, स्वास्थ्य, धन, बल आदि की कमी का विचार विवाह के

पहले कर लिया जाय, पीछे इस विषय में असन्तोष व्यक्त करने की जरूरत नहीं है, पीछे तो इन त्रुटियों के रहते हुए भी सन्तोष के साथ जीवन बिताना चाहिए।

साथी का स्वभाव और रुचि समझो और उसके अनुसार व्यवहार करो। किसी का स्वभाव एकान्तप्रिय होता है, किसी के स्वभाव में गप्पें मारने की आदत होती है, कोई संघर्षशील होते हैं, कोई बड़े तुनक मिजाज, किसी को गाने-बजाने में मजा आता है, कोई इससे चिढ़ते हैं और नीरवता पसन्द करते हैं, किसी की आदत क्रीड़ा-विनोद में लगे रहने की होती है, कोई किसी न किसी काम में लगे रहना पसन्द करते हैं, किसी को भाँति-भाँति के भोजन बनाने-खाने में मजा आता है, कोई इस तरफ से लापरवाह होते हैं, कोई शृंगार या सजावट को अधिक पसन्द करते हैं, कोई इसमें समय, शक्ति-साधन लगाना व्यर्थ समझते हैं। इस प्रकार अनेक लोगों की अनेक रुचियाँ होती हैं। इस प्रकार का रुचि स्वभाव-भेद पति-पत्नी में भी हो सकता है—ऐसी बातों को लेकर संघर्ष नहीं होना चाहिए। इस संघर्ष को टालने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि घर की आर्थिक स्थिति का ख्याल रखते हुए और अपने-अपने कर्तव्य का भार सँभालते हुए यथाशक्ति दोनों को स्वतन्त्रता दी जाय, अपनी आदत ऐसी बना ली जाय कि दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद अगर किसी को गाने-बजाने में अच्छा मालूम होता है, तो उसे उसकी स्वतन्त्रता है, शर्त यह है कि इतना शोर न मचाया जाय कि दूसरे को अपना काम करना या चैन से बैठना मुश्किल हो जाय।

यद्यपि दाम्पत्य में नियमों की पाबन्दी से ही काम नहीं चल सकता, नियमों के उद्देश्य पर ध्यान देना पड़ता है और एक-दूसरे की सुविधा और स्वतन्त्रता का ख्याल रखना पड़ता है, फिर भी इस काम के लिए साथी के स्वभाव और रुचि को समझना जरूरी है। स्वभाव की परख हो जाने पर संघर्ष को बचाने की सुविधा हो जाती है।

एक-दूसरे की सेवा या मनोरंजन खुशी से किया जाय, तभी उससे वास्तविक सन्तोष होता है और करने वाले को भी वह बोझ मालूम नहीं होता। घर के बाहर भी इस नियम की जरूरत है, पर दम्पति में तो यह अत्यावश्यक है।

जबर्दस्ती तीन साधनों की अपेक्षा तीन तरह से होती है—तन से, वचन से, अर्थ से। वचन से जबर्दस्ती का अर्थ है—गाली देना, कठोर वचन बोलना या कठोर स्वर में बोलना आदि। तन से जबर्दस्ती का अर्थ है—मारना-पीटना आदि। अर्थ से जबर्दस्ती का अर्थ है—योग्य साधनों का उपयोग न होने देना आदि।

दाम्पत्य को सुख-शान्तिमय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें न तो जबर्दस्ती से काम लिया

जाय और न यथाशक्य जबरदस्ती को मौका दिया जाय। इशारे में या थोड़े में ही एक-दूसरे के मनोभावों को समझा जाय और नैतिक-मर्यादा का पालन करते हुए एक-दूसरे के अनुकूल बना जाय।

पति-पत्नी में थोड़े-बहुत झगड़े होते ही हैं और शान्त भी हो जाते हैं, पर अगर उनका उल्लेख बाहर कर दिया जाता है—तो घर में झगड़ा शान्त हो जाने पर बाहर निन्दा होती ही रहती है और दोनों की इज्जत को धक्का लगता है, बाहरी लोगों की दृष्टि में दोनों हीन या दयनीय हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों का नुकसान तो होता है, साथ ही जब भी कभी ऐसे निन्दा-वाक्य कान में पड़ते हैं, तभी पुराना झगड़ा फिर याद आ जाता है। भीतरी-झगड़े को लौटाना आसान है, पर बाहरी फैली निन्दा को लौटाना आसान नहीं है।

जब एक-दूसरे की शिकायतें बाहर कहीं जाती हैं, तब सिर्फ आकस्मिक झगड़ा नहीं रह जाता, किन्तु एक-दूसरे के विरुद्ध एक प्रकार से युद्ध की चुनौती हो जाती है। इसका अर्थ होता है कि एक-दूसरे को पछाड़ने के लिए लोकमत आदि का बल संचित करना। इससे एक प्रकार का स्थायी द्वेष पैदा हो जाता है, जो कि दाम्पत्य जीवन को खोखला कर देता है।

बैठना-उठना, आना-जाना, मिलना-जुलना, किसी विशेष कार्य में या क्रीड़ा-विनोद में लगना आदि की दोनों को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हाँ, इस स्वतन्त्रता का उपयोग इस रूप में नहीं होना चाहिए कि घर के आवश्यक कार्य या एक-दूसरे की आवश्यक सेवा में बाधा पड़ जाय। घर के और परस्पर के आवश्यक कार्य हो जाने पर एक-दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न डालो। घर के आवश्यक कार्य हो जाने पर जितने समय दोनों की रुचि हो, दोनों साथ बैठो, अगर किसी एक की रुचि किसी दूसरे काम में लगने की हो तो उसे उसमें लगने दो। ऐसे अवसर पर तुम अकेले ही दिल बहलाने की आदत डालो। रुचि के विरुद्ध एक-दूसरे को बाँधने से प्रतिक्रिया होने लगती है, इससे अरुचि और घृणा बढ़ने लगती है। जब दूसरे में हमें अरुचि और घृणा का पता लगता है, तब हमें प्रेम में सन्देह होने लगता है। प्रेम में सन्देह होने पर दाम्पत्य की दुर्दशा किस सीमा तक जायेगी, कह नहीं सकते ?

इसके लिए यह जरूरी है कि पत्नी और पति दोनों ही को फुर्सत के समय एकान्त में पढ़ने-लिखने की या कला-कौशल की आदत हो, जिससे एक अगर अपनी रुचि के अनुसार कोई काम करना चाहे तो बाकी दूसरा भी अपनी रुचि के अनुसार कोई काम निकाल ले। इस प्रकार दोनों ही बिना किसी कष्ट के एक-दूसरे की स्वतन्त्रता रक्षित रख सकें। इससे किसी को बुरा भी न लगे और प्रेम में भी ढीलापन न आवे।

पति अगर पत्नी का स्त्री-धन ले या पत्नी स्त्री-धन बढ़ाने की दृष्टि से भूषण आदि बनवाने का हठ करे तो इससे दोनों का मन मैला हो जायेगा, एक-दूसरे की इज्जत न करेगे, प्रेम शिथिल हो जायेगा, दुकानदारी बढ़ जायेगी, इसलिए ऐसे के मामले में एक-दूसरे के अधिकारों में गड़बड़ी न करो और न अपने पैसे पर इतना मोह रखो कि उसके आगे प्रेम या अन्य दाम्पत्य-सुख गौण मालूम होने लगें।

प्रेम या विलास में भूलकर दोनों या कोई एक जब अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते या किसी दूसरे पर बोझ लादते हैं, तब थोड़े ही दिनों में प्रेम या विलास नष्ट हो जाता है। यद्यपि दाम्पत्य में जीवन की अभिन्नता होती है, पति और पत्नी एक ही जीवन के दो अंग बन जाते हैं, फिर भी जैसे एक अंग का कार्य यदि दूसरे अंग से लिया जाय तो एक अंग अति भार के कारण और दूसरा अक्रियता के कारण रुग्ण हो जायेगा और इससे सारे शरीर को कष्ट उठाना पड़ेगा। उसी प्रकार दाम्पत्य का शरीर भी कष्ट में पड़ जाता है, इसलिए प्रेम में भूलकर अपना कर्तव्य मत छोड़ो। “काम प्यारा है, चाम नहीं” इस कहावत में काफी सच्चाई है, इसलिए अर्थ और काम दोनों जीवार्थों का समन्वय जरूरी है।

अपने में सौन्दर्य-कला, ख्याति आदि अधिक हो, तो भी इसका घमण्ड नहीं करना चाहिए। एक-दूसरे को नीचा दिखाने की भावना तो होनी ही न चाहिए। अगर कभी अपनी तारीफ भी हो तो उसमें अपने व्यक्तित्व की तारीफ न हो, किन्तु अपने दाम्पत्य की तारीफ हो—इस ढंग से करनी चाहिए।

अहंकार बाहर वालों के साथ भी बुरा है, फिर पति-पत्नी आपस में ही अहंकार का प्रदर्शन करें—यह दाम्पत्य दृष्टि से और भी बुरा है। दाम्पत्य तो पति-पत्नी के अद्वैत पर खड़ा होता है और अहंकार से तो द्वेष पैदा होता है, इसलिए अहंकार को छोड़कर एक-दूसरे के यथायोग्य प्रशंसक होना उचित है। समय पर एक-दूसरे की उचित प्रशंसा करने से प्रेम में ताजगी आती है। उसका मिठास बढ़ जाता है।

दुनिया में एक से एक बढ़कर पुरुष और एक से एक बढ़कर नारियाँ हैं। हो सकता है कि उनमें से किसी के साथ अगर तुम्हारा विवाह हुआ होता तो शायद आज की अपेक्षा तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अधिक शानदार या सुखमय हुआ होता, पर जो नहीं हुआ, उसे असम्भाव्य ही समझ लो—उसका ध्यान भी मत करो। मैं कैसे आदमी के पाले पड़ गई या मैं कैसी स्त्री के पाले पड़ गया, इत्यादि बातें बेकार तो हैं ही, साथ ही एक-दूसरे से मन फाड़ देने वाली हैं।

जीवन को बौझिल या कँटीला बनाकर असह्य मत बनाओ। मन की निर्बलता, असहिष्णुता, विलासिता और अहंकार के कारण जीवन असह्य बन जाता है। इससे

पग-पग पर क्रोध, रिसाना, बकझक, रोना, हाय-हाय करना, बात-बात में असन्तोष प्रगट करना आदि बातें होने लगती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो बाहरी दुःख सरलता से सहा जा सकता है, जिसमें दूसरों की खुशी से सेवा और सहानुभूति मिल सकती है—वह दुःख दस गुना बढ़ जाता है और सेवा, सहानुभूति या तो दुर्लभ हो जाती है अथवा मिलती है तो देने वाले को जल्दी ही थका देती है, इसलिए अपने मन को खूब मजबूत बनाओ, प्रसन्न-मुख रहो, कोई कष्ट हो तो थोड़े में उचित समय पर ही प्रगट करो, उसके सहने में बहादुरी दिखाओ, अपना दुःख दूसरे पर जबर्दस्ती न उड़ेलो अन्यथा इसका परिणाम यह होगा कि साथी साथ से बच निकलने की कोशिश करेगा। पति घर में आये और उसके पहले उसे यह चिन्ता लग जाय कि न जाने आज 'भवानी' के साथ कैसे पाला पड़ेगा—उसकी क्या-क्या शिकायतें सुनने को मिलेंगी तो समझना चाहिए कि पत्नी ने अपना जीवन असह्य बना डाला है। प्रेम कितना भी गहरा हो, उसने प्रेम की जड़ में घातक कीड़ा लगा दिया है—जो हर समय उसे कुतरता ही रहता है, ऐसी हालत में पानी देते रहने पर भी प्रेम का वृक्ष सूख जाता है।

इसी प्रकार पति के आने के पहले ही अगर पत्नी को यह चिन्ता हो जाय कि न जाने आज 'देवता' क्या बकझक करेंगे आदि, तो कहना चाहिए कि पति ने अपना जीवन असह्य बना डाला है और उसने प्रेम के वृक्ष को सुखाने का निमित्त मिला दिया है।

महीनों में होने वाली किसी खास घटना की बात दूसरी है, पर साधारण नियम यह होना चाहिए कि मिलते समय दूसरे को खुशी ही हो, अपना प्रसन्न मुख देखकर वह अपना ही थोड़ा-बहुत दुःख भूल जाय, न कि प्रसन्न वातावरण में मनहूसी आ जाय। चिड़चिड़ापन, तुनक-मिजाजी आदि से हम अपना दुःख भीतर से बढ़ाते ही हैं, साथ ही सेवा-सहानुभूति आदि खोकर उसे बाहर से भी बढ़ा लेते हैं। इसलिए अपने जीवन को ऐसा बनाओ, जिससे उसका बोझ दूसरे पर कम से कम पड़े और किसी को उससे चोट न पहुँचे।

पति-पत्नी—ब्रह्म और प्रकृति

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म एक ही था। उसने एकाकीपन की नीरसता और निष्क्रियता अनुभव की। फलतः अपने को ही दो भागों में विभाजित करके उसके साथ क्रीड़ा करने लगा। यही सृष्टि का शुभारम्भ है। नर-नारी के मध्य यही एक प्राण दो शरीर वाली स्थिति बनी रहे। दोनों के बीच सघन आदान-प्रदान बना रहे, यही दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य है। ब्रह्म और प्रकृति की भाँति ही पति-पत्नी की द्विधा के बीच एकात्मता वांछनीय है।

स वै नैव रेमे, तस्मादेवकाकी न रमते, स द्वितीययच्छत्. सहैतावानास। यथा स्त्रीपुमांसौ सपरिष्वक्ती स इममेवात्मानं द्वैधापातयन्तः पतिश्च पत्नी चाभवताम्॥

वह रमण नहीं कर सका, क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता। उसने दूसरे की इच्छा की। वह ऐसा था, जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए होते हैं। उसने अपने इस रूप के दो भाग किये, जिनसे पति और पत्नी हो गये।

अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।

विभज्जात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मानादधेततः॥

सृष्टि के प्रारम्भ में रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे शरीर से स्त्री हुए। यह देखकर ब्रह्मा को सन्तोष हुआ और उन्होंने बताया कि अब इसका विस्तार किया जाय और सृष्टि चलाई जाय।

अर्धनारी नरेश्वर शिव सदा अपने दाहिने अंग—नर भाग से ही अधिक काम लेते हैं। बायें नारी पक्ष को न्यूनतम श्रम एवं कष्ट का अवसर आने देने का सदा ध्यान रखते हैं। नर का यही कर्तव्य भी है। शिव चरित्र में कहा गया है—

आत्मीयं चरणं दद्याति पुरतो निम्नोन्तायां भुवि।

स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशंकया॥

तत्वे किञ्च भृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजैः॥

अर्धनारीश्वर भगवान् शिव ऊँची-नीची भूमि पर चलने के समय, पश्चिम से बचाने के विचार से अपना ही चरण धरते हैं और वृक्ष से पुष्प तोड़ते समय अपना ही हाथ काम में लाते हैं और तो क्या, भृगचर्म से बनायी हुई सुख शैया पर भी अपने भाग को ही टेकते हैं, जिससे कि दूसरे भाग को श्रम न हो।

यद्गृहे रमते नारी लक्ष्मीस्तद् गृहवासिनी।

देवताः कोटिसौ वत्स न त्यजन्ति गृहं हि तत्॥

जिस घर में सदगुण सम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है। हे वत्स ! करोड़ों देवता भी उस घर को नहीं छोड़ते।

अग्र्य एता स्त्रियो नाप सत्कार्या भूतिमिच्छता।

पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत॥

—महा.

हे भरत नन्दन ! स्त्रियाँ ही घर की लक्ष्मी हैं। उन्नति चाहने वाले पुरुष को उनका भत्ती-भाँति सत्कार करना चाहिए। अपने वश में रखकर उनका पालन करने से स्त्री लक्ष्मी स्वरूप बन जाती है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्र अफलाः क्रियाः॥

—मनु.

जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं या प्रसन्न रहते हैं, जहाँ इसके विपरीत, नारियों का अपमान होता है वहाँ अफल क्रियाएँ होती हैं। (अशुभ होता रहता है।)

शोचन्ति जाययो यत्र विनश्यति आशु तत्कुलं।

न शोचन्ति तु यत्र एताः वर्धते तद्दि सर्वदा॥

—मनु.

जहाँ नारी को शोचनीय स्थिति का बनाया जाता है, वह कुल शीघ्र विनष्ट हो जाता है और जहाँ यह शोचनीय नहीं होती, वहाँ हमेशा वृद्धि होती है।

शीलवाद—सती-साध्वी स्त्रियाँ अपने साथी का सब प्रकार कल्याण ही करती हैं। कहा गया है—

व्यालग्राहि यथा व्यालं विलादुद्धरते बलात्।

एवं मृदुवत्य भर्तारं तेनैव सह मोदते॥

—दक्ष स्मृति

जैसे सपेरा बिल में घुसे हुए साँप को भी घसीट निकालता है। उसी प्रकार सती-साध्वी स्त्री अपने पति को अधोगति से उबार लेती है और साथ ही स्वयं भी प्रसन्न होती है।

पत्नी के रूप में नारी को धर्मधात्री—संसार सागर से तारने वाली और कुल का उद्धार करने वाली कहा गया है। नर याचना करता है—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्

तारणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्गमवाम्॥

हे भगवती ! ऐसी पत्नी दीजिए जो मनोवृत्तियों को आपका अनुसरण करने वाली बना दे। संसार सागर से पार करे और कुल का उद्धार करे।

नारी की गरिमा के उपयुक्त हर घर में उसे समुचित सम्मान मिलना चाहिए। देवत्व के प्रति कर्तव्य यही है कि उसे उपयुक्त सम्मान दिया जाय। ऐसा न करने पर गौरव देवत्व का नहीं घटता, उसे तिरस्कृत करने वाले ही दुःख पाते हैं।

पति-पत्नी सच्चे मित्र बनकर रहें

भारतीय संस्कृति में पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है। उसके आशय को स्मरण रखने पर ही दाम्पत्य-जीवन के वास्तविक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। जब पत्नी को रमणी-कामिनी मान बैठा जाता है, तब उससे हानि-ही-हानि उठानी पड़ती है।

प्राचीन साहित्य में जहाँ कहीं नारी के किसी रूप की निन्दा की गई है, उसे समझने पर स्पष्ट हो जायेगा कि वह उसके रमणी, भोग्या रूप की ही निन्दा है। धर्मपत्नी, गृहलक्ष्मी और मातृ-रूप की तो सर्वत्र प्रशंसा ही

की गई है। उसे घर की वास्तविक शोभा, व्यवस्थापिका, ज्योति, जीवन-संगिनी, वात्सल्य एवं प्रेम की देवी, स्वर्ग से भी गरीयसी एवं प्रत्यक्ष शक्तिरूप कहा गया है।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का आधार काम-वासना नहीं हो सकती। उल्टे, वह विफलता का ही आधार बनती है। पाश्चात्य देशों में जहाँ काम-वासना को प्रधानता देकर नारी के भोग्या रूप को ही उसका उत्कर्ष मान लिया गया है, वहाँ की दुर्गति इस दिशा में सतर्क होने के लिये पर्याप्त होनी चाहिए, किन्तु उससे कुछ सबक सीखने के स्थान पर अनुकरण की चकाचौध ही जारी है। इससे शरीर-नाश, कलह, मोह और दुःख ही प्राप्त होने वाला है। 'इण्डियन ओपीनियन' में २४ अप्रैल, १९१३ के "आरोग्य सम्बन्धी सामान्य ज्ञान गुप्त प्रकरण" शीर्षक अपने लेख में गाँधीजी ने इसी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा था, "इस प्रसंग में हम सभी एकदम पागल हो जाते हैं। हमारी आँखों के आगे पर्दा पड़ जाता है। कामान्ध पुरुषों, स्त्रियों और लड़के-लड़कियों को मैंने एकदम पागलपन की स्थिति में देखा है। मेरा अपना अनुभव भी कुछ भिन्न नहीं है। जब-जब मैं ऐसी स्थिति में पहुँचा हूँ, तब-तब अपना होश-हवाश भूल गया हूँ। इस प्रकार रती-भर सुख के लिये हम अपना मन-भर बल पलभर में खो बैठते हैं। जब हमारा वह नशा उतर जाता है, तब हमारी हालत रंक की-सी हो जाती है। हमारी देह शिथिल और मन अस्थिर हो जाता है। इन सबको व्यवस्थित करने के लिए हम दूध के काढ़े पीते हैं, भस्में फाँकते हैं, याकूती का सेवन करते हैं, वैद्यों के पास जाकर पौष्टिक दवाइयाँ माँगते हैं और किस खुराक से हमारी काम-शक्ति बढ़ेगी, इसकी खोज में लगे रहते हैं। यों दिन पर दिन बीतते चले जाते हैं और हम शरीर एवं मन से हीन होते जाते हैं।

"साधारण तौर पर हम लोग यह विचार नहीं कर पाते कि इस संसार में भोग-विलास, बड़प्पन की प्रदर्शन भावना, आडम्बर, क्रोध, अधैर्य, वैर आदि का मूल कारण यह अति काम-सेवन की इच्छा एवं क्रिया ही है।"

इसी लेख में गाँधीजी ने आगे लिखा है—“नये उगे हुए पौधों में यदि फल लग जायें, तो वे निर्बल हो जाते हैं। हम यह समझते हैं और इस बात का बराबर प्रयत्न करते हैं कि उनमें इतनी जल्दी फल न लगें। ऐसा होते हुए भी किसी किशोरी स्त्री को सन्तान उत्पन्न हो जाये, कोई किशोर पिता बन जाये तो हम उत्सव मनाते हैं। क्या यह दीवार में अपना सिर दे मारने जैसा नहीं है ? स्त्री-पुरुष के संयोग के बाद पूरे गर्भकाल में तथा सन्तानोत्पत्ति के बाद बच्चा दूध पीना छोड़कर बड़ा हो जाये, कम से कम इतना सारा समय तो पवित्रतापूर्वक पाला ही जाना चाहिए। लेकिन हम ऐसा नहीं करते। हमारे मन रुग्ण है।”

आगे अपना स्वयं का उदाहरण गिनाते हुए उन्होंने लिखा है कि “अनेक लोग कहते हैं और मैं मानता भी हूँ कि मुझमें बड़ा उत्साह है। मैं अपनी यह हालत लगभग २० वर्ष तक विषयोपभोग में लिप्त रहने के बाद प्रारम्भ किये गये ब्रह्मचर्य से हासिल कर सका हूँ। यदि इन २० वर्षों को भी बचा सका होता, तो आज मेरे उत्साह का पार ही न रहता। मेरे इस खण्डित उदाहरण से भी जब इतना सार निकल सकता है, तब जो लोग प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य व्रत को निभा सकें, उनके शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक बल का वर्णन नहीं किया जा सकता।”

ब्रह्मचर्य व्रत के साथ दाम्पत्य-जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाकर ही गाँधीजी ने यह सामर्थ्य अर्जित की थी, जिससे वे कोटि-कोटि जनता को प्रेरणा-स्रोत बने। अतः बड़े उद्देश्य प्राप्त करने और जीवन में तेजस्विता तथा प्रभावशीलता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि पत्नी के प्रति कामिनी-रमणी वाला मनोभाव कदापि न रखा जाय। कामुकता को स्वाभाविक समझना मनोविकृति है। स्त्री-पुरुष की शारीरिक भिन्नता एवं आकर्षण, परस्पर पूरकता, स्नेह, विशुद्ध प्रेम एवं समान निष्ठा के रूप में सामने आना ही स्वाभाविक है। उसी स्थिति में वे एक और एक मिलकर ग्यारह होने की उक्ति चरितार्थ कर पाते हैं। उत्कृष्टता की दिशा में प्रगति करते हुए जीवन को आनन्द, उल्लास से भरपूर बना पाते हैं। कामविकृति से तो वे एक-दूसरे का स्वास्थ्य गिराने वाले और आत्मिक स्तर नीचा करने वाले शत्रु की तरह बन जाते हैं। सच्चे सहयोगी का रूप तब नहीं रह पाता।

पत्नी को विषय-भोग का सुरक्षित उपकरण मानने की वृत्ति स्वेच्छाचरिता एवं मर्यादाहीनता को जन्म देती है। ये दुष्प्रवृत्तियाँ स्वभाव का अंग बन जाने पर वे घर से बाहर के कार्यक्षेत्रों तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों पर भी वही कार्यशैली बन जाती है तथा हानि पहुँचाती है। इसलिये बाहर भी काम आ सकने वाली स्वस्थ, सात्विक, श्रेष्ठ मनोवृत्ति घर पर ही बनानी होती है। घर में किया गया संयम, शालीनता एवं औदात्य का अभ्यास जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का आधार बनता है।

अतः पत्नी के प्रति धर्मपत्नी, सखी, मित्र का ही भाव रखना उचित है। कामिनी वाला भाव न रखने का यह अर्थ नहीं कि पति-पत्नी दोनों सदा गम्भीर बने रहें। यह नीरसता तो जीवन को बोझिल बना डालेगी। दोनों को मिल-जुलकर हँसी-विनोद करने के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए।

मनोरंजन का दाम्पत्य-जीवन की सफलता में व्यावहारिक महत्त्व है। पत्नी प्रायः घर में ही रहती है। इस एकरसता से उसके जीवन में घुटन भर सकती है, यदि मनोरंजन का ध्यान न रखा जाये। स्वस्थ मनोरंजन के

लिये समय निकालना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार दो मित्र साथ-साथ मनोरंजन भी करते हैं, विनोद भी। किन्तु उसमें एक-दूसरे के प्रति कामुकता का कोई भाव नहीं रहता। वैसे ही पति-पत्नी के बीच होना चाहिए। आपस में और बच्चों के साथ विनोद-परिहास भी करते रहना चाहिए। हँसने का महत्त्व सर्वविदित है। उसे भोजन से कम उपयोगी नहीं मानना चाहिए। जीवनी-शक्ति, प्रसन्नता, स्फूर्ति एवं चैतन्य की वृद्धि के लिये हास-परिहास आवश्यक समझकर दाम्पत्य-जीवन में उसका समावेश करना चाहिए।

पति-पत्नी परस्पर छिद्रान्वेषण न करें। बुराई किसमें नहीं है ? कमजोरियों से कौन बचा है भला ? एक-दूसरे के दोष-दर्शन से दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होती है और पारस्परिक विश्वास नष्ट हो जाता है। दोष देखने का अर्थ है एक-दूसरे को नीचा दिखाना। इससे घृणा उत्पन्न होती है। घृणा से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं और दाम्पत्य जीवन में क्रमशः मधुरता, सरसता का ह्रास होता जाता है। अतः दम्पति को दोषान्वेषण की आदत विवेकपूर्वक समाप्त करनी चाहिए। जिस प्रकार मित्र एक-दूसरे के गुणों को उभारते और दोषों के प्रति उदार भाव रखते हैं, वैसा ही पति-पत्नी में होना चाहिए। दोषों के सुधार की चेष्टाएँ सदा की जाएँ, किन्तु उनके कारण आत्मीयता में कमी न हो पाये। न ही शंका एवं अविश्वास पनपने दिया जाये।

परस्पर एक-दूसरे में अविचलित विश्वास रखते हुए, सच्चे मन-प्राण से, एक-दूसरे को प्रेम करें। प्यार का अर्थ है, अपने प्रिय के दोष-त्रुटियों को क्षमा करते रहना। किसी भी प्रकार का मत-भेद होने पर, परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से, पूरी समझदारी के साथ समझौता करना। गलतफहमी होने पर उसे जल्दी दूर करने का प्रयास करना चाहिए। मन को विषमय बनाने के लिए सन्देह से बढ़कर अन्य कोई भावना नहीं है। दाम्पत्य-जीवन में सन्देह के समान कोई बड़ा शत्रु नहीं है। अतः यदि अपने प्रिय के प्रति के किंचित् मात्र भी सन्देह हो तो मन में घुलने-कुढ़ने की बजाय परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार के साथ उसका निवारण करना चाहिए। मतभेद होने पर समझौता करें और गलतफहमी होने पर जल्दी से जल्दी उसे दूर करें। साथ ही उदारता, क्षमाशीलता का भाव रखें। तो पुनः सरसता-मधुरता आ जाती है।

सच्चे सुहृद एवं मित्र की तरह सगे भाइयों की तरह पति-पत्नी रहें। दुःख और सुख में पूरी सहभागिता के साथ सहयोग दें। अपने संकुचित स्वार्थों और अनुचित आवेगों पर नियन्त्रण करें। तभी दाम्पत्य-जीवन का सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। काम-वासना को प्रधानता देने पर तो सहभागिता, सहयोग और प्रेम की प्रवृत्तियाँ धूमिल हो पड़ती हैं। हारी-बीमारी में सेवा का उत्साह तभी रहता है,

२.२८ गृहस्थ एक तपोवन

जब परस्पर प्रेम की गहराई होती है। माँसलता के प्रति लोभ की मनोदशा में यदि साथी को कोई लम्बी या शरीर पर तेज असर डालने वाली बीमारी हो गई, तो किसी प्रकार कुदृष्ट-खीझते कोई व्यवस्था जुटाने में भी बोझ का अनुभव किया जाता है। जबकि मैत्री एवं आत्मीयता का भाव सदा निःस्वार्थ सेवा की प्रेरणा देता है।

पत्नी के प्रति सदा धर्मपत्नी का भाव रहे। उसे सखी, मित्र, सुहृद माना जाये। परस्पर प्रेम, शिष्टता, शालीनता, सौम्यता एवं प्रसन्नता से भरा व्यवहार किया जाये। न तो शरीर से खेला जाये और न ही अनुचित व्यवहार किया जाये। उसे सच्ची जीवन संगिनी-सहयोगिनी बनाया जाये, रमणीय वस्तु नहीं। हृदयों का आदान-प्रदान किया जाये, दैहिक आवेगों भर का नहीं। तभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रगति, विकास एवं उपलब्धियाँ सम्भव होंगी, दाम्पत्य-जीवन सार्थक और समृद्ध बनेगा।

पति-पत्नी के बीच स्नेह, सहयोग और सम्मान

सोचा जाता है कि नारी को कपड़ों, जेवरों या शृंगार प्रसाधनों, उपहारों से लुभाया जा सकता है। यह मान्यता उसी सीमा तक सही है जब तक कि उसे ग्रह सूझता रहता है—यह सारे उपहार प्रेम भरे हैं। इनके पीछे गहरी आत्मीयता है। अपने आवश्यक खर्चों में भी कटौती करके मेरी प्रसन्नता का इतना अधिक ध्यान रखा गया है। इस मान्यता के रहने तक तो एक सस्ता रूमाल, पीतल का छल्ला और गुड़ का टुकड़ा भी हीरे-मोतियों से बढ़कर मूल्यवान और अमृत जैसा मधुर लगता है।

किन्तु जब विफल होता है तो आत्मीयता से भरा सघन सम्मान इन वस्तुओं के साथ नहीं जुड़ता वरन् अपनी सम्पन्नता का दर्प और उस दर्प के नीचे दबी रहने का भाव दीखता है और वास्तविकता उभर कर ऊपर आ जाती है तो प्रतीत होता है कि बच्चे को रंगीन खिलौना देकर फुसलाने जैसा छद्म चल रहा है। छद्म को बालक भी समझ जाते हैं फिर बड़ों का तो कहना ही क्या ? कोई व्यक्ति बुद्धि की दृष्टि से दुर्बल हो सकता है, पर भावनायें प्रकट करने की न सही, पहचानने की योग्यता सबमें होती है। नितान्त मूर्ख को छोड़कर कदाचित् ही कोई उस छलावे में आता है।

नारी देखने में नर के समान ही प्रतीत होती है। शारीरिक बनावट में थोड़ा-सा ही अन्तर होता है, किन्तु अन्तःकरण की दृष्टि से दोनों के बीच असाधारण अन्तर होता है। पुरुषों में जहाँ वासना, तृष्णा, अहंता का दर्प विषम ज्वर की तरह चढ़ा रहता है, वहीं नारी के अन्तराल की बनावट में भावनाओं की प्रधानता ही आदि

से अन्त तक भरी रहती है। सहानुभूति और व्यथा का तनिक भी दबाव पहुँचने से उसकी आँखों से आँसू सहज ही दुलक पड़ते हैं। जबकि पुरुष पर दूसरों पर जो बीता है उसका प्रभाव यत्किंचित् ही होता है। हर्ष की उमंग भी आँसू बनकर निकलती है और वियोग का, व्यथा का भी वैसा ही सहज प्रदर्शन होता है। कोमलांगी उसे कहते भर हैं पर वस्तुतः उसके अन्तराल का भावनात्मक प्रत्येक घटक भावनाओं से भरा-पूरा होता है।

इसी बहुलता के कारण ही वह प्रायः ठगी और छली जाती है, प्रेमजाल फैलाकर उसे छलना कहीं अधिक सरल है जितना कि बहेलिया कुछ दाने फैलाकर चिड़ियों को और आटे की गोली दिखाकर मछुआरे मछलियों को फँसाकर उन्हें हलाल करते हैं। प्रेम प्रसंगों में नारी ही ९९ प्रतिशत ठगी जाती है। पुरुष तो अपवाद स्वरूप ही कभी चौकड़ी चूकते हैं।

विवाह में वधू वर के घर जाती है और सदा के लिए उसी की होकर रह जाती है। इसे भावनात्मक समर्पण ही कहना चाहिए अन्यथा भौतिक दृष्टि से उसे शत-प्रतिशत घाटा ही घाटा है। अशिक्षित मजदूर भी सात घण्टे काम करते हैं और उस क्रिया के साथ अन्यमनस्कता जुड़ी होने पर भी अपना ही नहीं परिवार भर का पेट पूरा करने लायक कमा लेते हैं। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर ही लागू होती है। वह अपनी योग्यता, विशेषता और माधुर्य के बदले इतना कमा सकती है, जिसका ससुराल में एक अंश भी नहीं मिल पाता। पिता उसे गरीबी के कारण रोटी-कपड़े भर के लिए जिस-तिस के हाथों सौंप नहीं देता है। वह भी अपने अभिभावकों को, परिवार को प्रिय होती है। विवाह के समय देने की सामर्थ्य भर उड़ेल देते हैं। छोटी बच्ची भी प्राण प्यारी लगती है फिर जब बड़ी हो जाय तब घर के कामों में हाथ बँटा सकती है। कुछ कमा भी सकती है। ऐसी दशा में पितृ परिवार क्यों किसी अनजाने लड़के के सुपुर्द करता है ? क्यों किसी अनजान परिवार में सदा के लिए भेजता है ? यह विचारणीय है।

कन्यादान असाधारण स्तर का त्याग-बलिदान है। जब पशु-पालक जिन्दगी भर काम लेने के उपरान्त अपने बूढ़े, बीमार, निरर्थक पशुओं की कीमत भुना लेते हैं, तब कन्या को किस लोभ के लिए अपरिचित वातावरण में भेजा जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर गहराई में उतरने पर ही मिलता है। वधू समेत पितृ पक्ष का समस्त परिवार जिसमें उसकी सहेली-सम्बन्धी भी सम्मिलित है। प्रतिदान में कुछ चाहते हैं और वह है स्नेह, सम्मान और सहयोग का भावभरा सम्मिश्रण है। इसी को पाकर कन्या अपने भाग्य को सराहती है और घटिया परिस्थितियों में भी निर्वाह कर लेती है। अपनी असुविधाओं की चर्चा माँ-बाप तक से नहीं करती। यह भावनात्मक प्रतिदान है। इसके बदले उसे अनुदान में श्रम, समय, दायित्व,

अनुशासन सभी कुछ वहन करना पड़ता है। इतना ही नहीं प्रसव पीड़ा में ढेरों बार मरते-मरते बचती है और शिशु पालन में अपने रूप, यौवन का समूचा रस निचोड़ देती है।

इसके बदले आर्थिक नहीं, शारीरिक नहीं केवल भावनात्मक प्रतिदान की इच्छा की जाती है, तो उसमें कुछ ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित कहा जा सके। बच्चा और माता स्नेह बन्धन में बँधकर एक-दूसरे के हाथों बिक जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि पति-पत्नी के बीच वैसा ही आदान-प्रदान अपेक्षित न हो। उठती आयु में रक्त अधिक गरम होता है। ऐसी स्थिति में वह उफान और भी अधिक तीव्र हो तो इसे किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता है। यही एक अभाव है जिसके लिए पति-पत्नी को एक-दूसरे के बन्धन में बँधना पड़ता है अन्यथा पति भी पत्नी की खरीद सकता है और बोर्डिंग होटल जैसा जनसंकुल में रहकर समय काट सकता है फिर पत्नी को घर लाने के साथ उसके अनेकानेक उत्तरदायित्व सिर पर आते हैं क्यों ओढ़े और उन्हें क्यों किसी बन्धन में बँधे ?

जिस प्रकार वधू को एक अभाव अखरता है, वैसे ही वर को भी इस कमी के रहते जीवन नीरस और निस्सार लगता है। यह अभाव दोनों पक्षों को समान रूप से उद्बलित करता है—स्नेह, सहयोग और सम्मान का अभाव। सहयोग पैसे के बदले भी खरीदा जा सकता है। सम्मान करने में चापलूस-चाटुकार भी किसी से पीछे नहीं रहते। पर उसमें न वास्तविकता होती है और न गहराई। स्नेह या तो जिसका जिससे स्वार्थ सधता है, वह उसके प्रति अपना लगाव प्रकट करते ही है, किन्तु माता के अतिरिक्त सच्चा प्यार पत्नी का ही होता है। माता के बच्चे बढ़े हो जाते हैं और कई छोटे गोदी में आ जाते हैं, तो बड़े के प्रति थोड़ी उदासी स्वभावतः आ जाती है। बच्चों का रुख भी ऐसा ही होता है। जब तक वे पूरी तरह माता के आश्रित रहते हैं, तब तक चिपके रहते हैं, पर जब बड़े हो जाते हैं तो सहचरों, सहपाठियों के प्रति उनका रुझान बढ़ जाता है और हर घड़ी माता के साथ नहीं रहना चाहते, किन्तु पति-पत्नी के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं होती। दोनों एक-दूसरे पर ही आश्रित रहते हैं और प्यार कभी घटता नहीं बढ़ता ही रहता है।

आरम्भिक दिनों में वह प्रेयसी स्तर का होता है। प्रौढ़ावस्था में सहचरी जैसा और बुढ़ापे में फिर वे एक-दूसरे पर ठीक उसी प्रकार आश्रित हो जाते हैं जैसे कि माता और बालक। दोनों के शरीर दुर्बल होने लगते हैं। पग-पग पर एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। हारी-बीमारी, दुःख-दर्द में घर के लोग उदासीनता बरतते हैं, पर बुढ़े-बुढ़िया दोनों एक-दूसरे की आवश्यकताओं और आदतों को जानते हैं। फलतः बिना

कहे-सुने ही एक-दूसरे की इच्छा को ध्यान में रखे रहते हैं। इस प्रकार पति-पत्नी के बीच यदि सच्ची आत्मीयता है, तो आयु के साथ स्नेह, सहयोग और सम्मान घटता ही नहीं वरन् बढ़ता ही रहता है। सेवा तो इन तीनों के समन्वय का नाम है।

सफल दाम्पत्य जीवन के

मूलभूत—आधार

हृदय और मस्तिष्क के मिलनक्रम के रूप में जिस प्रकार शरीर तन्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग गतिशील रहता है ठीक वही स्थिति दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में भी है। प्रकृति प्रेरणा और समाज व्यवस्था के दोनों ही आधार ऐसे हैं, जो नर-नारी को विवाह बन्धन में बँधने के लिए विवश करते हैं। जिनके सामने कोई बहुत ऊँचे आदर्श हैं, वे सामान्य जीवनचर्या की उपेक्षा कर सकते हैं, क्योंकि इन बाल-ब्रह्मचारियों की, बाल संन्यासियों की बात दूसरी है। सामान्य नर-नारी के लिए सरल जीवनचर्या व्यतीत करने के लिए विवाह एक आवश्यक प्रक्रिया है।

निर्धारण करते समय दोनों की आयु परिपक्वता का ध्यान रखना आवश्यक है। बीस से ऊपर की आयु इस सन्दर्भ में परिपक्व मानी जाती है। इससे छोटी आयु में विचारशीलता कम और भावुकता अधिक होती है। आये दिन की समस्याओं का समाधान विचारशीलता के सहारे होता है, भावुकता के सहारे नहीं। समस्याओं में दम्पति जीवन का प्रेम, भाव, ताल-मेल तो आवश्यक है ही, इसके अतिरिक्त कुटुम्बियों के साथ भी नवविवाहिता को इस प्रकार मेल-जोल रखना पड़ता है ताकि किसी पक्ष की अवज्ञा, उपेक्षा होती प्रतीत न हो। अपने देश में सम्मान सूचक यह प्रचलन है कि नववधू घर का काम-काज सम्भालने में अधिक उत्साह दिखाये और बड़ी आयु या बड़े पद वालों को आराम का, विश्राम का अवसर मिले। यदि गृह संचालक बुद्धिमान नहीं है तो किसी कारण को लेकर तुनकने का उपक्रम चल पड़ता है। कभी वधू बड़ों पर तुनकती है, कभी बड़े वधू पर। कभी न्यूनधिक मात्रा में दोनों पक्ष दोषी होते हैं। अपरिचित होना प्रमुख कारण है। माँ-बेटी में ऐसी समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं क्योंकि दोनों ही एक-दूसरे के स्वभाव से परिचित होते हैं। तालमेल बिठाने की विधि भी मालूम होती है। पर वधू अजनबी पड़ती है।

इस मनोमालिन्य में पति की स्थिति विचित्र होती है। जिस पक्ष को अधिक दोषी देखे और उसे प्यार या क्रोध से धमकाये तो समझा जाता है कि इस ओर पक्षपात किया जा रहा है। इस बात को लेकर एक तीसरी समस्या उत्पन्न होती है। चुप रहना कहने से बुरा और कहना चुप रहने से बुरा। इन परिस्थितियों में नववधू का परिवार के साथ स्नेह-सौहार्द बनाये रहना एक समस्या है,

२.३० गृहस्थ एक तपोवन

जिसके सुलझ न पाने पर न केवल पारिवारिक कलह बढ़ता है वरन् दाम्पत्य-जीवन में नीरसता से लेकर मनोमालिन्य और कटुता तक का सिलसिला चल पड़ता है।

विवाह से पूर्व लड़कियाँ अनेक महत्वाकांक्षाएँ संजोये रहती हैं। इनमें घूमने-फिरने की, हास-विलास की इच्छाएँ प्रमुख होती हैं। बड़े कुटुम्बों में इसके लिए अवसर नहीं मिल पाता। पति-पत्नी का बहुत छोटा कुटुम्ब हो तो गृहस्थ के छोटे-छोटे काम मिलकर इतने अधिक और उलझे हुए होते हैं कि इस विलास की गुंजाइश मुश्किल ही निकल पाती है। कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करके आई हुई लड़कियों के लिए विवाह के उपरान्त यह भी एक समस्या है कि गृहस्थ जीवन और महत्वाकांक्षा के जीवन के बीच ताल-मेल न बैठ पाने के कारण खीज रहने लगती है। नई उम्र में लड़कियाँ आतुर बहुत होती हैं। वे अपनी साधारण-सी बातों पर उत्पन्न होने वाली खीजों को सहिष्णुता के आधार पर पचा नहीं पाती और कई बार ऐसे विग्रह खड़े कर लेती हैं, जिनके लिए आजीवन पश्चाताप करना पड़ता है। दहेज कम मिलने के नाम पर हत्याकाण्डों के पीछे वस्तुतः असहिष्णुता ही प्रधान कारण होती है। एक-दो बार कहना-सुनना हो जाने पर तलाक का प्रसंग सामने आ खड़ा होता है। दोनों को ठीक तरह समझा न पाने वाले, अग्नि में ईंधन डालने वाले जब कुयोग की तरह बीच में पड़ जाते हैं तो तिल का ताड़ बन जाता है और बना घर बिगड़ते देर नहीं लगती।

एकाध वर्ष किसी तरह गाड़ी खिंच जाने पर समझना चाहिए कि गाड़ी पटरी पर चल पड़ी। इस बीच पति की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। उसे अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय इस सन्तुलित रीति से देना चाहिए कि पत्नी का मन भी सधा रहे और परिवार के प्रति उपेक्षा भाव उदय न होने पावे। नववधू घर में आते ही यही छोटी-छोटी समस्याएँ भावुकता के रंग में कई बार इतनी रंग जाती हैं कि उनका समेटना कठिन पड़ता है। ऐसे समय में पत्नी की भावुकता की तरह पति का अहंकार भी उभरने लगा तो जो गृहस्थ जीवन सोना-चाँदी का होना चाहिए था, वह धूलि-कंकड़ का हो जाता है। दोनों के बीच पुराना परिचय न होने के कारण उत्पन्न हुई खीज को समेटना-बटोरना और भी अधिक कठिन होता है।

सयानी लड़कियाँ विवाह के कुछ ही दिन के उपरान्त गर्भवती हो जाती हैं। उनका स्वास्थ्य ढीला रहने लगता है, स्वभाव चिड़चिड़ा भी हो जाता है। इन कारणों को लेकर घर का सौमनस्य और भी लड़खड़ाने लगता है। पति का ही नहीं पूरे परिवार का इन दिनों विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि नववधू को नये वातावरण में खपाने के लिए ऐसा तौर-तरीक़ा अपनायें कि एक बार गाड़ी पहिए पर लुढ़कने लगने के उपरान्त नई बहू का

आगमन वरदान सिद्ध हो। अनबन के जितने अवसर हों, उन्हें टालते या घुमाते रहना ही बुद्धिमानी है। थोड़े दिनों में ही वह समय आ जाता है जब वधू को गृहलक्ष्मी, घर मालकिन की भूमिका निभानी पड़ती है। स्वभावतः इन दिनों काम-काज की बहुत व्यस्तता रहती है। यह क्रम लम्बी अवधि तक चलता है, इसलिए दोनों पक्षों को यह ध्यान रखना चाहिए कि पारस्परिक प्रेम प्रदर्शन में कोई कमी न आने पावे। स्मरण रहे दो आत्माओं को जोड़ने वाली कड़ी प्रेम दर्शन है। दोनों के मनों में एक-दूसरे के प्रति परिपूर्ण विश्वास हो। वफ़ादारी में कोई कमी न हो, पर शब्दों से, शरीर चेष्टाओं से, प्रेम-प्रदर्शन का व्यवहार न रहे तो वह नीरसता दाम्पत्य-जीवन की प्रसन्नता-प्रफुल्लता समाप्त कर देगी, गृहस्थी की गाड़ी एक बोझिल यात्रा की तरह किस प्रकार खींचती, धकेलती रहेगी। इससे दोनों पक्षों में किसी को भी सन्तोष नहीं होगा। बीच-बीच में ऐसे अवसर निकालते रहना चाहिए, जिससे परिवार के उत्तरदायित्व भी निभते रहें और प्रेमी-प्रेमिका की जो सरसता होती है वह भी बनी रहे।

पारस्परिक विश्वास व्यक्त करने का अच्छा तरीका यह है कि पति जो कमाता है, उसे पत्नी के हाथ पर रखे और खर्च जो कुछ हो, पत्नी के परामर्श से हो। जो पति पैसा अपनी जेब में रखते हैं, वे पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास के बीच खाई उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशा में स्त्रियाँ जेब खर्च के लिए पैसा बचाने या चुराने लगती हैं। पति के द्वारा अधिक खर्च हो जाने पर उसके चरित्र पर अविश्वास करने लगती हैं। इसलिए खर्च करते समय वज्रट में पत्नी को सहभागी बनाया जाना ही उचित है।

यों यह आकांक्षा हर नर-नारी में पाई जाती है कि वह अपने कानों से अपनी प्रशंसा सुने। पर स्त्रियों में इस आकांक्षा की मात्रा कुछ अधिक होती है। रूप, श्रम और स्वभाव में कोई न कोई बात हर दिन ऐसी ढूँढ़ी जा सकती है, जिसकी चर्चा उसके सामने की जा सके। रूप सुन्दर न हो तो अमुक तरह के कपड़े उसे कितने फबते हैं, इतना तो कहा ही जा सकता है। दिनभर के, पिछले दिनों के श्रम या स्वभाव की कोई न कोई उल्लेखनीय बात अवश्य ढूँढ़ी जा सकती है। उसमें थोड़ा और नमक-मिर्च मिलाकर अपने कथन को और भी जायकेदार बनाया जा सकता है। पर स्मरण रहे किसी दूसरी स्त्री की प्रशंसा अपनी पत्नी के सामने नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से वह आपके चरित्र पर शंका कर सकती है और अपनी उपेक्षा अनुभव कर सकती है। यह प्रशंसा बाहर वालों के सामने की जाय तो और भी अच्छा। समय-समय पर उपहार देते रहना भी ऐसा ही है। पत्नी का जन्म दिन और विवाह दिन कभी नहीं भूलना चाहिए। उस दिन उसकी रुचि की, आवश्यकता की वस्तुएँ उपहार में दी जायें। सम्भव हो तो कहीं समीपवर्ती या दूरवर्ती स्थान पर घूमने के लिए भी पत्नी को ले जाया जाय।

यह बातें देखने में कम महत्व की हैं किन्तु प्रेम-प्रदर्शन की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती हैं। अभिनन्दन, नमस्कार, प्रणाम, आशीर्वाद जैसी छोटी बातें दिनचर्या में सम्मिलित रखी जायँ। अपने ही तरह स्त्रियाँ अपने बच्चों को भी महत्व देती हैं। बच्चे कुरूप हों, जिद्दी हों, मूर्ख हों तो घर के अन्य लोगों को वे बुरे लग सकते हैं, तो भी माता उन्हें सच्चे मन से प्यार करेगी और चाहेगी कि दूसरे लोग भी उनसे उतना ही प्यार करें। स्वयं डाँट लेगी पर यह पसन्द नहीं करेगी कि दूसरे लोग भी उन्हें डाँटें। दूसरों को वह इतना अधिकार देना चाहती है कि यदि कोई दुःस्वभाव उसमें हो तो केवल प्यार से उन्हें समझा-बुझाकर सुधार ले। किसी को प्यार पाना हो तो उसके बच्चे को गोदी में लेना, दुलार करना, प्रशंसा करना, उपहार देते रहना भूलना नहीं चाहिए। किसी माता को अपने सिवाय दूसरा नम्बर प्रिय लगने का अपना बच्चा ही होता है। इसलिए माता का प्यार जीतने के लिए उसके बच्चों की प्रशंसा तो करनी ही चाहिए, इसके अतिरिक्त उन्हें सुधारने में प्यार के सहारे सहायता करनी चाहिए, तिरस्कृत और लांछित तो करना ही नहीं चाहिए।

स्त्रियों की चन्द्रमा से उपमा दी गई है। चन्द्रमा में परिवर्तन जल्दी-जल्दी होते हैं। दौड़ को बहुत छोटा, कुछ ही दिन बाद बड़ा। पूर्णिमा को पूरा। फिर इसके बाद घटने लगता है। लड़कियों में आरम्भिक दिनों में गुड़िया, कुछ ही दिन बाद प्रेमिका के तत्त्व उदय हो जाते हैं। दिन बीतने नहीं पाये कि पराये घर वधू बनकर चली जाती हैं। वहाँ जाने पर दो अपरिचित भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। पति के लिए प्रेमिका की। परिवार के लिए नव वधू की। सहेलियों का विछोह एक ओर हैरान करता है, तो नई भूमिका में फिट होते-होते कई तरह की भूलें अलग होती हैं। भूलों के लिए डाँट-फटकार अलग पड़ती है। इतने में मातृत्व का बोझ अलग लदने लगता है। परिवार सँभालने की जिम्मेदारियाँ गृह लक्ष्मी बनने के लिए अलग बाधित करने लगती हैं। बड़े होते हैं तो उनके व्याह-शादी की, स्वावलम्बन की समस्या अलग से सिर पर चढ़ती है। थोड़े दिन बीतने नहीं पाते कि सास या दादी बनने का समय आ जाता है। यह परिवर्तन इतनी तेजी से होते हैं कि चन्द्रमा के घटने-बढ़ने से उसकी उपमा ठीक ही दी जाती है।

एक समय के अनुभव दूसरी परिधि में पहुँचते पुराने पड़ जाते हैं और नये परिवर्तन के अनुरूप नये अनुभवों का संकलन करना पड़ता है। यह एक जादुई तमाशा है। इसके अनुरूप ढलने और बदलती समस्याओं के अनुरूप जिस नई जानकारी की आवश्यकता है, उसके अनुरूप अधिक प्रबुद्ध होने के नाते पति को अधिक सहायता करनी पड़ती है। यह सहायता सही हो, सच्ची हो, दुलार भरी हो। सम्मान में कमी न आने दें तो पत्नी अन्य भूमिकाओं के साथ-साथ पति की सहधर्मिणी,

अर्धांगिनी, जीवन-सहचरी सिद्ध होने के लिए जिन भूमिकाओं को निभाने की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें ठीक तरह निभा सकती है। यह कार्य डाँट-फटकार, तिरस्कार के बलबूते नहीं हो सकता। नौसिखिये विद्यार्थी को जिस प्रकार आजकल बाल-कक्षाओं में खिलौने के साथ-साथ खिलाने हुए पढ़ाया जाता है, वह तरीका फिट बैठता है। वह समय चला गया जब बच्चों को बेंत झाड़ते हुए, मुर्गा बनाते हुए, मार-पीटकर पढ़ाया जाता था।

सफल पत्नी ढूँढ़ने के लिए कितने ही लोग सुयोग्य पत्नियाँ ढूँढ़ते हैं। सुयोग्य से तात्पर्य उनका अभिनेत्री स्तर की रूपसी से होता है। ऐसी पत्नी किसी को मिल जाय तो पीछे पछताते हैं, क्योंकि उनका अहंकार बढ़ा-चढ़ा होता है और फरमाइशें ऐसी होती हैं, जिन्हें पूरा करना साधारण स्तर के पतियों के लिए सम्भव नहीं होता। उपयुक्त पत्नी वह है जो तेजी से बदलती परिस्थितियों के लिए उपयुक्त रीति से ढाली जा सके। स्वाभिमानी तो हो पर अहंकारी न हो। पति में प्रेमी के गुण न ढूँढ़े वरन् एक-दूसरे की कमियों को पूरा करते हुए उस गाड़ी की तरह चलें, जिसके दोनों पहिए एक जैसे होते हैं और एक चाल से चलते हैं। इस सन्दर्भ में स्नेह, सहयोग, विश्वास और सम्मान चारों गुण या तो जन्म-जात होने चाहिए अथवा पत्नी होने के उपरान्त सीखने, सिखाने, विकसित करने और कराने चाहिए। पुरुष का दर्जा बुद्धिमत्ता की दृष्टि से बढ़ा है। जनसम्पर्क में अधिक रहने से उसका अनुभव ज्यादा होता है। इसलिए पति-पत्नी के बीच तालमेल बैठाने का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक अधिक उत्तरदायित्व पति के कंधे पर आता है। सफलता की स्थिति में श्रेय भी उसी को मिलेगा और असफल रहने पर दोष भी उसी को दिया जायेगा।

माता-पिता बनने से पहले श्रेष्ठ दम्पति बनें

दो वस्तुओं के मिश्रण से तीसरी वस्तु बनने की रासायनिक प्रक्रिया से सभी परिचित हैं। औषधिशास्त्री जानते हैं कि यदि अमूक वनस्पतियाँ, धातुयें और क्षार अलग-अलग सेवन किये जायँ, तो उनका बहुत ही साधारण प्रभाव होगा किन्तु उन्हें मिला दिया जाए तो इस मिश्रण से एक नई ही प्रक्रिया उत्पन्न होगी। रसायन विज्ञान इसी आधार पर नई-नई वस्तुओं और विधियों का आविष्कार करता रहता है। इसी सिद्धान्त के द्वारा अनेकानेक नई वस्तुएँ, नई जानकारीयों और नये पदार्थ निर्मित होते हैं।

यह तो जड़ वस्तुओं की बात हुई। चेतन या जीवित प्राणियों का चेतन के स्तर पर मिलन उससे भी एकदम भिन्न और विलक्षण परिणाम प्रस्तुत करते हैं।

विवाह चेतना के स्तर पर मिलन और मिश्रण प्रक्रिया का ही शुभारम्भ कहा जा सकता है, जिससे नर और नारी दो भिन्न तरह की जैविक इकाइयाँ हृदय से एक-दूसरे के प्रति समर्पित होतीं तथा नये व्यक्तित्व का निर्धारण करके, एक-दूसरे का कार्याकल्प करते हैं। नर-नारी का यही सम्मिश्रण सृष्टि निर्माण क्रम में चलता रहने से रंग-बिरंगे और विविध प्रतिभाओं से सुसम्पन्न फूल तथा तरह-तरह के स्वाद वाले फल उत्पन्न होते हैं। नर-नारी के बीच ऐसे घुलनशील तत्त्व हैं, जो यदि गहन स्तर पर मिल सकें तो एक नये ही व्यक्तित्व को जन्म देते हैं और दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। इस परिवर्तन को स्पष्ट देखा जा सकता है। विवाह से पूर्व लड़की कुमारी अवस्था में जिस स्तर की होती है, उसमें विवाह के बाद कार्याकल्प जैसा परिवर्तन हो जाता है और लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के होते हैं, वे भी विवाह के बाद इतने बदल जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है, प्रकृति में तो जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित हो जाता है। लेकिन यह होता तभी है जब वे भावनात्मक स्तर पर इतनी गहराई तक उतर जाये कि एक-दूसरे में घुल जाने की स्थिति प्राप्त कर लें।

भावनात्मक स्तर पर घुलने-मिलने की प्रक्रिया यकायक सम्पन्न नहीं होती। इस सम्बन्ध में थियोडोर पार्कर का कहना है कि पुरुष और स्त्रियाँ, विशेषकर युवा व्यक्ति जिनका अभी-अभी विवाह होता है, यह नहीं जानते कि दो हृदयों को पूर्ण रूप से एक-दूसरे में घुलने, उनका पूरी तरह संयोग होने में वर्षों लग जाते हैं भले ही वे परस्पर प्रेम करने वाले क्यों न हों। एक-दूसरे की ओर पहले से ही आकृष्ट क्यों न हों। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्रकृति के नियमों के अनुसार आकस्मिक और तत्काल परिवर्तन नहीं हो सकता। संयोग, सम्मिलन और एकात्मस्थिति धीरे-धीरे ही प्राप्त होती है। चिरकाल तक एक-दूसरे के प्रति समर्पण, एकात्म हृदय होने का ही दूसरा नाम दाम्पत्य जीवन है।

दूसरे व्यक्तित्व में घुल जाने की स्थिति प्राप्त करने में समय लगता है। व्यक्तित्व में घुलने का अर्थ है, इतनी सघन भावनात्मक एकता कि उसमें शरीरों की भिन्नता का आभास ही नष्ट हो जाए। एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। इस सघनता की प्राप्ति के लिए शुभारम्भ आत्मीयता, प्रेम, त्याग और समर्पण की भावनिष्ठा जाग्रत करने के साथ होता है। इस मार्ग से जब लय योग की साधना की जाती है, एक-दूसरे के व्यक्तित्व में घुल-मिल जाने का क्रम आरम्भ होता है, तो इसके दो परिणाम होते हैं पहला तो यह कि एक प्रखर एवं अभिनव व्यक्तित्व से दोनों सम्पन्न बनते हैं। उस प्रखरता से, अभिनव व्यक्तित्व की आभा से दोनों जगमगा उठते हैं। दूसरा प्रतिफल यह होता है कि सन्तान की

ऐसी उपलब्धि जो अगणित प्रतिभाओं और विशेषताओं से सम्पन्न होती है।

विवाह का यही मूल प्रयोजन है। व्यक्तित्व में घुलनशीलता, एकात्म स्थिति प्राप्त करना और प्रखर प्रक्रिया सम्पन्न सन्तान को जन्म देना। नर-नारी के बीच प्रकृति ने इसीलिए स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। रतिक्रिया में जिस आनन्द, जिस आवेश का समावेश होता है, उसकी अनुभूति होती है, उसका कारण भी यही है। प्रकृति चाहती है कि उसके परिवार में जीवधारियों का वंश ही न बना रहे वरन् उनका स्तर भी विकसित होता रहे। कहना न होगा कि भावनात्मक-सघनता का सम्मिश्रण व्यक्तियों का स्तर विकसित करता है और पीढ़ियों में विशेषता भरता है। यही प्रक्रिया जब शारीरिक सघनता में परिणित होती है, तो उच्चकोटि के गुणों से सम्पन्न सन्तति का जन्म होता है। नर और नारी की अपूर्णताओं को एक-दूसरे की विशेषताओं से पूरी करके, एक-दूसरे का पूरक बनते हुए पूर्णता को प्राप्त करना ही दाम्पत्य जीवन का मूलभूत प्रयोजन है। जहाँ पति-पत्नी की प्रकृति मिल जाती है और दोनों में परस्पर सघन सहयोग होता है, वहाँ इच्छित सन्तान का, प्रतिभाशाली सन्तति का जन्म होना तो सुनिश्चित है ही, दोनों के व्यक्तित्व का कार्याकल्प भी उतना ही सुनिश्चित है।

लेकिन यह सघन आत्मीयता उत्पन्न कैसे हो ? इसके लिए आवश्यकता है पति-पत्नी एक-दूसरे के साथी सहचर बनकर रहें, मालिक और गुलाम बनकर नहीं। आमतौर पर पुरुषों का दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति बहुत ही संकुचित और सामंतयुगीन होता है। सामन्त काल में स्त्रियों को सम्पत्ति समझा जाता था और जिसके पास जितनी स्त्रियाँ होती थीं, उसे उतना ही बड़ा सामन्त समझा जाता था। आज बदलते युग में एकाधिक पत्नियाँ तो कोई रखता नहीं है परन्तु उस समय के दृष्टिकोण में कोई विशेष भिन्नता नहीं आई है। पुरुष आज भी पत्नी को अपना मित्र और साथी-सहचर कम, दासी अधिक मानता है। परिणामतः इस स्तर की सघन आत्मीयता उत्पन्न नहीं हो पाती जो कि आदर्श दाम्पत्य के लिए अनिवार्य होती है।

स्त्री-पुरुष के लिए जितना त्याग-बलिदान करती रहती है, उस दृष्टि से स्त्री का स्थान पुरुष की तुलना में ऊँचा ही ठहरता है नीचा नहीं। एक प्रसिद्ध विचारक ने स्त्री के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—“स्त्री क्या है ? वह सीधी स्वर्ग से आई है, एक पवित्र और सुकुमार उपहार के रूप में और इतने प्रेम व त्याग से भरी हुई है कि उसके प्रेम की थाह को किसी भी मापदण्ड से नहीं मापा जा सकता है। वह घर, समाज यहाँ तक कि सारी दुनिया को पवित्र करने के लिए, सुख-चैन देने के लिए और जगमगाने के लिए बनाई गई है। वह इतनी अमूल्य बनाई गई है कि उसका मूल्य

कोई नहीं आँक सकता और यदि आँक सकता है तो केवल वही व्यक्ति, जिसकी माँ इतने समय तक जीवित रही हो कि वह उसके महत्त्व को समझ सका हो या फिर वह व्यक्ति नारी का मूल्य आँक सकता है, जिसे जीवन के संकट काल में, जबकि सब ओर से उसे निराशा मिली हो, तब उसकी धर्मपत्नी ने ईश्वर में गहरी आस्था रखते हुए उसका संबल बढ़ाया हो। वस्तुतः एक पुरुष का एक स्त्री के साथ स्थाई गठबन्धन प्रेम और आदर्श का ऐसा नाता जोड़ देता है, जो और किसी भी प्रकार दो व्यक्तियों के बीच नहीं जोड़ा जा सकता।”

स्वेट मार्टिन ने दाम्पत्य जीवन में प्रेम को धन से भी अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान मानते हुए लिखा है कि “यदि हम चाहें तो इस संसार में थोड़े-से धन से भी निर्वाह कर सकते हैं परन्तु प्रेम एक ऐसी समस्या है, जिसकी हमारे यहाँ बहुलता होनी चाहिए और जिसे हम कभी भी इतनी मात्रा में इकट्ठा नहीं कर सकते कि हम यह कह सकें कि अब तो प्रेम आवश्यकता से अधिक हो गया।” जब थियोडोर पार्कर का विवाह हुआ तो उसने पत्नी के प्रति अपने व्यवहार को सदाशयता और मैत्रीपूर्ण रखने के लिए एक आचार संहिता बनाई। उसने विवाह के दिन ही अपनी डायरी में निम्नलिखित दस निश्चय लिख दिये और संकल्प किया कि वे दोनों कड़ाई के साथ इनका पालन करेंगे।

वे दस निश्चय इस प्रकार हैं—(१) आवश्यक कारण न हों तो पत्नी की इच्छा का कभी विरोध न करना, (२) उसके प्रति सभी कर्तव्यों का उदारता से पालन करना, (३) कभी कटु व्यवहार न करना, (४) उसके स्वाभिमान को किसी भी प्रकार ठेस न पहुँचाना, (५) उसे कभी आदेश दे देकर परेशान न करना, (६) उसकी शारीरिक निर्मलता को प्रोत्साहन देना, (७) उसके काम-काज में हाथ बँटाना, (८) उसके छोटे-मोटे दोषों को नजरअन्दाज करना, (९) उसके प्रति अपने दायित्वों और कर्तव्यों का पालन करना तथा (१०) उसके लिए भी परमात्मा से प्रार्थना करना। स्वेट मार्टिन ने इन गुणों की तुलना यहूदियों के प्राचीन दस धार्मिक आदेशों से करते हुए लिखा है—

“ये आदेश जो पार्कर ने अपने ऊपर स्वेच्छा से लागू किये। यहूदियों के प्राचीन दस आदेशों के समान हैं। वास्तव में प्रेम वैवाहिक और नैतिक विधान दोनों की परिपूर्णता का नाम है।”

यह वे आधार हैं जो व्यक्तियों के मिलन को जादूगरी रासायनिक प्रक्रिया जैसा भावनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की असाधारण क्षमता रखते हैं। इस उपलब्धि के लिए, सघन आत्मीय सम्बन्धों के लिए पति-पत्नी के बीच सघन प्यार और विश्वास होना चाहिए, उसमें आशंकाओं और तुनकमिजाजी के लिए कोई स्थान नहीं है। जब साथी के गुण ही गुण दिखाई पड़ें और भूलें उपेक्षा अथवा

विनोद-उपहास की वस्तु बन जायें, उसके कारण मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना ही न हो तब समझना चाहिए कि सच्चे मन से समर्पण या धुलने-मिलने की बात पूरी हुई। आशंकाओं, सन्देहों, अविश्वासों, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्तियों के बीच यह सघनता फलती-फूलती नहीं, उसे विश्वास और ममत्व का उन्मुक्त आकाश चाहिए।

इन प्रवृत्तियों के कारण पति-पत्नी में वह सघनता उत्पन्न होती ही नहीं है, जो उनके व्यक्तित्व का कार्याकल्प कर सके तथा नये व्यक्तित्व को जन्म दे सके। यदि दोनों में अपार हार्दिक सघनता न हो तो दोनों में से जिसका व्यक्तित्व अधिक प्रतिभासम्पन्न और जबरदस्त होता है, उसी की छाप सन्तान पर पड़ती है। इसलिए सन्तान का स्तर सरल व्यक्तित्व अपनी कोमलता के कारण दब जाता है। इस तरह गृहस्थ तो चलता रह सकता है पर एकांगी प्रयास एक हाथ से ताली बजाने की चेष्टा के समान अपूर्ण ही रह जाता है।

फ्रांस के प्रसिद्ध मनःशास्त्री डा. क्रेटीन सीसे भी अधिक दम्पतियों का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि एक पक्ष सज्जन हो तो दूसरे को अपने में ढाल सकता है। लेकिन ऐसा तभी सम्भव है जब दूसरा पक्ष जैसा भी कुछ है, अपना पूर्ण समर्पण कर दे। यदि दोनों व्यक्तित्व अपनी अहन्ता अलग-अलग बनाये रहें तो उनमें जो शक्तिशाली होगा उसी की विजय होगी। डा. क्रेटीन ने इस दिशा में कुछ प्रयोग भी किए। उन्होंने अपने निष्कर्ष को सही, प्रामाणिक करने के लिए विपरीत गुण, स्वभाव वाली स्त्री से विवाह करके सुयोग्य सन्तान की बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हो सके। अन्ततः उन्हें अपने प्रतिपादन को वापस लेना पड़ा और कहना पड़ा, किसी एक पक्ष का प्रयास सफल नहीं हो सकता। इसमें दोनों को ही पिघलना पड़ता है और यह प्रयत्न करना पड़ता है कि घनिष्टता एकता को हर कीमत पर बनाये रहा जाए। यदि ऐसा न हुआ तो फिर जो पक्ष सबल होगा, दूसरे पर छा जाने का प्रयत्न करेगा।

इस सन्दर्भ में बर्लिन की एक महिला इमगार्ड बन्स का उदाहरण प्रासंगिक है। उसने एक के बाद एक पाँच बार विवाह किये। पाँचों पतियों को क्रमशः आत्महत्या करके ही अपने जीवन का अन्त करना पड़ा। कारण कि उसकी भावनात्मक प्रचण्डता इतनी तीव्र थी कि पति उसके शिकार होकर अपना सन्तुलन खोते गये। विवाह का उद्देश्य यदि मात्र सन्तानोत्पादन करना हो तो बात दूसरी है, अन्यथा व्यक्तियों में प्रखर प्रत्यावर्तन उत्पन्न करना और प्रतिभाशाली सन्तान प्राप्त होना तभी सम्भव है, जब नर-नारी के बीच अत्यन्त गहरे एवं सघन स्तर की आत्मीयता स्थापित हो सके। ऐसे ही विवाह सच्चे अर्थों में विवाह हैं अन्यथा उन्हें एक मजबूरी का निर्वाह मात्र

कहा जा सकता है। अस्तु, श्रेष्ठ सन्तानोत्पादन के लिए दाम्पत्य-जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने का एक ही उपाय है और वह है—पति-पत्नी के बीच अति सघन, प्रचण्ड और प्रबल भावनात्मक एकता स्थापित करना।

सफल दाम्पत्य के लिये पूर्व तैयारी आवश्यक

पाश्चात्य देशों में विवाह के पूर्व ही युवक-युवतियों को यौन विषयक जानकारी दी जानी आवश्यक समझी जाती है। हमारे यहाँ इस विषय को गोपनीय मानकर बच्चों को नहीं बताया जाता। यह कहना कि बच्चों के वयस्क होते-होते उन्हें यौन विषयक जानकारी दे देना आवश्यक होती है, उचित मानें भी तो भी यह मत एकांगी ही ठहरता है। यौन विषयक जानकारी युवक-युवतियों के लिए उतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि उन्हें विवाह के पूर्व वैवाहिक दायित्वों, विवाह की महत्ता और उसकी सफलता के तथ्यों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इनका समुचित ज्ञान न होने के कारण या तो वे विवाहोत्तर जीवन की ऐसी काल्पनिक तस्वीर अपने मन-मस्तिष्क में लेकर चलते हैं कि जीवन के नग्न यथार्थ से टकराकर जब वह टूटती है, तो वे स्वयं भी बहुत कुछ टूट जाते हैं। ऐसी काल्पनिक तस्वीर वेन भी बनाएँ तो भी वे शारीरिक व मानसिक तौर से उन बातों के लिये तैयार नहीं रह पाते जो उनके सामने आती हैं। विवाह जैसे महत्वपूर्ण दायित्व और व्यवस्था का वे न स्वयं पूरा लाभ उठा सकते हैं न समाज को ही, परिवार को ही उसका लाभ दे सकते हैं।

आज तक अधिकांश माता-पिता विवाह को अनिवार्य तो मानते हैं—लड़के-लड़कियों के हाथ पीले करके गंगा नहाने की बात तो करते हैं, किन्तु उनका यह गंगा नहाना कितना अधूरा रहता है ? जब बच्चे विवाहोत्तर जीवन के भार को उठा पाने में असमर्थ रहते हैं या बेगार की तरह गृहस्थी की गाड़ी को खींचते रहते हैं। विवाह की अनिवार्यता को स्वीकारने के साथ ही उसकी सफलता के लिये बच्चों को शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से तैयार व समर्थ बनाना भी उतना ही महत्व रखता है, जितना कि विवाह करवा देना।

आज से कोई पचास वर्ष पहले लड़कियों के लिये जीवन साथी का चुनाव प्रायः माता-पिता ही करते थे। यहाँ तक कि उनसे इस सम्बन्ध में सम्मति लेना भी आवश्यक नहीं समझा जाता था। अब स्थिति में कुछ परिवर्तन आ रहा है। माता-पिता इस विषय में उनकी सम्मति का ध्यान रखने लगे हैं। कुछ उदाहरण अब ऐसे भी देखने को मिलते हैं, जब लड़के-लड़की माता-पिता की इच्छा के विपरीत प्रेम विवाह भी कर लेते हैं। विवाह

सम्बन्ध कैसे भी बाँधे गये हों, उसके पहले लड़के-लड़की के लिये उसका महत्व का ज्ञान, उसकी समग्र जानकारी आवश्यक होती है। उसके अभाव में वैवाहिक जीवन की सफलता बहुत कुछ असंदिग्ध ही रहती है।

माता-पिता का अपनी इच्छा को विवाह के सम्बन्ध में पुत्र-पुत्रियों पर थोपना उनके साथ एक तरह का अन्याय ही होता है, किन्तु उन्हीं को अपनी अपरिपक्व बुद्धि के सहारे अपना जीवन साथी चुनने की छूट देना भी हितकारी नहीं होता। उनकी राय भी ली जानी चाहिए, किन्तु माता-पिता को उसके साथ-साथ अपने ज्ञान व अनुभवों का प्रयोग भी करना चाहिए।

विवाह आवश्यक तो है किन्तु प्रत्येक के लिये अनिवार्य नहीं। साथ ही विवाह की भी एक आयु एक स्थिति और सामर्थ्य होती है। उसको ध्यान में नहीं रखते हुए किये गये विवाह सम्बन्ध सुखकारक नहीं होते। शारीरिक दृष्टि से रोगी या मानसिक दृष्टि से अविकसित पुत्र का विवाह करके माता-पिता को किसी लड़की के जीवन से खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। विवाह के लिये उस व्यक्ति की सामर्थ्य आँकी जानी चाहिए, जिसका विवाह होने को है। माता-पिता को अपने पुत्र के अपने पाँवों पर खड़े होने पर पत्नी व परिवार का भार उठा लेने की आर्थिक व बौद्धिक सामर्थ्य आ जाने पर ही विवाह की बात सोचनी चाहिए। जो युवक-युवतियाँ माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करते हैं, उन्हें भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। जहाँ तक हो वहाँ तक माता-पिता की सहमति लेनी ही चाहिए, किन्तु वे किसी रूठी भ्रान्त मान्यता के दुराग्रह से बुरी तरह ग्रस्त हैं और लड़के-लड़की मात्र आकर्षण या सुखद कल्पनाओं से ही प्रेरित हो विवाह नहीं कर रहे हों। उन्हें वैवाहिक जीवन के उतार-चढ़ावों का भी ज्ञान है तो माता-पिता की इच्छाओं को महत्वहीन भी माना जा सकता है।

ग्रामीण व अशिक्षित समाज में माता-पिता लड़के-लड़कियों की आयु, शरीर सामर्थ्य, कमाने की शक्ति, भावी जीवन के संघर्षों व सुखों का ज्ञान आदि का ध्यान रखे बिना ही उन्हें विवाह के जुए में जोत देते हैं, यह बहुत-बुरी बात है। यह सन्तान के साथ बहुत बड़ा अन्याय ही नहीं समाज व राष्ट्र को दिया गया बहुत बड़ा धोखा है। शरीर, मन, बुद्धि से समर्थ होने पर ही बच्चों के विवाह की बात सोचनी चाहिए। बन्दर-बन्दरी नचाने, गुड्डे-गुड्डियों के व्याह रचाने की इस अविवेकपूर्ण बाल-विवाह प्रथा ने हमारे देश का जो अनिष्ट किया है, उसे हम आज तक भोग रहे हैं।

बच्चों को स्वयं स्कूलों में पत्र-पत्रिकाओं या तद्विषयक पुस्तकों द्वारा विवाह के पश्चात् उनके सिर पर आने वाली जिम्मेदारी व मिलने वाला सुख, दाम्पत्य व पारिवारिक जीवन की सफलताओं के सूत्र, अनुभव, सावधानियाँ, पारस्परिक समझ, मन-मुटाव से बचने के

लिये क्या करें ? आदि जानकारीयों देनी चाहिए। जिनके अभिभावक नहीं हैं या जो स्वेच्छा से अपना जीवन-साथी वरण करना चाहते हैं, उन्हें भी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, अपने मित्रों के अनुभव या अपने पास-पड़ोस में रहने वाले विवाहित दम्पतियों के जीवन का निरीक्षण और उन पर चिन्तन-मनन करके विवाह के पूर्व उसकी मानसिक तैयारी कर लेना चाहिए।

पारिवारिक सुख पाने के रहस्यों का ज्ञान कराने के नाम पर आजकल जो यौन विषयक पुस्तकें बिकती हैं इनमें सार की कोई बात नहीं रहती। उनमें ले-देकर काम भावना का ही मिर्च-मसाला भरा पड़ा रहता है। वे मार्गदर्शन तो कम देती हैं और कुत्साएँ अधिक फैलाती हैं, उत्तेजना भड़कती हैं। इनसे बचा रहना भी उत्तम है। कामभावना ही दाम्पत्य-जीवन का आधार नहीं होती। यह तो उसका एक नगण्य-सा अंग मात्र होती है।

युवक-युवतियों के पास चाहे कैसी ही उच्च डिग्रियाँ हों वे जीवन के अनुभवों में प्रायः कोरे ही होते हैं, विवाह के पूर्व उनके लिये यह ज्ञान लेना बहुत आवश्यक होता है कि उन्हें अपने-अपने सहधर्मी के साथ कैसे निभाव करना है। यह देखने में आता है कि माता-पिता के द्वारा निर्धारित किये गये सम्बन्धों को मान करके विवाह कर लेने वाले पति-पत्नी भी अपने दाम्पत्य जीवन को निभाने में सफल होते हैं और स्वेच्छा से प्रेम-विवाह करने वाले दम्पतियों में भी आगे चलकर खटपट होती है और नौबत तलाक लेने तक पहुँच जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता कि साथी के चुनाव के स्थान पर विवाह और वैवाहिक जीवन के प्रति स्वस्थ व समग्र दृष्टिकोण होना ही सफलता का कारण होता है।

विवाह के सूत्रों में बँधने वालों को यह ज्ञान लेना आवश्यक है कि विवाहोपरान्त उन्हें बहुत कुछ मिलता है, किन्तु उसके लिये उन्हें बहुत कुछ देना भी पड़ता है। पत्नी का स्नेह, ममत्व, अनुराग, सेवा-सहयोग, संरक्षण आदि पाने के लिये स्वयं पति को भी उसे विश्वास, संरक्षण, सहयोग, स्नेह, सद्भाव आदि देना पड़ता है। वैवाहिक जीवन वहाँ कटु, शुष्क व नीरस होने लगता है जहाँ साथी से अपेक्षाएँ तो हजार की जायँ और अपनी तरफ से देने के लिये कुछ भी तैयार नहीं हों। अपेक्षाएँ करने की अपेक्षा देने की रीति-नीति अपनायी जाय तो अपने आप दाम्पत्य जीवन में मधुरता का प्रवाह उमड़ने लगता है।

वैवाहिक जीवन मात्र सुख की सेज नहीं वह कौंटों का पथ भी है। उसमें सुख-दुःख की धूप-छाँव चलती ही रहती है। ऐसे समय पति-पत्नी के लिये परीक्षा का अवसर होते हैं। उनकी कल्पना विवाह के पहले ही कर लेना और उनसे निपटने की मानसिक तैयारी कर लेना ठीक रहता है। विषम समय में यदि पति-पत्नी एक-दूसरे का साथ देते रहेंगे तो उनकी दाम्पत्य नौका डगमगाने से

बच जायेगी और यदि ऐसे समय में वे एक-दूसरे को उन परिस्थितियों के लिये जिम्मेदार ठहराने लगे तो वह डगमगाने लगेगी बहुत सम्भव है डूब ही जाय।

विवाह के पश्चात् सामान्य रूप से अर्थोपार्जन का दायित्व पति पर आ जाता है और गृह प्रबन्ध और स्नेह रस-वर्षण का दायित्व पत्नी सम्हालती है। अब तक माता-पिता पर आश्रित या अकेले रहने वाले युवक-युवतियों को उस समय उत्पन्न होने वाली समस्याओं का ज्ञान नहीं होता। फिर जब विवाह के पश्चात् वे उनमें उलझते हैं तो उन्हें विवाह जंजाल में फँसने जैसी बात लगने लगती है, क्योंकि वे उसकी मानसिक तैयारी नहीं किये होते हैं।

इन्सान कोई पूर्ण नहीं होता, उसमें कुछ न कुछ दोष, कमियाँ रहती हैं। विवाह के पहले अपने जीवन साथी के बारे में यह आग्रह पालना कि वह ऐसा होगा, ऐसा करेगा, ऐसा बोलेगा, हँसेगा, त्याग करेगा आदि बातें सोचने के साथ ही इसके लिये भी तैयार रहना चाहिए कि यदि उनमें वे सब गुण नहीं हैं, जिनकी हमने कल्पनाएँ, अपेक्षाएँ की थीं तो उन्हें विकसित करने का धैर्य से प्रयास करेंगे।

विवाह के पश्चात् व्यक्ति की संयम, त्याग, बलिदान आदि की भूमिकाएँ आरम्भ होती हैं। विवाहोत्तर जीवन में असंयम चाहे शरीर का हो, धन का हो या अन्य कामनाओं का वह दुःखद ही होता है किन्तु यौवन के रंगीन पंख लग जाने पर इस आयु में व्यक्ति धरती से नहीं आसमान से बातें करना चाहता है, जबकि उस रूमनियत का संयमित रूप ही वैवाहिक जीवन में निभ सकता है। अत्यधिक सुन्दर पत्नी या सर्वगुण सम्पन्न पुरुष की कल्पनाएँ कुछ ऐसी ही रूमनियत लिये हुए होती हैं। जबकि दाम्पत्य जीवन का प्रसाद पत्नी के शारीरिक सौन्दर्य नहीं मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक सौन्दर्य और पति के विवेक, सूझ-बूझ व धैर्य पर निर्भर करता है। ऐसे दुराग्रह लेकर दाम्पत्य जीवन के मार्ग पर चलने वाले पथिक बीच मार्ग में ही थकित-अवसन्न होने लगते हैं। अतः विवाह के पूर्व अभिभावक, गुरुजन उन्हें इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी करा दें। अकेले रहने वाले युवक-युवतियाँ भी इस सम्बन्ध में यथार्थ दृष्टि ही लेकर चलें तो उन्हें लाभदायक होंगी।

विवाह के लिए आयु की परिपक्वता ही काफी नहीं रहती। उसके लिये संतुलित दृष्टिकोण का विकसित होना बहुत आवश्यक है। भिन्न-भिन्न गुण, कर्म व स्वभाव के व्यक्ति जीवन भर एक सूत्र में आबद्ध होकर रहते हैं, तो उनमें सुखद प्रसंग भी आते हैं और दुःखद प्रसंग भी आते हैं। बुरे दिन भी आते हैं तो अच्छे दिन भी, कष्ट भी आते हैं तो हर्ष के प्रसंग भी। इन सबको धैर्यरहित समभाव से स्वीकारते हुए विवाह धर्म का निर्वाह करने

की दक्षता तो विवाह के पश्चात् ही प्राप्त होती है, किन्तु उनकी पूर्व जानकारी हो जाना बहुत आवश्यक होता है।

विवाह मात्र कामनाओं की तृप्ति का साधन नहीं यह तो एक धर्म है। इसी कारण पति-पत्नी को एक-दूसरे का सहधर्मी कहा जाता है। दोनों एक-दूसरे के साथ रहकर एक महान दायित्व का पालन करने को प्रवृत्त होते हैं, तो उन्हें एक-दूसरे पर अधिकार मिल जाने की बात सोचने की अपेक्षा उसका साहचर्य, सहयोग मिलने की ही भावना रखना हितकर होता है। यह बात नहीं भूल जाना चाहिए कि दोनों एक सूत्र में आबद्ध इसलिये हुए हैं कि अकेला व्यक्ति इस दायित्व को निभा नहीं पाता था। अतः दो साथी मिलकर निभा रहे हैं, ताकि यह नीरस न हो जाय। इस सत्य को विवाह के इच्छुक युवक-युवतियों को बताना उनकी सामर्थ्य को देखना उतना ही आवश्यक है जितना विवाह सम्पन्न कराना।

दाम्पत्य-जीवन में आदर्शवादिता का समावेश

चश्मे के द्वारा हम हर एक चीज को देखते हैं तथा वह हमारे चक्षुओं पर बोझ नहीं बनता। नजर में रुकावट डालने के बजाय चश्मा उसका सहायक होता है। आँखों तथा बाहर की वस्तुओं के बीच में पर्दा या बाधा बनने की बजाय, वह सभी वस्तुओं को स्पष्ट दिखलाता है।

इसी तरह पति का पत्नी से तथा पत्नी का पति से सम्बन्ध होना चाहिए कि वे एक-दूसरे के लिए बाधा न बनें, पति अपनी पत्नी के भीतर तथा पत्नी अपने पति के भीतर कैद न हो जाए। बल्कि वे एक-दूसरे के द्वारा सारे संसार को देखें। यह तभी सम्भव है, जब यह सम्बन्ध आध्यात्मिक तथा वेदान्त में बताये गये बोध पर आश्रित हो। किसी अन्य दृष्टिकोण से यह नहीं हो सकता।

जहाँ पति-पत्नी अपने व्यक्तिगत अहं, व्यक्तिगत सम्मान, ईर्द-गिर्द के वातावरण, रीतिरिवाजों, भावनाओं तथा आदतों से ऊँचा उठ जाते हैं, वहाँ दोनों को आत्मा के अपने असली रूप के दर्शन मिल जाते हैं, इससे पूर्व नहीं।

पत्नी पति के द्वारा परमात्मा को देखे तथा पति पत्नी द्वारा परमात्मा को देखे। पति परमात्मा की मूर्ति बन जावे अथवा तस्वीर बन जाए और पत्नी पति के लिए।

विवाह हानिकारक नहीं है, इसमें शासन करने वाली दुर्बलता वास्तव में हानिकारक है। नीचे गिराने वाला भाव—भय वस्तुओं से मोह, बाहरी रूपरेखा पर आसक्ति और इस भावना की पुष्टि, “मैं शरीर हूँ, मेरा साथी भी शरीर है” और अपने साथी को वश में करने की, उस पर अधिकार जमाने की इच्छा-लालसा हानिकारक है।

यदि आप अपने साथी के वास्तविक हित-चिन्तक हैं, तो आप उसे ऐसा पदार्थ अवश्य दें, जो वास्तविक सुख का मूल है। यह पदार्थ है—(१) ज्ञान तथा (२) आध्यात्मिक स्वाधीनता।

हर एक पति का यह परम धर्म है कि वह अपनी पत्नी को शिक्षा प्रदान करे। जो पति अपनी पत्नी को शिक्षा नहीं देता, उसे ऊँचा नहीं उठाता अथवा जो पत्नी अपने पति का पथ-प्रदर्शन नहीं करती अथवा उसके उत्थान में सहायक नहीं होती, वह पति पति नहीं और वह पत्नी पत्नी नहीं। ऐसा पति भी पापी है और ऐसी पत्नी भी।

घर को प्रेम की सीमा नहीं, अपितु प्रेम का केन्द्र बनाया जाना चाहिए। लोग अपने घर परिवार को प्रेम की सीमा बना देते हैं। घर के बाहर किसी से प्रेम नहीं होता, उनकी प्रीति घर की सीमा को नहीं पार कर सकती। घर, पत्नी तथा सन्तान को प्रेम बनाना चाहिए, जिससे प्रीति किरणें दसों दिशाओं में प्रसारित हो सकें। आपकी प्रीति घर की चाहरदीवारी से बँधी हुई नहीं होनी चाहिए। आपको अपनी पत्नी को ही प्रेम की सीमा नहीं बना देना चाहिए। जब आप में स्वार्थ भावना भर जाती है, तब आप अपने को तथा अपनी पत्नी को भी पतित बना डालते हो।

पत्नी इसलिए है कि वह पति को सम्पूर्ण विश्व के साथ ऐक्य स्थापित करने की शिक्षा दे, वह इसलिए नहीं कि आप पत्नी-प्रेम में सारे संसार से नाता तोड़ दें।

पति तथा पत्नी दोनों को साथ-साथ प्रगति करनी चाहिए तथा जबकि पत्नी हमें प्रेम की शिक्षा देती है, तो हम जिस प्रेम की शिक्षा प्राप्त करते हैं, उस प्रेम को उस देह में ही स्थिर (सीमित) करके नहीं रखना चाहिए अपितु वह सम्पूर्ण जगत को, प्राणिमात्र को समर्पित किया जाना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए

बड़ी-बड़ी आशा, आकांक्षाओं के साथ नवयुवक और नवयुवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बँधते हैं। बड़ी-बड़ी रस्में अदा होती हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। गाने-बाजे, रोशनी, दावतों, लेन-देन, बारात, जुलूस आदि के साथ दो प्राणी विवाह-सूत्र में बँधते हैं। परस्पर के नये आकर्षण से प्रारम्भिक दिनों दोनों का जीवन बड़ा सुखद बीतता है, किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और दाम्पत्य-जीवन कलह, अशांति, द्वेष, असन्तोष की आग में जलने लगता है।

परिपाटी के तौर पर जो प्रतिज्ञायें धर्म-पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक-जीवन में नाम भी

नहीं रहता। दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के लिए बोझ बन जाता है। इसका कोई बाह्य कारण नहीं। अपितु, पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार, आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है। यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाय तो दाम्पत्य-जीवन परस्पर सुख-शान्ति, आनन्द का केन्द्र बन जाय।

दाम्पत्य-जीवन की सुख-समृद्धि एवं शान्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें। एक मोटा-सा सिद्धान्त है कि 'मनुष्य दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है।' पति-पत्नी भी सदैव एक-दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे कि विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता वे उन्हें निर्ममता के साथ कुचल भी देते हैं। इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असन्तोष का उदय हो जाता है। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबरदस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना, पति के प्रति पत्नी के मन में असन्तोष की आग पैदा करता है। इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उन्हें उलझाये रखना चाहती हैं। फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझ-सा लगने लगता है। दाम्पत्य-जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असन्तोष होने लगता है और यही असन्तोष उनके परस्पर व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देता है। यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं। एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं।

पति-पत्नी का सदैव एक-दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतन्त्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसी के अभाव में आजकल दाम्पत्य-जीवन एक अशान्ति का केन्द्र बन गया है। पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक-स्थिति भी उपयुक्त न होने पर स्त्रियों की बड़े-बड़े मूल्य की साड़ियाँ, सौन्दर्य-प्रसाधन, सिनेमा आदि की माँग पतियों के लिए असन्तोष का कारण बन जाती है। इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दाम्पत्य-जीवन की अशान्ति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता, जहाँ स्त्री-पुरुषों में आपस में नाराजगी, असन्तोष दिखाई न देता हो।

परस्पर एक-दूसरे की भावनाओं में स्वतन्त्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं

होता, जिसके कारण एक-दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में मनुष्य को जानकारी नहीं मिलती। इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकाल पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-साथी का समकक्ष होना आवश्यक है। अपने साथी की ज्ञान-वृद्धिविकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता।

योग्य होकर भी, एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए भी कभी-कभी स्वभावतया ऐसा व्यवहार हो जाता है, जो पति-पत्नी में एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल को महसूस कर, क्षमा माँगकर परस्पर मनो को साफ रखना चाहिए अन्यथा परस्पर मनोमालिन्य बढ़ जाता है और दाम्पत्य-जीवन में कटुता पैदा हो जाती है। महात्मा सुकरात, टालस्टाय, सन्त तुकाराम जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़ और लड़ाका स्त्रियों को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में निवाहा था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव, व्यवहार, निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी को चलाने में योग देती रही हैं। भारतीय नारी का महान् आदर्श इसी त्याग, सहिष्णुता और पतिव्रत-धर्म से निर्मित रहा है। पति-पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति-पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय-संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्द्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबन्धन है। अतः परस्पर किसी तरह का दुराव, छिपाव, दिखावा, बनावटी व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास, एक-दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दाम्पत्य-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव, छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति-पत्नी को एक-दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करना चाहिए। वैसे जहाँ तक बने, प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य-जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे

२.३८ गृहस्थ एक तपोवन

से बचना चाहिए, क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति-पत्नी एक-दूसरे पर सन्देह करने लगते हैं। वे सोचते हैं—“हो सकता है, यही व्यवहार हमसे किया जा रहा हो” और सन्देह की भूल-भुलैया में ही अनेकों दम्पतियों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति-पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर पति अपनी पत्नी से ही विभिन्न समय में, सलाहकार की तरह मन्त्री की-सी योग्यता, भोजन करते समय—माँ की वात्सल्यता, आत्म-सेवा के लिए—आज्ञा-पालक नौकर, जीवन-पथ में एक अभिन्न मित्र, गृहिणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी तरह पत्नी भी पति से जीवन निर्वाह के क्षेत्र में माँ-बाप, दुःख-दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा-संरक्षण के लिए भाई आदि। जब परस्पर इन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो एक-दूसरे में असन्तोष, अशान्ति पैदा हो जाती है, जिससे दाम्पत्य-जीवन में विकृति पैदा हो जाती है।

एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक-दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्द्धन में योग देकर, परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक-दूसरे मानसिक तृप्ति करते हुए दाम्पत्य-जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ-जीवन की काया-पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, ज्ञान-वृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करके दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक-दूसरे को समझते हुए अपने स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन की आधारभूत

आवश्यकताएँ

एक तेजस्वी संन्यासी अथवा एक प्रामाणिक नेता समाज की प्रगति को सही दिशा में आगे बढ़ाने में समर्थ होता है। पर उसकी सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि समाज में मूलतः प्रगति की कितनी ललक और तत्परता है ? समाज की यह तत्परता, उसकी आधारभूत इकाई ‘परिवार’ संस्था के स्वरूप पर निर्भर करती है और परिवार का भी केन्द्र है—दाम्पत्य-जीवन। जिस समाज में दाम्पत्य-सम्बन्ध स्वस्थ और आदर्श हुए, वह समाज सजग, सक्रिय, उत्साही, प्राणवान लोगों का समाज होगा। जबकि जहाँ दाम्पत्य-जीवन अस्वस्थ, रुग्ण,

विकृत हो वहाँ नागरिकों में अन्यमनस्कता, कुंठा और अनुत्साह की प्रधानता होगी। व्यक्तियों की टकसाल और समाज की इकाई परिवार की रचना दाम्पत्य से शुरू होती है। इसीलिए दाम्पत्य-जीवन को परिवार-संस्था की धुरी कहा जाता है।

भारतीय पुराण-मान्यता के अनुसार वर्तमान मानव-समाज स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की सन्तति है। रामचरित मानस में इन दोनों के दाम्पत्य-जीवन को श्रेष्ठ कहा गया है—

“स्वायम्भुव मनु अस सतरूपा।

जिन्ह ते षड नरसृष्टि अनूपा॥

दम्पति धर्म आधारन नीका।

अजहुँ गाव श्रुति जिन्हके लीका॥”

दाम्पत्य-जीवन की महत्ता को वैदिक ऋषि भी जानते थे। इसीलिए विवाह के उपरान्त वर-वधू को ऋषिगण आशीष देते थे—

“माँ विदन् परिपन्बिनो,

यअसीदन्ति दम्पति।

सुगेभिर्दुर्गमितीताम् ॥”

अर्थात्—हे दम्पती ! तुम दोनों का मार्ग सुगम हो और तुम उन रास्तों पर कभी न जाओ, जो दम्पतियों को अवसादयुक्त बनाते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का अर्थ है, पति-पत्नी का सच्चे अर्थों में सहजीवन ! यह स्त्री-पुरुष की अनन्यता का संकल्प है। सह-संवेदन, समत्व-भावना और सधन आत्मीयता उसकी आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। जीवन-यज्ञ में पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए पति-पत्नी को दम्पति का अर्धांग माना जाता है। इसीलिए तो तैत्तिरीय ब्राह्मण की व्यवस्था है—

“अयज्ञो वा ह्येष अपत्नीकः।”

(तै. ब्रा. २/२/२/६)

अर्थात्—जो अपत्नीक है पत्नी रहित है, वह यज्ञ का अधिकारी नहीं।

दाम्पत्य-जीवन की शुरुआत करते समय भारतीय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। यह प्रतिज्ञा यदि निष्ठापूर्वक दोनों ओर से निभाई जाय तो निश्चय ही दम्पति एक सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में सक्रिय रहते हैं और उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महमहा उठता है। ऐसे दम्पति जिस समाज में होते हैं, वह समाज एक सुरभित उद्यान बना रहता है।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि, शिक्षा और सौन्दर्य को आधार मानने की रीति है। निःसन्देह, सांसारिक जीवन को चलाने लिए ये सभी आवश्यक हैं। पर भौतिक उपकरणों से भी पहले गहन आत्मीयता और सघन संवेदना की उपस्थिति दाम्पत्य-जीवन की आरम्भिक शर्त है। यदि भावनाओं से पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे के अर्धांग रूप में जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम एवं आत्मीयता भरी रहती है, तो भौतिक साधन उन्हें सर्वोपरि नहीं प्रतीत होंगे, बाह्य आकर्षण उन्हें उतने आवश्यक नहीं लगेगा।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्त्व हैं। शारीरिक गठन, वय, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ते रहने वाली राग वृत्ति का नाम आकर्षण है। जबकि प्रेम इससे भिन्न एक आध्यात्मिक तत्त्व है, जो दाम्पत्य-जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्तव्यनिष्ठा का, आनन्द, प्रमोद तथा आह्लाद का संचार करता रहता है। अन्तःकरण का संतोष ही उसे पालता है।

यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रेम और आत्मीय सघनता का विकास सहयोग, समर्पण और त्याग के ही धरातल पर सम्भव है। सन्तुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता। एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक ही सिद्ध होता है। तुला के दो पलड़ों को संतुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुएँ दोनों ओर रखनी होती हैं। नाव के दोनों सिरों पर बैठे लोगों में परस्पर संतुलन न हो तो नाव डगमगाने लगती है और डूबने का खतरा आ खड़ा होता है। दाम्पत्य-जीवन में बराबरी का सहयोग और सहकार आवश्यक होता है। यह सघन सद्भाव विकास तभी होता है, जब दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य उदात्त हो। यह दोनों के समक्ष स्पष्ट रहे कि हमारे मिलन का अभिप्राय कामसेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर चलाने की व्यवस्था या एक कमाऊ साथी की प्राप्ति नहीं, अपितु दो आत्माओं का एकीकरण है। पति-पत्नी के बीच विद्यमान आकर्षण का चरम प्रयोजन है, दो व्यक्तियों के मिलन की ऐसी अनूठी प्रक्रिया का सम्पन्न होना, जो समाज में एक नई ही वस्तु को, नई ही प्रक्रिया को जन्म दे। नर-नारी के बीच ऐसे अद्भुत घुलनशील तत्त्व हैं कि यदि वे दोनों गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया संयुक्त व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से दोनों अपना पुराना स्तर छोकर नये स्तर के बन जाते हैं। कुँवारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, विवाह के बाद उसमें कायाकल्प जैसा परिवर्तन होता है। उसी प्रकार किशोर लड़के, विवाह के पूर्व जिस प्रकृति के थे, वे ही विवाह के उपरान्त भिन्न ही प्रकृति के युवक बन जाते हैं। पर इस घुलन के लिए मात्र शारीरिक सामीप्य अपर्याप्त है। वह तो एक बहुत ही छोटा अंश भर है। व्यक्तियों को घुलना उतने भर से नहीं होता। उसके लिए तो भावनात्मक सघनता आवश्यक है।

यही सघनता वह स्थिति लाती है कि एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। उस स्थिति में दोनों का ही एक-दूसरे पर मानो पूर्ण अधिकार रहता है।

पर सामान्यतः इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है। विवाह के उपरान्त पति, पत्नी पर सम्पूर्ण अधिकार मान बैठता है और पत्नी पति पर। इस अधिकार भावना में कर्तव्य भावना की उपेक्षा रहती है। पर कर्तव्य भावना की कमी रहने पर सच्ची आत्मीयता सम्भव नहीं।

अभी तो स्थिति यह है कि पत्नी-पति पर इस रूप में अधिकार मान बैठती है कि पति जब माँ-पिता, भाई-बहिन, परिजन-पुरिजन, देश-समाज, सबकी चिन्ता छोड़ बैठे, बस मुझे देखे, मेरी चिन्ता करे और मेरे बच्चों की। तटस्थ भाव से पत्नी की इस अपेक्षा को देखा-परखा जाय तो हँसी आती है, आश्चर्य भी होता है। पर पति की अपेक्षा तो और बढ़ी-चढ़ी होती है। वह तो पत्नी को अपनी गुलाम या कोई खरीदी हुई या छिनी हुई वस्तु मात्र मानने लगता है। मुँह से तो प्राणों के समान प्रिय आदि विशेषण ही प्रयुक्त करता रहता है, पर अपेक्षा यही पालता है कि पत्नी अनन्य सेविका सिद्ध हो। यदि सामान्यतः पत्नी की पति से अपेक्षाएँ हास्यास्पद होती हैं, तो सामान्यतः पत्नी की पति से अपेक्षाएँ नितान्त अनैतिक, अनुचित और घृणा योग्य तक कही जा सकती हैं। यद्यपि दोनों में से एक का भी उद्देश्य यह नहीं रहता। पर व्यवहार का ढर्रा तो ऐसा ही रहता है।

आवश्यकता सन्तुलित चिन्तन की है। पत्नी को समझना चाहिए कि विवाह निश्चय ही एक धार्मिक संस्कार है। उसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी मान लिया। पर वह एकमात्र धार्मिक संस्कार नहीं है। जातिकर्म, विद्यारम्भ, उपनयन से लेकर श्राद्धकर्म तक अन्य धर्म संस्कार भी हैं। मातृभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, देशभक्ति—जैसे अनेक अन्य कर्तव्य धर्म भी हैं। जीवन के शेष समस्त कर्तव्यों एवं धर्मों की अवहेलना कर पति बस एक ही कर्तव्य निभाए, विवाह के समय किये गये संकल्प को निभाने का। यह अपेक्षा कहाँ तक संगत एवं उचित है। भला, जो पति जीवन के शेष सभी कर्तव्य भुला बैठेगा, वह मात्र पत्नी के प्रति कर्तव्यों को कैसे याद रखेगा ? आखिर वह पति अपनी माँ की कोख से पैदा हुआ है, पिता के संरक्षण में पला-बढ़ा हुआ है, बहिनों के साथ हँसा-खेला, रोया-गाया है। समाज से सारी सुविधाएँ प्राप्त की हैं शिक्षा, अन्न-वस्त्र, अर्थ और सामाजिकता की। इन सबको जो भुला देगा, वह मात्र पत्नी के प्रति वफादार कैसे रहेगा ? माँ-पिता, भाई-बहिन से अब काम निकल गया, इसीलिए अब उनकी चिन्ता छोड़ो, ऐसी अपेक्षा पालने की तार्किक परिणति भी पत्नी याद रखे, कल की काम पिपासा और दैहिक आवेग के शमन के उपरान्त वह व्यक्ति पत्नी की भी चिन्ता छोड़ बैठेगा। जब उसने

२.४० गृहस्थ एक तपोवन

और कोई कर्तव्य नहीं निभाये, तो पत्नी के प्रति ही कर्तव्यों को क्यों निभायेगा ?

दूसरी ओर पतियों की अपेक्षाएँ तो इससे भी बढ़ी-चढ़ी और भीषण होती हैं। जिस निश्छल हृदय नारी ने विवाह के समय की गयी प्रतिज्ञा को ध्रुव सत्य मानकर इतने गहरे विश्वास के साथ समर्पण कर दिया है, उसके विश्वास को छलने तथा उसे मूढ़ ही बनाये रखने वाले पुरुष को क्या कहा जाय ?

यों, ऐसा कोई भी स्वस्थ पुरुष न होगा, जो अपनी पत्नी में विकसित विशेषताएँ न देखना चाहे और ऐसी कोई स्वस्थ पत्नी न होगी जो पति के व्यक्तित्व को समुन्नत न देखना चाहे। पर ये क्रमनाएँ मात्र चाहने से पूरी नहीं होती। कर्तव्य निर्वाह आवश्यक है। यदि पति-पत्नी के प्रति कर्तव्य निभाए, उसे विकसित होने में सहयोग दे, तो वह साहित्य, कला, संगीत, व्यवसाय, राजनीति या समाज सेवा के क्षेत्र में एक सर्वाधिक विश्वस्त मित्र और सर्वाधिक रुचिकर प्रिय साथी हो सकता है। पत्नी तो ऐसी साथी है, जो निरन्तर उपलब्ध रहेगी। ऐसा विकसित साथ आनन्द, उल्लास, स्फूर्ति, उत्फुलता, तृप्ति, प्रसन्नता का अजस्र स्रोत सिद्ध होगा। पर इस हेतु वांछित कर्तव्य निभाया जावे, तब। बिना कर्तव्य-निर्वाह के अपेक्षाएँ कभी पूरी होने वाली नहीं।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में गहरी दरार तभी पड़नी शुरू होती है, जब वे एक-दूसरे से मात्र अपेक्षाएँ पालते हैं। अपना कर्तव्य याद नहीं रखते। जहाँ एक-दूसरे के प्रति सम्मान, कृतज्ञता एवं समान संवेदना नहीं है, वहाँ सहजीवन कैसे हो सकेगा ? एक-दूसरे पर अपनी रुचियों का आरोपण और अपनी अपेक्षाओं को ही प्रधानता देना ही वह कारण है, जिससे दाम्पत्य-जीवन का रस स्रोत अवरोध होता तथा सूखता चला जाता है।

यह भलीभाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं और दाम्पत्य-जीवन की सफलता-सार्थकता की दोनों की जिम्मेदारी है, किसी एक की नहीं।

जो लोग सफल दाम्पत्य-जीवन के अभिलाषी हैं, उन्हें इस जीवन के कर्तव्यों को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। यदि उनमें परस्पर समझदारी, आत्मीयता, सद्भावना और सच्चे प्रेम की क्षमता है, तो वही दम्पति बनने की सोचें। जहाँ ये सद्गुण होंगे, जहाँ निष्ठा सच्ची होगी, वहाँ सन्तुलन, सामंजस्य, सफलता और सार्थकता सुनिश्चित है।

दाम्पत्य-जीवन सफल कैसे बने ?

मनुष्य को जब एक प्रगाढ़ आत्मीय और आजीवन सहचरत्व निभाने की आवश्यकता अनुभव होती है, तब विवाह होता है। विवाह एक ऐसी मैत्री का पुण्य आरम्भ

है, जो समस्त कमियों, कमजोरियों और त्रुटियों के बावजूद भी जीवनभर अक्षय्य बनी रहती है। अन्य मित्रताएँ बनती और टूटती रहती हैं। मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है और उन्हें भूलता रहता है, उन मित्रताओं के मूल में कोई न कोई स्वार्थ अवश्य रहता है। इसीलिए वे बनती हैं और टूटती भी हैं। जीवनसाथी को अंगीकार करने का धर्मानुष्ठान विवाह ही एकमात्र ऐसी मित्रता है, जो निःस्वार्थ भाव से आरम्भ होता है, आत्म त्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित, पल्लवित और पुष्पित होता है। ये भाव आजीवन बने रहे तो दाम्पत्य-जीवन में सुख-शान्ति और आनन्द के मधुर फल लगते हैं।

कई लोग समझते हैं कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में सुख-सुविधाओं के साधन पास में हों तो व्यक्ति धिरन्तन उनका लाभ उठाता रह सकता है। यह मान्यता अब तक के हजारों-लाखों और करोड़ों द्वारा कही जाय तो भी कम है। दम्पतियों के अनुभव में गलत ही सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दम्पति ने आज तक यह अनुभव नहीं किया कि धन-सम्पदा के कारण वे दुःखी और क्लान्त विवाहित जीवन जी रहे हैं। धन के अभाव से उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशतायें अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं पर वह कष्ट भी मधुर दाम्पत्य सम्बन्धों के कारण कम पीड़ा पहुँचाते हैं। पति-पत्नी का प्रेम उन कष्टों के घाव पर मरहम का काम करता है।

अक्सर तो देखा गया है कि धनवान व्यक्तियों का दाम्पत्य-जीवन निरानन्द और नीरस हो जाता है। पति धन कमाने में इतना व्यस्त रहता है कि वह पत्नी से दो प्रेम भरे बोल भी नहीं बोल सकता। इसके अभाव में पत्नी धन और ऐश्वर्य में उस सुख की तलाश करती है, परन्तु वहाँ निराशा होना पड़ता है। फलतः सारा आक्रोश पति या परिवार के अन्य सदस्यों पर उतरता है, तो दाम्पत्य सम्बन्ध कटुतापूर्ण तथा मन-मुटाव से भर जाता है।

कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए पति-पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति-पत्नी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक सुलझा और निखरा तो बना सकते हैं। पर दाम्पत्य-जीवन के लिए जो दूसरे तत्त्व अनिवार्य हैं, वे न हों तो शिक्षा उल्टे दाम्पत्य सम्बन्धों में विकार उत्पन्न कर देती है। शिक्षा दाम्पत्य-जीवन को सरस भी बना सकती है और नीरस भी। एक बारगी शिक्षा न भी हो और दाम्पत्य सम्बन्ध उन सब अपेक्षाओं को पूरा करते हुए चल रहे हों जो कि उसके लिए आवश्यक हों तो पति-पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन को सफलतापूर्वक जी रहे हैं। जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए धन भी आवश्यक है और शिक्षा भी। पर मूल आवश्यकता कुछ और ही है। धन और शिक्षा वही काम करते हैं जो सोने के आभूषण बनाने के लिए आँव और हथौड़ी हो तो सोने का आभूषण बन जाता है पर सोना ही नहीं हो तो आभूषण किस धातु का बनेगा। धन और शिक्षा से दाम्पत्य-जीवन को सुविधा सम्पन्न बनाया जा सकता है पर आनन्दमय नहीं। आनन्दमय दाम्पत्य-जीवन के लिए उन गुणों की आवश्यकता है, जो पति-पत्नी के दो शरीरों में बसने वाली दो आत्माओं को एक सूत्र में आबद्ध कर दें। वे गुण हैं प्रेम, आत्मीयता, स्नेह, त्याग और परिमार्जित भावनाएँ तथा परिमार्जित दृष्टिकोण।

प्रेम ही वह सूत्र है जो पति-पत्नी को बाँधता है। न केवल बाँधता है वरन् आत्मोत्सर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो सौन्दर्य है और न कामुकता। इस दिव्य अमृत की वर्षा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने पर होती है। स्त्री-पुरुषों के स्वभाव मिलते हैं और दोनों एक-दूसरे के लिए आत्मदान की भावना रखते हैं तो दीन-हीन स्थिति में कम साधन और कम शिक्षा में भी हँसी-खुशी का मधुर जीवन जिया जा सकता है।

अशिक्षित और गरीब दम्पतियों में जो प्रेम, जो आनन्द और जो संगीत होता है उसका कारण यही दिव्य प्रेम है। सौभाग्य से भारतीय परिवारों में जो आधुनिकता से कोसों दूर है। लड़कियों को यह भावनाएँ विरासत के रूप में मिलती हैं और वे इन्हीं भावनाओं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बन जाती हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ सकती हैं। आधुनिक परिवारों में दाम्पत्य-जीवन का आनन्द स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक-दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती। भावनाएँ होती तो हैं पर उन भावनाओं से भी अधिक महत्त्व अपने स्वार्थ को दिया जाता है। आधुनिक शिक्षित परिवारों में तनावपूर्ण दाम्पत्य सम्बन्धों का कारण यह है कि वहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे की सुविधाओं से अधिक अपने स्वार्थ को महत्त्व देते हैं। कहना नहीं होगा कि ऐसा दाम्पत्य-जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक सम्बन्धों जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक-सी भी कमी आ जाने पर चटखने लगता है।

असुन्दर और कुरूप जोड़ियाँ भी प्रेम का अमृत लेकर हँसी-खुशी तथा मौज-मस्ती की जिन्दगी जीती देखी जा सकती हैं। जबकि रूपवान और सुन्दर दम्पति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं। प्रायः तो सुन्दर दम्पति जो शारीरिक आकर्षण से आकृष्ट होकर विवाह बन्धन में बँधते हैं असफल जीवन जीने लगते हैं। क्योंकि शरीर की सुन्दरता कुछ ही समय तक बनी रहती है और वे प्रेम भावनाएँ

बढ़ाने की अपेक्षा अपना सौन्दर्य सुरक्षित करने की ओर ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दम्पतियों के जीवन में दो-चार बच्चे होने पर नरक-सा वातावरण बन जाता है क्योंकि तब सौन्दर्य चुक गया होता है और प्रेम-भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक-दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी सुन्दर जोड़ियाँ असफल दाम्पत्य-जीवन जीती हैं यदि वे भी प्रेम भावना के विकास की ओर ध्यान दें तो सुन्दरता के ढल जाने पर भी हँसी-खुशी का जीवन बना रह सकता है, क्योंकि बच्चे हो जाने पर तो दाम्पत्य-जीवन में और भी परिपक्वता तथा निखार आता है।

आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। उसमें एक दूसरे की आवश्यकताओं का इतना ध्यान रहने लगता है कि अपनी आवश्यकताएँ एकदम उपेक्षणीय लगने लगती हैं। साथी की सुविधा का ध्यान रखना ही अपना धर्म बन जाता है, उसमें साथ-साथ जीने तथा साथ-साथ मरने की दृढ़ भावना बन जाती है। वहाँ मृत्यु भी आनन्दपूर्ण बन जाती है। सन् १९१२ में एक ऐसा ही दृश्य टाइमिनिक नामक अँग्रेजी जहाज पर देखने में आया था। समुद्री तूफान के कारण वह जहाज डूबने लगा। उसके कर्मचारी लाइफ बोटों द्वारा यात्रियों तथा आवश्यक सामान को बचाने लगे। उसी जहाज पर स्ट्यास नामक दम्पति भी यात्रा कर रहे थे। जहाज में इतना पानी भर गया कि दोनों में से एक को ही बचाया जा सकता था। स्ट्यास ने अपनी पत्नी इसाडोरा को बचाने की सोची और इसाडोरा स्ट्यास को लाइफबोट पर जाने के लिए ज़िद करती रही। अन्त में स्ट्यास ने अपनी पत्नी को उठाकर लाइफबोट में बिठा दिया। जहाज डूबने को ही था इसाडोरा लाइफबोट से कूदकर अपनी पति के पास आ गई और बोली—“मैं अकेली जीकर भी क्या करूँगी ?” क्यों न हम दोनों साथ-साथ ही मृत्यु का वरण करें।” दोनों ने एक साथ जलसमाधि ली और मौत को अपने गले लगाया। इसाडोरा द्वारा कहे गये इन शब्दों में कितनी आत्मीयता, कितना प्रेम और कितनी भावना थी ?

विश्वास दाम्पत्य-प्रेम का प्राण है। पति-पत्नी को एक-दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दुराव, छिपाव का कहीं कोई नाम भी न रहे। नव-दम्पतियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह की भावना रहती है। पत्नी भी पति का यकायक विश्वास नहीं कर पाती। इसका कारण अपरिचय ही है। जैसे-जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आते जायें वैसे-वैसे सन्देह की सम्भावना को निर्मूल करते जाना चाहिए, उसे जड़ से ही उखाड़ फेंकना चाहिए। दुराव-छिपाव, दिखावटी और बनावटी व्यवहार की नीति जल्दी बदली जा सके, उतनी जल्दी बदल डाली जाय और परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाय।

उदारता विश्वास का पोषक तत्व है। दाम्पत्य-जीवन में कई ऐसे अवसर भी आते हैं जब मन में कोई सन्देह पलता है और पति या पत्नी किसी अनजाने संकोच के कारण एक-दूसरे से कह या पूछ नहीं पाते। दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। सन्देह का अंकुर जब बढ़ने से रोका नहीं जाता तो वह घृणा और अविश्वास के वृक्ष के रूप में बदलने लगता है और जरा-जरा-सी बातों पर एक-दूसरे पर आक्षेप तथा छींटाकशी की प्रवृत्ति बल पकड़ती है। यह घृणा अविश्वास को इतना बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती है।

उचित तो यह है कि सन्देह का वातावरण ही न बनने दिया जाय। सन्देह उत्पन्न होता है पति या पत्नी से कोई बात छुपाने पर और किसी पक्ष को यदि सन्देह हो भी जाय तो सम्मानपूर्वक उसे दूसरे से पूछकर दूर कर लेना चाहिए। ये बातें परस्पर से ही सम्बन्धित हैं। इनमें न तो किसी मध्यस्थ की आवश्यकता रहती है और न किसी माध्यम की। घर कर गये तत्त्व और भी गड़बड़ी पैदा करते हैं। सद्भावनापूर्वक एक-दूसरे से पूछ लेना ही अपने सन्देह को दूर करने का एकमेव मार्ग है।

दुराव-छिपाव के अतिरिक्त उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी सन्देह का वातावरण बना देता है। पति, पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और पत्नी, पति के लिए। सैद्धान्तिक रूप से तो इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है परन्तु व्यवहार में यदा-कदा यह तथ्य भुलाया भी जाने लगता है। कई बार ऐसी स्थितियाँ भी बनती हैं जिसमें उपेक्षा, मममुटाव भी पैदा कर देती, जैसे स्त्री बीमार है और पुरुष अपने काम-काज में इतना व्यस्त है कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की फुरसत ही नहीं मिलती। फुरसत निकाली तो जा सकती है पर पति यदि स्त्री के स्वास्थ्य को हल्के रूप में लेता है तो वह स्थिति दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देती है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं। फिर एक-दूसरे की उपेक्षा हो तो सन्देह का जन्म अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

दाम्पत्य-जीवन को स्वर्गोपम बनाने में भावनात्मक पक्ष महत्वपूर्ण होता है। भावनात्मक परिष्कार का अर्थ है पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठ और सद्भाव सम्पन्न हों। पुरुष में पुरुषत्व के गुण हों और स्त्री में नारीत्व के तो कोई कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन में आनन्द की धारा न बहे। दाम्पत्य-जीवन के सभी क्रिया-कलाप, कार्यक्रम और योजनाएँ इन्हीं गुणों के आधार पर बनती या चलती हैं। पुरुषत्व का अर्थ है—शक्ति, साहस, सक्रियता और नियमितता तथा नारीत्व में कोमलता, मृदुलता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान होने चाहिए।

पति-पत्नी में अनेक गुणों का पमीहा स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि परिमार्जन और परिवर्धन अपने आप होता रहता है तथा जीवन में घनिष्ठता भी अपने आप ही बढ़ती रहती है तथा उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती। एक बात का स्मरण और रखना चाहिए कि गलतियाँ सभी से होती हैं। उनके कारण छोटी-छोटी बातों के लिए एक-दूसरे का झिड़कना, डाँटना, अपशब्द कहना या कोसना मूर्खता का चिह्न है। इन बातों से दाम्पत्य-जीवन की जड़ें धीरे-धीरे रेदी जाती हैं।

सफल दम्पति ही सुयोग्य सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं। सद्गुणी नागरिकों का जन्म सुयोग्य सन्तानों के रूप में होता है। अतः दाम्पत्य-जीवन की सफलता या असफलता पूरे समाज को प्रभावित करती है। इसलिए न केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक दृष्टि से वरन् सामाजिक दृष्टि से भी गार्हस्थ्य योग की साधना अनिवार्य है।

पति होने का अहंकार त्यागिये

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर संरचना को छोड़कर उनमें कोई भेद नहीं रखा है। शरीर-संरचना में भी भेद इसलिए है कि दोनों के सहयोग से सृष्टि क्रम चलता रहे। संरचना सम्बन्धी इस अन्तर को छोड़ दें दोनों के जीवन, श्वास, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखें, माँस, मज्जा और रक्त, अस्थियाँ एक जैसे तत्त्वों से ही बनी हैं। प्रकृति प्रयोजन के लिए और आत्मिक आदान-प्रदान के लिए दोनों का साथ रहना आवश्यक है और यह आवश्यकता पति-पत्नी के सम्बन्धों के रूप में पूर्ण होती है, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता के साथ सघन होते जाते हैं। कहना नहीं होगा कि प्रेम और आत्मीयता का पाठ मनुष्य परिवार से ही आरम्भ करता है और परिवार उसके लिए इतना आवश्यक है कि उसके बिना किसी व्यक्ति का जीना तक दूभर हो जाता है।

परिवार बसाने और पति-पत्नी चुनने की सुविधा प्रकृति ने मनुष्य को ही दी है। इसे एक सामाजिक समझौता भी कहा जा सकता है और आत्मिक विकास का एक उपक्रम भी। कहने को कुछ भी कह लिया जाय पर इस क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का कार्य तथा दायित्व बाँटने एवं उन्हें तत्परतापूर्वक निभाने की परम्परा चली। एक व्यक्ति निर्वाह के साधन जुटाता है, तो दूसरा उन्हें उपयोग करने लायक बनाता है। एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है तो दूसरा घर की आन्तरिक व्यवस्था देखता है। यहाँ तक बात समझ में आती है और उचित भी है कि सुविधा की दृष्टि से दोनों एक-एक क्षेत्र सम्हालें। परन्तु उसका क्या औचित्य है कि इन्हीं में से किसी एक आधार को लेकर कोई पक्ष अपने को बड़ा समझने लगे तथा दूसरे का शोषण करे ? किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कोई अपने साथी के उत्तरदायित्वों को

स्वयं निभाने में आनाकानी करे, संकोच करे और हेठी समझे, यह विकृति नहीं तो और क्या है ?

स्त्री के जिम्मे घर के काम रहते हैं। रसोई बनाना, सफाई करने, बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्य गृहस्थी कार्यक्षेत्र में आते हैं। पुरुष ने अपने लिए बाहर से कमाना, नौकरी-धन्धा करना, खेतीबाड़ी सम्हालने जैसे काम ले रखे हैं। परन्तु यह विडम्बना पुरुषों के मामले में ही अधिकतर देखने को मिलती है कि आवश्यकता पड़ने पर घर के अन्दरूनी कामों की देखभाल करने में अपनी हेठी समझने लगते हैं। महिलाएँ तो आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती हैं। निर्वाह के साधन जुटाने में भी लगती देखी जा सकती हैं, परन्तु पति बीमारी की अवस्था में भी पत्नी से ही अपेक्षा करता है कि वह उसे खाना बनाकर खिलाए और बच्चों को सम्हाले।

जिस आधार पर सहचरत्व धर्म का पालन करने के लिए दायित्व जीवन आरम्भ किया गया था, यह रीति-नीति उस आधार पर ही कुशल होता है। विवाह के समय वर-वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और प्रगति के पथ पर साथ-साथ अग्रसर होंगे। पर आगे चलकर यह प्रतिज्ञा उस समय अधूरी और लूली-लंगड़ी रह जाती है, जब पुरुष पत्नी का काम सम्हालने में छोटपन अनुभव करता है और उसी प्रकार उसे पुरुष के क्षेत्र में प्रवेश करने से भी रोकता है।

सुविधा की दृष्टि से कार्यक्षेत्र का विभाजन अपने दायित्वों और कर्तव्यों की अन्तिम सीमा रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता। सचाई तो यह है कि पति और पत्नी दोनों मिलकर ही एक सम्पूर्ण इकाई, समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं और दोनों एक-दूसरे के सहयोग से ही आगे बढ़ सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से कामों का विभाजन कर लेना और बात है परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा जाए। औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर दोनों एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक बनने का सिद्धान्त चरितार्थ करें और वफादार तथा कर्तव्यनिष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों या बाहर के हों।

देखा गया है कि स्त्रियाँ तो फिर भी अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती। अपने को घर का मुखिया स्वामी समझने के अहंकार से पुरुष ही दूसरे कामों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है। जैसे पत्नी को परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है, लेकिन कभी वह बीमार पड़ जाती है तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में खाना बनाकर दे

या वह होटल में खाने की बात सोचेगा अथवा घर में बच्चे हों तो उनके हाथ से भोजन बनवाने का विचार करेगा।

पत्नी के होते हुए पति महाशय को अपने हाथ से खाना बनाने में संकोच लगता है। उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है। सहज भाव से पत्नी ने किसी कारणवश पति को भोजन बनाने के लिए कह भी दिया तो पति महाराज इस तरह तुनक उठेंगे, जैसे उन्हें कोई बहुत ही गन्दा और नीच काम करने के लिए कह दिया हो। इस मनोभूमि का कारण केवल पति होने का अहंकार ही है, इसके सिवा कुछ नहीं अन्यथा पत्नी को अपना साथी सहचर मानने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते। प्राचीनकाल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भीति ही लड़के भी पाक विद्या और गृहकला सीखते थे। गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही गुरुकुल के सभी बच्चों की देखभाल करते और भोजन बनाने से लेकर आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच नहीं करते थे।

इस अहंकार के कारण पुरुष घर की आन्तरिक व्यवस्था में से शायद ही किन्हीं कार्यों में रुचि लेता हो भोजन बनाने की बात तो दूर रही, बच्चों को सम्हालने, बीमार की सेवा-सुश्रूषा करने तक के लिए पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है। लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े या उसके बख उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो पत्नी को गृहलक्ष्मी, अर्द्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघायी जाता और कहाँ उसका छोट-सा काम करने में भी संकोच या झिझक होती है।

कई बार तो यहाँ तक देखा जाता है कि स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं। उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता, दूसरी ओर पुरुष व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज करने और ताश-शतरंज खेलने में ही दिन गुजार देते हैं। जबकि आवश्यक यह है कि यदि अपने पास समय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाए ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना सम्भव हो सके उसे बचाया जा सके। लेकिन लोग काम-काज में सहयोग करना तो दूर रहा, पत्नी के प्रति सहानुभूति तक नहीं रखते, उल्टे अपने काम-काज, कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं।

पति के इस अहंकार ने भारत में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है कि पतिव्रत के नाम पर वह बेचारी पति की बिना खरीदी गुलाम और बन्धुआ मजदूर बनकर ही रह जाती है। इस स्थिति को बदला जाना चाहिए और पुरुष को अपने पति होने का अहंकार छोड़कर पत्नी के साथ सच्चे सहयोगी, मित्र का व्यवहार अपनाना चाहिए।

मधुर दाम्पत्य के मूल आधार

परिवार एक छोटा-सा संसार है, जिसमें छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी सदस्य अपना भिन्न-भिन्न किन्तु महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सदस्यों में कई तरह के सम्बन्ध होते हैं। आपसी स्नेह-सद्भाव के बल पर परिवारों में स्वर्ग के वातावरण की सृष्टि होती है, तो उसके सृजन और विकास में पति-पत्नी के सम्बन्धों का भी बड़ा असर पड़ता है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध पारिवारिक जीवन की रीढ़ होते हैं। उनमें सामंजस्य, मधुरता और तालमेल मिलाना उतना ही आवश्यक है, जितना कि किसी व्यवसाय-उद्योग में लगे साझेदार का आपसी सहयोग और एक-दूसरे से परामर्श कर कोई निर्णय लेने की रीति-नीति। व्यावसायिक क्षेत्रों में लगे साझेदारों को आपसी सहयोग और तालमेल इसलिए बनाये रखना पड़ता है कि उसी में उनका लाभ रहता है और उस सहयोग के आधार पर काम-काज भी सुचारु रूप से चलता रहता है। दाम्पत्य-जीवन में आपसी सम्बन्धों को मधुर और सौहार्द्रपूर्ण बनाये रखने की आवश्यकता अन्य कारणों से ही है। इसकी तुलना न तो किसी व्यवसाय से की जा सकती है और न ही दम्पति को किन्हीं स्वार्थों के कारण एक साथ इकट्ठा हुआ बताया जा सकता है। खाना बनाने, कपड़े साफ करने और मकान को साफ-सुथरा रखने के लिए जीवन संगिनी का साथ किया जाय तो वह उसके निर्वाह की जिम्मेदारियाँ वहन करने तथा बच्चों को पालने के रूप में बड़ी महँगी कीमत चुका कर प्राप्त होता है। इसी प्रकार आर्थिक संरक्षण के लिए ही कोई स्त्री विवाह करे तो कठपुतली के समान स्वयं को पति के इशारों पर नाचने और तमाम तरह की दासता स्वीकार करने के रूप में उसके भी बड़ा महँगा प्रतिदान चुकाना पड़ता है।

स्पष्ट ही विवाह—पति-पत्नी का संग साथ दाम्पत्य-जीवन का आरम्भ मात्र स्वार्थ भावना के लिए नहीं किया जाता। उसके साथ एक-दूसरे की सेवा, परस्पर सहयोग, सहिष्णुता और उदारता जैसे आध्यात्मिक गुणों का अर्जन ही गृहस्थ साधना का मुख्य लाभ है। दाम्पत्य-जीवन में इन आदर्शों का समुचित ध्यान रखा जाय और अपने सम्बन्धों को उनके अनुरूप ढालने के लिए प्रयत्नशील रहा जाय तब तो परिवार में सुख-स्वर्ग की सृष्टि और आपसी सम्बन्धों में मधुरता, स्निग्धता बनी रहती है अन्यथा इन तत्त्वों की अपेक्षा होते ही दाम्पत्य सम्बन्धों में चटखाव आने लगता है।

कहा जाता है कि—“अधिकांश दम्पति असफल पति-पत्नी हैं।” प्रश्न उठता है कि यदि असफल हैं तो यह सम्बन्ध टूट क्यों नहीं जाते ? टूट सकते थे, यदि भारतीय समाज में उस परम्परा को हेय दृष्टि से न देखा जाता तो और बने रहते हैं इसलिए कि असफलता को सफलता में

बदलने का अवसर हर घड़ी उपलब्ध रहता है। यदि दाम्पत्य-जीवन की महिमा-गरिमा को प्रारम्भ से ही समझकर उसे महत्व दिया जाता रहे तो असफल होने का दुर्भाग्य नहीं देखना पड़ेगा और कदाचित् यह प्रतीत होता हो कि हमारे जीवन में विसंगतियाँ, मनमुटाव, तालमेल या सामंजस्य का अभाव दिखाई दे रहा है तो उन समस्याओं का समाधान करने के लिए समझदारी से काम लिया जा सकता है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध में कटुता लाने वाले मुख्य कारणों में से एक है—दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति का अभाव। यह तो निश्चित है कि सभी मनुष्यों का सोचने-समझने का ढंग एक-सा नहीं रहता और फिर पुरुष तथा नारी में तो प्रकृति ने स्वाभाविक विशेषताएँ उत्पन्न की हैं। उनका सोचने-समझने का ढंग तो एक-सा होना और भी कठिन है। यदि नव-दम्पति आरम्भ से एक-दूसरे को समझने और स्वीकार करने की नीति अपनाये तो पारिवारिक सम्बन्धों में आने वाले कटु प्रसंगों से बहुत कुछ मुक्त रहा जा सकता है।

अलग विचार, भिन्न रुचियों के कारण पति-पत्नी में मनमुटाव होता है, तो इसका कारण यह नहीं है कि यह भिन्नता दोष है। भिन्नता स्वाभाविक है। यदि दोष है तो वह है—सहिष्णुता का अभाव। एक-दूसरे पर अपनी इच्छाओं और विचारों का जबर्दस्ती आरोपण, अपनी संतुष्टि को प्रधानता देना। एक समाजशास्त्री के शब्दों में पारिवारिक विग्रहों का मूल कारण यह रुचि भिन्नता नहीं बल्कि स्वार्थ भावना की अधिकता है। परिवार का आदर्श है एक-दूसरे के लिए अपने स्वार्थ का अधिक से अधिक त्याग; जबकि समस्याग्रस्त दाम्पत्य-जीवन में पति-पत्नी अपनी माँगों की पूर्ति और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही अधिक आग्रहशील रहते हैं। यदि पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करने लगे, स्वयं के सन्तोष की अपेक्षा साथी की आकांक्षाओं पर ज्यादा ध्यान देने लगे तो सम्बन्धों में प्रेम का जो अमृत बहने लगता है, उससे परिवार का वातावरण ही स्वर्गीय बनने लगता है।

आमतौर पर पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहते हैं। वे यह सोचकर दुःखी होते हैं कि हमें अपनी रुचि और पसन्द का साथी नहीं मिला। कोई पति, पत्नी की कम शिक्षा, उसके साथ आया थोड़ा दहेज, ससुराल के अधिक प्रतिष्ठित न होने या पत्नी के सुन्दर न होने की बात सोच-सोचकर दुःखी होते रहते हैं। इसी प्रकार पत्नियाँ अपने पति के कठोर स्वभाव, अशिष्ट होने और कठोर नियन्त्रण करने की शिकायतें करती हैं और दुःखी बनी रहती हैं। यह मानकर चलना चाहिए कि पूर्ण रूप से निर्दोष या त्रुटि रहित व्यक्ति मिलना मुश्किल ही नहीं असम्भव-सा है। कमियाँ और कमजोरियाँ सभी में होती हैं। उन्हें नजर-अन्दाज तो नहीं किया जाना चाहिए, पर इतना असहिष्णु भी नहीं होना चाहिए कि उनके बारे में चिन्तन

करते-करते ही हम अपनी मानसिक शान्ति को नष्ट करें और प्रेम में घृणा का विष घोलते रहें।

मधुर दाम्पत्य-सम्बन्धों के लिए एक आवश्यक शर्त है, एक-दूसरे को स्वीकार करना। न केवल स्वीकार करना वरन् एक-दूसरे के प्रति सम्मान और कृतज्ञता का भाव रखना। पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट होते हैं, यह देखकर कि उन्हें अपनी कल्पना का साथी नहीं मिला। पति के मस्तिष्क में एक आदर्श नारी की कल्पना रहती है, उसी प्रकार पत्नी भी एक आदर्श पुरुष की कल्पना रखती है। वह कल्पना स्त्री या कल्पना पुरुष यथार्थ से बहुत दूर होते हैं, इसलिए वास्तविक जीवन में उन्हें अपने साथी के व्यक्तित्व में दोष ही दोष दिखाई देते हैं। इन दोषों के कारण मनमुटाव या घृणा का हल्का-सा भाव उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप सम्बन्धों में कड़ुआहट की विषवल्ली उगने लगती है।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में अनपेक्षित स्थितियाँ तब भी आती हैं, जब दोनों एक-दूसरे से अस्वाभाविक आशाएँ करने लगते हैं। उदाहरण के लिए पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर और किसी का विचार ही न करे, उसे ही सर्वाधिक महत्त्व दे। जबकि पत्नी के भी भाई हैं, बहिन हैं, माता-पिता हैं, ससुराल में ही और दूसरे स्वजन भी हैं। उनसे भी सम्बन्ध रखना पड़ता है और उनके लिए भी समय देना पड़ता है। भावुक पति जब देखते हैं कि उनकी पत्नी दूसरे स्वजनों पर ध्यान दे रही है, तो उसे अपनी उपेक्षा लगने लगती है। परिणामस्वरूप भ्रान्ति को लेकर मनमुटाव जैसे अवरोध आ खड़े होते हैं।

इसी प्रकार पतियाँ भी सोचती हैं कि उनका पति केवल उनका ही होकर रहे। उन्हीं के लिए वह अधिक से अधिक समय देता रहे और अधिक से अधिक रुपया भी खर्च करता रहे; जबकि पति के भाई-बहिन और माता-पिता से लेकर मित्र-परिचित भी हैं, जिनके साथ उसे सम्बन्ध निभाने पड़ते हैं। उनके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करना पड़ता है। जिन मित्रों ने आड़े वक्त ऋण उसे सहयोग देकर कठिनाइयों से उबारा है। उनके मित्र ऋण से उद्धार होने के लिए स्वयं अपना कर्तव्य भी पूरा करना आवश्यक है; किन्तु पत्नी यह बात समझना नहीं चाहती और पति से यह अपेक्षा करती है कि वह पूर्व सम्बन्धों तथा अन्य कर्तव्यों की उपेक्षा कर उसे ही अपना सर्वस्व सौंप दे।

दाम्पत्य-जीवन के आरम्भ में ही इस तरह की स्थितियाँ आये तब तो जल्दी ही खाई पैदा होने की सम्भावना और भी ज्यादा रहती है। पत्नी अपने माँ-बाप से जाकर यह शिकायत करती है कि वे अपने माँ-बाप और भाई-बहनों को ही महत्त्व देते हैं और उसका कोई

ध्यान नहीं रखते या उसकी उपेक्षा करते हैं। पति अपने माँ-बाप से शिकायत करता है कि वह इस घर के लोगों की अपेक्षा अपने मायके वालों को ज्यादा महत्त्व दे रही है। अप्रभावक इन स्थितियों को सुलझे रूप में देखने की अपेक्षा पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर अधिक देखने लगते हैं। हरेक को अपनी बेटी या अपने बेटे का हित ही ज्यादा सूझता है और वे जाने-अनजाने दोनों के बीच खाइयाँ पैदा करने लगते हैं।

इस प्रकार का अनपेक्षित स्थितियों का कारण प्रायः पति-पत्नी की आत्म-केन्द्रित धारणा या आकांक्षाएँ होती हैं। कहा जा चुका है कि आजकल दाम्पत्य-सम्बन्धों में असफलता और विग्रह की स्थिति इसलिए नहीं आ रही है कि कोई पक्ष किसी का अपमान करता है या कोई बड़ी गल्ती करता है बल्कि ये स्थितियाँ किसी भी पक्ष की स्वार्थ प्रधान रीति-नीति से अधिक उत्पन्न होती हैं। दाम्पत्य सूत्रों में आबद्ध होते समय—विवाह संस्कार के समय प्रतिज्ञाएँ पढ़ी जाती हैं कि हम दो शरीर एक प्राण दो किनारे एक धारा और दो मन एक आत्मा बनकर रहेंगे। परन्तु यह प्रतिज्ञाएँ प्रतिज्ञा बनकर ही रह जाती हैं, जीवन और व्यवहार में नहीं उतर पातीं। गृहस्थ धर्म के साधन क्षेत्र में उतरने के बाद पति-पत्नी अपने व्यक्तिवादी हितों का आग्रह जरा भी ढीला नहीं करते तो तमाम कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

दाम्पत्य-सूत्रों में आबद्ध होते समय की गयी प्रतिज्ञाओं, ग्रहण किये गये व्रतों को जीवन में भी उतारने के लिए प्रयत्नशील रहा जाय तो दाम्पत्य-जीवन मधुर से मधुरतम होता चलेगा। इस सम्बन्ध में यह मानकर चलना चाहिए कि पति-पत्नी को सुख-दुःख साझे होते हैं, उनके सम्बन्धों का आरम्भ 'मैं' और 'तुम' को विसर्जित करने से होता है और 'हम' के रूप में परिणति होकर पूरा होता है। मनमुटाव, सम्बन्धों में बिखराव और एक-दूसरे के प्रति गलत धारणाएँ, अनुचित ग्रन्थियाँ तब बनने लगती हैं जबकि एक होकर जीने का एहसास खत्म होता जाता है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि इस व्रत को तोड़ने के लिए एक शब्द या छोटी-सी लापरवाही पर्याप्त होती है और पति-पत्नी क्षुद्र 'मैं' 'तुम' के अकेलेपन में सिमट-सिकुड़कर जीने लगते हैं।

पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध प्रेमपूर्ण रहें, इसके लिए आवश्यक है कि वे 'मैं' नहीं 'तुम' के हितों को प्रमुखता दें, एक-दूसरे पर गहरा विश्वास करें और उनमें एक-दूसरे के लिए त्याग तथा समर्पण की भावना हो। वे पूर्वाग्रहों और अपने संस्कारों को एक-दूसरे पर थोपें नहीं।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता सघन प्रेम पर निर्भर

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शिक्षा, समृद्धि को आधार मानने की परम्परा चल पड़ी है। सांसारिक जीवन को चलाने की दृष्टि से यह उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हो सकते हैं। इनके बिना गाड़ी चलेगी कैसे, अपनी, अपने कुटुम्ब और देश की उन्नति होगी कैसे ? किन्तु इस महत्वपूर्ण 'धर्म संस्कार' को यदि जीवन की असामान्य घटना के रूप में लिया जाये, जैसा कि वैयक्तिक आकांक्षाओं से अभिव्यक्त होता है, तो दाम्पत्य की सफलता के लिए भौतिक उपकरण उतने अनिवार्य प्रतीत नहीं होते। गहन आत्मीयता और पारस्परिक संवेदना के आधार पर अभावग्रस्त स्थिति में भी लोगों को हँसी-खुशी का जीवन जीते देखा गया है। पश्चिमी देशों में भारतीय कुटुम्ब प्रणाली को सर्वाधिक सफल बनाने वाली एक बहु प्रचलित कहावत है—“हैपी ऐज पुअर इण्डियन विलेजर” (निर्धन भारतीय ग्रामवासी के समान सुखी) वह इस तथ्य की स्पष्ट विभाजक रेखा कि मनुष्य अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी सुखी और आनन्दित रह सकता है।

पर यह सम्भव एकमात्र पति-पत्नी के घनिष्ठ सम्बन्धों पर ही है। यदि भावनाओं से वस्तुतः एक-दूसरे के अर्धांग के रूप में वे जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम और आत्मीयता बनी रहती है तो भौतिक साधन तुच्छ से लगेंगे। बाह्य आकर्षण मिथ्या प्रतीत होंगे।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्त्व हैं। शरीर के गठन, वय, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ती रहने वाली सत्ता का नाम आकर्षण है किन्तु वह प्रेम जो दाम्पत्य-जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्तव्यनिष्ठा का, आनन्द-आमोद और आह्लाद का संचार करता रहता है, वह एक आध्यात्मिक तत्त्व है जो कम कभी नहीं होता। जिसके लिए बाह्य सौन्दर्य और आकर्षण कोई अर्थ नहीं रखते। अन्तःकरण का सन्तोष ही उसे पालता है। इसलिये प्रेम को दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मूल आधार माना गया है।

अपने खण्ड काव्य 'उर्वशी' में कविवर 'दिनकर' ने अन्तःप्रेम का बहुत ही हृदयस्पर्शी विवेचन किया है। वे लिखते हैं—नारी के भीतर एक और नारी विद्यमान रहती है, यह अगोचर और इन्द्रियातीत है। जब पुरुष शरीर के आकर्षणों और शारीरिक वृत्ति से ऊपर उठता है, उसके मन में समाने का प्रयत्न करता है, तब उसे ज्ञात होता है कि नारी वासना की नहीं भावनाओं से बनी प्रेम प्रतिमा है। इस स्थिति के लिए पुरुष का भी बाह्य पुरुष नहीं वह अन्तर्पुरुष जागना चाहिये, जिसके लिए भौतिक सुख

की अपेक्षा आत्मिक शान्ति अधिक अर्थ रखती है। दाम्पत्य-जीवन सच पूछा जाये तो इस आत्मीय सघनता पर ही स्वर्गीय सुख का आधार बन पाता है, वह न हो तो विवाह को—मात्र काम चेष्टा को मर्यादित कर देने वाला संस्कार ही कहना पड़ेगा, जबकि उसमें सन्निहित शिक्षाएँ और आदर्श इतने महान हैं जो अन्तर्नारी और अन्तर्पुरुष की अभिव्यक्ति के बिना सार्थक ही नहीं होते।

इस समुन्नत अवस्था में सामान्य जीवन व्यापार बाधक नहीं होते; पर उन्हें उच्छृंखल प्रवृत्ति नहीं प्राकृतिक प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया जाये तब। प्रकृति का यह नियम है कि जब मादा मातृत्व के लिए उल्लसित होती है तभी नर उसका अनुकरण करते हैं। पेड़-पौधों को भी जब तक पुष्पों में पराग नहीं आ जाता, तब तक निसेचन की कोई गतिविधियाँ दिखाई नहीं देतीं, जबकि उस अवस्था में भी परागण के सहयोगी माध्यम बराबर सक्रिय रहते हैं। मर्यादित और नियन्त्रित काम सेवन गृहस्थ तपोवन की आचार संहिता का उल्लंघन नहीं करते; पर यदि उसे अभीष्ट मान लिया गया तो उसी प्राकृतिक नियमानुसार तृष्णा निरन्तर बढ़ेगी और उसके दुष्परिणाम, अनाकर्षण, छिद्रान्वेषण के रूप में आये बिना रहेंगे नहीं। कवि वायरन ने लिखा है—स्त्री पूर्णतया प्रेम के लिए समर्पित है, (लव इज वूमन, स होल एक्जिस्टेंस) उसे यदि यह रस मिलता रहे, उसमें कृत्रिमता न आये तो वह साक्षात् कल्प-वृक्ष के समान है; पर यदि उसे कामिनी और रमणी के रूप में देखा जाता है तब उसके विष दंश की ही आशंका बनी रहेगी।

कुछ शारीरिक अवयवों के अतिरिक्त पुरुष और नारी में शरीरगत अन्तर कोई विशेष नहीं है तथा उसकी अन्तरंग रचना में प्रकृति ने ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों का विकास किया है, जिससे वह भावनाओं की साकार प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित होती है। किसी वैज्ञानिक ने तो यहाँ तक कहा है कि उसके शरीर में एक विशेष भाव ग्रन्थि होती है, उससे निकलने वाले स्राव के कारण ही वह इतनी सलज्ज, संवेदनशील और कोमल अन्तःकरण होती है। स्वाभाविक ही है कि इस स्निग्धता को बचाये रखकर ही नारी को उसके भाव भरे अनुदानों की आशा की जा सकती है। कठोरता के कुठार से तो वह मुरझायेगी और उसका असर भी तमाम गृहस्थ पर पड़े बिना मानेगा नहीं।

प्रेम और सघन आत्मीयता दाम्पत्य-जीवन की सफलता के आधार हैं। उनका विकास सहयोग, समर्पण और त्याग के धरातल पर होता है। अपने देश की नारी इस दृष्टि से अपना पार्ट बाकायदा अदा करती है। अतएव अब यह पुरुष की जिम्मेदारी रह जाती है कि वह अपनी ओर से भी भावनाओं की अभिव्यक्ति में कंजूसी न बरतें, यदि स्त्री-पुरुष कर्तव्य के साथ भावनाओं से भी एक-दूसरे की ओर मुड़े रहें तो पूर्णता का वृत्त कभी टूटे ही नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो अविश्वास और सन्देह की

परिस्थितियाँ पग-पग पर उठेंगी और दाम्पत्य-जीवन की मर्यादाओं को, अपेक्षाओं को नष्ट-भष्ट करती रहेंगी।

मनुष्य जीवन में पग-पग पर संघर्षों के काँटे बिछे हैं, हर क्षण तनाव के साधन विद्यमान मिलते हैं, इन परिस्थितियों को एकाकी मनुष्य झेल नहीं सकता, किसी सहयोगी, साझीदार और अन्तरंग हितैषी की आवश्यकता होती है। यह स्नेह जितना खूबसूरती से धर्मपत्नी दे सकती है कोई अन्य नहीं; पर यह तभी सम्भव है जब दोनों के हृदय प्रेम-पुष्पों की सुवास और एक-दूसरे के लिए समर्पण की ऊर्जा से लबालब भरे हों। अपना साथी ही अपनी टाँग खींचे, जले और जलाये, उस पर नमक छिड़के तो इसे दुर्भाग्य ही माना जायेगा। ऐसे विवाहों की, गृहस्थ की सार्थकता भी क्या रह जायेगी। गृहस्थ में ही स्वस्थ परम्पराएँ न होंगी तो समाज कहीं से विकसित हो सकेगा ? दाम्पत्य-जीवन की अन्तरंग आत्मीयता, परस्पर सघन स्नेह, आपसी निष्ठाएँ न केवल गृहस्थी को स्वयं बनाती हैं; अपितु समाज में भी देव परम्पराओं का विकास होता है, इस बात को समझकर हर गृहस्थ को अपने दाम्पत्य-आधार को सुदृढ़ बनाने की बात सोचनी और रूपरेखा तैयार करनी चाहिए, उसे उखाड़ने की बात सोचना जातीय सर्वनाश से कम हानि नहीं होगी।

सुशिक्षितों का दाम्पत्य जीवन

अशिक्षित लड़कियों की अपेक्षा शिक्षित लड़कियों का गृहस्थ जीवन अधिक मात्रा में असफल और विग्रहपूर्ण होते देखा गया है। उसका दुष्परिणाम कभी-कभी तो सम्बन्ध-विच्छेद या मरने-मारने जैसी दुर्घटना में घटित होते देखा गया है। जबकि अशिक्षित वर्ग की महिलाएँ ससुराल की भली-बुरी परिस्थितियों में किसी प्रकार अपना तालमेल बिठा लेती हैं और गाड़ी का पहिया लुढ़काती रहती हैं।

इस दुःखद वास्तविकता के लिए शिक्षा को दोष नहीं दिया जा सकता। वरन् उन महत्वाकांक्षाओं को दिया जाता है जो पढ़ाई के दिनों चुपके-चुपके उभरती रहती हैं। योरोप की स्वच्छन्दता, सज्जा एवं सुविधा वहाँ की अपनी परिस्थिति है। उसका स्वरूप मध्यवर्ती परिवारों में बन पड़ेगा, इसकी सम्भावना तभी रहती है जब संयुक्त परिवार में न जाना पड़े। मिर्या-बीबी दो ही हों और दोनों को हास-परिहास के लिये पर्याप्त समय और धन उपलब्ध होता हो। पर प्रचलित परिपाटी में वैसा बन नहीं पड़ता। बड़े शहरों की बात जाने दीजिए सामान्य गाँव-कस्बों में स्त्री-पुरुषों का खुलेआम हास-परिहास भी खलता है। कुटुम्बियों के बीच तो लाज-पर्दे की प्रथा का पालन सभी को अभीष्ट होता है।

लड़कों के सम्बन्ध में भी यही बात है। पाश्चात्य देशों के दाम्पत्य जीवन का स्वरूप जब वे पुस्तकों में पढ़ते, चित्रों के देखते और फिल्मों में उसके प्रत्यक्ष झाँकी देखते हैं, तो उनका अपरिपक्व मन भी उसी प्रवाह में

बहने लगता है। विवाह के पूर्व उनकी भी कल्पनाएँ ऐसी होती हैं। पर प्रचलन और व्यवहार को क्या कहा जाये ? जो अभी योरोप को गले नहीं उतार पाया और नवदम्पति को वैसे व्यवहार की छूट नहीं देता जैसा कि वे बरतना चाहते हैं।

यह भी होता है कि पति-पत्नी में से एक उस प्रकार की स्वच्छन्दता का इच्छुक हो और दूसरा लोक-लाज को ध्यान में रखते हुए उस पक्ष में अपनी सहमति न दे।

दमित इच्छाएँ आक्रोश के रूप में उभरती हैं। भावुक और जोशीले लड़की-लड़के विवाह को नीरस बनाने का दोष एक-दूसरे पर मढ़ते हैं। परिवार वालों को बाधक मानकर उनसे खिंचते हैं और अलग घर बसाने की बात सोचते हैं या फिर आपस में ही लड़-झगड़ कर तुनक बैठना प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं। आरम्भ में ही पड़ी हुई यह गाँठ अन्ततः कुछ ऐसा ही परिणाम उत्पन्न करती है, जिसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है।

सुशिक्षितों का विवाह इस प्रकार दुर्भाग्यपूर्ण बने—इसमें दोष किसे दिया जाये ? शिक्षा को कोसना व्यर्थ है। कारण उस पाश्चात्य जीवन दर्शन को समझा जाना चाहिए, जो चरित्र विकास की तरह दाम्पत्य जीवन को भी उसी ढाँचे में ढला होने के लिए आकर्षित या उत्तेजित करता है। जबकि गरीबी और परिपाटी के कारण वैसा व्यवहार बन पड़ना आज की स्थिति के मध्यवर्ती परिवारों में सम्भव नहीं।

विवाह योग्य लड़की-लड़कों को समझना और समझाया जाना चाहिए कि पाश्चात्य देशों जैसी न यहाँ सम्पन्नता है, न परिपाटी, न सुविधा। ऐसी दशा में उस रँगीले अनुकरण की सम्भावना पर आरम्भ में ही सोच लिया जाना चाहिए। अभिभावकों और साथियों का कर्तव्य है कि वे विवाह की तैयारी करने वालों को यही समझाएँ कि संयुक्त परिवार प्रणाली के रहते पति-पत्नी स्वच्छन्दता नहीं अपना सकते और उन्हें समूचे परिवार का ध्यान रखना होगा और इस प्रकार अपना चिन्तन और व्यवहार ढालना होगा जो यहाँ की परिस्थितियों में उपयुक्त सिद्ध हो सके। इसे समझने-समझाने पर ही सुशिक्षितों का विवाह सफल और सुखमय हो सकता है। एकाकी रहने में भी यहाँ सुविधाएँ कम और असुविधाएँ अधिक हैं।

दाम्पत्य-जीवन के स्नेह-सूत्र टूटने न पायें

पति-पत्नी के बीच स्नेह-सद्भाव जितना अधिक होगा, दाम्पत्य-जीवन उतना ही माधुर्यपूर्ण और सुदृढ़ होगा। अन्तःकरण को स्पर्श करने और बाँधने वाले ये सूत्र जहाँ जितने ढीले होंगे, वहाँ उतनी ही अधिक कटुता होगी। परस्पर जीवनपर्यन्त एक-दूसरे को बाँधे रहने वाले

स्नेह-सद्भाव रूपी सुत्रों के टूटते ही दाम्पत्य-जीवन के बिखरते-टूटते देरी नहीं लगती। पति-पत्नी के बीच आपसी मतभेदों, मनोमालिन्य और मनमुटावों में भौतिक कर्णों अथवा अभावों की उतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती जितनी कि सद्भाव से रहित व्यवहार की होती है। जिसकी चरम परिणति सम्बन्ध-विच्छेदों, तलाक की घटनाओं के रूप में होती है।

सुमधुर सम्बन्ध के लिए पति-पत्नी के बीच कैसा तारतम्य होना चाहिए ? इसका एक आश्चर्यजनक किन्तु प्रेरक और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है वनस्पति जगत के दो वृक्षों ने। समझा यह जाता है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ संवेदनाओं से रहित होती हैं पर इस मान्यता को गलत सिद्ध किया है देहरादून के एक वृक्ष युगल ने, देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान में गाइनोकार्डिया ओडोरेट नामक दो सुन्दर वृक्ष हैं, जो अपनी विलक्षणताओं के लिए बहुचर्चित बने हुए हैं। इनमें से एक वृक्ष नर है और दूसरा मादा। दैनिक पत्र पंजाब केसरी ३० दिसम्बर, १९८१ के अंक में प्रकाशित समाचार के अनुसार १५ वर्ष पूर्व एक भयंकर तूफान आया। वन अनुसंधान केन्द्र में लगे उपरोक्त दो वृक्षों में से नर-वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा। उससे १०० मीटर की दूरी पर ही मादा-वृक्ष भी खड़ा था। तूफान का तो उसके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा पर तीस वर्षों तक दोनों हमजोली की तरह पति-पत्नी की भाँति एक साथ रहते आये थे। तूफान से नर वृक्ष के गिरते ही मादा वृक्ष पति वियोग के भाघात को सहन न कर सका। बिना किसी कारण वह मुरझाने लगा। अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने कारण ढूँढ़ने की कोशिश की पर कुछ भी पता न चल सका। वृक्ष किसी प्रकार के रोग से ग्रसित न था और न ही किसी तरह के पोषण का अभाव था। मादा वृक्ष को बचाने के लिए वैज्ञानिकों ने हर सम्भव उपचार और प्रयास कर डाले पर असफल रहे और देखते ही देखते मादा वृक्ष पति वियोग की व्यथा-वेदना में झुलसकर सूख गया।

कुछ माह पूर्व केन्द्र में काम करने वाले कर्मचारियों ने देखा कि वृक्ष जहाँ गिरा था, वहाँ उसकी कुछ जड़ें भूमि के नीचे दबी रह गयी थीं। उनमें से कोपलें फूटने लगीं। वह वृक्ष पुनर्जीवित हो उठा। वैज्ञानिकों को यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि मादा वृक्ष जो दीर्घकाल तक सूखा खड़ा था, नर के जीवित होते ही उसमें भी हरियाली आने लगी। कुछ ही माह में पूरा वृक्ष सजीव हो उठा। अब दोनों ही वृक्ष हरे-भरे दिखायी दे रहे हैं। उनमें शीघ्र ही फल आने की भी सम्भावना है। सबसे अचम्भित करने वाला तथ्य यह है कि एक वृक्ष को जब कभी भी कोई रोग होता है, ठीक उसी प्रकार के लक्षण उसी समय दूसरे वृक्ष में भी परिलक्षित होने लगते हैं।

संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस आश्चर्यजनक तथ्य पर लम्बे समय तक खोजबीन की। उनका निष्कर्ष है कि दोनों वृक्षों के बीच तारतम्य जोड़ने वाले ऐसे कुछ अदृश्य संवेदनात्मक सूत्र विद्यमान हैं, जो परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन वृक्षों का प्रत्यक्ष स्थूल जीवन भी उन सूक्ष्म संवेदनाओं द्वारा परिचालित है। इन दो वृक्षों का प्रणय प्रसंग समीपवर्ती क्षेत्र में चर्चा का विषय बना हुआ है। इस घटना से वैज्ञानिक समुदाय यह सोचने पर विवश हुआ है कि वृक्ष-वनस्पतियों को जो भी स्नेह, प्यार की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि मनुष्य जाति को।

वृक्ष होकर भी आपसी रिश्ते के प्रति इतने अधिक संवेदनशील सहिष्णु हो सकते हैं तो मनुष्य को तो और भी अधिक सद्भावना का परिचय देना चाहिए। दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच कैसे सम्बन्ध होने चाहिए। यह प्रेरणा और शिक्षा इन वृक्षों से भी ली जा सकती है।

छोटी-छोटी बातें बड़ा रूप ले लेती हैं

दाम्पत्य-जीवन का आधार दो आत्माओं का परस्पर आकर्षण और साहचर्य है, यह बात जानते-कहते तो सब हैं, पर अन्तःकरण तक यह तथ्य बैठता कम ही लोगों में है, सुख और शान्ति की कामना तो प्रत्येक को होती है, परन्तु इस कामना को साकार रूप कैसे दिया जाय ? इसका विचार तथा स्मरण करने और तदनुसार आचरण करने के स्थान पर, जब ध्यान इस ओर अटकने लगता है कि जीवन साथी से हमें अभीसप्त सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है, इसका सम्पूर्ण दोष इसी पर है, मुझ पर किंचित मात्र नहीं, तब रोष-क्षोभ, जलन-खीझ का एक ऐसा क्रम शुरू हो जाता है, जो समाप्त होता ही नहीं दीखता।

यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अशान्ति के बीज तो आपस की नासमझी में, एक-दूसरे के प्रति सद्भाव भरी आत्मीयता की कमी में छिपे होते हैं और उन्हें ढूँढ़ा थोपा दूसरे पर जाता है। इसलिए यह सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि दाम्पत्य-जीवन कोई पका-पक़या वृक्ष नहीं है, जिसे हिलाते ही मधुर-स्वादित फल झरने लगें अपितु यह ऐसा उद्यान है, जिसका निर्माण रख-रखाव, साज-सँवार स्वयं ही करते रहना होता है तभी जीवन सुरभित हो पाता है। इस कल्पवृक्ष को पहले स्वयं ही खाद-पानी देकर बाड़ लगा कर संरक्षण करते हुए बढ़ने देना होता है तभी उससे आनन्द, उल्लास की मनचाही उपलब्धि हो पाती है। जब तक दाम्पत्य-जीवन को एक साधना मानकर न चला जायेगा, उससे कोई भी सिद्धि सम्भव होने की नहीं।

जिस प्रकार किसी भी अन्य साधना में या निर्माण में छोटी-छोटी बातें भी ध्यान में रखनी होती हैं। वैसे ही दाम्पत्य-जीवन में भी। भवन का मानचित्र कितना ही उत्कृष्ट बना लिया जाय और उसके निर्माण के लिये धन भी चाहे पर्याप्त जुटा लिया जाय, किन्तु यदि सुयोग्य इंजीनियर या शिल्पवेत्ता की अथवा किसी अन्य अनुभवी की देख-रेख में उसे नहीं बनवाया गया, यहाँ तक कि रेत या गारे के ही अनुपात में गड़बड़ी हो गई, तो दीवाले कुछ ही दिनों में दरकती दिखेंगी। सीमेंट का पलस्तर ठीक भी रहा, पर उसके बाद अपेक्षित सावधानी नहीं बरती गई और बच्चों को उसमें तत्काल उछल-कूद मचाने दिया गया याकि उस पर तेज धूप पड़ने दी गई और उसे अपेक्षित आर्द्रता नहीं पहुँचने दी गई, तो उसका उखड़ना निश्चित है। अच्छे बीज और समुचित खाद-पानी के बावजूद यदि पौधे की बाड़ लगाकर रख वाली नहीं की गई तो गाय-बैल या भैंस-बकरी जैसे किसी अपने ही पालतू पशु का मुँह उस पर आठ-दस दिन में एक बार ही पड़ते रहना पर्याप्त है, वह कभी वृक्ष न बन सकेगा।

दाम्पत्य-जीवन के प्रारम्भ में ऐसी ही सतर्कता की आवश्यकता होती है क्योंकि यही वह अवधि होती है जहाँ एक ओर पति-पत्नी दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रबल संवेदना की सधनता एक विलक्षण सुख और उमंग भरी सिंहसन का कारण बनती है, वहीं अतिशय कोमलता भरी भाव-प्रतिक्रिया का भी। यह प्रतिक्रिया छोटी-छोटी बातों से ही प्रतिकूल रुख भी ले सकती है और इतने भर की ही तो देर है, काल-क्रम से यही प्रतिकूलता का प्रारम्भ आपसी खाई, कटुता, विषाक्तता और विलगाव में जाकर समाप्त होता है। इसलिए नव-दम्पतियों को विशेषकर उन छोटी बातों के प्रति सतर्कता बरतनी चाहिए, जो प्रचलन-वश सामान्य मानी जाती हैं, पर प्रभाव की दृष्टि से असामान्य होती हैं। इनमें से मुख्य है वधू द्वारा बात-बात में मायके की मुखर प्रशंसा और प्रकारान्तर से ससुराल पर कटाक्ष, वर द्वारा वधू के मायके की छोटी-छोटी बातों की मीनमेख निकाल कर विनोद के बहाने उपहास, पड़ोसियों की चुगली पर कान धरना और भड़क उठना तथा वधू के प्रत्येक काम की नुक्ताचीनी में पति की भी सहमति या मौन रह जाना आदि।

इन छोटी बातों पर सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए। विवाह के बाद वधू को 'मुँह दिखाई' की रस्म चलती है। अक्सर महिलाओं में वधू के मुँह देखने का चाव जितना रहता है, उससे अधिक जिज्ञासा वधू के साथ आये सामान का मुँह देखने की होती है। कुछ महिलायें जान-बूझकर और कुछ स्वभाववश, दुलहन के सामने ही उस सामान पर टीका-टिप्पणी कर देती हैं। जिन्हें सर्वत्र छिद्र और प्रवंचना ही देखने का रोग लग चुका है, ऐसी महिलाएँ दुलहन के सोने के कर्णफूलों या हार को भी 'इमिटेशन' या पीतल कहने में भी हिचकती नहीं, सो भी

कानाफूँसी करते हुए, इस लहजे में कि बहू सुन भी ले और वे सुनाना नहीं चाह रहीं, यह आभास भी दे जायें कई तो स्वयं और भाव-भंगिमाओं के उतार-चढ़ाव तथा अपनी नाटकीय क्षमता के साथ ऐसा अभिनय करेंगी, मानो दूल्हा बेचारा बुरी तरह ठग लिया गया हो।

प्रत्येक समझदार दुलहन ऐसी कुटिलताओं को समझती है। वह इनसे विचलित नहीं होती। उसे तब अवश्य मार्मिक व्यथा होती है, जब पतिदेव भी ऐसी बातों के प्रभावों के आते और ऐंठते-खींचते दिखते हैं। प्रत्येक गम्भीर-चित्त युवक को ऐसी बकवासों के प्रति सदैव कठोरतापूर्ण अवहेलना का भाव रखना चाहिए। साथ ही एकान्त में पत्नी को प्रेमपूर्वक यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि ऐसी टिप्पणियों के प्रति उसका रुख क्या है?

नये वातावरणों में नववधू की अनुभूतियाँ अनौखी ही होती हैं। वह अत्यधिक संवेदनशील रहती है ऐसे समय उसके प्रति किया गया व्यवहार उस पर गहरी छाप छोड़ता है, यह सदा स्मरण रखना चाहिए, भले ही वधू उस समय मुँह से चुप रही आती है, परन्तु उसका मन अत्यधिक क्रियाशील और आन्दोलित रहता है। पति महोदय को उस समय उसकी कमियों की भी तीखी आलोचना न करनी चाहिए। यदि उससे भोजन स्वादिष्ट नहीं बन सका है, तो तत्काल माँ, भाभी या बहिन के भोजन से तुलना नहीं कर डालना चाहिए। भोजन का विशेष उल्लेख यहाँ इसलिए करना आवश्यक है कि कितनी भी कुशल दुलहिन हो, उसे रसोई का कितना भी अभ्यास हो, पतिगृह के रसोईघर में काम करने की कहे जाने पर उसका हृदय निश्चित ही थोड़ा अधिक तेज धड़कने लगता है।

अतः प्रारम्भ में ही अनावश्यक संकोच न कर, पूछ लेना अच्छा रहता है। आखिर सास-ननद या जिठानी तो अब अपने ही हैं, कोई गैर नहीं। पति एवं ससुराल-पक्ष वालों की भी यह जिम्मेदारी है कि रसोई में यदि बहू से कोई भूल हो ही जाय, तो उसका सामूहिक उपहास न करके उसे अकेले में समझा-बता दिया जाय।

नववधू को जो सतर्कता आवश्यक है, वह यह है कि पति गृह की पड़ोसिनें कई महिलाएँ भी ऐसी हो सकती हैं, जो अकेले में उसके पति का ऐसा कुछ चित्रण करें मानो नववधू को बहुत ही सजग रह कर पति महोदय को दूसरी महिलाओं के सम्पर्क से बचाना है अन्यथा उनका कुछ ठिकाना नहीं। ऐसी बातों के प्रति पूर्णतः उपेक्षा-भाव आवश्यक है अन्यथा यही छोटी-छोटी बातें मन में जड़ें जमा कर अविश्वास, सन्देह, असुरक्षा की भावनाएँ बढ़ाती तथा आगे चलकर हिस्टीरिया जैसे रोगों तक का आधार बनती या फिर किसी पूजा-पाठ मन्त्र-तन्त्र के सहारे पति को वश में रखने की प्रेरणा देकर अन्ध-विश्वासों के अग्नि कुण्ड में ढकेलती हैं।

अतः पति-पत्नी दोनों को ऐसी छोटी-छोटी बातों के प्रति भी लापरवाही नहीं रखनी चाहिए और न ही उनकी उपेक्षा करनी चाहिए। दाम्पत्य जीवन का सहचरत्व सतत जागरूकता से ही सफल होता है। दो संवेदनशील चेतन प्राणी एक-दूसरे की भावनाओं-संवेदनाओं के प्रति जब पूरी तरह जागरूक रहेंगे, तो स्वाभाविक ही उनका ध्यान इन आघातों के प्रति भी अवश्य ही जायेगा, जो बात-बात में, दर्प, कर्कशता, अवमानना या रूक्षता की अभिव्यक्तियों के कारण दूसरे पक्ष को पहुँचाये जाते रहते हैं। जिस प्रकार इनका सम्मिलित प्रभाव एक दिन विस्फोटक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार इन छोटी-छोटी बातों के प्रति जागरूक रहकर एक-दूसरे के प्रति कोमलता भरी धनियता, आत्मीयता भी धीरे-धीरे प्रगाढ़ होकर आनन्द के अक्षय स्रोत का रूप धारण कर लेती है। इसीलिए छोटी प्रतीत होने वाली बातें भी उपेक्षणीय नहीं मानी जानी चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन में प्रसन्नता अभ्युपगम रहे

दाम्पत्य-जीवन बिटाने के लिए युवक-युवतियों में जो लालसा होती है, उसमें प्रत्यक्षतः कामुकता की पूर्ति और परोक्षतः सधन आत्मीयता की अभिलाषा काम कर रही होती है। इन दोनों का परिपोषण होते रहने पर पति पत्नी से और पत्नी पति से संतुष्ट रहती पाई जाती है।

कामुकता की पूर्ति मात्र यौनाचार से नहीं होती। उसका अवसर यदाकदा आवे तो आकर्षण रहता है अन्यथा खुली छूट रहने पर उसकी उपयुक्तता घट जाती है और वह चिन्ह-पूजा बनते-बनते भारभूत बन जाती है। कामुकता का परिपोषण हास-विलास, गुदगुदी और तिरछी नजर भर से हो जाता है। मधुर मुस्कान, झूठे ताने-उलाहने भर से इस प्रयोजन की पूर्ति होती रहती है। कुशल पति-पत्नी अपने साथी की प्रकृति को परखते हुए जीवन में समरसता बनाये रहने वाली छेड़-छाड़ करते रहते हैं। नवीनता इस दिशा में सभी को सुहाती है। ऐसे ही कुछ उपभास-उपचार ढूँढ़ते और कार्यान्वित करते रहने से कामुकता की सहज पूर्ति होती रहती है।

जिन दाम्पत्य सम्बन्धों में उदासी, उपेक्षा या व्यस्तता भरी रहती है, वे एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान होते हुए भी वह ताजगी या उमंग उत्पन्न नहीं कर पाते, जिसकी तथ्यतः कोई आवश्यकता न होने पर भी मानसिक संरचना की दृष्टि से असाधारण आवश्यकता है। इस खेल-खिलबाड़ में एकान्त का कुछ समय ऐसे ही व्यर्थ बर्बाद होता दीखता हो, तो भी उसके लिए समय निकलते रहना बुद्धिमानी है। काम-कौतुक की इतने भर से पूर्ति हो जाती है और शारीरिक क्षरण विलम्ब से होता रहे तो भी कुछ हर्ज नहीं होता।

प्रेम होता तो आन्तरिक और आत्मिक है, पर उसका परिचय सामान्य बुद्धि को दिलाने के लिए निकटता की आवश्यकता पड़ती है। भोजन करके, टहलने जाने,

काम-काज में हाथ बँटाने, ताश खेलने जैसे प्रसंगों में साथ-साथ बैठने और हँसने, बात करने का अवसर मिलता है, यह प्रेम-प्रदर्शन का आवश्यक अंग है। गम्भीर प्रकृति अन्यत्र सभी जगह मनुष्य के भारी-भरकम होने का चिन्ह है, पर प्रेम-प्रसंग में वह बालकों जैसी खेल-खिलबाड़ बनने पर ही प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है।

वार्तालाप में एक-दूसरे के कार्यों की प्रशंसा का पुट रहना चाहिए। ऐसे प्रसंगों में कई बार छोटे-मोटे घरेलू उपहार देना भी उत्साह को और बढ़ा देता है। कष्ट, चिन्ता, भारी मन-स्थिति में सहानुभूति प्रकट करना भी प्रेम प्रदर्शन का चिन्ह है। भारी मन हल्का बनाने के लिए अच्छा तरीका यही है कि चिन्ता, खिन्नता, अप्रसन्नता का प्रसंग बदलकर किसी हल्के-फुल्के विषय पर वार्तालाप का सिलसिला चला दिया जाय। इसका अर्थ यह नहीं कि पारिवारिक समस्याओं पर कभी विचार ही न किया जाय और उनका समाधान ही न खोजा जाय। यह कार्य साथी के सहज मुद्रा में होने की स्थिति में किया जाय।

पति दिन भर के कामों से थका, जिस-तिस से उलझता हुआ घर आता है। उसे आशा होती है कि पत्नी की सान्त्वना भरी मुस्कान से मन हल्का होगा। ठीक इसी प्रकार पत्नी भी बच्चों की लड़-झगड़, स्वयं की अस्वस्थता, परिवार वालों के दुर्व्यवहार, वस्तुओं के अभाव आदि कारणों से कम खिन्न नहीं होती और ऐसी मन-स्थिति में होती है कि पति के आते ही सारे गुबार एक साथ उगल दे। इस अवसर पर अपनी-अपनी कठिनाइयों के उगलने में उतावली करने की अपेक्षा अच्छा यही है कि वह समय प्रसन्नता और सहानुभूति के लिए सुरक्षित रखा जाय और किसी खट्टी-मीठी अनुभूति भरी बात कर मन हल्का किया जाय। इसके लिए थोड़ा धैर्य रखना चाहिए और अनुकूल अवसर आने पर गम्भीर प्रसंगों पर हल्के मन से चर्चा की जाय। समाधान उसी स्थिति में सही निकलते हैं।

दाम्पत्य प्रेम का सन्तति पर प्रभाव

पति-पत्नी के आपसी धनिय एवं सच्चे प्रेम का बहुत ही गम्भीर प्रभाव बालकों के स्वास्थ्य, वर्ण एवं संस्कारों पर होता है। जो स्त्री-पुरुष हृदय से एक-दूसरे को प्रेम करते हैं और एक-दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, उनके अन्तःकरण आपस में पूरी तरह मिल जाते हैं। जिस प्रकार उत्तम खाद और उत्तम पानी के मिलने से सुन्दर हरे-भरे पौधे उगते हैं और उनकी भीतरी-बाहरी सुन्दरता देखने ही योग्य होती है, उसी प्रकार पति और पत्नी का निष्कपट प्रेम सम्बन्ध होने पर बालकों का शरीर और मन परिपुष्ट हो जाता है।

डाक्टर जान कावेन के अनुभव में एक ऐसा बालक आया, जो बहुत छोटी उम्र का होने पर भी

मशीनों के काम में बहुत अच्छी जानकारी और दिलचस्पी रखता था। उन्होंने उसके पिता से पूछकर मालूम किया कि जिन दिनों वह बालक अपनी माता के पेट में था तब उसका पिता इन्जीनियरिंग सम्बन्धी एक कार्य में बड़ी तत्परता से लगा हुआ था, वह जब काम पर से लौटकर आता तो अपनी गर्भिणी स्त्री से भी उसी सम्बन्ध की वार्तालाप करता-करता, तदनुसार बालक की प्रवृत्ति भी उसी ओर झुकी हुई थी।

डाक्टर फाउलर के कुछ अनुभव बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं—मैं एक दिन घूमने जा रहा था कि रास्ते में दो बहुत ही तन्दुरुस्त और सुन्दर बालकों को देखा। मेरी इच्छा उनके सम्बन्ध में अधिक जानने की हुई। तलाश करता हुआ उनके घर पहुँचा और उनके माता-पिता से उत्तम सन्तान प्राप्त करने के कारणों के सम्बन्ध में पूछताछ की। मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में किसी विशेष नियम का पालन नहीं करते, केवल उन दम्पति में अत्यधिक प्रेम है। दोनों ने आपस में कभी किसी को कटु शब्द नहीं कहा और न कोई किसी से नाराज हुआ। इसी गुण के कारण उन्हें उत्तम सन्तानें प्राप्त हुई।

इन्हीं डाक्टर साहब के इलाज में एक ऐसा लड़का आया जो बहुत ही कमजोर और बुद्धिहीन था। उसकी माता यद्यपि बहुत तन्दुरुस्त और चलते-पुर्जा थी, फिर भी ऐसी सन्तान क्यों उत्पन्न हुई, इससे डाक्टर साहब को आश्चर्य हुआ, उन्होंने इस स्त्री से पूछताछ की तो मालूम हुआ कि दाम्पत्य प्रेम के अभाव के कारण ऐसी सन्तान हुई, उस स्त्री के साथ उसके पति की सदा अनवन बनी रहती थी।

इसी तरह की एक और कन्या को उन्होंने देखा जो बड़ी ही डरपोक और रोनी सूरत की थी। युवती होने पर भी उसे सांसारिक कार्यों की ओर बिल्कुल रुचि न थी। सदा एकान्त में रहती और बाइबिल पढ़ा करती, कोई जरा भी कुछ कह देता तो आँसू नाक पर आ जाते। पूछने पर उसकी माता ने बताया कि जब यह लड़की गर्भ में थी तो उसका पति सदा उससे झगड़ता और रुलाता रहता था। माता दुःखी होकर एकान्त में पड़ी रहती और अपने दुःखी चित्त को धार्मिक गाथाएँ पढ़कर शान्त करती रहती थी। यही सब गुण उस कन्या में भी आ गये।

डाक्टर डे. का यह मत है कि माता-पिता के आपसी प्रेम में जितनी अधिक घनिष्टता होगी, बालक उतना ही अधिक उत्साही, स्फूर्तिवान और तेजस्वी होगा। कारण यह है कि गर्भ पलता तो माता के पेट में है, परन्तु उसका मूल बीज पिता के शरीर से आता है, इसलिए माता के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुएँ ही उसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य स्थूल ही नहीं है। उसका जितना भाग स्थूल दिखाई पड़ता है, उसकी सूक्ष्मता उससे

हजार गुनी अधिक है। मनुष्य की गुप्त शक्तियाँ सूक्ष्म लोक से प्राप्त होती हैं। चूँकि बालक माता के बन्धन में होता है, इसलिए वह अपने योग्य सूक्ष्म तत्त्व उसी से प्राप्त कर सकता है, जिससे माता-पिता की विद्युत शक्ति आकर्षण रखती हो। यों तो माता के पास अन्य स्त्री-पुरुष भी रहते हैं, परन्तु आकर्षण केवल आन्तरिक प्रेम के द्वारा ही होता है। स्त्री का यदि अपने पति से पूर्ण प्रेम है, तो अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पति के सूक्ष्म तत्त्वों को खींचकर उदरस्थ बालक को देती रहेगी। इसी प्रकार यदि पति का पत्नी से अधिक स्नेह है, तो वह अपने तत्त्वों को उसकी ओर फेंकता रहेगा। इस प्रकार के सूक्ष्म आकर्षण द्वारा बालक उन शारीरिक और मानसिक वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है, जिसकी उसे आवश्यकता है। पिता द्वारा यह गुण इसलिए आसानी से प्राप्त हो सकते हैं कि गर्भ अपने मूल स्थान की वस्तुओं का अभ्यासी होता है। शुक्र कीट जो अब गर्भ का रूप धारण किये हुए है, अपने उदगम स्थान को भूल नहीं गया है। जिस प्रकार बछड़ा अपनी माता का दूध आसानी से पी लेता है और माता उसके लिए अधिक दूध निकाल देती है, इसी प्रकार पिता के तत्त्वों से ही गर्भ का अधिक मात्रा में मानसिक पोषण होना सम्भव है।

स्त्री-पुरुष में प्रेम की घनिष्टता होने पर ही यह सूक्ष्म वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। यदि ऐसा न हो और इसके विपरीत दम्पति में अनवन या उदासीनता रहती हो, तो गर्भ का पूरा पोषण नहीं हो पाता और जिस प्रकार भोजन मिलने पर पानी न मिलने या पानी मिलने पर भोजन न मिलने से अपूर्णता रहती है—पेट नहीं भरता और सन्तोष नहीं होता, उसी प्रकार पिता के तत्त्वों के अभाव में बालक शारीरिक और मानसिक संगठन अपूर्ण रह जाता है। चाहे उसके शारीरिक अंग देखने में पूरे भले ही प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उसके अन्दर बहुत-सी दुःखदायी त्रुटियाँ रह जाती हैं, जो कि बड़े होने पर प्रकट होती हैं।

डाक्टर बेवर कहते हैं कि—‘स्त्री पुरुषों का उदासीनता या उपेक्षापूर्वक जीवन बिताना सब दृष्टिकोणों से हानिकर है, उससे तो यही अच्छा है कि वे विवाह ही न करें। स्त्री-पुरुष आपस में अधिकाधिक प्रेम बढ़ाकर केवल अपने शरीरों की उन्नति करते और जीवन को सुखमय ही नहीं बनाते हैं, वरन् उत्तम सन्तान भी उत्पन्न करते हैं। मैंने तीन सौ से अधिक परिवारों की गुप्त जाँच की है और इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि प्रेमी दम्पतियों ने ही उत्तम शरीर और बुद्धि वाली सन्तानें उत्पन्न की हैं। चालीस परिवार मेरी जाँच में ऐसे आये, जिनमें स्त्री-पुरुषों में अनवन रहा करती थी। इनके तीन-चौथाई बच्चे बड़े बेढंगे, बेहूदे, अंग-भंग, दुर्बल और मूर्ख थे। जो बच्चे अच्छे थे, वे भी प्रेमी दम्पतियों की सन्तान की अपेक्षा कहीं नीचे दर्जे के थे।’

निस्संदेह बालकों पर माता-पिता के सच्चे प्रेम का असाधारण रीति से उत्तम प्रभाव पड़ता है। जिन्हें स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, तेजस्वी और सदगुणी बालकों की इच्छा हो उन्हें दाम्पत्य प्रेम की घनिष्टता एवं पवित्रता अधिकाधिक मजबूत बनानी चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के रहस्य

दाम्पत्य-जीवन के सुख और सफलता का आधार शिक्षा नहीं है, धन भी नहीं है। यदि किसी की ऐसी मान्यता हो तो उन्हें इसे बदल डालना चाहिए। आज के शिक्षितों में जितना पारस्परिक वैमनस्य, मनमुटाव और सम्बद्ध-विच्छेद की घटनायें घट रही हैं, उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि सुखी दम्पति का होना शिक्षा पर निर्भर नहीं है। धन पर भी नहीं है क्योंकि वह केवल आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। आवश्यकतायें पूरी होती चले तो पारस्परिक आत्मीयता के बन्धन मजबूत बने रहेंगे, इस बात का कुछ निश्चय नहीं है।

सफल दाम्पत्य जीवन के लिये परिष्कृत भावनायें और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हैं, एक-दूसरे के लिए आत्मदान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, हस-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग की-सी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता रहता है।

प्रेम सौन्दर्य पर आधारित नहीं है, उसके लिये मनुष्य की भावनायें चाहिये। अमेरिका के प्रसिद्ध कमाण्डर एण्ड्रयू जैक्सन तथा रेचल की प्रेम-गाथा विश्व विख्यात है। कहते हैं रेचल अपद और सामान्य रूप वाली थी जब जैक्सन उस समय के इने-गिने रूपवान व्यक्तियों में था। आत्म-निष्ठा के कारण वह सदैव रेचल के प्रेम-पाश में बँधा रहा।

प्रारम्भ में कुछ दिनों तक प्रायः स्त्री-पुरुषों में प्रेम रहता है, किन्तु धीरे-धीरे जब एक-दूसरे का स्वभाव प्रकट होने लगता है और एक-दूसरे की इच्छा के अनबुझ बर्ताब नहीं होता, तो आकर्षण घटने लगता है और कुछ दिन में तो गृहस्थ जीवन बिल्कुल नीरस हो जाता है। अधिक विलासिता तथा पारस्परिक हितों की रक्षा न करने के कारण भी यह स्थिति पैदा हो जाती है, इसलिये कुछ नियम ऐसे हैं, जिन्हें स्त्री-पुरुषों को समान रूप से पालन करते रहना चाहिए। उन पर चलकर दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष को अनन्यता का धार्मिक गठबन्धन है। इसकी सार्थकता तब है, जब दोनों में पूर्ण विश्वास रहे। अविश्वास से एक-दूसरे के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। दुःख, छिपाव, दिखावट तथा बनावटी व्यवहार से कटुता पैदा होती है और दोनों एक-दूसरे के प्रति उदासीन हो जाते हैं। जरा-जरा-सी बात पर एक-दूसरे पर चरित्रिक सन्देह की छींटकशी प्रारम्भ होती है, जो सारे प्रेम-भाव को समूल नष्ट कर डालती है। अविश्वास और सन्देह का प्रायः कोई आधार नहीं होता। अपनी दुर्बलता के कारण ही यह भ्रान्ति पैदा होती है। इसलिये यह आवश्यक है कि पति-पत्नी एक-दूसरे पर सन्देह न किया करें और यदि कोई ऐसी अवस्था आ जाय तो उसे सद्भावनापूर्वक बातचीत द्वारा साफ कर लिया करें।

उपेक्षा का भाव भी कभी-कभी सन्देह उत्पन्न कर देता है। स्त्री बीमार हो, उसे कुछ कह हो और पुरुष उसकी परवाह न करे या पुरुष को कोई शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो और औरत उसकी उपेक्षा करे तो यह स्थिति दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बनाती है। दोनों एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों से सहायक बनकर साथ-साथ जीवन संग्राम में उतरते हैं फिर एक की दूसरे के द्वारा उपेक्षा हो तो सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

मनुष्यों में प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होने का स्वभाव होता है। परमात्मा से काम निकालने के लिये भी लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। स्तुतियों में यही तो होता है कि देवता के गुणों की प्रशंसा की जाती है। ठीक उसी प्रकार अपनी निन्दा सुनकर लोगों को दुःख होता है। पारिवारिक जीवन में इन दोनों बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिये।

स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे को पारिवारिक सुखों का देवता समझकर उनकी प्रशंसा किया करें तो प्रेम और सहयोग की भावना पैदा होती है। कुछ न कुछ गुण हर किसी में होते हैं, उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करनी चाहिये। इसमें हीनता या संकोच नहीं करना चाहिये। अपने जीवन साथी को उत्साहित करना, ऊँचा उठाना, सुसंस्कृत और सभ्य बनाना अपना लक्ष्य होना चाहिये। सम्भव है उसकी इन कामों में रुचि न हो पर प्रशंसा में वह शक्ति होती है, जो मनुष्य में कठिन से कठिन कार्य करने के लिए उत्साह भरती है।

इस बात के लिये स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का उत्तरदायित्व अधिक है। उन्हें चाहिये कि वे स्त्रियों के खाना पकाने, सेवा करने, शिशु-पालन में सहयोग देने की प्रशंसा किया करें, इससे उनका हृदय उदारता और आत्मीयता से भर रहता है। उनके प्रत्येक हाव-भाव से प्रेम-स्नेह और आत्मदान की भावना टपकती रहती है। इससे उत्साहपूर्ण वातावरण विनिर्मित होता है।

एक-दूसरे के रंग-रूप, माता-पिता या ससुराल वालों को लेकर कभी आलोचना नहीं करनी चाहिए। ऐसी कोई

भी बात न कहनी चाहिए जिससे अपने जीवन साथी की अपेक्षा किसी दूसरे का महत्व अधिक जान पड़ता है। लोग अपने आदमियों के सामने दूसरों की प्रशंसा करने में तो बड़े पटु होते हैं, पर चतुर जन वे होते हैं जो औरों के सामने भी अपने ही व्यक्तियों की प्रशंसा करते हैं।

इन बातों में जहाँ पुरुषों के दायित्व बड़े हैं वहाँ स्त्रियों को भी चाहिए कि वे अपनी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ पतियों के सामने रखते समय घर की आर्थिक स्थिति का भी ध्यान रखा करें। जो इच्छायें पति न पूरी न कर सकते हों, उन्हें कभी भूलकर भी जबान पर नहीं लाना चाहिये।

तिरस्कार प्रगति और प्रसन्नता का विरोधी विचार है इससे बचना चाहिये। छोटी-मोटी गलतियाँ प्रायः हर किसी से होती रहती हैं, उन्हें लेकर अपने जीवन साथी को झिड़कना, डाँटना, कोसना, अपशब्द कहना, गाली देना मूर्खता का चिन्ह है। इससे दिल टूट जाता है और सहयोग करने की भावना नष्ट हो जाती है।

दाम्पत्य-जीवन का सुख प्राप्त

कीजिए

गृहस्थ जीवन में जितने भी सुख हैं, वे सब दाम्पत्य जीवन की सफलता पर सन्निहित हैं। दाम्पत्य-जीवन सुखी न हुआ तो अनेक तरह के वैभव होने पर भी मनुष्य सुखी, सन्तुष्ट तथा स्थिरचित्त न रह सकेगा। जिनके दाम्पत्य जीवन में किसी तरह का क्लेश, कटुता तथा संघर्ष नहीं होता वे लोग बल, उत्साह और साहसयुक्त बने रहते हैं। गरीबी में भी मौज का जीवन बिताने की क्षमता दाम्पत्य-जीवन की सफलता पर निर्भर है, इसे प्राप्त किया ही जाना चाहिए।

वैवाहिक जीवन की असफलता में आर्थिक, सामाजिक और संस्करजन्य कारण भी होते हैं, किन्तु मुख्यतया—मनोवैज्ञानिक व्यवहार की कमी के कारण ही दाम्पत्य-जीवन असफल होता है। वस्तुओं का अभाव परेशानियाँ जरूर पैदा कर सकता है, किन्तु यदि पत्नी में पूर्ण प्रेम हो तो गृहस्थ जीवन में स्वर्ग तुल्य सुखोपभोग इसी धरती पर प्राप्त किए जा सकते हैं। दुःख का कारण केवल अनास्था और नुटिपूर्ण व्यवहार ही होता है। इसे सुधार लें तो दाम्पत्य-जीवन शत-प्रतिशत सफल हो सकता है।

सुखी दाम्पत्य का आधार है, पति-पत्नी का शुद्ध सात्विक प्रेम। जब दोनों एक-दूसरे के लिए अपनी स्वार्थ भावना का परित्याग कर देते हैं, तब हृदय परस्पर मिले-जुले रहते हैं। प्रेम में अहंकार का भाव नहीं होता है। त्याग ही त्याग चाहिए विशुद्ध प्रेम के लिए। एक-दूसरे के लिए जितने गहन तल से समर्पण की

भावना होगी, उतना ही प्रगाढ़ प्रेम होना चाहिए। दाम्पत्य सुख प्राप्त करने के लिए प्रेम का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रेम त्याग, भावना, कर्तव्य भावना से ही हो। सौन्दर्य और वासना का प्रेम, प्रेम नहीं कहलाता। वह एक तरह का धोखा है। जो इस जंजाल में फँस जाते हैं, उनका दाम्पत्य-जीवन बुरी तरह बेहाल हो जाता है। प्रेम आत्मा से करते हैं शरीर से नहीं, कर्तव्य से करते हैं कमकुलता से नहीं। प्रेम में किसी तरह का विकार नहीं होना चाहिए। शुद्ध, निर्मल और निश्छल प्रेम से ही स्त्री-पति एक सूत्र में बंधे रह सकेंगे। सुखी जीवन का यह प्रमुख आधार है।

इस सद्भावना का प्रमुख शत्रु है, अपना विषमय मन; बड़ा शंकातुर होता है, वह बात-बात पर सन्देह प्रकट करता है। लिंग-भेद के कारण स्त्री-पुरुषों में कुछ न कुछ छिपाव होता ही है, हल्के स्वभाव के व्यक्ति इन बातों को अपनी कटुता का आधार बनाते हैं। तरह-तरह की कुत्सित कल्पनाओं से सन्देह के बीज बोते और वैमनस्य पैदा करते रहते हैं। स्त्री और पुरुष के बीच में एक विश्वास होना चाहिए। अविचलित विश्वास बना रहेगा तो दुर्भावनायें अपने आप दूर रहेंगी और दाम्पत्य-जीवन का वातावरण विषाक्त होने से बच जायेगा।

वेद भगवान का आदेश है कि स्त्री-पुरुष सदैव साथ-साथ रहें वे कभी विलग न हों। विलगता ही सन्देह उत्पन्न करती है। कुटिल शंकाओं की घात तभी लगती है, जब दाम्पत्य-जीवन में अलगाव बना रहता है, स्त्रियाँ कभी-कभी अपने माता-पिता के घर चली जाया करें। यहाँ तक तो उचित है, किन्तु सामूहिक जलसों, मेले-ठेलों, सिनेमाओं आदि में दोनों का साथ रहना आवश्यक है। इसी तरह दुःख-सुख के क्षणों में, संपद-विपद में भी एक साथ रहकर अपनी आत्मीयता अधुण रखनी चाहिए। यह सम्मिलन होता ही इसलिए है कि सुख का सहयोगी और विपत्ति में धैर्य बंधाने वाला एक साथी चाहिए। भारतीय संस्कृति का यह नियम है कि यहाँ का कोई भी धार्मिक अनुष्ठान स्त्री-पुरुष दोनों के बिना पूरा नहीं होगा। यज्ञ कार्यों में भी यह साहचर्य आवश्यक माना गया है।

निस्वार्थ सेवा भाव हमारे प्रेम-बन्धनों को मजबूत बनाता है। सेवा मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है। दाम्पत्य सुख की सुरक्षा में तो वह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सेवा का अर्थ जो यह लगाते हैं कि वह केवल सहधर्मिणी का ही कर्तव्य है, वे भूल में हैं। गृह कार्यों का संचालन स्त्री की सेवा है और धन कमाना तथा उससे अपनी पत्नी की इच्छायें पूर्ण करने में पुरुष की सेवा मानी जाती है। इन कर्मों का पालन कर्तव्य भावना से हो। दासियों की तरह स्त्रियों से अपनी शारीरिक सेवा लेना वज्रमूर्खता है। बीमारी या विवशता में तो ऐसा सम्भव है, किन्तु इसे प्रतिदिन का व्यापार बना लेना उन अविवेकियों का ही काम हो सकता है, जो दाम्पत्य-जीवन

को एक पवित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध न मानकर केवल जड़ता की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे कर्म करें, तो फिर मनुष्य और पशुओं में अन्तर ही क्या रहेगा ?

मनुष्य की योग्यता बहुत ही स्वल्प है। कुछ न कुछ कमी सभी में होती है। छोटी-छोटी भूलों, त्रुटियों को तूल देकर जीवन भर के साथी के साथ बिगाड़ पैदा कर लेना मनुष्योचित कर्म नहीं। एक-दूसरे की आलोचना करना, छोटी सुनाना—ये आदतें निन्दनीय हैं, इनसे स्त्री-पुरुषों के बीच खाई पड़ जाती है, जिससे सारा जीवन दुःख, क्लेश और कठिनाइयों से ग्रसित हो जाता है। द्वेष-दर्शन का परित्याग करें और गुण-ग्राहकता का स्वभाव बनायें। छोटी-छोटी भूलें लोग बच्चों की क्षमा कर देते हैं, अपनी त्रुटियों को भी उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सके तो पारस्परिक सौजन्यता बनी रह सकती है। जो गुण दिखाई दें, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। जिस वस्तु से किसी को प्रसन्नता मिले, अपनी ओर से उसे पूरा करने की कंजूसी दिखाना उचित नहीं है। अपनी उदारता और क्षमा भावना के द्वारा अपने सम्बन्ध दृढ़तर करने का प्रयास दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए प्रत्येक दशा में अपेक्षित है।

सदैव गम्भीर बने रहना, खिन्न मन रहना और उदासीनता व्यक्त करना भी अच्छा नहीं होता। दाम्पत्य-जीवन में उत्साह भी हो, हास और विलास भी होना चाहिए। निरन्तर काम करते रहने से, श्रम और संघर्ष से जो थकान, ऊब और ढीलापन आता है, उसे समाप्त करने का एकमात्र उपाय है—मनोविनोद। पति काम से थक कर जब शाम को घर पहुँचे तो पत्नी का चेहरा हँसता हुआ, खिला-सा दिखाई दे। कुढ़ा हुआ रूप मानसिक थकावट को और भी बढ़ा देता है, इसलिए सदैव हँसमुख और मनोविनोदी भी होना चाहिए। मनोविनोद कर्म-मार्ग का एक अदभुत संबल है, इससे थकावट दूर भाग जाती है, हम दूसरे दिन के लिए नई ताजगी और स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं। हँसना जीवन शक्ति को बढ़ाता है, शरीर में बल और साहस का संचार होता है। इसी तरह मृदुल हास से स्वभाव, शरीर और आत्मा दृढ़ होती है। इन्हें अपने जीवन में प्रयुक्त किए रहने से सम्बन्ध मधुर बने रहते हैं।

दैनिक जीवन में शिष्टाचार, छोटी-छोटी भावनाओं में प्रियजनों की इच्छाओं का समादर भी हो। किसी को छोटा, किसी को बड़ा मानने की आदत गलत है। आत्मीयता के परिष्कार के लिए सबको समान इज्जत और प्रेम मिलना अत्यन्त जरूरी है।

शरीर बल, चरित्र बल और मनोबल के द्वारा पुरुष अपना सौमनस्य स्थापित रखे तो सम्पत्ति और समाज की बहिर्मुखी कठिनाइयाँ दाम्पत्य-सुख को परास्त न कर पायेंगी। अपने जीवन में सदायशता का प्रयोग करना है ताकि हमारा जीवन सुखी, सन्तुष्ट तथा उन्मुक्त बन सके।

ऐसा कर सके तो यही समझें कि आपका स्वर्ग आपके घर में ही आने वाला है।

छोटे-बड़े, पढ़े-अनपढ़े, धनी-निर्धन का भेद-भाव रखना मनुष्य की सबसे बड़ी कुटिलता है। इससे मनुष्य की उच्छ्वेखल प्रकृति व्यक्त होती है। वन्य पशु तथा दाम्पत्य जीवन में बँधकर रहने वाली पक्षियों में ऐसा किसी तरह का भेद नहीं होता। मनुष्य में यह भेद-नीति उसके भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण होती है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होना चाहिए। इस बात को याद रखने के लिए समय-समय पर धर्मानुष्ठान, तीर्थ यात्रा, पूजा-अर्चा के आयोजन भी होते रहें जिससे आत्मिक पवित्रता का परिष्कार हो। विवाह-जयन्ती मनाने का प्रचलन भी किया जा सकता है इसमें—एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान बने रहने का संकल्प दोहराते रहना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मार्ग

अनेक परिवारों में स्त्री-पुरुषों के मध्य वैसे मधुर सम्बन्ध नहीं देखे जाते, जैसे कि होने चाहिए। अनेकों घरों में आये दिन संघर्ष, मनोमालिन्य और अविश्वास के चिह्न परिलक्षित होते रहते हैं। कारण यह है कि पति-पत्नी में से एक या दोनों ही केवल अपनी-अपनी इच्छा, आवश्यकता और रुचि को प्रधानता देते हैं। दूसरे पक्ष की भावना और परिस्थितियों को न समझना ही प्रायः कलह ही का कारण होता है।

जब एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छानुसार आचरण नहीं करता तो उसे यह बात अपना अपमान, उपेक्षा या तिरस्कार प्रतीत होती है, जिससे चिढ़ कर दूसरे पक्ष पर कटुवाक्यों का प्रहार या दुर्भावनाओं का आरोपण करता है। उत्तर-प्रयुत्तर, आकर्षण-प्रत्याकर्षण, आक्षेप-प्रत्याक्षेप का सिलसिला चल पड़ता है, तो उससे कलह बढ़ता ही जाता है। दोनों में से कोई अपनी गलती नहीं मानता, वरन् दूसरे को अधिक दोषी, प्रधान दोषी, प्रथम दोषी सिद्ध करने के लिए अपनी जिद को बढ़ाते रहते हैं। इस रीति से कभी भी झगड़े का अन्त नहीं हो सकता। अग्नि में ईंधन डालते जाने से तो और भी अधिक प्रज्वलित होती है।

जो पति-पत्नी अपने सम्बन्धों को मधुर रखना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि दूसरे पक्ष की योग्यता, मनोभूमि, भावना, इच्छा, संस्कार, परिस्थिति एवं आवश्यकता को समझने का प्रयत्न करें और उस स्थिति के मनुष्य के लिए जो उपयुक्त हो सके, ऐसा उदार व्यवहार करने की चेष्टा करें तो झगड़े के अनेकों अवसर उत्पन्न होने से पहले ही दूर हो जायेंगे। हमें भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि सब मनुष्य एक समान नहीं हैं, सबकी रुचि एक समान नहीं है, सबकी बुद्धि, भावना और इच्छा एक जैसी नहीं होती। भिन्न वातावरण, भिन्न परिस्थिति और

भिन्न कारणों से लोगों की मनोभूमि में भिन्नता हो जाती है। यह भिन्नता पूर्णतया मिट कर दूसरे पक्ष के बिल्कुल समान हो जावे, यह हो नहीं सकता। कोई स्त्री-पुरुष आपस में कितने ही सच्चे क्यों न हों, उनके विचार और कार्यों में कुछ न कुछ भिन्नता रह ही जायेगी।

अनुदार स्वभाव के स्त्री-पुरुष कट्टर एवं संकीर्ण मनोवृत्ति के होने के कारण यह चाहते हैं कि हमारा साथी हमारी किसी भी बात में तनिक भी मतभेद न रखे। पति अपनी स्त्री को पतिव्रत का पाठ पढ़ाता है और उपदेश करता है कि तुम्हें पूर्ण पतिव्रता, इतनी उग्र पतिव्रता होना चाहिए कि पति की किसी भी भली-बुरी विचारधारा, आदत, कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप न हो। इसके विपरीत स्त्री अपने पति से आशा करती है कि पति के लिए भी यह उचित है कि स्त्री को अपना जीवन संगी, आधा अंग समझकर उसके सहयोग एवं अधिकार की उपेक्षा न करे। यह भावनाएँ जब संकीर्णता और अनुदारता से संमिश्रित होती हैं तो एक पक्ष सोचता है कि मेरे अधिकार को दूसरा पक्ष पूर्ण नहीं करता। बस यहीं से झगड़े की जड़ आरम्भ हो जाती है।

इस झगड़े का एकमात्र हल यह है कि स्त्री-पुरुष को और पुरुष-स्त्री को, अपने मन का अधिकाधिक उदार भावना से भरें। जैसे किसी व्यक्ति का एक हाथ या एक पैर कुछ कमजोर, रोगी या दोषपूर्ण हो तो वह उसे न तो काट कर फेंक देता है न कूट डालता है और न उससे घृणा, असन्तोष, विद्वेष आदि करता है। अपितु उस विकृत अंग को अपेक्षाकृत अधिक सुविधा देने और उसके सुधारने के लिए, स्वस्थ भाग की भी थोड़ी उपेक्षा कर देता है। यह नीति अपने कमजोर साथी के बारे में बरती जाय तो झगड़े का एक भारी कारण दूर हो जाता है।

झगड़ा करने से पहले आपसी विचार-विनिमय के सब प्रयोगों को अनेक बार कर लेना चाहिए। कोई वज्रमूर्ख और घोर दुष्ट प्रकृति के मनुष्य तो ऐसे हो सकते हैं, जो दण्ड के अतिरिक्त और किसी वस्तु से नहीं समझते। पर अधिकांश मनुष्य ऐसे होते हैं, जो प्रेम भावना के साथ, एकान्त स्थान में सब ऊँच-नीच समझाने से बहुत कुछ समझ और सुधार जाते हैं। जो थोड़ा-बहुत मतभेद रह जाय उसकी उपेक्षा करके उन बातों को ही विचार क्षेत्र में आने देना चाहिए जिनमें मतैक्य है। संसार में रहने का यही तरीका है कि एक-दूसरे के सामने थोड़ा-थोड़ा झुका जाय और समझौते की नीति से काम लिया जाय। महात्मा गाँधी उच्चकोटि के आदर्शवादी और संत थे, पर उनके ऐसे भी अनेकों सच्चे मित्र थे जो उनके विचार और कार्यों से मतभेद ही नहीं विरोध भी रखते थे। यह मतभेद उनकी मित्रता में बाधक न होते थे। ऐसी ही उदार समझौतावादी नीति के आधार पर आपसी सहयोग-सम्बन्धों को कायम रखा जा सकता है।

इसका अर्थ कदापि नहीं है कि साथी में दोष, दुर्गुण हों, उनकी उपेक्षा की जाय और उन बुराइयों को अबाध रीति से बढ़ने दिया जाय। ऐसा करना तो एक भारी अनर्थ होगा। जो पक्ष अधिक बुद्धिमान, विचारशील एवं अनुभवी है, उसे अपने साथी को सुसंस्कृत, समुन्नत, सद्गुणी बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही अपने आपको भी ऐसा मधुर भाषी, उदार, सहनशील एवं निर्दोष बनाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि साथी पर अपना समुचित प्रभाव पड़ सके। जो स्वयं अनेक बुराइयों में फँसा हुआ है वह अपने साथी को सुधारने में सफल कैसे हो सकता है ? सती सीता परमसाध्वी उच्चकोटि की पतिव्रता थीं, पर उनके पतिव्रता होने का एक कारण यह भी था कि वे एकपत्नी व्रतधारी अनेक सद्गुणों से सम्पन्न राम की धर्मपत्नी थीं। रावण स्वयं दुराचारी था। उसकी स्त्री मंदोदरी सर्वगुण सम्पन्न एवं परम बुद्धिमान होते हुए भी पतिव्रता न रह सकी।

जीवन की सफलता, शक्ति, सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हमारा दम्पति जीवन सुखी और सन्तुष्ट हो। इसके लिए आरम्भ में ही बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए और गुण, कर्म, स्वभाव की समानता के आधार पर लड़के-लड़कियों के जोड़े चुने जाने चाहिए। अच्छा चुनाव होने पर भी पूर्ण समता तो हो नहीं सकती, इसलिए हर एक स्त्री पुरुष के लिए इस नीति को अपनाना आवश्यक है कि अपनी बुराइयों को कम करें, साथी के साथ मधुरता, उदारता और सहनशीलता का आत्मीयतामय व्यवहार करें, साथ ही उसकी बुराइयों को कम करने के लिए धैर्य, दृढ़ता और चतुरता के साथ प्रयत्नशील रहे। इस मार्ग पर चलने से असंतुष्ट दाम्पति जीवन में सन्तोष की मात्रा बढ़ेगी और संतुष्ट दम्पति स्वर्गीय जीवन का आनन्द उपलब्ध करेंगे।

पत्नी सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बने

भारतीय मनीषियों ने हजारों बार इस तथ्य को दुहराया है कि पति-पत्नी एक प्राण दो शरीर हैं। उनकी स्वतन्त्र कोई सत्ता ही नहीं है। विवाह के बाद एक-दूसरे के व्यक्तित्व में घुल-मिल जाना, स्वभाव से रचपच जाना और एक-दूसरे की उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करते रहना ही दोनों की नियति है। दाम्पत्य जीवन को, गृहस्थ जीवन को एक योग साधना निरूपित करते हुए प्रतिपादित किया गया है कि वे गृहस्थ रूपी गाड़ी को दो पहियों के समान हैं और दोनों का ही सशक्त, सुदृढ़, मजबूत होना अनिवार्य है। दोनों इकाई व्यक्तित्व की दृष्टि से समानधर्मी और समान शक्तिशाली हों, तभी गृहस्थी रूपी गाड़ी सुचारु रूप से चलती रह सकती है और दोनों अपने व्यक्तित्व का उपयोग एक-दूसरे का विकास करने के लिए कर सकते हैं। तभी दाम्पत्य-जीवन सार्थक हो सकता है।

किस प्रकार दाम्पत्य जीवन को सार्थक बनाया जाए ? इसके लिए उपरिक्त तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही पति-पत्नी आपस में अपने कर्तव्य का निर्वाह करें। कर्तव्यों की दृष्टि से देखें तो प्रथम कर्तव्य पति का ही ठहरता है। उसे चाहिए कि वह अपनी पत्नी की सर्वांगीण उन्नति और विकास के लिए आवश्यक भरसक प्रयास करे। यह कर्तव्य इस दृष्टि से उभयपक्षीय भी बनता है कि पति अपनी पत्नी के अनुरूप और पत्नी अपने पति के अनुरूप सामंजस्य स्थापित करे तो सरलतापूर्वक निर्वाह हो सकता है और दाम्पत्य-जीवन सरल, सुखद व सार्थक बन सकता है।

यदि दोनों पक्ष समुचित रीति-नीति अपनाएँ, संतुलित दृष्टिकोण बरतें तो दोनों एक-दूसरे के लिए श्रेष्ठ सहयोगी बन सकते हैं। पत्नी अपनी योग्यता के आधार पर पति के स्वभाव में ऐसे परिवर्तन प्रस्तुत कर सकती है कि वह उचित-अनुचित का भेद कर सके, न्याय-अन्याय का विवेक कर सके तो कर्तव्य परायण और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक हो सके। वह अपने व्यवहार और कर्मों के द्वारा पति की आदतों, व्यवहार, आचार-विचार और रहन-सहन में अपेक्षित परिष्कार और संतुलन ला सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि पति-पत्नी अपने कार्य क्षेत्र के अनुसार एक-दूसरे के प्रति स्नेह, सद्भावना का, सहकार और सहयोग का रुख अपनाएँ। पत्नी का पति के प्रति सम्मान, ममता और सराहना का दृष्टिकोण अपनाना ही उसके प्रति सच्चे सहयोगी बनने की कसौटी है। पत्नी के नेतृत्व में गृहस्थी का संचालन और व्यवस्था इस प्रकार की है कि परिवार में एक स्वस्थ और पवित्र वातावरण बना रहे। ऐसा होने से परिवार में शान्ति और संतोष के भाव जाग्रत होकर प्रत्येक परिजन को सुख और आनन्द का रसास्वादन होता रह सकता है।

यह भी आवश्यक है कि पत्नी अपने पति के स्वभाव और उसकी प्रकृति से पूर्णतया परिचित रहे। इसी प्रकार वह अपने पति का हृदय जीतकर उसे हमेशा अपने अनुकूल बनाये रह सकती है। इसी प्रकार दोनों एक-दूसरे के एक स्नेह और विश्वास के भाजन बने रह सकते हैं। पति को अपने अनुकूल और वशवर्ती बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह पति के सम्बन्ध में कभी भी निन्दा और अपमान की प्रकृति न अपनाएँ। स्मरण रखा जाना चाहिए कि यह प्रकृति ही कटुता और परस्पर अविश्वास के कारणों को जन्म देती है। मृदु मुस्कान युक्त, मधुर वाणी और उचित व्यवहार पति को सुखी व संतुष्ट बनाता है, उसकी प्रतिक्रिया पति-पत्नी में अगाध विश्वास, अटूट स्नेह तथा मधुर सम्बन्धों के रूप में निश्चित रूप में फलित होती है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति हमेशा पत्नी की ओर से अपनी प्रेम पिपासा की तृप्ति के लिए लालायित रहता है। बाहर के कामों से हारा-थका पति पत्नी की

मधुर मुस्कान और स्नेहपूर्ण व्यवहार से अपनी सारी थकान भूल जाता है। यदि पत्नी पति की इस अपेक्षा को पूर्ण नहीं कर पाती तो वह एक प्रकार की नीरसता अनुभव करने लगता है। पत्नी को चाहिए कि इस तरह की स्थिति को उत्पन्न न होने दे। यदि इसके विपरीत, प्रतिकूलता का रुख अपनाया गया, अपेक्षित समझ-बूझ नहीं बरती गई तो पति में घर-गृहस्थी के प्रति एक उदासीनता का भाव भी उत्पन्न हो सकता है। इसलिए दाम्पत्य सम्बन्धों में इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए और ध्यान रखा जाना चाहिए कि सम्बन्धों की दिशा किधर जा रही है।

इसे सौभाग्य ही कहा जाना चाहिए कि इन दिनों स्त्री शिक्षा का महत्व समझा जाने लगा है। भले ही स्थिति संतोषजनक न हो पर यह सही है। आज की नारी पुराने जमाने की अपेक्षा अधिक समझदार है। वह पिछली पीढ़ी की अशिक्षित, निरीह, अज्ञानी और परावलम्बी नारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, स्वतन्त्र, स्वावलम्बी जीवन जीने के योग्य हो गई है तथा उसमें कुछ ही सीमा तक सही थोड़ा-बहुत विवेक जागा है। इसके फलस्वरूप वह गृहस्थ जीवन में और समाज में एक नवीन चेतना भरने की दृष्टि से भी समर्थ व सक्षम होती जा रही है। जीवन की कटुता और अशान्ति नारी इस प्रगति चक्र से बहुत कुछ कम होने की सम्भावनाएँ बनी हैं।

लेकिन यह एक दोराहा भी है, जिसमें भटकाव की भी सम्भावना है। समझा जाता है कि यह चेतना बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यता की देन है। बात एक सीमा तक सही भी है। किन्तु यदि नारी ने केवल पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को ही ग्रहण किया, वहीं की विशेषताओं को अंगीकार किया और भारतीय जीवन मूल्यों को तिलांजलि दे दी तो हो सकता है, जीवन में कलह, कटुता, विच्छिन्नता और अशान्ति का ज्वालामुखी फूट पड़े, जैसा कि पश्चिमी परिवारों में आमतौर पर होता है। उचित तो यह है कि उन प्रभावों को भारतीय जीवन दृष्टि से संस्कारित किया जाय। अस्तु, पश्चिमी सभ्यता के अच्छे तत्वों को स्वीकार करते हुए अपनी जीवन दृष्टि की मौलिकता नहीं खोनी चाहिए। उसे अपने व्यक्तित्व की मौलिक विशेषता, समर्पण और आत्मत्याग की भावनाओं को सुरक्षित रखना चाहिए तथा स्वतन्त्रता के साथ-साथ विवेक का पुट भी रखना चाहिए।

कदाचित् पति-पत्नी में आपसी मनमुटाव उत्पन्न करने वाले कोई प्रसंग उपस्थित हो भी जाएँ, तो उन्हें चतुरतापूर्वक उड़ा देना चाहिए। जीवन की खुशी और सम्बन्धों में मधुरता बनाए रहने का यह एक अच्छा तरीका है। इसके लिए पति-पत्नी दोनों का दृष्टिकोण ही

सुलझा हुआ होना आवश्यक है। संतान के प्रति अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वों को निभाते हुए विवेकवान पत्नी के लिए अपने पति के प्रति सहयोगी और सदाशयतापूर्ण व्यवहार रखने में कठिनाई आने का कोई कारण नहीं है। जीवन में सरस मधुरता घोलने के लिए विचारशील और समझदार नारियाँ दोनों ही पक्षों का संतुलन चतुराई से साधे रहती हैं।

शास्त्रों ने नारी धर्म का उल्लेख करते हुए बताया है कि उसे अपने पति के प्रति मन, वचन, कर्म से पवित्र भावपूर्ण व्यवहार और आचरण करना ही श्रेयस्कर है इसका अर्थ यह नहीं है कि पति के लिए इस तरह का कोई निर्देश नहीं है। सही बात तो यह है कि जो अपेक्षाएँ पत्नी से या नारी से की गई हैं, वही अपेक्षाएँ पति से या पुरुष से भी की गई हैं। पर चूँकि प्रसंग पत्नी के कर्तव्यों या दायित्वों का चल रहा है, इसलिए यहाँ चर्चा इसी विषय में की जा रही है।

इसलिए न तो पत्नी को अपना व्यक्तित्व पति से अलग करके देखना चाहिए और न ही पति को पत्नी से स्वतन्त्र समझना चाहिए। शास्त्रों का स्पष्ट निर्देश है—दोनों एक-दूसरे की प्रसन्न भाव से सेवा करें, एक-दूसरे को सब प्रकार से संतुष्ट रखें और परिवार तथा समाज के विकास एवं संरक्षण में सहयोगी बनकर रहें वस्तुतः दोनों एक-दूसरे के प्रति शरीर, मन, प्राण, वाणी और कर्म से सहायक होकर ही अपना, निज का, सभी परिवार का व समाज और राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं।

पति-पत्नी के सहजीवन के आधार

जिस प्रकार पारिवारिक सहजीवन के लिए अधिकारों के साथ कर्तव्यों का निर्वाह जुड़ा रहता है और एक के बिना दूसरे का बना रहना सम्भव नहीं हो पाता, उसी प्रकार दाम्पत्य-जीवन के लिए भी यही तथ्य काम करता है।

यदि पति-पत्नी एक-दूसरे पर अधिकार तो जताएँ, किन्तु कर्तव्य निभाने में उपेक्षा बरतें, तो सहजीवन सम्भव नहीं है। व्यवहार में आत्मीयता की अभिव्यक्ति, क्रियात्मक सहयोग के ही रूप में सामने आती है। उत्कर्ष, कल्याण एवं आनन्द की वृद्धि के लिए सहयोग देना ही अपनत्व का प्रकट रूप है। सह-संवेदन के बिना सह-जीवन सम्भव नहीं। भले ही रेलगाड़ी के यात्रियों या जेल के कैदियों की तरह साथ-साथ रहा जा रहा हो। काल-यापन समझौता, अनुबन्ध, परस्पर सौदेबाजी तथा किसी उभयनिष्ठ स्वार्थ की पूर्ति के लिए भी साथ रहा जा सकता है। उसे सह-जीवन नहीं कह सकते और जहाँ सह-जीवन नहीं, वहाँ दाम्पत्य-जीवन एवं पारिवारिक जीवन भी नहीं। एक-दूसरे के लिए सहयोग, सद्भाव एवं आत्मदान की

भावना ही परिवार और दाम्पत्य-व्यवस्था की सार्थकता एवं विशेषता है।

परिवार बसाने का प्रयोजन तो सभी के मन में जाने-अनजाने रूप में यही रहता है कि साथ-साथ जिएँ। दाम्पत्य-जीवन, स्त्री-पुरुष की अनन्यता का ही संकल्प है। इस संकल्प की पूर्ति के लिए, एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह आवश्यक होता है। प्रेम कर्तव्य-भावना से ही किया जा सकता है, अधिकार भावना से नहीं। मात्र अधिकार-भावना से तो उपभोग की ही इच्छा उत्पन्न होती है। उपभोग और सह-संवेदन की वृत्ति साथ-साथ सम्भव नहीं। जहाँ हम दूसरे से अपने काम आने की तो अपेक्षा करेंगे, स्वयं उसके काम आने, उसे सहयोग देने के लिए तत्पर नहीं रहेंगे, वहाँ समानता एवं आत्मीयता की भाव-संवेदना कैसे टिक सकेगी ?

विवाह के समय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञा-बद्ध होते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ अग्रसर होंगे। काश ! इस प्रतिज्ञा का निर्वाह किया गया होता, तो सचमुच पति-पत्नी मिलकर एक ऐसी सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में घर-घर में क्रियाशील रहते कि स्वयं उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महमहा उठता और समाज भी सुरभित उद्यान बना होता। किन्तु इस प्रतिज्ञा को निभाते कितने लोग हैं।

होता यह है कि पति-पत्नी पर अपना अधिकार इस रूप में मान बैठते हैं कि वह माँ-पिता, भाई-बहिन, परिजन-पुत्रजन, देश-समाज किसी की चिन्ता करना अब छोड़ दें बस मुझे देखें, मेरी चिन्ता करें और मेरे बच्चों की। पत्नी वैवाहिक-अनुष्ठान की, एक क्रिया के सम्पन्न होने भर से कैसे-कैसे विचित्र अधिकार मान बैठती है, इस पर कभी तटस्थ भाव से शान्तिपूर्वक सोचा जाय, तो हँसी भी आती है, आश्चर्य भी होता है। यह पूरी तरह सही है कि विवाह एक धर्मानुष्ठान है, लेकिन क्या जात-कर्म, नामकरण, विद्यारम्भ आदि धर्मानुष्ठान नहीं हैं ? मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, देश-भक्ति ये सब क्या धर्माधिष्ठित कर्तव्य-कर्म नहीं हैं ? जीवन के इन समस्त कर्तव्यों की, धर्मानुष्ठान एवं धर्मसम्मत आचरण की अवहेलना कर पति बस एक ही कर्तव्य को निभाये। विवाह के समय किये गये संकल्प को इस रूप में याद रखें कि वह अन्य शुभ-संकल्पों का विरोधी बनकर रह जाये ? ऐसी विचित्र अपेक्षा पालने वाली पत्नी क्या परस्पर-विरोधी इच्छाएँ नहीं पालती ? जो पुरुष जीवन के अन्य सभी संकल्प, शेष सभी कर्तव्य-कर्म भुला बैठेगा, उनके प्रति लापरवाह हो जायेगा वह उसके प्रति ही कब तक जिम्मेदार रहेगा ? उसका पति भी अपनी माँ की कोख से पैदा हुआ है। पिता के संरक्षण में पला-बढ़ा है। भाई-बहनों के साथ हँसा-खेला, रोया-गाया है। यदि वह उन्हीं माँ-पिता, भाई-बहनों के प्रति अपने कर्तव्य भुला

२.५८ गृहस्थ एक तपोवन

सकता है तो पत्नी के प्रति कब तक कर्तव्यनिष्ठ रहेगा ? समाज में रहकर सारी सुविधाएँ पाई हैं, शिक्षण प्राप्त किया है। उस समाज का ऋण रोम-रोम में भिदा है। समाज के ही सहारे बौद्धिक विकास एवं आर्थिक समृद्धि सम्भव हुई है। जन्म से लेकर अब तक प्रतिपल वह समाज उसका परिचित रहा है। उसी समाज के प्रति गैर जिम्मेदार हो जाने वाला पुरुष भला एक अब तक अपरिचित नारी के प्रति कितना वफादार रह पायेगा ? कहा जा सकता है कि उस नारी से तो उसका स्वार्थ सिद्ध होता है। तो माँ-पिता, भाई-बहिन, गुरु, मित्र तथा समाज से क्या कम स्वार्थ सिद्ध होता है ? यदि इन सबके प्रति काम निकलते ही उपेक्षा दर्शाई जा सकती है, तो काम-पिपासा एवं देहावेग की शान्ति के बाद पत्नी के प्रति उपेक्षा क्यों न आ जायेगी ? यदि इन सबके प्रति कर्तव्य का पालन नहीं किया जाता, तो पत्नी के प्रति कर्तव्य का पालन कैसे और क्यों कर किया जायेगा ? कर्तव्य का पालन न होने पर पत्नी का दैहिक-आकर्षण, स्वास्थ्यगत सौन्दर्य मन्द पड़ते ही प्रबल उपेक्षा क्या रूप लेगी ?

पति पर संकीर्ण रूप में अधिकार बसाने वाली पत्नी यह सब कभी सोचती भी नहीं। पति द्वारा इन कर्तव्यों की अवहेलना उसे अनुचित नहीं लगती। उसे इसी में सुख मिलता है। लेकिन कर्तव्य विमुखता की इस विष-बेलि को सींचने का सर्वाधिक दुष्परिणाम भोगना उसे ही पड़ता है।

नारी यदि यह सब नहीं सोच पाती, तो उसमें इसका दोष कम ही है किन्तु पत्नी पर अपना अधिकार मानने वाले प्रबुद्ध एवं प्रभुता-सम्पन्न पति जब उसके प्रति अपने कर्तव्यों का स्मरण नहीं रख पाते, तब उन्हें कैसे दोषमुक्त माना जा सकता है ? पत्नी को इतना संकीर्ण बनाये रखने में क्या उनकी ही जिम्मेदारी नहीं है ? जो इतनी भोली है कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों की उपस्थिति में, धार्मिक विधि के साथ किये गये संकल्प पर रहस्यमय ढंग से आस्था-श्रद्धा पालकर, उसे अटल-अचल मानकर निश्चिन्त हो गई है, अपना सब कुछ सौंप बैठी है, उसके प्रति प्रबुद्ध और समाज के नियन्त्रक बनने वाले पुरुष का कोई भी कर्तव्य नहीं है ? जिस निश्छल-हृदया ने विवाह के समय में की गई प्रतिज्ञा को ध्रुव-सत्य मानकर इतने गहरे विश्वास के साथ समर्पण कर दिया है, उसके विश्वास को छलने, उसे मूढ़ और अनजान ही बनाये रखने वाले पुरुष को क्या कहा जाय ? क्या पत्नी पर अधिकार मानने का यही अर्थ है कि उसकी शक्तियों को चुपचाप छीजने-चुकने दिया जाय ? उसकी सम्भावनाओं को समाप्त होने दिया जाय ? उसकी जन्मजात क्षमताओं को अनगढ़ ही रहने दिया जाय ? जिस पर अपना अधिकार मानकर इतराया जाता है, उसे ही सड़ने-गलने दिया जाय ? क्या इससे स्वयं अधिकारी के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता ?

ऐसा कोई भी स्वस्थ पुरुष नहीं है, जो अपनी पत्नी में विकसित विशेषताएँ न देखना चाहता हो। मात्र

शारीरिक सौन्दर्य से कोई भी पुरुष अधिक दिनों तक तुष्ट नहीं हो सकता। वह पत्नी से सह-सम्वेदन की अपेक्षा करता है। हमारी कोमल अनुभूतियों, बौद्धिक अभिव्यञ्जनाओं, सामाजिक गतिविधियों में भी पत्नी समान रूप से सहभागी हो, यह कौन नहीं चाहता ? इनमें से एक-एक क्षेत्र में आंशिक रूप से सहभागी बने लोग मित्र बन जाते हैं। साहित्य, कला, संगीत, व्यवसाय, राजनीति, समाज सेवा आदि एक-एक क्षेत्र में अपने से विचार-साम्य, अनुभूति-साम्य एवं रुचिसाम्य रखने वालों के प्रति प्रगाढ़ आकर्षण मैत्री के रूप में विकसित होता है और बढ़ता ही जाता है। सहधर्मिणी को यदि विकसित होने दिया जाय, तो वह इन सभी क्षेत्रों में एक साथ सहभागी-सहयोगिनी बन सकती है, सर्वाधिक विश्वस्त मित्र एवं सर्वाधिक रुचिकर साथी के रूप में निरन्तर उपलब्ध रह सकती है। उस स्थिति में जिस आनन्द-उल्लास, स्फूर्ति-उत्तुलता, तृप्ति-प्रसन्नता की अनुभूति होगी, वह कितना बड़ा सौभाग्य होगा ?

यह सौभाग्य अपेक्षा से प्राप्त होने वाला नहीं। कर्तव्य-निर्वाह से ही उसकी पूर्ति होगी। स्नेह-सम्मान और सहयोग से ही पत्नी की प्रतिभा उभरती-निखरती है। ऐसा किये बिना, उसकी संकीर्णता पर नाक-भौं सिकोड़ना तथा पेट-प्रजनन के जिन प्रयोजनों में वह अपने को सन्तोष-सुख देती है, उतने भर के समय उसकी मनुहार करना या उसे थोड़ा-बहुत सहयोग दे देना, पुरुष की क्षुद्रता का ही द्योतक है। व्यक्तित्व का विकास कैसे हो सकता है, इसकी जानकारी प्रबुद्ध पुरुष को ही होती है, व्यक्तित्व की विभिन्न दिशाओं से वही परिचित होता है। पत्नी इस रूप में विकसित हो, यह उसकी इच्छा भी होती है, किन्तु उस इच्छा की पूर्ति और आवश्यक क्रियाशीलता से वह दूर रहता है।

अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक क्रियाशीलता के बिना वे कैसे पूरी होंगी ? नारी के विकसित स्वरूप की अपेक्षा तो ठीक है। वह न तो अनुचित है, न ही असम्भव। अपितु स्वाभाविक एवं सहज है। नारी उसमें पूर्णतः समर्थ है। जितना उसे सिखाया गया है, उसमें वह पुरुष से आगे ही है, पीछे नहीं। निष्ठा और भावना की क्षमताएँ उसमें स्वाभाविक हैं। भावनात्मक गहराई और वफादारी की ऊँचाई में वह पुरुषों से बढ़-चढ़कर है, यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य है और कुछ तो उसे सिखाया नहीं गया। नारी से पुरुष अपेक्षा तो स्वास्थ्य, सक्रियता, सहयोग, सहानुभूति की भी करता है। श्रेष्ठ सन्तान को न तो उसे साधन दिये गए, न शिक्षण। बुद्धिमत्ता, व्यवहार कौशल, स्वास्थ्य-सभी के विकास के लिए साधन एवं शिक्षण की आवश्यकता है। नारी एक सुयोग्य जननी बने, सन्तान का श्रेष्ठ संस्कार दें, इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए भी शिक्षण एवं साधन सुलभ कराने का कर्तव्य निभाना आवश्यक है तथा सबसे

बढ़कर आवश्यक है सम्मान। नारी की संकीर्णता पर झुंझलाते और व्यंग्य करते रहने से अपनी ही हीनता प्रकट होती है। उसे पुरुष अपने जैसा विकसित देखना चाहते हैं, तो उसे वैसा ही सम्मान भी दें।

अभी तो सम्मान दिया नहीं, बस रूप का गौरव दिया है। रूप के प्रति ही प्रधान आकर्षण, दिखाया गया है। सो, नारी ने रूप का ही शृंगार सीख लिया है। उसी में बिंधी, व्यस्त रहती है। पुरुष उसे शृंगार में पिछड़ी, अकुशल, अनजान न मानें, इसी ओर वह ध्यान देती रही है। यदि उसे समानता के स्तर पर सम्मान दिया जाये, साधन, शिक्षण, अवसर की समानता दी जाये, कर्तव्यों को निर्वाह किया जाय, तो अपने से पाली जाने वाली अपेक्षाएँ वह निश्चय ही पूरी कर सकती है। जहाँ कर्तव्य निभाये गए हैं, वहाँ इसने अपेक्षा से अधिक ही प्रगति दिखाई है, कम नहीं। सच्चे अर्थों में सहजीवन सम्भव भी तभी है, जब इन कर्तव्यों की पूर्ति की जाये।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम

गृहस्थ जीवन की गाड़ी जिन दो पहियों के सहारे चलती है, वे हैं स्त्री और पुरुष। दोनों के मिलने पर ही गृहस्थी का प्रादुर्भाव होता है। ऐसे परिवार में माँ-बाप, भाई-बहिन, पुत्र और पुत्रियाँ भी होती हैं, किन्तु गृहस्थ का मूलधार पति-पत्नी ही होते हैं। जैसे जमीन के अन्दर से जीवन तत्त्व लेकर ऊपर की डालियों, टहनियों, पत्तों, फूल और फलों को पोषण पहुँचाने में, वृक्ष के जीवन को बनाये रखने में तने का महत्व अधिक है वैसे ही पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी का सर्वाधिक महत्व है।

किसी वृक्ष का तना सुख रहा हो तो उसके हरे-भरे रहने की आशा नहीं की जा सकती। दाम्पत्य जीवन में मनोमालिन्य और विद्वेष की भावनाएँ भड़क रही हों तो पारिवारिक सुख की कल्पना करना व्यर्थ ही होगा। ऐसे घरों को प्रत्यक्ष नरक के रूप में देखा जा सकता है। यह नरक आज सर्वत्र फैला दिखाई दे रहा है। घर-घर पति-पत्नियों के बीच कलह और दुर्भावनाओं की विभीषिका अपना गंगा नाच नाच रही है। मानव समाज इस आग में जलता हुआ बुरी तरह छटपटा रहा है। समाज की सुस्थिरता, सुसंस्कृति एवं विकास प्रक्रिया में तीव्रता अपेक्षित हो तो सर्वप्रथम परिवार की रीढ़, दम्पति को फिर से शाश्वत प्रणय-सूत्र में बाँधना पड़ेगा। दाम्पत्य जीवन को सुखी एवं संतुष्ट बनाये रखने के लिये जिस प्रेम की आवश्यकता है। जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है, वे कभी भी, किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण, मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिये तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष, दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं नजर आता।

स्त्री-पुरुष के बीच एकता की भावना न हो, आपस में मनोमालिन्य बना रहे तो पारिवारिक सुख-शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। वे हर क्षण आन्तरिक द्वन्द्व में पिसते रहेंगे। ऐसी दशा में विकास की बात तो सोची तक नहीं जाती फिर उसके लिये कोई रचनात्मक कदम कैसे उठाया जा सकेगा ? ऐसे परिवारों को अपने आन्तरिक कलह से ही फुरसत नहीं मिलती, विकास की बात तो तभी सोची जा सकती है, जब इनसे मुक्ति मिले। दाम्पत्य-जीवन की इस दुर्दशा का प्रमुख रूप से उत्तरदायी पुरुष है। घर के संचालन के मुखिया अधिकांशतया पुरुष ही होते हैं, उन्हीं की योजनाओं पर पारिवारिक व्यवस्थाएँ सम्पन्न होती हैं। नारी में अपेक्षाकृत कोमल भावनाएँ अधिक होती हैं। वह अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने पति के प्रेम की लालसा से समुगल आती है। इसी से वह अपने स्वच्छन्द जीवन का परित्याग करती है कि उसे पुरुष की सहचरी बनने, उसके सुख-दुःख में हाथ बँटाने में अधिक आनन्द आता है। विवाह होने के कुछ दिन बाद तक ऐसा होता भी है। पर धीरे-धीरे आकर्षण कम होने लगता है। एक-दूसरे में दोष-दुर्गुण देखने लगते हैं। छोटी-छोटी गलतियों को मानसिक विद्वेष के कारण बढ़ा-बढ़ाकर तिल का ताड़ बना देते हैं, फिर प्रतिकार लेने से भी नहीं चूकते। मारपीट, तलाक आदि पारस्परिक वैमनस्यता के कारण ही होते हैं।

इस विद्वेष का एक बड़ा कारण है अनियन्त्रित वासना। कामुकता प्रारम्भ में आकर्षक लगती है, किन्तु बाद में विभीषिका के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इससे नारी के सौन्दर्य में कमी होती आती है। धीरे-धीरे तो उसका सौन्दर्य स्वत्व ही समाप्त हो जाता है। तब पुरुष को उसमें आकर्षण प्रतीत नहीं होता तो रूप का लोलुप मनुष्य अपनी पत्नी की ओर से उपेक्षा भाव रखने लगता है। कभी-कभी तो वह व्यभिचार व दुराचार तक में प्रवृत्त होकर अपना घोर नैतिक पतन कर लेता है। ऐसी स्थिति में नारी का स्वाभिमान विद्वेष का रूप धारण कर लेता है। इस विश्वासघात से तिलमिला कर, क्षुब्ध होकर वह रुद्र रूप धारण करती है और घर में क्लेश, द्वेष का ताण्डव होने लगता है।

सन्तान-उत्पत्ति की दृष्टि से कामोपभोग अनुचित नहीं पर यदि भोग की लालसा बढ़ती ही गई, उस पर नियन्त्रण न किया गया तो दम्पति के बीच प्रेमभाव बना रहना अनिश्चित ही समझना चाहिये। हमारे ऋषियों ने इस बात पर गम्भीरता से विचार किया था, इसलिये कामोपभोग को षोडश संस्कारों में गर्भाधान के रूप में सम्मिलित कर लिया था। जब तक यह सामाजिक व्यवस्था अपने पूर्व रूप में बनी रही तब तक दाम्पत्य-जीवन सुखी, समृद्ध एवं सब प्रकार से सन्तुष्ट बना रहा, किन्तु इसमें शिथिलता आते ही वासनात्मक स्वच्छन्दता ने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सत्यानाश करने वाला विद्रूप धारण कर लिया। आज तो यह मानवीय अधःपतन का प्रमुख कारण बनी हुई है।

यदि लोग अपनी पत्नियों को शिक्षित एवं स्वावलम्बी बनाने के लिये कुछ समय लगाने लगे तो इससे आज की परिस्थितियों में बड़ी राहत मिल सकती है। उन्हें अपने भोग की वस्तु मानना, पर्दे के भीतर गुलामों की तरह रखना अच्छा नहीं। उन्हें सच्ची जीवन सहचरी मानना, उनके हित एवं कल्याण की भी समान व्यवस्था रखना पुरुषों का अनिवार्य कर्तव्य है। इससे प्रेमभाव बढ़ता है—एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य भावना सजग बनी रहने से पारस्परिक स्नेह बना रह सकता है। पति-पत्नियों के बीच यदि प्रेम बना रहे तो इससे घरेलू व्यवस्था बनी रहने से सर्वत्र सुख-शान्ति की परिस्थिति बनी रहती है। ऐसे परिवारों के बच्चों का मानसिक विकास तीव्रता से होता है। घर के दूसरे सदस्य जो काम करने लायक नहीं रहे, वे भी संतुष्ट जीवन जी लेते हैं।

दाम्पत्य-विद्वेष का दूसरा कारण है एक-दूसरे के प्रति सम्मान व प्रशंसा प्रदर्शन की कमी। दैनिक कार्यों में हर किसी से त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है। इन त्रुटियों को उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सके और जहाँ कहीं थोड़ी-सी भी विशेष सद्भावना दिखाई दे तो उसकी प्रशंसा की जाये। इससे स्त्री-पुरुष स्नेह सूत्र में बँधे रह सकते हैं। इस क्षेत्र में प्रथम जिम्मेवार पुरुष है। प्रायः देखा जाता है पुरुष-स्त्रियों की नुक्ता-चीनी करने में अधिक पटु होते हैं। जरा-सा दाल में नमक अधिक हुआ कि ढेरों झिड़कियाँ दे डालीं। जरा-सा बच्चा रोया कि तिलमिला कर बरस पड़े अपनी पत्नी पर। आखिर ऐसा क्यों ? स्त्रियाँ कोई मशीन तो नहीं कि भोजन की कलौरी नापकर उसी अनुपात से नमक मिला दें। वे स्वयं तो बच्चों को रुलाती नहीं। पुरुष स्वयं भी तो इस कार्य में हाथ बैठा सकते थे। पर ऐसा होता कहीं है ? स्त्री को गुलाम समझने की पुरुषों की आदत ने उन्हें आज सम्मान से वंचित कर रखा है। स्त्री को यदि दो शब्द भी अपनी प्रशंसा के मिल जायें तो दूसरे कार्यों के लिये और भी ताजगी अनुभव करने लगती है। पुरुष को स्नेहसिक्त आँखों से देखने वाली पत्नियाँ वे होती हैं, जिन्हें बदले में अपने पति से सम्मान मिला होता है। प्रशंसा के दो शब्द सुनने को मिले होते हैं।

यह कार्य पुरुष वर्ग का ही नहीं स्त्रियों को भी इसमें पूर्ण सम्मिलन बरतनी चाहिये। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक कठिनाइयों से भिड़ना पड़ता है। अधिक श्रम करना पड़ता है। दिनभर का हारा-थका-सा मनुष्य शाम को जब दफ्तर फैक्ट्री अथवा खेतों से वापस घर लौटता है तो उसे इस बात की अपेक्षा रहती है कि उसकी पत्नी उसका मीठे शब्दों से स्वागत करेगी। उसकी थकान पर सहानुभूति प्रकट करेगी। पत्नी का प्यार पाकर पुरुष दिन भर की थकान भूल जाता है और अगले दिन कार्य करने के लिए स्वस्थचित हो लेता है। ऐसे घरों में जहाँ एक-दूसरे के प्रति स्नेह, आत्मीयता और उदारता बनी

रहती है स्वर्ग बिखरा रहता है। दुःख और नरक का कारण है छिद्रान्वेषण, निन्दा, स्वार्थवृत्ति।

पति-पत्नियों के बीच कलह का अधिकांश कारण होता है गलत-फहमी, अविश्वास की भावना। संदेह की स्थिति प्रायः अविश्वास के कारण ही उत्पन्न होती है। स्त्री अपनी माँग पूरी न होते देख आशंका करने लगती है कि ये अधिक वेतन पाते हैं, मुझसे छुपाते हैं, चुपचाप फिजूलखर्ची करते हैं या फिर किसी नैतिक दुराचार की आशंका कर बैठती है। पुरुष भी इसी प्रकार अनेकों कारणों से स्त्रियों के स्वभाव पर संदेह करने लग जाता है। अधिकांश झगड़े इसी गलतफहमी के कारण ही उत्पन्न हुये होते हैं। ऐसी अवस्था में पति-पत्नियों के बीच मानसिक तनाव की स्थिति बनी रहती है। स्त्री एक ओर मुँह बनाये बैठी रहती है, पुरुष दूसरी ओर मन मारे बैठा रहता है। काम करते हुये बोझ-सा अनुभव करते हैं। जीवन भार-सा महसूस करते हैं। इसमें कभी-कभी घर के दूसरे सदस्य भी दलाली करने लगते हैं और उनकी भावनाओं में अधिक विद्वेष भरकर अपना स्वार्थ सीधा करने में लगे रहते हैं।

यह स्थिति बड़ी ही घातक होती है। मनोमालिन्य, अविश्वास, कटु-भाषण, गाली-गलौज, आत्महत्या, निर्मम मारपीट व पैशाचिक उत्पीड़न के हजारों दृश्य आये दिन आँखों के आगे गुजरा करते हैं। यदि एक-दूसरे से बातचीत के द्वारा अपनी बात सुलझा लिया करें, आपस में बैठकर झगड़े के कारण की तलाश, मनोमालिन्य पैदा करने वाली परिस्थिति का निराकरण कर लिया करें तो बहुत कुछ इस बुराई से बचा जा सकता है। अविश्वास की भावना पारिवारिक जीवन को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है, इससे इस पिशाचिनी से बचने में ही कुशलता है।

प्रेम मानव अन्तःकरण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से आकांक्षा लेकर आती है कि उसे ससुराल में सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में ही उठ खड़े होते हैं। इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए, जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित की जा सके। मुरझाये हुए अन्तःकरण प्यार की हल्की-सी बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आपको न्यूछावर कर देने के लिये उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण की। सुख और संतोष का जीवन फूस की झोपड़ी में भी जिया जा सकता है बशर्त कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम भावनाओं को स्थिर रख सकें।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने के, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चला रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम-आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिये फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी पड़ेगी। जिस स्थान से भटक गये थे, फिर उसी स्थान की ओर लौटना पड़ेगा। दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये धन जुटाये, पारिवारिक शिक्षा का भी ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों, ग्रहण करें, किन्तु यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम और आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य जीवन सफल न होगा। इसके लिये पारस्परिक प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा और यही परिस्थितियाँ सुव्यवस्थित होकर सभ्य-समाज की रचना का स्वप्न साकार करेंगी।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता

दाम्पत्य-जीवन सुखी कैसे हो ? इस समस्या का हल करने के लिए उसके ऊपर वाले स्तर—सामाजिक जीवन तक ही सोचने-विचारने से काम न चलेगा वरन् गहराई में जाकर उस स्तर तक उतरना पड़ेगा जिसे धर्म, श्रद्धा, आस्था और कर्तव्य के नाम से पुकारते हैं। दो आत्माओं का सच्चा मिलन इसी आधार पर सम्भव है और उसकी स्थिरता एवं सफलता का आधार भी यही हो सकता है।

बाह्य सुख-सुविधाओं की उचित व्यवस्था हो जाने, आजादी की परम्पराएँ बन जाने, कानूनी अधिकार मिल जाने से भी नारी को वह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, जिससे वह सन्तुष्ट दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर सके। इसी प्रकार किसी पुरुष को सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित या गायन-वाद्य, नृत्य आदि कलाओं की जानकारी पत्नी मिल जाने पर भी यह आवश्यक नहीं कि उसका गृहस्थ जीवन सुखमय ही बने। यह बाह्य सुविधायें सुखी गृहस्थ बनने में एक सीमा तक सहायक तो हो सकती हैं, पर आधार नहीं बन सकती।

पति-पत्नी में से प्रत्येक का एक-दूसरे के प्रति गहरी आस्था एवं आत्मीयता का होना ही वह आधार है, जिसके होने पर अन्य सारे अभावों के होते हुए भी काम चल सकता है। एक पक्ष पूर्ण सुयोग्य होकर भी दूसरे अयोग्य पक्ष को निरुहण कर सकता है। आत्मीयता की तनिक-सी भी छाया पड़ने पर कुरूप, निकम्मी और दोषयुक्त वस्तुएँ भी सुन्दर और सुहावनी लगती हैं। यह

भावनाएँ दाम्पत्य जीवन का आधार हों तो कोई कारण नहीं कि अनेक त्रुटियों के होते हुए भी परस्पर स्नेह-सौहार्द न रह सके। सुयोग्य पक्ष अपनी योग्यता के आधार पर अयोग्य पक्ष का सुधार कर सकता है। न सुधार सके तो निर्वाह तो आसानी से कर सकता है। जिन्हें अपना गृहस्थ जीवन सफल बनाना हो उन्हें विवाह को एक परम पवित्र धर्म-बन्धन ही बनाना पड़ेगा, जिसे उदारता और सहिष्णुतापूर्वक निवाहा जाना ही एकमात्र कर्तव्य रह जाता है।

पाश्चात्य देशों में जहाँ नारी जाति को स्वतन्त्रता के व्यापक अधिकार मिल चुके हैं, जहाँ की सामाजिक परम्पराएँ तक इसके अनुकूल बन चुकी हैं, वहाँ आये दिन तलाक करके नित नया पति पाकर भी नारी का जीवन असन्तुष्ट है। पति ही नहीं अनेकों मित्र-दोस्तों के सम्पर्क में आकर भी ये जीवन में सन्तुष्ट नहीं हो पातीं। दाम्पत्य-जीवन में कटुता, कलह, परस्पर घृणा, द्वेष की दीवारें खड़ी हो जाती हैं। स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता, समानाधिकार की इस राह पर चलते हुए नारी-पुरुष में आज परस्पर अनवन, कलह, अविश्वास, सन्देह पैदा होता जा रहा है और जिसमें हमारा दाम्पत्य-जीवन भी नष्ट हो रहा है।

डा. एस्मर एकब्ला ने लिखा है—‘जिन बातों को लेकर आज के वैवाहिक जीवन में कलह होते हैं, वे आज की सभ्यता की ही देन हैं। संसार की प्राचीन सभ्यता और पुरानी जातियों में यह बात नहीं पाई जाती।’ सभ्यता से बहुत-बहुत दूर बर्फीले उत्तरी ध्रुव में कष्टसाध्य जीवनयापन करने वाली एस्किमो जाति का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है—‘मन न मिलने की बात इस जाति में नहीं पाई जाती। वैवाहिक जीवन में बँधे हुए पति-पत्नियों में सौहार्द, प्रेम, आत्मीयता के आदर्श स्वरूप का दर्शन वहाँ सदा ही किया जा सकता है।’ भारतीय दाम्पत्य जीवन में आज भी नई सभ्यता से दूर देहाती क्षेत्र में पति-पत्नी का जीवन अधिक सन्तुष्ट है। पति-पत्नी ही नहीं, सम्मिलित परिवार का निर्वाह तक बड़े मजे से होता आया है।

नई परम्पराओं, नये अधिकारों के साथ ही युवक-युवतियाँ उस आदर को भी जीवन में उतारें, जिसके आधार पर एक रोगी, बीमार, अपंग, असमर्थ पति का पत्नी और पत्नी का पति अन्त तक निर्वाह कर सके। सत्यवान जैसे अल्पायु पति को स्वीकार करके भी सावित्री ने असन्तोष प्रकट नहीं किया। वृद्ध च्यवन को पति रूप में स्वीकार करने वाली राजकुमारी ने अन्त तक अपना धर्म निभाया। इसी तरह कई पुरुषों ने भी कुलटा, लड़ाक, कुरूप स्त्रियों का निर्वाह किया। भारतीय परम्परा में पुरुष और नारी का यह आदर्श आज के असन्तुष्ट और क्लेशमय वैवाहिक जीवन का सरल समाधान है। इस पर चलने वाले अपढ़ और अशिक्षित लोग भी आज के

२.६२ गृहस्थ एक तपोवन

शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले असन्तुष्ट दम्पतियों से अधिक अच्छे हैं, जो किसी तरह दाम्पत्य सूत्र में बँधकर एक-दूसरे का निर्वाह कर रहे हैं और वैवाहिक जीवन में सन्तुष्ट हैं। दूसरी ओर नई सभ्यता और परम्पराओं के पोषक युवक-युवतियाँ, कृत्रिम आकांक्षाओं, अपने अवास्तविक स्वप्नों के पीछे परेशान हैं और असन्तुष्ट हैं जीवन के स्वाभाविक सुखों से वंचित हैं।

अमर्यादित आजादी और स्वच्छन्दतावाद के साथ-साथ वैवाहिक जीवन की दुर्दशा का एक मुख्य कारण है, विवाह के प्रति गलत दृष्टिकोण का होना। नई विचारधारा, भौतिकवाद की रोशनी में विवाह केवल भौतिक सुखों का माध्यम समझा जाने लगा है। विवाह सम्बन्धों का आधार शारीरिक सामीप्य माना जाने लगा है। यदि कोई भी पक्ष शरीर सुख पहुँचाने के अयोग्य हो जाता है, भौतिक सुखों के उपयुक्त नहीं रहता तो लोग शरीर सम्बन्धों को तोड़ने या अन्य अनैतिक सम्बन्ध बना लेने में कोई सोच-विचार नहीं करते। जिन स्त्रियों के सन्तान नहीं होती, उनके पति दूसरा विवाह करने की सोचते देखे गये हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि कोई भी सम्बन्ध अथवा परम्परा जो बाह्य वस्तु, पदार्थ पर आधारित होती है, अधिक नहीं टिक पाती। आज जो पदार्थ सुख दे सकता है वह भविष्य में जाकर उस सम्बन्ध में अयोग्य हो सकता है। आज जो हमारे भौतिक स्वार्थों की पूर्ति करता है वह एक दिन उस योग्य नहीं रहता। ऐसी स्थिति में किसी भी तरह के सम्बन्धों का निर्वाह अधिक दिनों तक नहीं हो सकता। एक न एक दिन असन्तोष, अशान्ति की आग सुलग ही जाती है। हमारे वैवाहिक जीवन की अशान्ति, विघटन, असन्तोष का एक यह भी प्रमुख कारण है।

भौतिक सम्बन्धों, स्थूल परम्पराओं, 'मैत्री' व्यापक और गहरे तत्त्वों का विकास भारतीय जीवन का मुख्य अंग रहा है। इसी परम्परा के अन्तर्गत विवाह बाह्य सुख, शरीर सामीप्य या वासना तृप्ति का ही आधार नहीं अपितु वह आत्मा का अनन्य सम्बन्ध है। विवाह एक सामाजिक परम्परा नहीं वरन् धार्मिक बन्धन है। जो एक शरीर के असमर्थ होने, यहाँ तक कि नष्ट हो जाने पर भी स्थिर रहता है। इस बुनियाद पर आधारित वैवाहिक सम्बन्ध अन्त तक सन्तुष्ट और सुखी रहते हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे के अयोग्य, अक्षम होते हुए भी परस्पर निर्वाह करते हैं। पर-नारी और पर-पुरुष का बुरे भाव से स्मरण तक भारी पाप माना गया है। जब एक बार विवाह सम्बन्ध हो गया तो वह अमिट बन गया।

स्वतन्त्रता और समानता का आदर्श उचित है पर उसका वह स्वरूप अनावश्यक है, जिसमें पर-पुरुषों और पर-नारियों के साथ निर्बाध सम्पर्क स्थापित करने और मिलने-जुलने को बुरा नहीं समझा जाता। शील, लज्जा और संकोच नर-नारी के बीच की एक महत्वपूर्ण दीवार

है। इसे तोड़ नहीं दिया जाना चाहिए। एकान्त में युवक-युवतियों का मिलना-जुलना, फिर चाहे वह पवित्र उद्देश्य के लिए ही क्यों न हो, शीलधर्म के विपरीत है। कोई आवश्यक कार्य हो तो तीसरा व्यक्ति बीच में होने पर ही ऐसा वार्तालाप किया जाना चाहिए। युवावस्था का तकाजा है कि समवयस्क होने पर नीची आँख करके, शील, शिष्टाचार, संयम की मर्यादा के अन्तर्गत ही बातचीत चले, गपशप, हा-हा-ही-ही करते हुए उच्छृंखल ढंग से बैठना, बात करना स्पष्टतया दाम्पत्य मर्यादाओं का उल्लंघन है और इस प्रकार के आचरण का प्रभाव गृहस्थ की जड़ों को खोखली करने वाला ही सिद्ध होता है।

नर और नारी दोनों को ही यह ध्यान रखना चाहिए। पवित्र भाव से भी युवावस्था वाले दूसरे पक्ष के इस प्रकार की समीपता, घनिष्टता और वार्ता से बचें जो उँगली उठाने का अवसर देती हो। शील, संकोच और लज्जा की दीवारें पति-व्रत और पत्नीव्रत को सुरक्षित बनाये रहने में अमोघ कवच का काम करती हैं। गृहस्थ की सुदृढ़ता, दाम्पत्य-जीवन की आस्था बनाये रखने के लिए यह लोकाचार नितान्त आवश्यक है। स्वतन्त्रता नागरिक, मानवीय अधिकारों के लिए ही बरती जानी चाहिए। कैदी बनाकर पिंजड़े के पक्षी की तरह स्त्रियों को उनके नागरिक अधिकारों से शिक्षा, स्वावलम्बन तथा प्रगति की सुविधाओं से वंचित न किया जाये। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मर्यादाओं का उल्लंघन, शील-संकोच की उपेक्षा आजादी नहीं बर्बादी का रास्ता है, उस पर न चलना ही उचित है।

दाम्पत्य-जीवन में प्रचलित अनेक विकृतियाँ और परम्पराएँ आज पारस्परिक स्नेह-सौजन्य में बाधक बनी हुई हैं, उन्हें सुधारने के लिए आवश्यक ध्यान देना उचित है। पर इस मूल तथ्य को ध्यान में रखना ही चाहिए कि पारस्परिक गहन आस्था अनन्य आत्मीयता और साथी के प्रति उदारता एवं सहिष्णुता का दृष्टिकोण रखते हुए उसके निर्वाह की बात सर्वोपरि है। यह आधार जहाँ भी होगा वहाँ अनेक त्रुटियों के रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन सफल ही बना रहेगा।

दाम्पत्य-जीवन की साधना के मन्त्र

१. गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रम है। यहाँ जीवन की, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है।

२. पति एवं पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं। दोनों का काम एक-दूसरे के गुणों की वृद्धि करना है, कमियों को दूर करना है और परस्पर अभिन्नता बनाये रखना है। इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग की भावना अपने अन्दर बँधाने की आवश्यकता है।

३. पति का नाम भर्ता है। भर्ता का अर्थ भरण और पोषण करने वाला है। पत्नी में उसकी उन्नति के लिए जिसकी कमी है, वह उसे लाकर दे, उसका उसमें भरण करे और जो शक्ति अविकसित है या कम है उसका पोषण करे, उसकी वृद्धि करे। वह उसे हमेशा सन्तुष्ट रखे। उसके मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास का निरन्तर ध्यान रखे और उन्हें विकसित होने में अपना पूरा सहयोग दे।

४. पत्नी साधिका है। जिस तरह एक साधक अपने प्रभु की साधना के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर देता है, उसी प्रकार अपने मन में द्वैत की भावना न रखकर पति को ही अपना आराध्य देव मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ उन्हें सौंप दे। अपने लिए बचाकर कुछ भी शेष न रखे। जो कुछ करे पति के लिए। पति कुमार्गगामी हो तो उसे सुमार्ग पर लाने के लिए अपना सर्वस्व तक चढ़ा दे। ध्यान रहे पत्नी को शासक नहीं बनना है। साधिका हमेशा सेविका होती है। सुधार के लिए शासन की नहीं सेवा की आवश्यकता होती है। कुमार्गगमन एक मानसिक रोग है, इस रोग के लिए उपचार की, सेवा की जरूरत है। अतएव उसके उपयुक्त उपचार करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। कुमार्ग छोड़ देना ही पत्नी की साधना का फल है।

५. पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य-जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य माता-पिता के ही योग्य सन्तान होती है, इसलिए योग्य सन्तान के लिए स्वयं की समस्त त्रुटियों को निकाल फेंकने में आना-कानी नहीं होनी चाहिए।

६. दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य भोग नहीं है, योग है। इसलिए प्रत्येक उन साधनों को अपनाना चाहिये जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्म प्राप्ति की ओर दम्पति गतिवान हो। मोह की अपेक्षा प्रेम की परस्पर जितनी वृद्धि होगी और मान-अपमान जितना दोनों में कम होगा इन दिशा में दोनों की उतनी ही उन्नति होगी।

भोग का शमन योग से नहीं होता, भोगने से वासनाएँ बढ़ती हैं। संसार के सभी पदार्थ वासना को बढ़ाते हैं, इसलिए जितने से शरीर, मन तथा आत्मा की उन्नति हो, उन्हें सुख मिले उतने का ही उनसे सम्पर्क रखना चाहिए। जीवन में उनको लाकर उनका गुलाम नहीं बन जाना चाहिए अन्यथा इससे कलह का बीज बढ़ता है और दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य विफल हो जाता है।

८. स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध यज्ञ के लिए है। यज्ञ में ईश्वरी भावना है, भोग नहीं। ईश्वरीय भावना को पुष्ट करने के लिए ही दाम्पत्य-जीवन का निर्माण किया गया

है, इसलिए स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही पर-पुरुष एवं पर-स्त्री के विषय में किसी प्रकार की तन्मयता या भोग भावना नहीं रखनी चाहिए। स्वपुरुष और स्वस्त्री में भी सन्तान रूपी यह फल प्राप्ति के लिए यज्ञ भावना का ही उपयोग करना चाहिए। भोग से जितना दूर रहा जाय उतना ही ठीक।

९. दाम्पत्य-जीवन का मूलमन्त्र प्रेम है। प्रेम में त्याग है। अपने लिए कुछ नहीं। इस भावना की पुष्टि के लिए यह जीवन माध्यम है। इसलिए न यहाँ स्वार्थ है, न वासना, न भोग। फिर बदला तो होगा ही क्यों ? अतएव इस बात के ज्ञान पर निरन्तर जागरण उसकी कुंजी है और भूल होने पर पश्चाताप ही उसका सच्चा प्रतिशोध है। इसमें मान-अपमान रहने से प्रेम की उतनी ही न्यूनता झलकती है। शुद्ध प्रेम में द्वैत की गुंजाइश ही नहीं होती तब कौन छोटा और कौन बड़ा, कौन दास और कौन मालिक ? फिर किसका मान और किसका अपमान ? सब एक हैं, सब अपने हैं।

दाम्पत्य प्रेम स्थिर कैसे रहे ?

पति-पत्नी का सम्बन्ध शासक-शासित के रूप में समझने वाला अगर एक आँख का अन्धा होता है, तो उसको केवट्टक समझ, महज छोटी-बातों पर, पारस्परिक उदारता के अभाव में, सम्बन्ध-विच्छेद का समर्थन करने वाला दोनों आँखों का। पहले में पत्नी केवल संभोग की वस्तु समझी जाकर यंत्रवत् संचालित होती है, उसका कोई पृथक् व्यक्तित्व नहीं रह जाता, तो दूसरे में पति-पत्नी दोनों केवल अपनी पाशाविक वृत्ति की पूर्ति की मृग-मरीचिका में फँस जीवन की शान्ति को खो ही बैठते हैं, उस उद्देश्य को भी भूल जाते हैं, जिसके लिये यह शरीर मिला है। छोटी-छोटी बातों के लिए हमें जिन लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है, उसके साथ भी हमें उदारतापूर्वक व्यवहार करना पड़ता है, फिर जिसके साथ हम जीवन बिताते हैं, सुख-दुःख की परस्पर की, अनुभूति से हम अपने कार्य में स्फूर्ति और उत्साह प्राप्त करते हैं, उसके साथ ही हमें कहीं अधिक उदारता का व्यवहार करना ही पड़ेगा।

कई व्यक्ति दाम्पत्य-जीवन सफल हो, उसके लिए प्रेम-विवाह को प्रोत्साहन देना चाहते हैं, किन्तु वे भूल जाते हैं कि जहाँ आजकल प्रेम-विवाह का बाजार गर्म है, वहाँ की अवस्था और भी दर्दनाक है। थोड़ी-सी मनमुटाव की कोई बात हुई नहीं कि झट से तलाक की दरखास्त पेश कर दी जाती है और बराबर के लिए छुटकारा मिल जाता है। टाल्सटाय, अब्राहमलिकन आदि ने भी तो प्रेम-विवाह किया था, किन्तु उनका दाम्पत्य जीवन कितना कटु बीता। कहा जाता है, टाल्सटाय अपनी पत्नी के व्यवहार से बड़े खिन्न रहते थे। पत्नी कभी-कभी उनके घुटनों पर सिर टेक कर उनको उन सुनहरे दिनों की याद

दिलाती थी, जब वे यौवन के उफान काल में एक-दूसरे से संयुक्त रहते थे। किन्तु इन बातों का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि पत्नी की मृत्यु के समय भी वह उसके निकट नहीं थे और उनकी पत्नी ने प्रेमियों से अपनी की हुई गलतियाँ चिल्ला-चिल्ला कर स्वीकार की थीं। कारण क्या था ? जब उन्होंने प्रेम होने पर ही विवाह किया, तो उनका जीवन तो और भी प्रेमपूर्ण और शान्तिमय होना चाहिए था। स्पष्ट है कि युवा-अवस्था में बहुत कम लोगों की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य की ओर आकर्षित होती है—वह तो बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रह जाता है। यह उस अवस्था का स्वाभाविक गुण है, अवस्था के साथ-साथ विचार और दृष्टि भी बदलते रहते हैं। जिन गुणों के कारण एक युवती किसी युवक की दृष्टि में आकर्षण का केन्द्र प्रतीत होती है, पीछे चलकर जब युवक को संसार की यथार्थता का पता चलता है, तो वे ही गुण उसकी दृष्टि में अवगुण प्रतीत होने लगते हैं। मेरा एक मित्र एक लड़की की चपलता पर मुग्ध था। संयोगवश उसी से उसका गठबन्धन भी हुआ तत्पश्चात् जब वह लड़की अपने पूर्व परिचितों के साथ ससुराल में उस चपलता से व्यवहार करती, तो पति महोदय को यह बात अखरती।

विवाह एक ऐसा कृत्य है जो पति-पत्नी के जीवन में अगर उनके हितेच्छुओं का सुन्दर व्यवहार रहा, तो एक महान परिवर्तन उपस्थित कर देता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे, जहाँ विवाह के पहले जो लड़की अपने माँ-बाप के घर में नटखट और उच्छृंखल समझी जाती थी—विवाहोपरान्त गम्भीर, विचारवाली, शान्तिप्रिय कुलवधू बन गई। आवश्यकता है कि उसके अभिभावक जरा उदारता से काम लें। उन्हें देखना चाहिए कि जो लड़की कल ही नैहर में इतनी स्वतन्त्र थी, केवल कुछ घण्टों की रस्म पूरी कर लेने से ही तो शान्त और गम्भीर नहीं बन जाएगी। पति महोदय अपनी जन्मजात श्रेष्ठता के कारण उस पर अनुचित दबाव डालते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि या तो वह अपनी कमजोरी के कारण ऐसी दब जाती है कि अपना व्यक्तित्व खो बैठती है अथवा उग्र रूप धारण किया तो सारे परिवार की दृष्टि में गड़ जाती है और फिर कलह का दौर-दौरा आरम्भ हो जाता है। अतएव मेरा यह अनुभव सिद्ध विचार है कि नवागत पत्नी के प्रति पति अथवा अन्य लोगों का व्यवहार पूरी उदारता का हो। अगर वह स्वतन्त्रता चाहती है तो उसे स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। ऐसे व्यवहार से वह समझ जाएगी कि इस परिवार के लोग मेरे अनुकूल मिले हैं, मेरा हित चाहते हैं। फिर तो रमणी का हृदय त्याग की प्रतिमूर्ति होता है—उसका हृदय तो सच्चे हृदय की खोज में रहता है। तब पति या परिवार वालों के उसे अपने अनुकूल चलाना आसान हो जाएगा।

बहुधा ऐसा होता है कि पति महोदय अपनी बहिन अथवा सभी के निकट अपनी पत्नी के फूहड़पन की आलोचना करते रहते हैं। मैं नहीं समझता कि इससे दाम्पत्य-प्रेम का हित साधन होता है। परिणाम उल्टा ही होता है। यह मानव स्वभाव है कि किसी में कुछ अवगुण हैं और अगर आप उसे दूर करना चाहते हैं, तो उससे ही मिलकर कहिए। दूसरे के निकट कहने से चिढ़ हो जाती है और विशेषकर ऐसे व्यक्ति के मुख से आलोचना सुनकर जिससे अपनी प्रशंसा सुनी चाहिए, पत्नी पर उल्टा असर होगा ही।

अर्द्ध-अंग होने के नाते पति को अपनी पत्नी के दुःख-सुख में, उसकी बीमारी, घबराहट आदि में सहायता करनी चाहिए। कैसी कृतघ्नता की बात है कि जो पत्नी, पति की बीमारी के समय उसका बिछावन नहीं छोड़ती, हरदम सेवा-शुश्रूषा में संलग्न रहती है, उसी के बीमार पड़ने पर बहुधा पति दाई-नौकर से उसकी सेवा करवायेगे—स्वयं इन बातों से पृथक् ही रहेंगे। यह मानव स्वभाव है कि बीमारी की हालत में जो सहानुभूति के दो शब्द कहता है, छोटा-मोटा एक-दो काम कर देता है, उसकी ओर हृदय बरबस खिंच जाता है। पति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह अपनी पत्नी की असहाय्यता में सहायता करे।

पत्नी निष्कपट प्रेम की भूखी होती है। इसलिए पति महोदय यदि समय-समय पर उसके कार्यों पर अपना यह विचार प्रदर्शित करते चलें कि उसका ही उनके जीवन से सम्बद्ध होना स्वर्गीयसुख का कारण है, तो इसका बहुत उत्तम प्रभाव पड़ेगा। इसी विचार की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें अपनी पत्नी के जन्म-दिवस को उत्सव का दिन समझकर उसे खुशीपूर्वक व्यतीत करना चाहिए।

पत्नी का पति ही हर प्रकार से निकटतम साथी है। इसी बात को तो दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि दोनों एक ही इकाई के दो भाग हैं। अतएव अगर दोनों का यह विचार स्थिर हो जाय कि एक का गुण-अवगुण, दूसरे का गुण-अवगुण है, एक की प्रशंसा-शिकायत दूसरे की प्रशंसा शिकायत है, तो बहुत तब अंश में दाम्पत्य-जीवन की बुराइयाँ मिट जाएँ। पति अगर पत्नी के साथ पूरी उदारता से बात तथा सहिष्णुता और समझदारी से काम ले और यह समझे कि उसका पद उसकी पत्नी के पद से ऊँचा अथवा नीचा नहीं है, तो दाम्पत्य-जीवन की बहुत-सी विषमताएँ दूर हो जाएँ।

वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए बौद्ध धर्म में पुरुषों और स्त्रियों के लिये ये पाँच-पाँच नियम बताये गये हैं—

पुरुषों के लिए—

१. अपनी पत्नी का हृदय से सम्मान करो।

२. पत्नी के व्यक्तिगत मनोभावों के कारण क्रोधित मत हो।

३. अपनी पत्नी के सिवा किसी दूसरी स्त्री से प्रेम न करो।

४. पत्नी के भोजन-वस्त्र की सदा फिक्र रखो।

५. पत्नी को समय-समय पर उपहार लाकर दो।

स्त्रियों के लिए—

१. पति के घर में आने पर उठकर उनका स्वागत करो।

२. इसी प्रकार उनके घर से बाहर जाने पर अभिनन्दन करो। पति के लौटने तक उनके लिये भोजन तैयार करके रखो तथा घर के दूसरे काम भी समाप्त कर लो।

३. किसी अन्य पुरुष से प्रेम न करो। पति क्रोध में हो तो तुम शान्त हो जाओ।

४. पति की आज्ञाओं का पालन करो और घर की कोई बात उससे मत छिपाओ।

५. पति जब आराम करता हो तो बिना बुलाये उनके पास मत जाओ।

यदि इन बातों को दोनों पक्ष समान रूप से ध्यान में रखें, तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन में स्नेह-प्रेम की सृष्टि न हो सके।

दाम्पत्य-जीवन में सुख-सृष्टि कैसे हो ?

जीवन में कई सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का आना-जाना बना रहता है। दोनों ही स्थितियाँ ऐसी हैं, जिनको अकेले नहीं झेला जा सकता है। सुख मिलता है, तो लगता है कि उसे कोई बँटाने वाला भी होना चाहिए। बिना बँटे सुख का परिपूर्ण आनन्द मिलता ही नहीं। दुःख आता है तब भी लगता है कि यदि इस दुःख का कोई भागीदार नहीं हुआ तो जीवन टूट ही जायेगा। सुख की तरह दुःख में भी कोई भागीदार बने, यह आवश्यक लगता है और इतना आवश्यक लगता है कि इसके बिना काम ही नहीं चलता। प्रकृति ने मनुष्य को गढ़ा ही इस विशेषता से है कि वह किसी भी उपलब्धि या स्थिति को, परिणाम या प्रतिक्रिया को अकेले झेल ही नहीं सकता। सम्भवतः इस नैसर्गिक आवश्यकता ने मनुष्य को परिवार बसाने के लिए प्रतिक्रिया हो और तब से अब तक विवाह एक ऐसी मैत्री का पुण्य आरम्भ अवसर बना हुआ है, जिसमें अपने साथी की समस्त त्रुटियाँ, कमजोरियाँ और कमियाँ नजर-अन्दाज कर दी जाती हैं।

मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है। उनमें से कई मित्रताएँ कुछ समय तक ही चल पाती हैं, कई छोटे-मोटे कारणों से टूट जाती हैं, कई औपचारिक व्यवहार तक ही सीमित रहती हैं, कहने का अर्थ यह है कि मित्रताएँ बनती और टूटती रहती हैं। कारण कि अधिकांश मैत्री सम्बन्ध स्वार्थ के कारण स्थापित किये जाते हैं और स्वार्थ पूरा होते ही अथवा स्वार्थ साधन में थोड़ी रुकावट आते ही ये टूट जाते हैं। परन्तु विवाह के द्वारा एक ऐसी मैत्री सम्बन्ध की स्थापना की जाती है, जो निस्वार्थ भाव से आरम्भ होता है और आत्मत्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित तथा पल्लवित-पुष्पित होता है। ये भाव जीवनभर बने रहें तो दाम्पत्य जीवन में अनवरत सुख-शान्ति और आनन्द-उल्लास के भाव संचरित होते रह सकते हैं।

किन्तु दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिये लोगों दूसरी ही मान्यताएँ रखते हैं। यद्यपि वे मान्यताएँ भ्रान्त ही होती हैं, परन्तु उनके कारण दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनाने वाले आधार तत्वों की ओर दृष्टि ही नहीं जाती। फलतः पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट, खिन्न और दुःखी बने रहते हैं तथा दाम्पत्य सम्बन्धों को एक दुर्बल भार मानकर जीते रहते हैं। उदाहरण के लिए, समझा जाता है कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति का होना आवश्यक है। इस मान्यता के कारण सोचा जाता है कि पर्याप्त मात्रा में यदि सुख-सुविधाओं के साधन पास में हों तो व्यक्ति उनका चिरंतन लाभ उठाता रह सकता है और आनन्दित, उल्लसित रह सकता है। यह मान्यता प्रायः व्यक्त और प्रतिपादित की जाती है किन्तु प्रायः गलत ही सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दम्पति ने आज तक अनुभव नहीं किया कि धन-सम्पत्ति के अभाव से उनके आपसी सम्बन्ध क्लान्त और क्लेशपूर्ण बने हैं। धनाभाव के कारण उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशतायें अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं, पर कष्ट भी कोई खास प्रभावित नहीं कर पाते, यदि दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर और मधुरिम हों तो। पति-पत्नी का परस्पर प्रेम, मधुर सम्बन्ध उन कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होते रहने वाले घावों को अनायास ही भरता रहता है।

कुछ लोगों की मान्यता यह भी है कि सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति-पत्नी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक सुलझा और निखरा बना सकते हैं। शिक्षित होना ठीक है। पति-पत्नी शिक्षित, सुसंस्कृत हो तो आपसी समझ से कई मतभेदों को निबटा सकते हैं। परन्तु शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं है। दाम्पत्य सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए जो दूसरे तत्व आवश्यक हैं, यदि उनका अभाव रहा तो शिक्षा उल्टे सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा कर सकती है। शिक्षा दूसरे गुणों के साथ मिलकर दाम्पत्य सम्बन्धों को मधुर बना सकती है तो कुछ और तत्वों के मिल जाने से उसे नीरस भी बना

सकती है। एक बारगी शिक्षा नहीं भी हो और दाम्पत्य सम्बन्ध उन उपेक्षाओं को पूरा करते चल रहे हों जोकि उसके लिए आवश्यक हो तो पति-पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन को सफलतापूर्वक जी रहे हैं, जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं।

पति-पत्नी जिस भावना सूत्र से एक-दूसरे को बँधते हैं, दो शरीर एक प्राण बनते हैं, वह भाव अमृत है प्रेम। प्रेम ही वह सूत्र है, जो पति-पत्नी को एक-दूसरे से बाँधता है न केवल उन्हें एक सूत्र में आबद्ध करता है, वरन् आत्मोत्सर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो उच्च शिक्षा है न मौसल सौन्दर्य वरन् इसका उद्भाव एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझने और एक-दूसरे की सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने, उन्हें वायदे का कम देने से होता है। पति-पत्नी के स्वभाव एक-दूसरे से मिलते सामंजस्य रखते हों, दोनों एक-दूसरे का आदर करते हों, एक-दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना रखते हों तो दीन-हीन स्थिति में रहते हुए कम साधनों में हँसी-खुशी का जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

अशिक्षित और गरीब दम्पतियों के जीवन में जो प्रेम, जो आनन्द, जो उत्साह और जो प्रफुल्लता रहती है उसका आधार यही प्रेम है। सौभाग्य कहा जाना चाहिए कि औसत, भारतीय परिवारों में तथा कथित आधुनिक सभ्यता का प्रभाव अभी नहीं आ पाया है। लड़कियों को वह भावनिष्ठा विरासत में मिलती है कि और ये इन्हीं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बनती हैं और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ लेती, ढाल देती हैं।

आधुनिकता से प्रभावित परिवारों में दाम्पत्य-जीवन का आनन्द स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक-दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती, भावनाएँ होती तो हैं पर दुर्भाग्य से अपनी संगी-साथी के प्रति त्याग, उत्सर्ग के स्थान पर महत्त्व उनके स्वार्थ को दिया जाने लगता है, आधुनिक सभ्यता से प्रभावित तथाकथित शिक्षित परिवारों में पति-पत्नियों के बीच व्याप्त विग्रह का एक ही कारण है, वे एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं के स्थान पर अपने स्वार्थ और अहं को महत्त्व देने लगते हैं, फलस्वरूप टकराव उत्पन्न होता है और विग्रह खड़ा होता है। कहना नहीं होगा कि ऐसा दाम्पत्य-जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक सम्बन्धों जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक-सी भी कमी आने पर चटखने लगता है।

सुन्दर, कमनीय देह और उजला रूप भी सुखी मधुर दाम्पत्य-जीवन के लिए आवश्यक नहीं है, असुन्दर और कुरूप जोड़ियाँ भी प्रेम में पगी हुई हँसी-खुशी का जीवन व्यतीत करती देखी जा सकती हैं, जबकि रूपवान

और सुन्दर दम्पति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं। प्रायः तो सुन्दर दम्पति जो शारीरिक सौन्दर्य से आकर्षण-आकृष्ट होकर विवाह बन्धन में बँधते हैं, असफल जीवन ही जीते देखे गये हैं। क्योंकि शरीर की सुन्दरता कुछ ही समय तक बनी रहती है और वे प्रेम भावनाओं के विकास की अपेक्षा अपने सौन्दर्य की सार-सम्हाल के लिए ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दम्पतियों के जीवन में दो-चार बच्चे होते ही नरक का-सा वातावरण बन जाता है, क्योंकि तब सौन्दर्य चुक गया होता है और प्रेम भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक-दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी 'सुन्दर' जोड़ियाँ असफल दाम्पत्य जीवन जीती हैं। कहा इतना भर जा रहा है कि सुखद और सफल दाम्पत्य जीवन के लिए सुन्दर होना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि प्रेम-भावना का होना।

प्रेम भावना का विकास कैसे हो ? कैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति प्रेम का परिचय दें ? इस सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। जब प्रेम भावना विकसित होने लगती है तो अपने साथी-सहचर का इतना ध्यान रहने लगता है कि अपनी आवश्यकताएँ भी एकदम उपेक्षणीय प्रतीत होती हैं। साथी की सुविधाओं का ध्यान रखना ही तब अपना धर्म बन जाता है और उसमें साथ जीने तथा साथ मरने की भावनिष्ठा विकसित होने लगती है।

विश्वास प्रेम का प्राण है। पति-पत्नी को एक-दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दुराब-छिपाव का कहीं कोई नाम ही न रहे, नवदम्पतियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह की भावना रहती है। पत्नी भी यकायक पति पर विश्वास नहीं कर पाती। उसका कारण अपरिचय ही हो सकता है, जैसे-जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आते चलते हैं वैसे-वैसे विश्वास की भावना की पुष्ट करते चलना चाहिए और अपरिचय से उपजे सन्देह को निर्मूल कर देना चाहिए, उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। दुराब, छिपाव, दिखावटीपन और बनावटी व्यवहार की नीति जितनी जल्दी बदली जा सके उतनी जल्दी बदल डाली जाय और एक-दूसरे के प्रति प्रगाढ़ विश्वास उत्पन्न किया जाय।

प्रगाढ़ विश्वास का पोषक तत्व है उदारता। दाम्पत्य-जीवन में कई अवसर ऐसे भी आते हैं जब मन में सन्देह का कोई बीज पड़ता है, पति या पत्नी संकोच के कारण एक-दूसरे से कुछ पूछने-बताने में कतराते हैं। दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। सन्देह का बीज पड़ते ही यदि निकाल नहीं फेंका गया तो वह अंकुरित होकर घृणा और अविश्वास के वृक्ष के रूप में बदलने लगता है और जरा-जरा-सी बातों पर

एक-दूसरे को लेकर आक्षेप करने, छींटाकशी की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। यह प्रवृत्ति घृणा, अविश्वास को इतना अधिक बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती है। उचित तो यह है कि सन्देह का वातावरण बनने ही न दिया जाए और 'सन्देह' पैदा करने वाली स्थितियों के प्रति पहले से ही सतर्क रहा जाए।

सन्देह की स्थिति क्यों उत्पन्न होती है ? सन्देह की स्थिति उत्पन्न होती है पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे से किसी भी प्रकार की कोई बात दुराने-छुपाने पर। इस सन्दर्भ में सतर्कता यह बरती जाए कि पति-पत्नी एक-दूसरे से कोई भी दुराव-छिपाव नहीं रखें। जब एक-दूसरे के प्रति मन, प्राण से समर्पित होने का व्रत लिया गया है, तो ऐसी कौन-सी बात हो सकती है, जिसे अपने साथी से छुपाने की आवश्यकता पड़ती हो। इस पर भी यदि किसी पक्ष को कोई सन्देह उठे तो सम्मानपूर्वक दूसरे से पूछ निवारित कर लेना चाहिए। ये बातें एक-दूसरे से सम्बन्धित हो सकती हैं। इसमें न तो किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होनी चाहिए और न किसी माध्यम की। मध्यस्थ और माध्यमों के द्वारा सन्देह दूर होने के स्थान पर अविश्वास की खाई और चौड़ी होने की ही सम्भावना ज्यादा रहती है।

उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी पति-पत्नी में सन्देह उत्पन्न करने वाला दूसरा बड़ा कारण है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति-पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और पत्नी पति के लिए। सैद्धान्तिक रूप से इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है, किन्तु व्यवहारतः इसकी प्रायः उपेक्षा ही की जाती है। परिणामस्वरूप कई बार ऐसी स्थितियाँ बन जाती हैं जिसमें उपेक्षा, मनमुटाव भी पैदा कर देती है। जैसे पत्नी बीमार है किन्तु पुरुष अपने काम-काज में इतना व्यस्त है कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की ही फुरसत नहीं मिलती। इतना समय निकाला तो जा सकता है परन्तु पति यदि पत्नी की अस्वस्थता को बहुत हल्के रूप से लेता है, तो समय निकालने की आवश्यकता ही नहीं सुझती। स्वाभाविक ही इस स्थिति में पत्नी अपने को उपेक्षित अनुभव करेगी और इसकी प्रतिक्रिया अन्य-अन्य रूपों में व्यक्त होती है। अस्तु, सन्देह, अविश्वास और प्रतिकूल प्रभाव के उत्पादक कारणों से यथासम्भव बचते हुए दाम्पत्य-जीवन के प्रति यह मान्यता रखनी चाहिए कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं। एक-दूसरे के प्रति अगाध निष्ठा, प्रगाढ़ प्रेम और सघन विश्वास रखकर ही वे सफल दायित्व जीवन जी सकते हैं।

पति-पत्नी एक युग्म है। दोनों में प्रकृति ने भिन्न-भिन्न गुण और भिन्न विशेषताएँ समाविष्ट कर दी हैं। इन भिन्नताओं को एक-दूसरे का पूरक बनाया जा सके और एक-दूसरे की कमजोरियों को सहिष्णु भाव से

दूर करने के लिए प्रयास किया जाता रहे तो पति-पत्नी दोनों का विकास होता चलता है और दाम्पत्य-जीवन में सुख-शान्ति की सृष्टि होती रह सकती है।

पति ही नहीं, पति के कर्तव्य भी हैं

“अपने प्रति हम जैसा व्यवहार चाहते हैं वैसा व्यवहार दूसरों के साथ करें।” सिद्धान्त प्रायः बहुत कम पालन किया जाता है। अन्यो के साथ की बात तो दूर रही, अपनों के साथ भी इसे व्यवहृत नहीं किया जाता। पुरुष का निकटतम सम्बन्धी उसकी स्वयं की पत्नी होती है। यह उसके जीवन की साथी होती है। आत्मीय भावों को जानने-समझने तथा उसके सुख-दुःख में हाथ बँटाने वाली होती है। किन्तु पुरुष अपने पुरुषत्व का अखण्ड स्वामित्व अपनी पत्नी पर जमाये रखकर उसे अपनी दासी एवं सेविका समझते हैं। वो हमेशा ही उससे काम कराते रहते हैं। थोड़े-थोड़े एवं छोटे-छोटे कामों के लिए उस पर आश्रित रहते हैं। इन कार्यों में उससे थोड़ी-सी भी भूल हो जाती है तो उसे लेकर लांछित किया जाता है। उसका तिरस्कार किया जाता है। बात-बात में पत्नी को अपमानित होना पड़ता है।

नारी को सहनशीलता, त्याग, ममता, सहृदयता की देवी कहकर पुरुष अपने आतंक को बनाये रखने में ही अपना स्वाभिमान समझते हैं। वे पत्नी से यह इच्छा रखते हैं कि वह अपने स्वयं के अस्तित्व को भूलकर केवल हमारी पूजा करती रहे। चाहे इसके लिए उसे कितने ही कष्टों एवं दुःखों को क्यों न सहन करना पड़े। हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ पुरुष भी रोगी, कमजोर पत्नी से अपनी सेवा कराने से लेकर गृहस्थी के सारे कामों को कराते रहने की इच्छा रखते हैं। ऐसा करते भी हैं। अन्य कामों की बात अलग है वे स्वयं अपने हाथ पानी पीने में भी अपने पुरुषत्व की हानि समझते हैं।

जहाँ पुरुष की इतनी प्रबल धारणा रहती है, वहाँ नारी की भी कुछ न कुछ इच्छा होगी ही। वे भी अपनी इच्छाओं के अनुरूप पति चाहती होंगी। इस बात की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वे भी चाहती हैं कि उनका पति सच्चा जीवन साथी, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलने वाला, जीवन यात्रा में दाम्पत्य रथ को बढ़ाते हुए स्वर्गीय सुखों की वृद्धि करने वाला मिले। ऐसे सच्चे सहचर को पाकर वे अपने स्वयं का गौरव अनुभव करती हैं तथा ऐसे पति की पत्नी बनने का गर्वी। कहीं ऐसा तो नहीं कि केवल पति ही अच्छी पत्नी चाहे और पत्नी अच्छा पति न चाहे।

व्यवहार जगत में ऐसा ही हो रहा है कि पति की सारी इच्छाएँ पूर्ण होनी चाहिए। इनमें अनुरूपता न हो पाने पर पत्नी को तंग किया जाना, मारना-पीटना,

२.६८ गृहस्थ एक तपोवन

तिरस्कार किया जाना होता ही है, तलाक आदि तक की सजाएँ भी दी जाती हैं। इसका दूसरा पक्ष यह है कि पत्नी की इच्छाओं की कोई कीमत नहीं की जाती। वह खरीदी गयी गाय और पैर की जूती ही मानी जाती है। नारियाँ भी अपनी सहनशीलता, सरलता, ममता तथा कोमलता से पुरुष के निंद्य अत्याचारों को सहती रहती हैं। इन यातनाओं को सहते हुए भी आत्म समर्पित होकर अपने दुःखों को भूल पति के सुखों का ध्यान रखती हैं। किन्तु पति का कठोर हृदय उनकी दीनता को देखकर भी पसीजता नहीं। वह इस तरह के उत्पीड़क कार्य करते हुए स्वयं का गौरव अनुभव करता है।

गृहस्थी से सम्बन्धित अनेकों कार्यों का संचालन स्वयं नारी को ही करना पड़ता है। उसके बने-बिगड़ने से लेकर सुरक्षा व्यवस्था तक की अनेकों समस्याएँ एवं समाधान सामने आते हैं। इनमें प्रत्येक सफलताओं का श्रेय स्वयं पुरुष ले लेता है तथा असफलताओं का दोष नारी के मर्त्ये मढ़ दिया जाता है। नारी इसी में सन्तोष कर लेती है कि उसका पति उसे भोजन का आग्रह दे देता है। किन्तु क्या भोजन भी उसे वही मिल पाता है जो उसका पति स्वयं खाता है, रुखा-सूख बचा हुआ जितना भी उसे मिल जाता है उसी में वह सन्तोष कर लेती है किसी प्रकार की नुकताचीनी नहीं करती।

पुरुष अपने आपको पत्नी के लिए देवता से कम नहीं मानता। पत्नी स्वयं भी उसे देवता ही मानती है एवं अपनी सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देती। वह सेवा में ही अपना उद्धार मानती है कि पति पत्नी से केवल मशीन की तरह ही काम करवाता है। उसके थकने की भी कोई कल्पना नहीं करता। अपने धर्म में कमी नहीं आने पाये, इसलिए वह आज्ञापालन करती रहती है। पुरुष सोचता है कि उसकी न कोई भावना-इच्छा है, न वह अच्छे व्यवहार की अधिकारिणी और न ही सुख-सुविधाओं को भोगने वाली। यन्त्रवत् काम करते रहने पर भी उससे व्यवस्था में थोड़ी-सी भूल करते रहने पर भयंकर गर्जना करने वाले यह भूल जाते हैं कि नारी के बिना उनका गृहस्थ जीवन अधूरा है। इसमें उसका सहयोग असाधारण है।

जहाँ पत्नी से अनेकों इच्छाएँ, आशाएँ अपेक्षित हैं वहाँ मानवीयता के आधार पर पति से भी अनिवार्य। उन्हें चाहिए कि वे नारी को अपनी अर्द्धांगिनी समझकर उसके सुख एवं विकास हेतु भावनाओं को समझें और अपना सहयोग दें। घर-गृहस्थी के छोटे-बड़े कामों में हिस्सा-बाँट कर लेना ही महानता की वृद्धि करता है। किसी काम में कोई भूल या गल्ती हो जाये तो उसे प्रेम से समझाकर, सुधार करके क्षमा कर देना समझदारी है। कभी-कभी कोई अच्छे काम किये जाने पर पत्नी की प्रशंसा करके कुछ उपहारादि की व्यवस्था कर देना, उसके सम्मान को बढ़ाने तथा विकास में प्रोत्साहन हेतु बड़ा ही लाभदायक होता

है। ऐसा तो है नहीं किन्तु इसके विपरीत उन्हें हमेशा गाली तथा तिरस्कार सहना पड़ता है। इससे मन कुण्ठित हो जाता है और सहयोग के बजाय असहयोग का वातावरण बन जाता है।

अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करते रहना एवं अधिकारों का ही ठप्पा जमाना अन्याय एवं असंगत है, एकपक्षीय भी। स्वयं पुरुष को इस मामले में उदारतापूर्वक व्यवहार करके आदर्श पति की भूमिका निभानी चाहिए। यह नारी की इच्छाओं की पूर्ति करने, पारिवारिक सुख-शान्ति की वृद्धि एवं उन्नति करने का उत्तम माध्यम है। नारियाँ भी अपने पति में कुछ गुणों की अपेक्षा करती हैं। जिसके सहारे अपने जीवन की नाव बाँधी जाती है, उस खूँटे की मजबूती की आशा रखना भी स्वाभाविक है। पति में वे उदारता, विनोदप्रियता, व्यवहार कुशलता, सहयोगिता, परिश्रमशीलता, कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी, शारीरिक पुष्टता, शिष्टता एवं शुद्ध निष्कपट जीवन आदि गुणों को चाहती हैं। नारी का सारा जीवन ही पुरुष की उन्नति-अवनति, आदर-निरादर, सफलता-असफलता, सुख-दुःख के साथ बँधा होता है। अतः पुरुष अपनी गैर जिम्मेदारी से नारी के जीवन को घृणित, अपमानित, दुःखित न बनाये, इसका ध्यान रखना ही उसका परम कर्तव्य है।

कम पढ़ी-लिखी, कुरूप, काली पत्नी से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर उसे निभा लेना पुरुष के लिए गौरव की बात है। रूप लोलुपता के मोह में अनेकों निर्दोष महिलाएँ तिरस्कृत होती रहती हैं और उनका जीवन का सारा सुख नष्ट हो जाता है। यह कैसी विडम्बना है कि पुरुष स्वयं कुरूप रहने पर भी सुन्दर-लावण्य युक्त पत्नी चाहता है। रूप-सौन्दर्य से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। किन्तु इस बात को लेकर पारिवारिक सुखों की बलि दे देना कितना तर्कहीन है।

मानवीय जीवन में देने से ही सच्चा सुख मिलता है। अन्यो से लेने में नहीं। परिवार की इस छोटी-सी दुनिया में भी उसका पालनकर्ता विकृत दृष्टिकोण वाला रहे तो उसके आश्रितों की क्या दुर्दशा हो सकती है। यह सभी समझ सकते हैं। पति-पत्नी के दोनों पक्षों से विचारों की साम्यता तथा सेवा-सहयोग, आदर-सम्मान देते रहने का कर्तव्य निभाया जाय तो कितना सुख प्राप्त किया जा सकता है ? न तो पुरुष स्वयं अपने आप में पूर्ण है न नारी। दोनों के समन्वय से ही पूर्ण गृहस्थ बनता है। फिर नारी से ही सारी अपेक्षाएँ करना निराधार है। वह अपने माता-पिता एवं सारे रिश्ते-नातों को छोड़कर जिसके आश्रित रहने आयी है, वह भी उसका सहयोग न करे तो यह कितना अव्यावहारिक है ? पिछले दिनों नारी को तिरस्कृत करते रहकर पुरुष ने काफी सुख भोगा है। अब समय नहीं रहा कि वह नारी को पीड़ा देता रहे। चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक। उसे जीवन सहचरी समझे तथा अपना अहं त्यागकर उसका सम्मान करे। पत्नी की इच्छाओं के अनुरूप अपने गुणों को

विकसित कर दुर्गुणों को त्यागने में वह अपना कर्तव्य समझे और गृहस्थ धर्म का पालन करे।

दाम्पत्य-धर्म की मर्यादाएँ समझें

सुख-शान्तिपूर्ण, सुविकसित और सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य परिवार बसाता है, विवाह करता है, जीवनसाथी चुनता है और सुख-दुःख में अपना अलग-अलग आत्मीय भागीदार बनाता है। पति-पत्नी अलग-अलग व्यक्ति होते हुए भी आत्मीयता, प्रेम और स्नेह के प्रगाढ़ बन्धनों में इस प्रकार बँध जाते हैं कि गंगा-जमुना के संगम की तरह एकाकार हो जाते हैं। विवाह का प्रयोजन ही यह रहता है कि हमारा साथी दुःख, तकलीफों को बँटाएगा और जीवन में आने वाले तनाव, बोझ, चिन्ताएँ, परेशानियाँ तथा कष्ट हल्के होंगे। पति सोचता है कि पत्नी के रूप में उसे प्रेम करने के लिये परमात्मा का एक उपहार मिला है और पत्नी सोचती है कि उसे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए एक इष्ट आराध्य उपलब्ध हुआ है। कितनी सुखद होती है विवाह के समय की जाने वाली कल्पनाएँ और आशाएँ कि हम ऐसा घर बसावेंगे। आपस में प्रेम से रहेंगे, एक-दूसरे के लिये त्याग, बलिदान की प्रतिस्पर्धा करेंगे। घर-आँगन में जब बच्चों की किलकारियाँ गूँजेंगी तो उनमें अपना सब दुःख-दर्द भुला देंगे। इन आशाओं और कल्पनाओं के सुखद हिंडोलों में झूलते हुए युवक और युवती परिणय सूत्र में बँधते हैं और एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं।

घर में सन्तान का जन्म होता है तो खुशियाँ समेटे नहीं सिमटतीं। कल्पनाएँ उठती हैं कि बच्चे बड़े होंगे तो बुढ़ापे में सहायक होंगे। छुटपन में उनकी बाल सुलभ क्रीड़ाएँ मन को आनन्दित करेंगी, गुदगुदाएँगी और जब वे अपने-अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे, तो निश्चिततापूर्वक जीवन का उत्तरार्ध उनकी श्रद्धा और परस्पर के प्रेम के सहारे सुखपूर्वक गुजार लेंगे। इस प्रकार व्यक्तिगत आनन्द और समाज के प्रति कर्तव्यों के पालन का सन्तोष अनुभव करते हुए मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिये ही ऋषि-महर्षियों ने विवाह संस्था का गठन किया था। ताकि मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का गौरव अनुभव करते हुए सौद्देश्य जीवन जी सके।

मनुष्य जीवन का अर्थ केवल शरीर और साँस का समागम मात्र तो नहीं है। यदि जीवन का यही अर्थ होता रहा तो बिना सिर पैर के जमीन पर रेंगने वाले कीड़े-मकोड़े मनुष्य से किस बात में छोटे या हीन हैं ? उनमें और मनुष्य में क्या अन्तर रह जाता है ? वे तो फिर भी मनुष्य की अपेक्षा एक तरह से खुशी, सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। जिस प्रकार जो कुछ मिल जाता

है, उसे खा-पी लेते हैं। वंश वृद्धि करते और मर जाते हैं। मनुष्य जीवन का भी यही प्रयोजन रहा होता तो विवाह संस्था के गठन की क्या आवश्यकता थी ? किन्तु नहीं, मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसे परमात्मा ने शक्ति, बुद्धि-विवेक और संगठन का अधिकार दिया है तथा किन्हीं उत्तरदायित्वों को सौंपते हुए उसे सृष्टि का मुकुट-मणि बनाया है।

उन दायित्वों को कुशलतापूर्वक पूरा किया जा सके इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य शक्तिमान, व्रतवान और कर्तव्यवान बन कर दिनों-दिन उन्नति करता जाय और अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के बल पर सौंपे गए उत्तरदायित्वों को पूरा करे। यह उत्तरदायित्व परमात्मा की इस रम्यवाटिका सृष्टि-सुषमा को और अधिक सुन्दर बनाने का ही है। इस उत्तरदायित्व को पूरा किये बिना जो दी गई सुख-सुविधाओं और अधिकारों का उपयोग कर रहा है वह न केवल चोर है। आत्मघाती भी है क्योंकि सौंपे गये कर्तव्य की पूर्ति के लिए दुरुपयोग से वह अपना भी कोई भला नहीं कर पाता। जीवनसाथी चुनने और दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की सुविधा भी उन्हीं अधिकारों या सुविधाओं में से है, जिसका ठीक प्रकार से उपयोग न कर पाने के कारण वह गार्हस्थ्य जीवन को तो खिलवाड़ की तरह जीता ही है, अपने जीवन मनुष्यत्व को भी कलुषित-कलंकित करता है।

क्या कारण है कि विवाह के पीछे जो उद्देश्य निहित हैं वे पूरे नहीं हो पाते हैं। व्यक्तिगत जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाकर अधिक सार्थकता और अधिक कुशलता के साथ प्रगति पथ पर अग्रिम हुआ जाना चाहिए था, वह अपेक्षा क्यों पूरी नहीं होती ? विवाह के समय जो कल्पनाएँ की गई थीं, वे क्यों आकाश कुसुम सिद्ध होती हैं ? एक ही कारण है कि न तो मनुष्य जीवन का अर्थ समझा गया और न ही यह सोचा गया कि मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने में दाम्पत्य का किस प्रकार उपयोग किया जाए ? मनुष्य जीवन का स्वरूप समझाते हुए ऋषियों ने गाया है—

समास्तवान् ऋतवो वर्धयन्तु

संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।

सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा

आभाहि वत प्रदिशस्तस।

—अथर्ववेद

अर्थात्—मनुष्यों को चाहिए कि वे श्रेष्ठ जनों से उत्तम शिक्षा प्राप्त कर संकल्पवान, सत्यवान और सत्कर्मशील बनें। इस प्रकार संसार में उन्नति और कीर्ति को प्राप्त करते हुए वे सदैव प्रसन्न चित्त रहें।

सूरिरसि वर्धोबा असि तनूपा नोऽसि।

आप्नुहि श्रेवासपतिं सयं काया।।

—अथर्ववेद

अर्थात्—मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए हे मनुष्यो ज्ञान प्राप्त करो, तेजस्वी बनो और शारीरिक दृष्टि से बलवान बनो। अपनी वर्तमान स्थिति में ही न पड़े रह कर आगे बढ़ने का प्रयास करते रहो।

आगे बढ़ने के लिए, उन्नत स्थिति को प्राप्त करने में निश्चित ही साधन-सुविधा और अवसर की आवश्यकता पड़ती है। उससे भी ज्यादा आवश्यक है एक ऐसे साथी-सहयोगी की जो एक-दूसरे के पूरक बन सकें। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही मनीषि-ऋषियों ने विवाह संस्था का प्रचलन किया और आदेश दिया कि—

इषेरावे रमस्व सहमे धुमन्ऊर्जे अपत्याया।

सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्॥

—यजुर्वेद

अर्थात्—अब (विवाह के बाद) तुम पति-पत्नी शान्तिपूर्वक रहो। विद्यावान बनो। श्रेष्ठ गुणों को धारण कर एक-दूसरे की मंगलकामना करो। धर्मानुसार सुसंतति को जन्म दो, अनियन्त्रित काम सेवन से बचो और अपने जीवन उद्देश्य को प्राप्त करो।

अनियमित कामसेवन से पुरुष का ही नहीं नारी का भी स्वास्थ्य चौपट होता है। शीघ्र ही सुन्दरता बुझ जाती है, फूल-सा खिला चेहरा मुरझा और कुम्हला जाता है। शरीर ढल जाता है और वह असमय ही वृद्धा होकर बीमार रहने लगती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। घर का काम अस्त-व्यस्त हो जाता है। प्रेम-स्नेह और रस-रीति के स्थान पर कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़ा, कुद्वन्द और आवेश की वृद्धि हो जाती है। गृहस्थ जीवन को काम क्रीड़ा का आधार मान कर चलने के यह दुष्परिणाम हर उस व्यक्ति को भोगने पड़ते हैं, जो मर्यादा का अतिक्रमण करते रहते हैं। इस तरह मुरझाये, कुम्हलाये, पीले और रोगी चेहरा लिये घूमने वाले व्यक्तियों से कैसे यह आशा की जा सकती है कि वे शक्तिवान, बलवान और कर्तृत्ववान बनकर ऊँचे उठेंगे तथा समाज व राष्ट्र कोई ऊँचा उठाएँगे ?

अनियमित कामसेवन का एक दुष्परिणाम अधिक संतानोत्पादन के रूप में भी सामने आता है। मनुष्य के लिए एक अपना ही विकास करना कठिन होता है तो वह ढेरों बच्चे पैदा कर उनका विकास किस प्रकार कर सकता है ? इस स्थूल सत्य को तो एक साधारण व्यक्ति भी समझ पाता। माना कि आजकल अनचाही संतान को रोकने के लिए कई कृत्रिम उपाय निकल आए हैं परन्तु अनियन्त्रित यौनाचार से शारीरिक और मानसिक

शक्तियों का क्षरण तो होता ही है। उस क्षरण को रोकने का कोई उपाय नहीं है।

अस्तु, दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य समझते हुए उसकी मर्यादाओं में रहते हुए जीवन साथी का लाभ आत्मिक और मानसिक प्रगति के लिए उठाना चाहिए। वंश वृद्धि तो विवाह का एक छोटा-सा और गौण प्रयोजन है। मूल प्रयोजन तो एक-दूसरे का विकास, एक-दूसरे का हित साधन, प्रेम, त्याग, बलिदान और उत्सर्ग जैसे गुणों का अभिवर्धन है। जिसके आधार पर वेद भगवान ने संकल्पवान, सत्यवान, सत्कर्म परायण, मेधावी, बलवान और प्रगतिशील बनने का आदेश दिया है।

सुखी दाम्पत्य-जीवन इस प्रकार बनता है

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयपूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों, यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिए पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं, यह कर्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्त्व मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष-नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी-पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक-दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन,

ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थककर घर आने पर उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी उसमें घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी ? इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

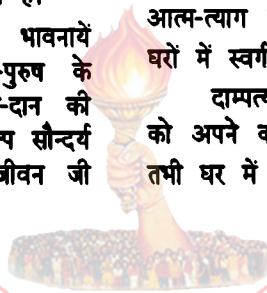
पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इससे दाम्पत्य-जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनायें और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हैं, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प-साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी

सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र-बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए, फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटाये, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें। यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम, आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।



दाम्पत्य जीवन की असफलता—कारण और निवारण

दाम्पत्य जीवन की असफलता का

मूल कारण

दाम्पत्य जीवन के ऊपर पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत सभी तरह की उन्नति, विकास निर्भर करते हैं। पति-पत्नी के सहयोग, एकता, परस्पर आत्मोत्सर्ग, त्याग, सेवा आदि से दाम्पत्य जीवन की सुखद और स्वर्गीय अनुभूति सहज ही की जा सकती है। इससे मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य जीवन के विकास में बड़ा योग मिलता है। सभी भीति स्वस्थ, सन्तुलित, सुन्दर दाम्पत्य जीवन स्वर्ग की सीढ़ी है और मानव विकास का प्रेरणा स्रोत है।

जीवन लक्ष्य की लम्बी मंजिल को तय करने के लिए पति-पत्नी का अनन्य संयोग यात्रा को सहज और सुगम बना देता है। नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही घरी रह जाती है, तो बिना शक्ति के पौरुष भी किसी काम नहीं आता। वह अपंग है। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह, संयोग, एकता, नव-सृजन के लिए—नव-निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी परस्पर असंगति, असमानता ही अवरोध, हानि, अवनति का कारण बन जाती है। पति-पत्नी में यदि परस्पर विग्रह, आपा-धापी, स्वार्थपरता, द्वेष, स्वेच्छाचार की आग सुलग जायगी तो दाम्पत्य-जीवन का सौन्दर्य विकास, प्रगति, महत्वपूर्ण संभावनाओं का स्वरूप अपने गर्भ में ही नष्ट हो जायगा।

पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन रथ के दो पहिए हैं, जिनमें एक की स्थिति पर दोनों की गति-प्रगति निर्भर करती है। दोनों का चुनाव जितना ठीक होगा, दाम्पत्य जीवन उतना ही सुखद, स्वर्गीय उन्नत और प्रगतिशील बनेगा। दोनों में से एक भी अयोग्य, कमजोर हो तो दाम्पत्य जीवन का रथ डगमगाने लगेगा और पता नहीं वह कहीं भी दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट-भट्ट हो जायगा अथवा मार्ग में ही अटक जायगा। इससे न केवल पति-पत्नी वरन् परिवार, समाज के जीवन में गतिरोध पैदा होगा। क्योंकि दाम्पत्य जीवन पर ही परिवार का भवन् खड़ा होता है और परिवारों से ही समाज

बनता है। इसलिए पति-पत्नी का चुनाव एक महत्वपूर्ण पहलू है।

अक्सर देखा जाता है कि लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध उनके माँ-बाप ही तय करते हैं। वर पक्ष वालों ने गोरी सुन्दर लड़की, मालदार घराना देखा, लड़की के माँ-बाप ने पढ़ा-लिखा, सुन्दर लड़का देखा और सम्बन्ध तय कर लिए। धूम-धड़के के साथ विवाह आयोजन होते हैं। लम्बी-चौड़ी दाबतें, खर्च, गाना-बजाना सभी कुछ होता है। किन्तु विवाह हुए कुछ ही दिन समाप्त नहीं होते हैं कि पति-पत्नी में लड़ाई, झगड़े, मन-मुटाव, घृणा, द्वेष के विषाक्त कीटाणु फैल जाते हैं। यही प्रवृत्तियाँ एक दिन प्रकट में होने लगती हैं। सारे घर को मालूम होने पर घर वाले बहू को उल्टा-सीधा सुनाते हैं, गाली देते हैं। बात लड़की के माता-पिता तक पहुँचती है तो बेचारे सिर पर हाथ धर कर रोते हैं और कहते हैं “इतना सास धन पानी की तरह बहाकर भी लड़की को कुँए में फेंक दिया।” पति-पत्नी ही नहीं दोनों परिवार दुःख, क्लेश, चिन्ता, शोक के अड्डे बन जाते हैं। दम्पति मन ही मन अपने दुर्भाग्य पर रोते हैं। परस्पर के क्लेश और लड़ाई-झगड़े में उनके स्वप्नों के महल तहस-नहस हो जाते हैं। कड़ियों को शारीरिक और मानसिक रोग धर दबाते हैं और वे अल्पकाल में काल-कवलित हो जाते हैं। एक छोटी-सी भूल, पति-पत्नी का स्वभाव, गुण, कर्म के आधार पर चुनाव न करना, अनमेल विवाह करना ही इसका मुख्य कारण है। दही और दूध को एक जगह मिलाकर रखने से खराबी पैदा होगी ही। आग और बारूद का अस्तित्व एक जगह कर देना विनाश को निमन्त्रण देना है। इसी तरह अनमेल विवाह करना लड़के-लड़कियों के जीवन को बर्बाद करना है।

हमारे एक परिचित युवक अपने माँ-बाप के अकेले पुत्र थे। बचपन से ही उनकी रुचि आध्यात्मिक, धार्मिक थी। अध्ययन के अतिरिक्त अपना समय चिन्तन-मनन, साधना आदि में लगाते थे। स्वभाव से बड़े सीधे-सादे, सन्तोषी-संयमी और उदार थे। उनके वयस्क होने पर कई लड़की वाले देखने आये। घर वालों ने अच्छा-सा घराना देखकर सम्बन्ध तय कर लिया, घर में बहू आयी। वह निकली पूरी आधुनिका ? खाना-पीना, मौज उड़ाना, नित नये-नये जेवरों, वस्त्रों की माँग करना उसके स्वभाव की

विशेषतायें थीं। पति महोदय साधारण से अध्यापक थे, इस पर भी आध्यात्मिक विचारों के। पत्नी अपनी कामना रुचि, इच्छा की पूर्ति न होती देखकर कलह करने लगी। घर भर में विष फैल गया। बहूजी सबसे तक्रार करने लगीं। बेचारा युवक इससे चिन्तित और परेशान रहने लगा। कुछ ही समय में उनकी स्थायिक शक्ति दुर्बल हो गई और वे विक्षिप्त-पागल से हो गये। लड़की के माता-पिता भी इस परिस्थिति के कारण चिन्ता में घुलने लगे। इस तरह दो परिवारों का दुःखद जीवन एक गृहस्थी का उजड़ना, समाज में दूषित प्रभाव पड़ना तथा अन्य बुराइयाँ सब एक ही भूल से पैदा हो गईं और वह भूल है अनमेल विवाह की।

पति-पत्नी का चुनाव जहाँ तक हो दोनों की इच्छा, रुचि की अनुकूलता पर होना आवश्यक है। साथ ही इस रुचि का आधार एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव, सद्भावनायें आदि ही होना चाहिए अन्यथा रूप, यौवन, वासना प्रेरित निर्णय भी अन्ततः दुःख, परेशानी परस्पर कलह का कारण बन ही जाता है क्योंकि ये तत्व अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रहते।

कदाचित् पति-पत्नी के स्वभाव आदि में कुछ भिन्नता भी रह सकती है विभिन्न रुचियों में भी यदि वे परस्पर टकरायें नहीं, एक दूसरे को परेशानी पैदा न करें तो भी दाम्पत्य जीवन की गाड़ी चलती रह सकती है। निबाहने और समझौता करके चलने की उदारता जिनमें है वे भिन्न-भिन्न रुचियों के होते हुए भी एक दूसरे को निबाहते हुए चल सकते हैं। वस्तुतः यही मध्यम मार्ग है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वाभाविक विशेषतायें, भिन्नतायें कुछ न कुछ अवश्य ही होती हैं। निभाने और समझौता करके चलने के आधार पर ही सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली भारत में हजारों वर्षों से चली आ रही है। अपनी रुचि, अपनी इच्छा, अपनी कामना और उनकी पूर्ति को महत्व देकर पति-पत्नी अपने मधुर सम्बन्धों में दरार पैदा कर लेते हैं। स्नेह, प्रेम, आत्मीयता के स्थान पर कटुता के बीज अपने ही हाथों बो लेते हैं, जिसके फलस्वरूप तलाक, हत्या, दुर्व्यवहार, आत्म-हत्याओं के परिणाम निकलते हैं।

धनी-निर्धन का प्रश्न भी पति-पत्नी के चुनाव में देखना आवश्यक है। यदि किसी धनवान के यहाँ गरीब लड़की का सम्बन्ध हो जाये तो बेचारी को समुराल में माँ-बाप की गरीबी के ताने सुनने पड़ते हैं; उसकी कोई कदर नहीं की जाती, अपने साथ कोई दहेज न लाने पर उसे जीवन भर कोसा जाता है। कदाचित् पति भी लड़की की उपेक्षा करे तो उसका जीवन भार बन जायगा और शारीरिक, मानसिक कष्टों से ग्रस्त दुखी जीवन बितायेगी। कई लोग धन के आकर्षण में अपनी लड़की का विवाह कम या अधिक उम्र के लड़कों से कर देते हैं। किन्तु

दोनों ही स्थितियों में दाम्पत्य जीवन दुःखी और असफल होना निश्चित है।

जब धनी घर की लड़की गरीब युवक को ब्याही जाती है तो समस्या और भी पेचीदा हो जाती है। ऐसा तब होता है जब लड़की में कोई जुक्स हो अथवा लड़का होनहार, योग्य हो। उधर लड़के के माँ-बाप भी खुश होते हैं अमीर और धनी घराने में शादी करके। किन्तु गरीब घर में अमीर की लड़की आने पर बड़ी परेशानी खड़ी हो जाती है। जैसा उसे पितृ-गृह में अभ्यास था, उसी के अनुरूप वह सुख-सुविधा, मकान, नौकर, वस्त्र, आभूषण, स्वादिष्ट भोजन, सौन्दर्य प्रसाधनों की माँग करने लगती है। बेचारा गरीब पति इन माँगों को पूरा करने में असमर्थ होता है। फलतः असन्तुष्ट पत्नी गरीब घर की शान्त छाया के लिए चिन्तारी बन जाती है।

शिक्षित, अशिक्षित दम्पति का जीवन क्लेशयुक्त हो जाता है। किसी शिक्षित युवक का विवाह निपट गँवार, निरक्षर लड़की से कर दिया जाय तो दोनों के जीवन की गति में ताल-मेल नहीं बैठेगा ? अशिक्षा के कारण कोई भी पक्ष एक दूसरे की भावना मानसिक स्थिति को समझ नहीं सकेगा और इसके कारण परस्पर के जीवन में योग-दान नहीं दे सकेगा। ऐसे सम्बन्धों में पति-पत्नी एक दूसरे के सहायक-सहयोगी न रहकर परस्पर भार बन जाते हैं।

कुल मिलाकर दाम्पत्य जीवन के कलह-विच्छेद, अशान्ति, विकृतियों का मूल कारण पति-पत्नी का ठीक-ठीक चुनाव न होना ही है और इसके लिए खासकर अभिभावकगण ही जिम्मेदार होते हैं, जो अपनी ही रुचि, भावना को स्थान देकर वर कन्या का चुनाव करते हैं। हर हालत में चुनाव करते समय अपनी-अपनी सन्तान के मत को भी उदारतापूर्वक ध्यान में रखना चाहिए। यह तो आवश्यक है कि सन्तान यदि कुमार्ग ग्रहण करे तो माता-पिता उन्हें अधिकारपूर्वक रोके और सही मार्ग दिखायें किन्तु शादी-विवाह जैसे जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सन्तान की सम्मति लेना भी आवश्यक है। जो अभिभावक माता-पिता अपने संकुचित और अनुदार दृष्टिकोण अथवा अभिमानवश ऐसा नहीं सोचते, बच्चों की सम्मति, भावनाओं को उदारता के साथ स्वीकार नहीं करते तो बच्चों का दाम्पत्य जीवन बर्बाद होना, घर उजड़ना स्वाभाविक है। इसका परिणाम उन्हें भी अपने जीवन में भोगना पड़ता है, जब सन्तान द्वारा अपना अपमान होते देखते हैं। घर की कलह, लड़ाई-झगड़े होते देखकर, इज्जत को बिगड़ते देखकर लोगों द्वारा उनका तमाशा देखे जाने पर अनेकों अभिभावक नौशौ आँसू रोते। कलपते, बिलखते देखे जाते हैं और भी अनेकों तरह तड़प-तड़प कर उन नासमझ अभिभावकों को अपनी भूल का पश्चाताप करना पड़ता है।

पत्नी को दासी नहीं, साथी मानिये

जिन आधारों पर परिवार की सुख-शान्ति निर्भर करती है उनमें मुख्य है पति-पत्नी का सघन सहयोग। सौभाग्य से हमारे परिवार पश्चिमी देशों की अपेक्षा अधिक स्थिर और सुदृढ़ हैं। यहाँ माना जाता है कि बाप के घर से बेटी की डोली निकलती है तो पति के घर से ही उसकी अर्धी निकलेगी। एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत भारतीय संस्कृति का आदर्श है, परम्परा है। इसी आधार पर पति-पत्नी के सम्बन्ध स्निग्ध, मधुर और प्रेमपूर्ण रहते हैं। जबकि पश्चिमी देशों में सोते समय खराटे भरना भी तलाक का कारण बन जाता है। सम्भवतः ही वहाँ कोई ऐसे दम्पति हों जो कल के लिए एक दूसरे से आश्वस्त हों। जबकि भारतीय परिवारों में पति पत्नी जीवन-मरण के साथी हैं।

इतना होने पर भी भारतीय परिवार को पूर्णतया आदर्श नहीं कहा जा सकता है। कारण है पति-पत्नी के बीच रहने वाली ऊँच-नीच की खाई और बड़े-छोटे का भेद। सेव्य-सेवक का सम्बन्ध तथा स्वामी-दास का अन्तर। आधुनिक युवक-युवतियों में परम्परागत विवाहों के प्रति विक्षोभ उत्पन्न हो रहा हो तो इसके लिए मात्र वे ही दोषी नहीं हैं। दोषी उनके अभिभावक और विशेष रूप से पिता हैं जो गृहणियों से दूसरी श्रेणी का व्यवहार करते हैं।

लड़कियों को आरम्भ से ही यह शिक्षा दी जाती है कि उन्हें घर के अन्य लोगों की सेवा करनी है। उनका काम केवल पति व परिवार के अन्य सदस्यों की सुख चिन्ता भर करना है। अपने सम्बन्ध में कुछ सोचना नहीं है। जबकि उनके सामने ही लड़कों को—भाइयों को उनकी अपेक्षा अच्छी सुविधाएँ दी जाती हैं, तो उनके मन में एक हीनता की भावना जन्म लेती है और लड़कों के मन में मिथ्या अहंकार उत्पन्न हो जाता है। हीनता की यह भावना लड़कियों में कई कुण्ठाओं को जन्म देती है तो लड़कों में अधिकार और अहंकारपूर्ण बड़प्पन के भाव को। इसकी अपेक्षा दोनों ही त्याग-बलिदान करने, एक दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखने की शिक्षा दी जाय तो सेवा-शिक्षा दोहरे प्रयोजन पूरे करती है। उससे न लड़कियों में हीनता की ग्रन्थि बनती है और न लड़कों में मिथ्या अहं का भाव, बल्कि दोनों एक दूसरे की सेवा को अपना कर्तव्य मानकर अपेक्षाकृत अधिक स्नेह और प्रेमपूर्ण सहयोगी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। लेकिन इस स्थिति के लिए गहरे प्रयत्नों की आवश्यकता है, बहुत सी भ्रान्तियों को तोड़ देना तथा आदर्शवादी धारणाओं को स्थापित करना आवश्यक है।

आज के बच्चे भविष्य में अपना दाम्पत्य जीवन सुखद, स्निग्ध और मधुर बना सकें इसके लिए विवाहित

दम्पतियों को—माता-पिताओं को अपने दृष्टिकोण में सुधार करना चाहिए। तभी बच्चों के सामने दाम्पत्य जीवन की आदर्श मिशाल रखी जा सकती है। बच्चा अपने माता पिता से जितना सीखता है, उससे भी अधिक उनके संस्कार ग्रहण करता है। जिनका सीधा सम्बन्ध उनके व्यवहार, आचरण और रहन-सहन के प्रभाव से है। माता-पिता आपस में जैसा व्यवहार करते हैं, बच्चे भी यह मानने लगते हैं कि पति-पत्नी के बीच घर-परिवार में ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए।

पति अक्सर यह समझता है कि उसके लिए पत्नी एक दासी से अधिक नहीं है। कहने मिद्ध करने में आदर्शवादिता की बातें कितनी ही कही जाती हों, पर आस्था और मान्यता तो अन्तःप्रेरित आचरण और व्यवहार से ही व्यक्त होती है। नारी के समानाधिकार और उसके व्यक्तित्व को स्वीकार करने के लिए आग्रही प्रवक्ता कितने ही मिल जायेंगे, परन्तु वे अपने विचारों को स्वयं कितने व्यवहार में लाते हैं, यह प्रवचन उपदेश अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन से नहीं कर्मों और आचरणों से ही पता चलता है। नारी मुक्ति की आवाज उठाने वाले कितने ही लोग अपने व्यावहारिक जीवन में पत्नी से उसी प्रकार व्यवहार करते हैं, जिस प्रकार कि उनके पुरखे नारी को मात्र गृहिणी मान कर करते रहे थे।

दैनिक कामकाज से छुट्टी पाकर शाम के समय पति जब घर लौटता है, तो वह सोचता है कि पत्नी उसके हाथ-पाँव दबाये या उसे घर पहुँचते ही तत्काल खाना बनाकर गरम-गरम परोस दे। परम्परागत भारतीय परिवारों में यह भी समझा जाता है कि पत्नी को सबसे बाद में खाना खाना चाहिए, भले ही पति महोदय बाहर मित्रों के साथ नाश्ता कर आये हों या पार्टी में हो आये हों। साथ ही यह मानने वालों की भी कमी नहीं है कि बच्चे खिलाना या उनका ध्यान रखना केवल पत्नी का ही काम है, उसमें उनके हाथ लगाने की जरा भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वे तो दिन भर काम करके थक चुके हैं। काम से थक जाने की बात ही इस मान्यता का आधार है तो यह भी देखना चाहिए कि घर में पत्नी भी कोई खाली नहीं बैठी रही है। उसे भी दिन भर काम में खपना पड़ा है। इस आधार पर पति महाशय अपना यह अधिकार समझे कि दिन भर में वे थक चुके हैं, तो पत्नी भी उनसे कम थकी नहीं होती है। सुबह पुरुषों से पहले जाग कर नाश्ता बनाने, खाना तैयार करने, घर की सफाई, वस्त्रों की धुलाई और बच्चों की देखरेख में शाम हो जाती है और सोना भी सबके बाद में मिलता है तो थकने के अधिक कारण तो पत्नी के साथ ही हैं। पति से कहीं अधिक ही उसे श्रम करना पड़ता है। थकान मिटाने के लिए किसे किसकी सेवा करनी चाहिए, अब यह निर्णय आसानी से किया जा सकता है।

लेकिन निष्पक्ष निर्णय के लिए विचार मन्थन के बाद न्यायपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी पति इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा कि सेवा की पहली अधिकारिणी पत्नी है। क्योंकि उसके मन में यह अहंकारमूलक धारणा बैठी है कि पत्नी की सेवाओं का लाभ उठाने का जन्मसिद्ध अधिकार मुझे है।

कदाचित् पुरुष स्वामी होने का दम्भ इसलिए रखते हैं कि कमाने, उपार्जन करने, निर्वाह व्यवस्था जुटाने का कार्य वे ही करते हैं। बचपन से पालित अहंकार और दम्भ के कारण वे अपना दर्जा भी पत्नी से अधिक बड़ा मानते हैं। यदि कार्य के आधार पर ही बड़प्पन का मूल्यांकन किया जाय तो भी पत्नी का पक्ष ही अधिक वजनदार सिद्ध होता है। उपार्जन से भी अधिक दायित्वपूर्ण उसका नियोजन। कमाने से भी मुश्किल है खर्च करना। निर्वाहयोगी साधन जुटाने से भी गम्भीर और कठिन है उस व्यवस्था के चलाने और निर्धारित करने का काम। यह सारा दायित्व पत्नी को ही सँभालना पड़ता है और साथ ही साथ अन्य अतिरिक्त कार्य इतने अधिक हैं, जो पति की तुलना में कम नहीं अधिक ही श्रमसाध्य हैं।

पति का दर्जा बड़ा सिद्ध करने के लिए दी जाने वाली तमाम दलीलें थोथी हैं। मूल बात है—पति की अहं भावना, पुरुष का दर्प, जिसके कारण वह अपनी धर्मपत्नी से साथी के समान व्यवहार नहीं कर पाता और न ही उसे इस योग्य समझता है। इसके दुष्परिणाम व्यक्तिगत रूप से ही नहीं पारिवारिक और सामाजिक सन्दर्भों में भी हानिकर होते हैं। परिवारों में बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रारम्भ से ही इस कारण समुचित ध्यान दे पाना कठिन हो जाता है कि मातायें अनपढ़ और अशिक्षित होती हैं। समाज की आधी जनसंख्या को शेष आधे भाग का बोझ अपने कंधों पर ढोकर इसलिए खींचना पड़ता है कि लड़कियाँ इस योग्य नहीं होती कि वे अपनी जिम्मेदारियाँ खुद पूरी कर सकें।

यदि पत्नी के प्रति दासी भाव न रखते हुए साथी का दृष्टिकोण रखा जाय, तो लड़कियाँ भले ही निरक्षर शादी करें परन्तु योग्य और सद्भावसम्पन्न पति के सान्निध्य में रहकर वे अशिक्षित रह ही नहीं सकतीं। साथी की भावना-मैत्री का आदर्श अपने सहयोगी मित्र को किसी भाव अयोग्य और पिछड़ा देखना सहन नहीं कर सकते। लेकिन यह भावना कितने पुरुषों में विकसित होती है ? दाम्पत्य जीवन को कलात्मक ढंग से जीने की आकांक्षा कितने हृदयों में होती है ? अधिकांश तो जैसे-तैसे गृहस्थी को धक्का देते रहने में ही विश्वास करते हैं। इस भावना को तिलांजलि दे ही देनी चाहिए।

दाम्पत्य जीवन में दुराव की दरार

दाम्पत्य जीवन की शुरूआत करते समय भारतीय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि हम एक दूसरे के

प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। यह प्रतिज्ञा यदि निष्ठापूर्वक दोनों ओर से निभाई जाय तो निश्चय ही दम्पति एक सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में सक्रिय रहते हैं और उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महक उठता है। ऐसे दम्पति जिस समाज में रहते हैं, वह समाज एक सुरभित उद्यान बना रहता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि, शिक्षा और सौन्दर्य को आधार मानने की रीति है। निःसन्देह, सांसारिक जीवन को चलाने के लिए ये सभी आवश्यक हैं। पर भौतिक उपकरणों से भी पहले गहन आत्मीयता और सघन संवेदना की उपस्थिति दाम्पत्य जीवन की आरम्भिक शर्त है। यदि भावनाओं से पति-पत्नी एक-दूसरे से अर्द्धांग रूप से जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम एवं आत्मीयता भरी रहती तो भौतिक साधन उन्हें सर्वोपरि नहीं प्रतीत होंगे, बाह्य आकर्षण उन्हें उतने आवश्यक नहीं लगेंगे।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्व हैं। शारीरिक गठन व स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ती रहने वाली रंग वृत्ति को आकर्षण कहते हैं, जबकि प्रेम इससे भिन्न एक आध्यात्मिक तत्व है, जो दाम्पत्य जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्तव्य निष्ठा का, आनन्द, प्रमोद तथा आह्लाद का संचार करता रहता है। अन्तःकरण का सन्तोष ही उसे पालता है।

यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रेम और आत्मीय सघनता का विकास, सहयोग, समर्पण और त्याग के धरातल पर ही सम्भव है। सन्तुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता। एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक ही सिद्ध होता है। तुला के दो पलड़ों को सन्तुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुयें ही दोनों ओर रखनी होती हैं। नाव के दोनों सिरों पर बैठे लोगों में परस्पर सन्तुलन न हो तो नाव डगमगाने लगती है और डूबने का खतरा आ खड़ा होता है। दाम्पत्य जीवन में बराबरी का सहयोग और सहकार आवश्यक होता है। इस सघन सद्भाव का विकास तभी होता है, जब दाम्पत्य जीवन का लक्ष्य उदात्त हो। यह दोनों के समक्ष स्पष्ट रहे कि हमारे मिलन का अभिप्राय कामसेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर चलाने की व्यवस्था या एक कमाऊ साथी की प्राप्ति नहीं, अपितु दो आत्माओं का एकीकरण है। पति-पत्नी के बीच विद्यमान आकर्षण का चरम प्रयोजन है—दो व्यक्तित्वों के मिलन की ऐसी अनूठी प्रक्रिया का सम्पन्न होना, जो समाज में एक नई ही वस्तु को, एक नई ही प्रक्रिया को जन्म दे। नर-नारी के बीच ऐसे अद्भुत घुलनशील तत्व हैं कि यदि वे दोनों गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया संयुक्त व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से

३.५ गृहस्थ एक तपोवन

दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। कुमारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, उसमें विवाह के बाद कयाकल्प जैसा परिवर्तन होता है और किशोर लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के थे, विवाह के बाद इतने बदले पाये जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है—प्रकृति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित होता है। पर इस घुलन के लिए मात्र शारीरिक सामीप्य अपर्याप्त है। वह तो एक बहुत ही छोटा अंशभर है। व्यक्तित्वों का घुलना उतने भर से नहीं होता, उसके लिए तो भावनात्मक सघनता आवश्यक है। यही सघनता वह स्थिति लाती है कि एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। उस स्थिति में दोनों का ही एक दूसरे पर पूर्ण अधिकार रहता है।

पर सामान्यतः इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है। विवाह के उपरान्त पति-पत्नी पर अपना पूर्ण अधिकार मान बैठता है और पत्नी पति पर। इस अधिकार भावना में कर्तव्य भावना की उपेक्षा रहती है, पर कर्तव्य भावना की कमी रहने पर सच्ची आत्मीयता सम्भव नहीं।

पति-पत्नी दोनों में गहरी दूर तभी पड़नी शुरू होती है, जब वे एक दूसरे से मात्र अपेक्षाएँ रखते हैं—अपना कर्तव्य याद नहीं रखते। जहाँ एक दूसरे के प्रति सम्मान, कृतज्ञता एवं समान संवेदना नहीं है, वहाँ सहजीवन कैसे हो सकेगा ? एक दूसरे पर अपनी रुचियों का आरोपण अपनी अपेक्षाओं को ही प्रधानता देना ही वह कारण है, जिससे दाम्पत्य जीवन का रस स्रोत अवरुद्ध होता तथा सूखता चला जाता है।

यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं और दाम्पत्य जीवन की सफलता, सार्थकता की जिम्मेदारी दोनों की है, किसी एक की नहीं।

यों विषम योनियों का मिलन पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों सभी में होता रहता है। यह एक सामान्य जैविक प्रक्रिया मात्र है, जो प्रकृति रूप से सृष्टि का प्रयोजन सिद्ध करती रहती है। पर नर-नारी के बीच का आकर्षण मात्र यौनतृप्ति एवं प्रजनन की प्रेरणा से ही नहीं होता। क्योंकि मनुष्य की चेतना इतनी सतही नहीं होती।

यह सही है कि प्रजनन प्रक्रिया और शारीरिक संयोग में प्रबल आकर्षण एवं प्रचण्ड आवेश है। किन्तु शिशु-सर्जन और वंश विस्तार की आवश्यकतायें भर पूरी करते रहना इस प्रचण्ड प्रेरणा का लक्ष्य नहीं है। अपितु इस प्रबल आकर्षण का मूल कारण दो लिंगी प्राणियों की अपूर्णताओं का परस्पर पूरक बनकर पूर्णता प्राप्त करने की आध्यात्मिक आकांक्षा है। इस प्रकार नर-नारी के बीच का यह गहरा खिचाव मूलतः आध्यात्मिक प्रयोजन वाला है और इस आध्यात्मिकता की दृष्टि से ही विवाह को एक धार्मिक संस्कार की गरिमा प्रदान की गई है।

यदि विवाह का उद्देश्य मात्र उच्छ्वंखल यौन-जीवन ही मान लिया जाय तो उस स्थायी अतृप्ति के लिए भी तैयार रहना चाहिए, जो आज पश्चिमी नर-नारी की भाग्य रेखा ही बन गया है। यदि भावनात्मक उद्देग विवेकरहित है तो उससे सघनता नहीं दुराव ही बढ़ेगा। शरीरों की भिन्नता मिटा डालने की कामना का अर्थ यदि शारीरिक सामीप्य तक सीमित रह गया तो उससे प्राणों की घुलनशीलता सम्भव नहीं और तब दो व्यक्तित्वों के संयोग से उस तीसरे व्यक्तित्व के निर्माण की भी संभावना नहीं रह जाती जो कि दाम्पत्य जीवन की वास्तविक उपलब्धि है।

यह बात भली-भाँति समझ लेने योग्य है कि दाम्पत्य जीवन की सुख, शान्ति और सफलता का आधार परिष्कृत दृष्टिकोण तथा प्रखर उदात्त भावनायें हैं। शिक्षा, धन और देह सौष्ठव से दाम्पत्य सुख का सम्बन्ध रहा होता तो रूप-लावण्य वालों, धनियों और पढ़े-लिखों के पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच पनप रहे—वैमनस्य, तनाव, मन-मुटाव और सम्बन्ध विच्छेद के दृश्य तेजी से बढ़ रहे होते।

विवाह के समय जो कर्मकाण्ड सम्पन्न होता है, उसे यदि ठीक से समझा जाय। उसके संकेतों, निर्देशों का पालन किया जाय तथा उस समय के संकल्पों का जीवन में निर्वाह किया जाय—उन आदर्शों और संस्कारों का महत्व समझकर उन पर आचरण किया जाय तो पति पत्नी के बीच वह सघन आत्मीयता सहज ही विकसित होती देखी जा सकती है—जिससे घर नन्दन वन कहला सकता है।

विवाह के आदर्श और दाम्पत्य अपराध

पाश्चात्य देशों में विवाह का स्वरूप एक सामाजिक अनुबन्ध या समझौते से अधिक नहीं है। पर हमारी संस्कृति ने विवाह को जीवन-मरण का साथ और दो शरीर एक प्राण के सिद्धान्त से संचालित कर उसे अद्भुत और अपूर्व महत्वशाली बना दिया है। दूसरे देशों या दूसरी संस्कृतियों में वहाँ के निवासियों तथा अनुयायियों की दृष्टि ऐहिक-उपभोगवाद से ऊपर नहीं जा पाई है। इसी से उन्होंने विवाह को दाम्पत्य जीवन को एक समझौते से अधिक महत्व नहीं दिया। लेकिन हमारा देश—आध्यात्मिक जीवन को इतना महत्वपूर्ण मानता है कि उसके लिए जीवन का प्रत्येक कर्म आध्यात्मिकता से अनुप्राणित होकर ही सम्पन्न करना आवश्यक अनिवार्य धर्म माना गया है।

विवाह को, दाम्पत्य-जीवन को कुछ निश्चित आदर्शों के अनुसार जीने का ही यह सुपरिणाम है कि हमारे देश में सबसे अधिक प्रतिभाओं ने जन्म लिया।

ऐसे-ऐसे विद्वानों और तपस्वियों का यहाँ वर्चस्व रहा, जिन्होंने जीवन की गूढ़ गुत्थियों को सुलझाया और उसे एकरस, नीरस तथा उबाऊ ढंग का न बनने देकर आनन्दमय बनाया। भारतीय संस्कृति का मूल आधार इसकी आध्यात्मिकता है और इसके नियामक मनीषियों ने इस संस्कृति का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है कि व्यक्ति अपने जीवन को सामान्य क्रम से जीता हुआ भी अपने पारमार्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके तथा जीवन को आनन्दित बना सके।

यही कारण है कि हमारे यहाँ विवाह भी एक संस्कार अर्थात् व्यक्ति चेतना पर छोड़ा जाने वाला ऐसा प्रभाव जो उनकी प्रवृत्तियों को निर्धारित करे, उसकी दिशायेँ नियोजित रखे। अन्य संस्कृतियों में स्त्री-पुरुष को जहाँ परस्पर उपभोक्ता बताया गया, वहाँ भारतीय-दर्शन ने स्त्री-पुरुष को एक ही सत्ता के दो अंग निरूपित किया है। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि आदि में केवल एक ब्रह्म ही था, उसने स्वेच्छा से अपने को दो भागों में विभक्त कर लिया। देवी भागवत में कहा गया है कि स्वेच्छामय भगवान् स्वेच्छा से दो रूप हो गये। वाम भाग के अंग से स्त्री और दक्षिण भाग के अंग से पुरुष बने।

इस एकरूपता की भावना को, अविभक्त स्वरूप के आदर्श को जीवन में, व्यवहार में उतारने के लिए ही स्त्री-पुरुष विवाह-सूत्रों में आबद्ध होते हैं तथा प्रेम, त्याग, उदारता और सहिष्णुता के आदर्शों को अपने जीवन में ढालते हैं। विवाह से पूर्व पुरुष की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र अपनी सुख-सुविधा और अपनी इच्छा-आकांक्षायेँ रहती हैं। पर विवाह के बाद वह स्वाभाविक रूप से अपनी जीवन-संगिनी के सुखों तथा उसकी आकांक्षाओं को प्रधानता देने लगता है। स्त्री भी तन-मन से अपने पति की सेवा करने व गृहस्थी की व्यवस्था सँभालने और पति के जीवन को अधिक सुखी, अधिक आनन्दपूर्ण बनाने के लिए सचेष्ट हो जाती है। विवाह के समय की जाने वाली प्रतिज्ञाओं में वधू-वर से कहती है—‘जो कुछ भी तुम करोगे, सब मैं मैं तुम्हारे कार्य की भागीदार रहूँगी और धन, धान्य, मिष्ठान आदि जो कुछ भी घर में है, उनकी सुव्यवस्था करूँगी। मैं सदा मधुर-भाषिणी, कुटुम्ब की रक्षा करने वाली, दुख में धीर और सुख में प्रसन्न रहूँगी। पति-परायण होकर मैं तुम्हारे साथ विहार करूँगी। सब प्रकार से तुम्हें सुखी रखूँगी। तुम्हारे दुःख में दुखिनी, सुख में सुखिनी हो तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगी। यज्ञ, दान, होम तथा अन्य सभी कार्यों में सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। मेरी इन प्रतिज्ञाओं में अन्तर्यामी देवतागण साथी रहें, मैं कभी तुम्हारी वंचना नहीं करूँगी।’

यह प्रतिज्ञा सप्तपदी के समय पढ़ी जाती है। वर की प्रतिज्ञा भी इसी प्रकार की होती है। इन प्रतिज्ञाओं से सिद्ध होता है कि वर-वधू अब स्वार्थ और अपने सुख की इच्छाओं को तिलांजलि देकर एक दूसरे के सुख और

एक दूसरे की इच्छाओं को प्रमुखता देने की आध्यात्मिक मंजिलों को प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प हो रहे हैं। जीवन आरम्भ करने के बाद विवाह के अवसर पर प्रेम, आत्म-विकास और स्वार्थ-त्याग के सदगुणों को विकसित करने के लिए पहली बार इस प्रकार कटिबद्ध होता है कि उसके कदम आगे बढ़ते हैं और उस क्षेत्र में वे लक्ष्य साकार होने लगते हैं। विवाह इस आध्यात्मिक साधना की शुरुआत तो है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उस साधना को वहीं तक सीमित रह जाना चाहिए। अपनी भावनाओं के विकास को वहीं तक सीमित कर लेने पर व्यक्ति के अहं का केन्द्र थोड़ा ही विकसित होता है। यदि अपनेपन को व्यापक बनाने के लिए इसे एक पहल माना जाता रहे तो व्यक्ति सच्चे सन्त और अध्यात्म-योगी की तरह अपना आपा बढ़ाता रह सकता है।

परस्पर सहयोग और सहचर्या के आधार पर अपने व्यक्तित्व के विकास के साथ विवाह का एक उद्देश्य प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होना भी है। अन्य प्रवृत्तियों की भीति काम भी प्रकृति की एक प्रेरणा है। पर उसका उच्छृंखल और अनियन्त्रित नर्तन व्यक्ति को असामाजिक बना देता है। भारतीय-संस्कृति के नियामक, मनीषियों के विवाह-संस्कार की व्यवस्था द्वारा इस प्रवृत्ति को भी नियन्त्रित करने का विधान किया है। विवाह के बाद स्त्री-पुरुष अपनी अनर्गल भोग प्रवृत्तियों को एक-दूसरे के प्रति केन्द्रीभूत और नियन्त्रित कर आत्म-संयम का व्रत पालन करते हैं। यह अदभुत परिणाम गृहस्थ में ही सामने आते हैं कि भोग के द्वारा भी संयम सिद्ध हो सके। कहा गया है कि आग में ईंधन डालने की तरह वासनायेँ पूर्ति के साथ और बढ़ती हैं। पर पतिव्रत और पत्नीव्रत धर्म की मर्यादा इस प्रकार की है कि व्यक्ति अपनी प्राकृतिक-प्रवृत्ति को अस्वाभाविक रूप से दमित भी न रखे और उसे साधना भी बना ले।

वस्तुतः कोई भी चीज या कार्य अपने-आप में न पाप है और न पुण्य। पाप और पुण्य का निर्धारण उस कार्य के पीछे विद्यमान दृष्टिकोण, उद्देश्य के अनुसार किया जाता है। एक लुटेरा किसी को चाकू मारता है तो वह पाप बन जाता है और एक डाक्टर किसी को रोगमुक्त करने के लिए अपने औजारों से चीर-फाड़ करता है तो वह पुण्य बन जाता है, काम-वासना के पीछे उपभोग का दृष्टिकोण हो तो वह अवांछनीय बन जाता है समाज में अनर्थ उत्पन्न करने वाला हो जाता है और पति-पत्नी अनेकानेक नियमों, मर्यादाओं के अनुसार आशिक रूप से इस प्रवृत्ति को एक दूसरे तक ही सीमित रखते हैं, तो उसके कारण समाज में वैसी ही अवांछनीयतायेँ उत्पन्न नहीं होतीं।

इस कृत्य के पीछे मनीषियों ने इसीलिए सन्तानोत्पादन का उद्देश्य रखा है और उपभोग के लिए नहीं। राष्ट्र को, देश को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने के

३.७ गृहस्थ एक तपोवन

लिए इसकी छूट दी है। सर्वविदित है कि सुयोग्य नागरिक ही राष्ट्र की बहुमूल्य सम्पदा है। कोई देश भले ही कितना भी सुसम्पन्न क्यों न हो, उसके पास प्राकृतिक सम्पदाओं का कितना ही प्रचुर भण्डार क्यों न हो, पर वहाँ के नागरिकों में यदि सामाजिक भावना और सच्चरित्रता न हुई तो उसकी आधारशिला बेहद कमजोर होगी और वहाँ सब साधन-सुविधायें होते हुए भी सुख-शान्ति के दर्शन न होंगे।

विवाह के उद्देश्य बड़े पवित्र और बड़े अर्थपूर्ण हैं, पर आज हमारा दृष्टिकोण उतना परिष्कृत नहीं रहा, इसी से पारिवारिक-जीवन क्लान्ति और अवसाद के अखाड़े बने हुए हैं। कुछ लोग हैं, जो यह समझते हैं कि पतिव्रत-धर्म, एक निष्ठा का व्रत केवल पत्नी को ही पालना चाहिए और स्त्री को घर में सेविका की तरह रहना चाहिए। शास्त्रों और तर्कों से वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि 'स्त्रियों को स्वतन्त्रता अनर्थों की जननी है।' इस तरह के कई उदाहरण भी दिये जाते हैं।

उदाहरणों का जहाँ तक प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि अपवाद किस क्षेत्र में नहीं है। यदि स्त्रियों को स्वतन्त्रता मिलने, उन्हें अपने विवेक के अनुसार कुछ करने की छूट देने के कारण कई बुरी घटनायें घटी हैं तो पुरुष की मनमानी से क्या कम दुर्घटनायें घटी हैं ? पुरुष भी अनेक अनर्थों का कारण रहे हैं, बल्कि ज्यादातर अनर्थ उसी के कारण हुए हैं। इससे तो यह सिद्ध होता है कि पुरुष को भी स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए।

स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का अर्थ यह नहीं है कि उनको कुछ भी करते रहने की छूट मिले और उनके उचित-अनुचित कर्त्यों की कोई आलोचना या टिप्पणी न की जाय। यह व्यवस्था-मर्यादा तो पुरुष के लिए भी लागू है। कोई व्यक्ति यदि अनुचित कार्य करता है, तो आलोचना और निन्दा-भर्त्सना उसकी भी होती है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का अर्थ यह है कि उन्हें भी अपनी क्षमताओं के विकास की छूट दी जाय तथा उन पर दासी-बाँदी जैसे बन्धन न कसे जायें।

महिलायें यदि योग्य और सक्षम हों तो विवाह का एक-तिहाई उद्देश्य पूरा हो जाता है। घर बसाने और शादी करने का यही तो उद्देश्य है कि दोनों एक दूसरे के सहयोग से अपना विकास करें और एक-दूसरे को सुख पहुँचायें। इस अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्णय किया जा सकता है कि स्त्री को अयोग्य और प्रतिबन्धित, लांछित रखकर पुरुष वर्ग कितना घाटे में है ? पत्नी के सहयोग से पति का जितना लाभ हो सकता है, स्त्री की योग्यताओं से पुरुष जो लाभ उठा सकता है, पुरुष उससे वंचित रह जाता है और उसे अपने निर्वाह, जीवन-यापन के अतिरिक्त पत्नी का भी भार उठाना पड़ता है। यदि महिलाओं को भी योग्यता-सम्पादन और अपनी क्षमताओं के विकास की छूट रहे तो यह भार बहुत कुछ हल्का

हो सकता है और उसकी शक्तियाँ पुरुष के हित में लाभदायक बन सकती हैं।

दूसरी आवश्यकता स्त्रियों से दासी-गुलाम की भाँति व्यवहार करना निषिद्ध मानने की है। यह तो ठीक है कि स्त्री विवाह के अवसर पर स्वयं को पति-परायण और उसकी सेविका बनकर रहने की प्रतिज्ञा करती है। यह प्रतिज्ञा पुरुष भी तो करते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा को क्यों भूल जाते हैं और स्वयं को पत्नी का मालिक, उसका शासक क्यों मानने लगते हैं ? पत्नी को शासित और दासी समझकर व्यवहार करने का परिणाम बड़ा बुरा होता है। बचपन से मिले भेदभाव भरे व्यवहार के कारण एक तो वह पहले ही अपने आपको हीन समझने लगती है, पर विवाह के बाद पति से प्राप्त होने वाले व्यवहार के कारण उसकी हीनता-ग्रन्थि पर मोहर-सी लग जाती है और वह जीवनभर अपनी इस ग्रन्थि से मुक्त नहीं हो पाती। ऐसी मातायें देश को सुयोग्य और आत्म-विश्वासी नागरिक कहाँ से दे सकेंगी ? उनसे हीनता और दूसरे दर्जे में अपनी गणना करने वाली या हीन-भावना रखने और अपने प्रति विश्वास न करने वाली सन्तानें ही जन्मेगी। यही कारण है कि हम अधिकांश लोगों को आत्म-विश्वास और दृढ़ मनोबल से रहित पाते हैं।

असमानता की बात इसलिए भी अनुचित है कि उसके कारण स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ जीवन-क्षेत्र में प्रगति नहीं कर पाते। गाड़ी का एक बैल अच्छा मोटा-तगड़ा हो और एक मरियल-सा हो तो मरियल-सा बैल अपने सँ तगड़े वाले बैल के साथ बेमन से घसिटायेगा ही, उसका बोझ स्वस्थ, शक्तिशाली बैल पर ही पड़ेगा और वह भी जल्दी थक जायेगा। ऐसी दशा में गाड़ी ठीक से नहीं चल पायेगी। यही बात परिवार-रूपी गाड़ी के सम्बन्ध में भी है। परिवार-समाज की ही एक इकाई है तथा वह ठीक ढंग से चलेगा, तो ही समाज की प्रगति होगी। इसलिए दम्पति में समानता के आदर्श की स्थापना आवश्यक है।

कहा गया है कि मित्रता, सहयोग और सहचरत्व समान लोगों में ही सफल होते हैं। स्त्री-पुरुष चूँकि अधिकार, विकसित क्षमता और अर्जित योग्यता की दृष्टि से काफी विषम हैं। इसलिए उनकी मित्रता दाम्पत्य सम्बन्ध, मित्रता, सहयोग और सहचरत्व न रहकर दासता, शासक-शासित, शोषक-शोषित और छोड़े तथा बकरी का साथ है। ऐसी स्थिति में दाम्पत्य-जीवन कभी सफल नहीं हो सकता, विवाह का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। पराधीनता के बन्धनों और प्रतिबन्धों की लगाम को दाम्पत्य-जीवन के अपराध मानकर जितनी जल्दी हो सके, उन्हें नष्ट करने का समाधानपूर्ण उपाय खोजना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन की असफलता का अभिशाप

पिछले दिनों अमेरिका की पत्रिका में एक व्यंग्य प्रकाशित हुआ है कि यहाँ इतने अधिक तलाक लिये जाने लगे हैं कि शादी के गाउन ऐसे कपड़ों से तैयार किये जायें, जिन्हें धोकर बिना इस्तरी किए तुरन्त ही फिर से पहना जा सके।

अमेरिका में तलाक की बढ़ती हुई संख्या को देखकर यह कहा जाने लगा है कि “एक स्त्री को पति बदलने में इतना समय भी नहीं लगता जितना करबट बदलने में लगता है।” हो सकता है इस कथन में अतिशयोक्ति हो; पर इतना अवश्य है कि वहाँ नगण्य सी बातों को लेकर तलाक दे दिया जाता है, जिन्हें जानकर हँसी लगती है। पति या पत्नी के मन के विरुद्ध जरा सी बात हुई कि तलाक का प्रार्थना पत्र न्यायालय में पहुँचा दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में तलाकों की बढ़ती हुई संख्या ने दाम्पत्य जीवन में कटुता और अस्थिरता उत्पन्न कर दी है। किसी व्यापारिक संस्थान में काम करने वाली स्त्री शाम को अपने घर लौटेगी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिनलैण्ड के एक वृद्ध दम्पति तलाक के प्रकरण को लेकर न्यायालय पहुँचे। पति की आयु ८७ वर्ष और पत्नी की ८५ वर्ष थी।

‘न्यायाधीश ने पूछा—‘तुम्हारी शादी कब हुई थी’ ?
६ सितम्बर १९७३ को।’

‘तुममें खटपट कब से शुरू हुई’ ?

‘विवाह के ही दिन से।’

अब न्यायाधीश क्या कहता ? तलाक का प्रार्थना-पत्र तुरन्त स्वीकार कर लिया गया।

तलाक के बढ़ते हुये आँकड़ों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि महायुद्ध के पश्चात् जिन देशों में तलाक की सुविधा है, वहाँ के लोग अपने इस अधिकार का बड़े उत्साहपूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग डेढ़ करोड़ स्त्री-पुरुष तलाकशुदा हैं। जिनके चालीस लाख बच्चे अनाथों की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

रूस में तलाक करना जितना सरल है इतना संसार के अन्य किसी भी देश में नहीं है। वहाँ यदि पति-पत्नी का जोड़ा परस्पर किसी बात को लेकर असन्तुष्ट हो जाता है, तो तीन माह का नोटिस देकर तलाक कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें न्यायालय में जाने की तभी जरूरत पड़ती है जब बच्चों की देख-भाल या सम्पत्ति के बँटवारे को लेकर कोई मतभेद हो। वहाँ एक वर्ष में ७ लाख तलाक हुए। रूस में दम्पतियों की संख्या ७ करोड़ है इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ १० प्रतिशत विवाह बंधन

टूट जाते हैं। वहाँ कुमारी माताओं को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता। स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं, जिन्होंने औद्योगिक संस्थानों में अपना आधिपत्य जमा रखा है। ब्रिटेन में १९६५ में तलाक के लिए ४३ हजार आवेदन पत्र प्राप्त हुए थे।

पारिवारिक समस्याओं के अमरीका विशेषज्ञ विलियम गुड ने तलाक समस्या के अध्ययन हेतु जो अंग्रेज देशों के आँकड़े एकत्रित किये हैं, उनसे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रति हजार पीछे तलाक—अमेरिका २५९, इंग्लैण्ड ७०, फ्रांस ८३, बेलजियम ७१, स्वीडेन १७५, आस्ट्रेलिया ८९, युगोस्लाविया १३१।

अमेरिका के एक वकील का जो विगत ३५ वर्षों में ३००० से भी अधिक लोगों के तलाक-प्रकरणों को निबटा चुके हैं, कहना है—‘मेरे पास तलाक लेने के लिये अधिकतर ऐसे लोग आये, जिनकी शादियाँ गलत कारणों से हुई थीं और प्रारम्भ से ही जिनके असफल होने की संभावना थी। इनमें अधिक संख्या उन लोगों की थी जिन्होंने बिना सोचे-विचारे चटपट विवाह कर लिये।’

अमेरिका में पाँच शादियों में एक शादी ऐसी लड़की की होती है जो विवाह से पूर्व ही गर्भवती हो जाती है। जब कोई प्रेमी प्रेमिका गर्भवती होने के कारण विवाह करने को विवश हो जाते हैं, तो उनके सारे रंगीन सपने टूट जाते हैं। वे अब तक जिस रंगीले जीवन का आनन्द लेते रहे हैं, वह उनसे छिन जाता है। वैवाहिक जीवन में अपने को अच्छी तरह ढाल भी नहीं पाते कि उन पर प्रथम शिशु का उत्तरदायित्व आ जाता है। यदि किसी बच्चे का जन्म न होता तो विवाह के बाद भी पत्नी साल दो साल काम करके परिवार की आर्थिक स्थिति सुधार सकती थी। पर अब आर्थिक तंगी बढ़ती ही चली जाती है।

बहुत सी शादियाँ शराबखोरी के कारण टूटती हैं। आजकल यह व्यसन औरतों में भी पाया जाता है। वे दिन भर घर में अकेली रहती हैं। समय काटने के लिये थोड़ा-थोड़ा पीना सीख लेती हैं। जिससे घरेलू कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे पातीं फिर तो उनकी स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि कोई भी आदमी उनके साथ रहना नहीं चाहता। निर्धनता, अविश्वास, निर्यता और रूखापन जैसे अनेक कारण हैं जो शराबखोरी से सम्बद्ध हैं।

कभी-कभी तो शादियाँ शराब के नशे में ही हो जाती हैं। कोई क्लब में किसी लड़की को अपने साथ खाने, नाचने या सिनेमा देखने के लिए ले जाता है और क्षणिक आवेश में शादीशुदा हो जाता है। बाद को तो उसे यह भी यह भी याद नहीं रहता कि उसकी शादी क्यों, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुई थी। कितनी ही लड़कियाँ ऐसे आदमी से केवल प्रतिशोध की भावना से शादी कर लेती हैं।

३.१ गृहस्थ एक तपोवन

कुछ शादियाँ तो केवल पैसे की लिए ही होती हैं। एक लड़की जिसका बचपन गरीबी और अभावग्रस्तता में बीता, ऐसे युवक से शादी कर लेती है जो उसे मौज-शौक की जिन्दगी उपलब्ध करा सके, पर कुछ ही दिनों बाद उसे ऐसा लगने लगता है कि वह अपने पति के साथ क्षणभर भी नहीं रह सकती। कुछ स्त्रियाँ जान बुझकर ऐसे अछेड़ आदमी को फँसाने का प्रयास करती हैं जिसके पास पैसा अधिक होता है, वह सोचती है इसका पैसा अपने हाथ में आ जायेगा। कितने ही पति विवाह के तुरन्त पश्चात् दिखावे के लिए फर्नीचर, महँगी पोशाकें, कार और मौज-शौक पर इतना अधिक खर्च कर देते हैं कि कर्ज उनके सिर पर चढ़ जाता है और उसका ब्याज चुकाते ही उनकी हालत खराब हो जाती है। पत्नी के गर्भवती होते ही खर्च में और वृद्धि होती है जिससे वैवाहिक जीवन में कहासुनी शुरू हो जाती है।

कितने ही विवाह इसलिये असफल हो जाते हैं कि युवक और युवती का स्वभाव एक दूसरे के योग्य नहीं होता या उनका स्वभाव चिड़चिड़ा अथवा गुस्सेल होता है। कोई स्वार्थी या घमण्डी होता है या ऐसी आदतों का शिकार होता है जिसे दूसरा सहन नहीं करता। कभी-कभी लम्बी अस्वस्थता भी तलाक के द्वार तक पहुँचा देती है।

शारीरिक सौन्दर्य को प्रधानता देने वाले दम्पति वैवाहिक जीवन के आठ-दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर प्रारम्भिक आकर्षण में कमी अनुभव करने लगते हैं। पति को लगता है कि पत्नी लापरवाह और भद्दी हो गई है। पत्नी को लगता है कि पति उसकी ओर पूरा-पूरा ध्यान नहीं देता वह और किसी के चक्कर में रहता है फिर उनके लिए तलाक का द्वार खुल जाता है।

जब छोटे-छोटे बच्चे हों उस समय तलाक पति-पत्नी को अभिशाप ही सिद्ध होता है। तलाक के बढ़ते हुए आँकड़े प्रगतिशील देशों के लोगों की अदूरदर्शिता, असहनशीलता और संकुचित दृष्टिकोण की साक्ष्य देते हैं।

अमेरिका में तलाक लेने के कारण इस प्रकार हैं—

शराबखोरी ३० %

व्यभिचार २५ %

उत्तरदायित्व की उपेक्षा १२ %

प्रतिकूल स्वभाव १२ %

रिश्तेदारों के कारण ७ %

यौन समस्याएँ ५ %

मानसिक रोग ३ %

धार्मिक कारण ३ %

अन्य कारण ३ %

तलाक के कुछ भी कारण हों पर उनसे किसी समस्या का समाधान नहीं होता। ऐसे नर-नारी का मानसिक विक्षोभ एवं असन्तोष बढ़ते-बढ़ते उन्हें अर्धविक्षित की स्थिति में पहुँचा देता है, वे अपनी समस्या को हल करने के लिए दूसरा विवाह करते हैं और फिर वही समस्याएँ आकर सामने खड़ी हो जाती हैं।

दाम्पत्य जीवन के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को जब तक गम्भीरतापूर्वक समझा और निबाहा नहीं जायगा तब तक मात्र यौनलिप्सा की पूर्ति के लिए किये गये विवाह कभी सफल नहीं होंगे। दो आत्माओं को एक-दूसरे में घुलाने की और एक दूसरे को निबाहने की, एकपक्षीय प्यार देने की भारतीय विवाह परम्परा ही पति-पत्नी को सघन सुन में बाँधे रह सकती है अन्यथा दैनिक जीवन में आते रहने वाले छोटे-छोटे मतभेद ही गृहस्थ जीवन के आनन्द को नष्ट कर देंगे। बिना सुदृढ़ आधार पर दाम्पत्य जीवन की नींव रखे पति-पत्नी के बीच चिरस्थायी सौजन्यतापूर्वक निर्वाह नहीं हो सकता।

अहंकार और दाम्पत्य प्रेम में एक रह सकता है, दोनों नहीं

महारानी विक्टोरिया के जीवन का एक बहुत मार्मिक प्रसंग है—एक दिन उन्होंने अपने पति एल्बर्ट की किसी बात पर चिढ़कर कह दिया “महारानी मैं हूँ।” महारानी के इस अहंकार की चोट खाकर अल्बर्ट का पौरुषेय स्वाभिमान जाग उठा, वे वहाँ से उठे और अपने विश्राम कक्ष में जाकर टोट गये। भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। महारानी के व्यंग्य के कारण उनका हृदय बुरी तरह झुलस गया था।

महारानी अपने पति की वेदना ताड़ गई। वे उनके विश्राम स्थल के पास गई और बाहर द्वार खटखटाया। अल्बर्ट ने पूछा कौन है ? विक्टोरिया ने अपने उसी प्रशासनिक लहजे में उत्तर दिया—“महारानी विक्टोरिया”। अल्बर्ट उत्तर सुन कर यथावत् चुप रहे, उन्होंने उठकर दरवाजा खोलना तो दूर कुछ बोले भी नहीं।

अब कहीं जाकर विक्टोरिया को अपनी भूल समझ आई। उन्होंने पुनः दरवाजा खटखटाया। अल्बर्ट ने पुनः प्रश्न किया कौन ? इस बार महारानी ने मृदुल स्वर में उत्तर दिया—“आपकी प्यारी पत्नी” अल्बर्ट का सारा क्रोध, सारा दुःख दूर हो गया। उन्होंने उठकर द्वार खोल दिये। दोनों के हृदय पुलकित हो उठे, मन का सारा गुबार क्षण भर में धुल गया।

सुखी गृहस्थ के लिये आवश्यक है कि पत्नी-पत्नी दोनों परस्पर एक-दूसरे को पूरक समझें। अपने को दूसरे से बड़ा मानना वह हेय धारणा है, जिससे दाम्पत्य सौमनस्य चूर-चूर हो जाता है। ऐसे पति-पत्नी राष्ट्र और समाज को कोई बड़ा अनुदान दे सकें, यह बात तो दूर

की है वे अपनी सामान्य गृहस्थी में ही सुख और शान्ति स्थिर नहीं रख पाते। इसके लिए मुख्य भूमिका पुरुष की ही रहती है। स्त्रियाँ उतनी अभिमानिनी नहीं होतीं जितने पुरुष। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके गृहस्थ जीवन के प्रारम्भिक दिनों में 'बा' बहुत हठीली थीं, इससे उनमें अक्सर वाद-विवाद हो जाता था किन्तु जैसे-जैसे उनका सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल होता गया, वैसे-वैसे कस्तूरबा का हठवादी स्वभाव भी तिरोहित होता गया और अन्तिम दिनों में तो उनका जीवन पूरी तरह बापू के जीवन में समा गया।

पारिवारिक जीवन में निरहंकारिता का समावेश मीठा बोलने और प्रणाम करने की आदत से प्रारम्भ किया जाता है। एक शायर का कथन है कि—

पेशादस्ती सलाम में अच्छी।

खुश कचामी कलाम में अच्छी॥

अर्थात् 'पहले प्रणाम करें सो भ्रद और मीठा बोले सो श्रेष्ठ।'

यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिये कि दूसरा मीठा बोलेगा। ऐसा सोचना तो अहंकार का ही पर्याय है। इस आदर्श को एकपक्षीय धारण किया जाये, इसका निष्ठा पूर्वक निर्वह किया जाता रहे तो एक दिन प्रतिपक्षी को भी झुकने को विवश होना पड़ता है। सन्त सुकरात की पत्नी बहुत गुस्से वाले स्वभाव की थीं। वे चाहे जब सुकरात का अपमान कर देती थीं। एक दिन सन्त सुकरात अपने मित्रों से बातचीत कर रहे, उनकी स्त्री उस दिन इतनी रुष्ट हुई कि सब के सामने बर्तनों का काला धुला बचा कीचड़ वाला काला पानी ही सुकरात के ऊपर उड़ेल दिया। सुकरात ने इसका रती भर भी बुरा नहीं माना अपितु हँसकर बोले—'भाई वाह ! आज तक तो सुना था जो गरजते हैं वह बादल बरसते नहीं पर आज पता चला कि जो गरजते हैं, वह बरसते भी हैं। सन्त की सहनशीलता के आगे कर्कश पत्नी पानी-पानी हो गई और उन्होंने उस दिन के बाद से अपना जीवन पूरी तरह बदल कर विनीत और शिष्ट बना डाला।

रूसी सन्त टालस्टाय और अमेरिकी राष्ट्रपति लिंकन के विषय में कहते हैं। लिंकन की धर्म पत्नी स्वभाव से बहुत उग्र थीं। उन्होंने एक दिन गर्म चाय का प्याला ही लिंकन पर उड़ेल दिया। दोनों ही उदाहरणों में पुरुष का अपना अहंकार अन्त तक बीच में अटक रहा और उनके गृहस्थ जीवन में कभी भी शान्ति की शीतल बयार नहीं झाँकी। गृहस्थ जीवन में आये दिन विपरीत परिस्थितियाँ आती रहती हैं पर यदि मीठा-मधुर बोल कर उनका निवारण कर लिया जाता रहे, तो बात वहीं बन जाती है। मीठे बोल तो पशु-पक्षियों को भी आकर्षित कर लेते हैं, मनुष्य का तो कहना ही क्या ? कहावत है—

हर कुजा चशमाये बवद शीरीं।

मरदुमी मुर्गो मोर गर्दायन्द॥

अर्थात्—'जहाँ मीठे जल का झरना होगा, मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी वहाँ खिंचे चले आयेगे।'

जिन परिवारों में मीठा बोलने और विनम्र होने की परम्परा होगी, वहाँ के बच्चे अभाव में भी असीम तृप्ति अनुभव कर रहे होते हैं। पति-पत्नी और अन्य कुटुम्बी जनों के सुख-सन्तोष का तो कहना ही क्या ? सुख-समृद्धि ऐसे ही घरों में बसती है। तुलसीदासजी ने लिखा है—

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना।

जहाँ कुमति तहाँ विपत्ति निधाना।

अर्थात्—जहाँ पर परस्पर प्रेम और सद्व्यवहार होता है, वहाँ सुख-सम्पत्ति की कमी नहीं रहती, किन्तु दुर्बुद्धिग्रस्त परिवार तो सदा विपत्ति में ही पड़े रहते हैं।

स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है कि जब तक पति-पत्नी व्यक्तिगत अहं, व्यक्तिगत सम्मान से ऊँचे नहीं उठते, तब तक दाम्पत्य जीवन की मधुरता सम्भव नहीं। उन्होंने समुचित सीख देते हुए आगे लिखा है—'जिस समय किसी मित्र या प्रिय परिजन की चिट्ठी मिलती है, उस समय वह चिट्ठी को, जिसमें भावनाओं का अंकन मात्र होता है अभिव्यक्ति भी नहीं, हम प्यार करने लगते हैं इसी तरह पति तथा पत्नी एक दूसरे के लिये मानों परमात्मा के पास से आई हुई चिट्ठी है पत्नी के लिये पति परमात्मा की चिट्ठी है तथा पत्नी के लिए पति। इस तरह का दृष्टिकोण विकसित कर लें तो दोनों में अगाध प्रेम की निर्झरिणी आजीवन प्रवाहित बनी रह सकती है।'

अहंकार एक प्रकार का अन्धकार है जो सही स्थिति का अनुभव नहीं होने देता। कोई घटनायें परिस्थितिवश होती हैं पर अहंकारी स्वभाव का चाहे वह पति हो या पत्नी उस परिस्थिति को न देखकर व्यक्ति पर दोषारोपण करने लगते हैं, इससे कटुता उग्र होती है और विग्रह एवं अशान्ति दिनों-दिन बढ़ती चली जाती है। इसलिये जब भी कभी कोई ऐसी स्थिति आये पति-पत्नी दोनों को ही स्वस्थ चित्त से पारस्परिक हित को प्रधानता देकर सोचना चाहिये। अपने आप को पूर्ण निर्दोष मानना तथा प्रतिपक्षी को दोषी मानना अहंकारमूलक प्रवृत्ति है, उससे बचकर ही अपना दाम्पत्य प्रेम विरस्थायी बनाया जा सकता है।

नर और नारी दोनों में से अपने आप में कोई भी पूर्ण नहीं। पुरुष की अपूर्णतायें नारी में सन्निहित हैं तो नारी की पुरुष में। दोनों के परस्पर अभिमुख होने से ही वह अपूर्णता दूर होती है और सांसारिक पूर्णता का आनन्द मिलता है। अभिमुख होने का अर्थ ही है परस्पर एक दूसरे की ओर खाली मन से देखना, एक दूसरे की

३.११ गृहस्थ एक तपोवन

सुनना और समझना। जो अहंकारवश अलग-थलग पड़ जाते हैं, उनके जीवन में अब और निराशा ही हाथ लगती है, इसके विपरीत परस्पर अभिन्न एकता में जीवन के सम्पूर्ण सुख समाहित हैं, जिन्हें कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है।

यदि हम अपने दाम्पत्य जीवन में प्रेम की अनुभूति चाहते हैं तो हमें शास्त्रकार के इस सदुपदेश को ही ग्रहण करना पड़ेगा—

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमपि हर्षत वत्सं जातमिवाभ्याम्॥

—अर्थ. वे. ३/३०/१

मैं तुम्हारे लिए समान हृदय, समान मन होने तथा द्वेष से सर्वथा अलग होने की मर्यादा बनाता हूँ तुम एक दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने जात बछड़े को प्यार करती है।

भौतिकता की बाढ़ मारकर छोड़ेंगी

१९७३ विवाह के पीछे अधिक से अधिक १ तलाक। यह स्थिति १८९० की संयुक्त राज्य अमेरिका की है। सन् १९८० में यहाँ ५३०९३७ नये विवाह हुये, इनमें से ३१७३५ का सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) हुआ। इसके बाद भौतिक सुख-सुविधाओं में तेजी से वृद्धि हुई, इस वृद्धि से भी तीव्रगति पारिवारिक जीवन में अशान्ति की रही। १९९४ में अमेरिका में १९१३००० नये विवाह सम्बन्ध हुये, जिसमें से लगभग १ तिहाई अर्थात् ५३४००० लोगों के सम्बन्ध विच्छेद हुये। नये विवाहों की प्रतिशत वृद्धि जहाँ २६० प्रतिशत थी, वहाँ तलाकों में १६०० प्रतिशत की वृद्धि यह सोचने को विवश करती है कि बढ़ती हुई भौतिकता जन-जीवन के लिये भूखे रहने से भी बढ़कर उत्पीड़क है।

बढ़ती हुई यान्त्रिकता और भौतिकता ने मनुष्य को, इतना विलासी बना दिया है कि उसे यौन-सुख के अतिरिक्त भी संसार में कोई सुख, कुछ कर्तव्य और उत्तरदायित्व है, यह सोचने को भी समय नहीं मिलता। अनियन्त्रित भोग-वासना ने योरोप के सारे समाज को चरित्र भ्रष्ट कर दिया है। कोई भी पति पत्नी पर और पत्नी पति पर यह विश्वास नहीं कर सकती है कि कब किस नये साथी का चुनाव कर लेगा। सौन्दर्य और शरीर के आकर्षणों के पीछे धुत मनुष्य गुणों की, चरित्र की बात सोच ही नहीं पाता। उसी का परिणाम है आज अकेले अमेरिका में ३०००००० महिलायें ऐसी हैं, जिनके विवाह सम्बन्ध हो गये हैं, पर या तो उन्होंने स्वयं या उनके पतियों ने उन्हें छोड़ दिया है।

दाम्पत्य जीवन में जहाँ निष्ठा नहीं होती उस समाज के युवक-युवतियाँ दिक्भ्रान्त होते हैं। उनकी

दिक्भ्रान्ति उद्दण्डता, अराजकता, विद्रोह और तोड़-फोड़ के रूप में प्रकट होती है। वह स्थिति उतनी दुःखान्त नहीं होती, जितनी मानसिक शान्ति के नाम पर परस्पर आकर्षण का भ्रम। प्रौढ़ पीढ़ी के प्रति कोई श्रद्धा उनमें होती नहीं, फलतः सांसारिक अनुभवों का लाभ प्राप्त करने की अपेक्षा पानी की बाढ़ की तरह उन्हें जो अच्छा लगता है, उधर ही दौड़ पड़ते हैं। अनैतिक सम्बन्धों की बाढ़ आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह आँधी अभी दूसरे देशों में अधिक है, पर कोई सन्देह नहीं यदि अपने देश में बढ़ रहे पाश्चात्य प्रभाव के कारण वह स्थिति यहाँ भी न बन जाये।

सोवियत रूस को अपने चरित्र और नैतिकता का बड़ा गर्व रहता है। वहाँ भी ९ बच्चों में से १ बच्चा निश्चित अवैध सम्बन्ध से जन्मा होता है। न्यूजीलैण्ड में ८ के पीछे १, इंग्लैण्ड में १३ में १, आस्ट्रेलिया में १२ में १, अमेरिका में १४ में १ बच्चा ऐसा होता है, जिसके माता-पिता विवाह से पूर्व ही शरीर सम्बन्ध स्थापित कर चुके होते हैं। इस तरह की अवैध सन्तानों की संख्या अकेले अमेरिका में ही तीन लाख से अधिक है।

वर्तमान पीढ़ी की विलासी प्रवृत्ति आने वाली सन्तानों के लिये किस तरह घातक बनती जा रही है, उस पर दृष्टि दौड़ाये तो स्थिति कुछ ऐसी विस्फोटक और चौकाने वाली दिखेगी कि हर व्यक्ति यही सोचेगा कि १०० वर्ष के पीछे इस संसार में पाये जाने वाले सभी मनुष्य शंकरजी की बारात की तरह टेढ़े, काने, कूबड़े, अन्धे, लूले, लँगड़े, किसी का पेट निकला हुआ, किसी का आवश्यकता से अधिक पिचका हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। करोड़ों में कोई एक पूर्ण स्वस्थ हुआ करेगा, तो वह सिद्ध-महात्माओं की तरह पूज्य और सबका नेता हुआ करेगा। यदि आज का संसार अपनी तथाकथित प्रगति के पाँव शेकता नहीं तो क्या अमेरिका क्या भारत इस स्थिति के लिये सब को तैयार रहना चाहिये।

विलासिता का एक दुर्गुण यह भी है कि वह भोग से बढ़ती है शान्त नहीं होती। वासना की भूख न केवल अनैतिक आचरण करने को बाध्य करती है, वरन् शरीर को विषैले पदार्थों से उत्तेजित कर और अधिक भोग का आनन्द लूटने को दिक्भ्रान्त करती है। अमेरिका में आज १५०००००० व्यक्ति चरस, गाँजा, कोकीन आदि में से किसी न किसी का नशा अवश्य करते हैं, फ्रांस में अब गणना उल्टी अर्थात् यह पूछा जाता है कि कितने प्रतिशत लोग नशा नहीं करते। यह औसत ५ से अधिक नहीं बढ़ता। पश्चिम जर्मनी में स्त्री-पुरुषों में होड़ है, कौन अधिक चरस पिये, वहाँ के ४ लाख व्यक्ति नशेबाज हैं तो स्त्रियाँ २ लाख, रूस के लोग प्रतिवर्ष ६० अरब रुपये की शराब पी जाते हैं।

इसका उनके स्वास्थ्य पर पड़ा प्रभाव उतना घातक नहीं, जितना आने वाली पीढ़ी पर पड़ता है। मनुष्य शरीर प्रजनन कोश (जेनेटिक सेल्स) सबसे अधिक कोमल होते हैं, इन्हीं में बच्चों के शरीर और मन को निर्धारित करने वाले क्रोमोसोम (संस्कार कोश) पाये जाते हैं। नशों के कारण यह गुण सूत्र अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, उसी का कारण होता है कि बच्चे काने, कूबड़े, लूले, लंगड़े पैदा होते हैं। इंग्लैण्ड में ४० बच्चों के पीछे १ बच्चा अनिवार्य कुरूप होता है। आस्ट्रेलिया में ५० में १, स्पेन में ७० के पीछे १ और हॉलकॉग में ८५ में से १ लंगड़ा, अपाहिज पैदा होता है। अमेरिका में प्रतिवर्ष २५०००० बच्चे ऐसे पैदा हैं जिनके शरीर का कोई न कोई अंग विकृत अवश्य होता है। इस समय वहाँ के विभिन्न अस्पतालों तथा घरों में ११०००००० बच्चे ऐसे हैं, जिन्हें किसी न किसी रूप में विकलांग कहा जा सकता है, वह न तो किसी मोटर दुर्घटना का परिणाम होगा, न चोट या मोच का। स्पष्ट है कि यह सब लोगों के आहार-विहार और जीवन पद्धति का दोष है, जो आगामी पीढ़ी को यों दोषी बना रहा है।

यौन सुख की अनियन्त्रित बाढ़ आज के भौतिकवाद की भयंकर देन है। वह लोगों के स्वास्थ्य किस बुरी तरह से नष्ट कर रही है, इसका सही अनुमान तो योरोप के अस्पतालों में जाकर ही हो सकता है, पर यदि किसी को उसकी जानकारी देनी ही हो तो यह कहना ठीक होगा कि जिस तरह अपने देश के अशिक्षित लोगों में अन्ध-विश्वास की बहुतायत है। उसी तरह योरोपीय देशों में अधिकांश व्यक्ति यौन रोगों से पीड़ित मिलेंगे। 'न्यूजवीक' साप्ताहिक ने अपने १० अक्टूबर, ६८ के अंक में लिखा है कि योरोप में ४० हजार महिलायें ऐसी हैं जो इसी कारण कैंसर से बीमार हैं और उनकी कोई चिकित्सा नहीं है। इस प्रकार अमेरिका के डाक्टरों ने भी यौन रोगों को रोक सकने की अपनी सामर्थ्य से हाथ ढीले कर दिये हैं।

यह तूफानी झंझा भौतिकतावाद की चलाई हुई है। मनुष्य उससे बचना चाहता है, तो वह आध्यात्मिकता का आश्रय ले, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। आध्यात्मिकता ही स्वास्थ्य, सदाचार, शान्ति और नैतिक मूल्य स्थिर रख सकती है।

असफल दाम्पत्य जीवन—कारण और निवारण

घर की तुलना एक ऐसे स्थल से की जा सकती है, जहाँ पहुँच कर आदमी अपनी सारी झंझटों और परेशानियों से मुक्त हो जाता है। उसे मन्दिर भी कहा जा सकता है, जहाँ बैठ कर व्यक्ति लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में रूपान्तरित करने की साधना करता है।

परिवार के ऊपर ही व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति भी निर्भर करती है। इससे उसका सामाजिक महत्व भी है और यह व्यक्ति तथा समाज को जोड़ने वाली एक कड़ी का भी काम करता है। यदि परिवार न हो तो व्यक्ति को न समाज से सम्बन्ध रखने की जरूरत पड़े और न समाज के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए व्यक्ति को प्रयत्नशील होना पड़े।

पारिवारिक दायित्वों को भली-भाँति पूरा करने के लिए ही व्यक्ति समाज के क्षेत्र में उतरता है और वहाँ उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों, परेशानियों तथा तनावों से मुक्ति पाने के लिए पुनः परिवार की शरण लेता है, लेकिन देखा जाता है कि परिवार सुख-शान्ति के केन्द्र बनने के स्थान पर तनाव, परेशानी और झंझटों की उत्पत्ति के स्थल ही बनते जा रहे हैं। परिवार बसाने का श्रीगणेश दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हुए होता है। पति-पत्नी परस्पर सहयोग, एकता, आत्मोत्सर्ग, त्याग और सेवा का व्रत धारण करते हुए दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हैं। इन क्षणों में आत्यन्तिक आनन्द और गुदगुदा देने वाले सुख की अनुभूति होना स्वाभाविक है। गृहस्थाश्रम को योग-साधना के केन्द्र तपोवन के नाम से भी पुकारा गया है। इसका कारण यह है कि दाम्पत्य-जीवन को ठीक प्रकार से कलात्मक ढंग से जिया जाय, तो उससे ऐहिक-सुख और आत्मिक आनन्द दोनों की ही प्राप्ति सरलतापूर्वक हो जाती है। कलात्मक ढंग से जिया जाने वाले दाम्पत्य-जीवन आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के जीवन में विकास के लिए बड़ी सहायक सिद्ध होती है।

यह कहना जरा भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि दाम्पत्य-जीवन स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति का अचूक साधन है। जीवन-सन्ध्य की प्राप्ति के लिए समर्पित जीवन-साथी का सहयोग और संयोग इस यात्रा को सुगमता से पूरी करा देता है। पर अधिकांश दम्पतियों में उस आनन्द की कहीं भी झलक नहीं दिखाई देती। पति और पत्नी का संयोग-मिलन पौरुष और शक्ति के मिलन की तरह है। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रहती है और बिना शक्ति के पौरुष भी कुछ नहीं कर पाता। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह ही एकता और सृजन की आवश्यकता को पूरी करता है। यदि इस संयोग में कहीं असंगति, अवरोध या व्यतिक्रम आता है तो सृजन के स्थान पर विघटन और सौन्दर्य के स्थान पर कुरूपता दिखाई देने लगती है।

सम्भव है, गलती आरम्भ से ही होती हो। आरम्भ यदि गलत ढंग से हुआ है, तो उसके सत्परिणाम कभी नहीं हो सकते। यदि गाड़ी में एक बैल और एक बकरी को जोता जाय तो गाड़ी कभी अच्छी तरह चल ही नहीं सकती। उचित यह है कि गाड़ी खींचने वाले दोनों चौपाये समान योग्यता और समान क्षमता वाले हों। दोनों में से

एक भी कमजोर, अयोग्य और कम ताकत हो तो गाड़ी लड़खड़ाने लगती है। अतः परिवारों को सुख-शान्ति और आनन्द का केन्द्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पति-पत्नी का चुनाव ठीक और उचित ढंग से किया जाय। यदि दोनों का चुनाव ठीक होगा तो दाम्पत्य-जीवन उतना ही सुखद, उन्नत और प्रगतिशील बनेगा। इसके विपरीत स्थिति में न केवल परिवार में अवरोध उत्पन्न होगा, वरन् सामाजिक-जीवन में भी उसके दुष्परिणाम दिखाई देंगे। क्योंकि समाज आखिर है तो परिवारों का समूह ही और परिवार की नींव दाम्पत्य जीवन है, जिस पर कि परिवार खड़ा होता है।

हमारे देश में पति-पत्नी का चुनाव माता-पिता ही करते हैं। लड़के वालों ने गोरी और सुन्दर बहू के साथ उसके परिवार की माली हालत अच्छी देख ली और लड़की वालों ने भी पढ़ा-लिखा, सुन्दर लड़का देखकर लड़के के साथ विवाह-सम्बन्ध तय कर दिया। आर्थिक सम्पन्नता जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए आवश्यक है, पर वही सब कुछ नहीं है। यह भूल कर चुकने के बाद धूम-धड़ाके के साथ विवाह कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। लम्बी-चौड़ी दावतें, खूब खर्च, गाना-बजाना होता है और पति-पत्नी साथ-साथ रहने लगते हैं। शुरू के दिन बड़े मौज-मजे से कटते हैं। पर जैसे ही विवाह हुए कुछ दिन बीते नहीं कि देखे गये सपने चूर-चूर होने लगते हैं और परिवार बजाय सुख-शान्ति के केन्द्र बनने के क्लेश और कलह के अखाड़े बनने लगते हैं। पति-पत्नी में मनमुटाव, घृणा, द्वेष और वैमनस्य का विष व्यापने लगता है, जो एक दिन प्रकट होकर अपनी आग से घर की शान्ति को जलाने लगता है। पति के माता-पिता को खबर लगती है तो वे बहू को उल्टी-सीधी सुनाने लगते हैं और लड़की के मायके वालों को खबर लगती है तो वे अफसोस करने लगते हैं कि इतना साधु धन पानी की तरह बहाया फिर भी लड़की को सुख-सन्तोष नहीं मिला।

इन तनावों का कारण क्या है ? मानसिकता के घरातल पर पति-पत्नी का असमान होना। विवाह के लिए लड़का या लड़की देखते समय बहुत-सी ऊपरी बातों पर ध्यान दिया जाता है। जैसे—लड़की गोरी और सुन्दर तो है न, वह घर-गृहस्थी के काम निपटाने में तो कुशल है, उसके माँ-बाप अच्छी हालत में हैं या नहीं ? इन ऊपरी बातों पर ही ध्यान देने के कारण जब नये-नये विवाह का ज्वार उतर जाता है तो सामंजस्य और तालमेल न बैठने के कारण तनाव पैदा होने लगता है। जैसे पति चाहता है कि उसकी पत्नी आधुनिका हो, प्रगतिशील विचार रखने वाली हो और पत्नी के संस्कार ऐसे हैं कि दूसरों के सामने पति की या घर के बड़े-बूढ़ों की मौजूदगी में घूँघट उठाना भी उसे बड़ा अनुचित लगे। बाजार में साथ जाने की बात तो दूर, घर में किसी की उपस्थित रहते—पति से खुलकर बातें करने में भी संकोच हो। या पत्नी आधुनिक विचारों की

पढ़ी-लिखी, सुशिक्षिता हो और पति महोदय सुशिक्षित होते हुए भी अपने मन को रूढ़िगत संस्कारों की गड़ से मुक्त न करा सके हों तो ऐसी परिस्थितियों में तनाव पैदा होना स्वाभाविक हो जाता है।

अतः पति-पत्नी के रूप में किसी लड़के-लड़की का चुनाव करते समय न केवल बाहरी स्थिति को देखा जाना चाहिए, वरन् उनकी रुचि, गुणों, प्रकृति और प्रवृत्तियों तथा संस्कारों का अध्ययन कर उस आधार को ही महत्व दिया जाना चाहिए। यह भी उचित है कि लड़के-लड़की की राय भी जान ली जाय और उन दोनों की पसन्दगी तथा ना-पसन्दगी को महत्व दिया जाय। पति-पत्नी का चुनाव जहाँ तक हो सके—दोनों की इच्छा और रुचि की अनुकूलता पर होना अधिक उपयोगी है। इस रुचि का आधार आकर्षण या पूर्व परिचय न होकर—परस्पर का तालमेल रहे तो ज्यादा अच्छा रहता है। क्योंकि रूप-यौवन और सुन्दरता के वासनात्मक आकर्षण में फँसकर किये गये विवाह-सम्बन्ध शीघ्र ही दुःखों और कष्टों में बदल जाते हैं और परस्पर कलह का कारण बन जाते हैं। क्योंकि यह आकर्षण अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता।

प्रकृति और मौलिक विचारों में सामंजस्य के साथ-साथ पारिवारिक स्तर की लगभग समानता होने पर भी विवाह-सम्बन्ध किये जायें। यदि किसी धनवान परिवार में निर्धन कन्या का विवाह हो जाता है, तो उस परिवार में रहना आरम्भ करते ही उसकी पहली प्रतिक्रिया हीनता की होती है। अक्सर उसे अपने माँ-बाप की गरीबी के कारण ताने सुनने पड़ते हैं, कोई दहेज साथ न लाने के कारण उसे कोसा जाता है और घर वालों के प्रभाव में आकर जब पति भी उपेक्षा करने लगे, तब तो उसका जीवन ही भार-स्वरूप बन जाता है तथा न जाने कितने शारीरिक और मानसिक रोग उसे आकर घेर लेते हैं। यह भी देखा गया है कि धन और सम्पन्नता से प्रभावित होकर कई लोग अपनी लड़की का विवाह अधिक उम्र के लड़के या दुर्व्यसनी पति से कर देते हैं, खाने-पीने और रहने-सहने की पर्याप्त व्यवस्था होते हुए भी पत्नी अपने पति से भावनात्मक समानता स्थापित नहीं कर पाती। उसे एक सम्पन्न संरक्षक तो मिल जाता है, पर जीवन साथी पति नहीं मिल पाता। फलस्वरूप कई मानसिक परेशानियाँ उठ खड़ी होती हैं।

इसके विपरीत अब धनी घर की कन्या गरीब युवक के साथ ब्याह दी जाती है तो समस्या और भी उग्र हो उठती है। आमतौर पर ऐसा होता तो नहीं, पर जब लड़की में कोई नुक्स हो अथवा लड़के-लड़की का पहले से सम्बन्ध रहा हो या लड़का अधिक मेधावी तथा योग्य हो तो ऐसी परिस्थितियाँ बनती हैं। ऐसी स्थिति में लड़के के माँ-बाप बड़े खुश होते हैं कि उन्हें काफी दहेज मिल रहा है। किन्तु गरीब घर में अभीर लड़की के आ जाने से बड़ी परेशानी खड़ी हो जाती है। उसे अपने पिता के

घर में जैसी जिन्दगी जीने का अभ्यास था और वहाँ जिस तरह के रहन-सहन की सुविधाएँ उपलब्ध थीं, वे यहाँ नहीं मिलतीं। वह खिन्न हो उठती है एक प्रकार से ससुराल वालों पर रौब-दौब भी जताने लगती है कि उसके माँ-बाप ने इतना दहेज दिया, वे उसके अहसानमन्द हैं। जिन साधन-सुविधाओं की वह माँग करती है, पति का गरीब परिवार उन माँगों को पूरा नहीं कर पाता। परिणाम स्वरूप असन्तुष्ट और खिन्न पत्नी—गरीब घर की शान्त छाया में चिंगारी का काम करती है, जिसके कारण क्लेश की ज्वालायें धधक उठती हैं।

यही हाल शिक्षित-अशिक्षित पति-पत्नी का होता है। किसी अच्छे पढ़े-लिखे युवक का विवाह यदि एकदम अनपढ़ और अनगढ़ लड़की से हो जाता है तो भी गाड़ी पटरी पर नहीं बैठती। अशिक्षा के कारण कोई भी पक्ष एक-दूसरे की भावनाओं को समझ नहीं पाता और न उन्हें पूरा करने में कोई सहयोग कर पाता है। इस प्रकार पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्धों में तनाव, अशान्ति, क्लेश और कलह होने का एक बड़ा कारण है, उनका चुनाव उपयुक्त ढंग से न होना। इसके लिए खासकर अभिभावकगण जिम्मेदार होते हैं, जो बहुत ही सतही बातों की देख-भाल कर सम्बन्ध कर बैठते हैं। बहुत से माता-पिता अपनी सन्तान की राय और उनकी भावनाओं को जरा भी महत्व नहीं देते तथा अपने मन की करने पर ही अड़े रहते हैं। यह तो ठीक है कि सन्तान यदि कुमार्ग पर अग्रसर हो रही है तो उसे उधर जाने से रोक जाय, पर इस बात में जरा भी वजन नहीं है कि उसे जिसके साथ रहकर अपनी सारी जीवन-यात्रा तय करनी है, उसके चुनाव के मामले में भी हम अपनी तानाशाही चलायें।

इन भूलों से बचते हुए भविष्य के दम्पतियों की उनके सुखी और मधुर सम्बन्धों की सम्भावना सुदृढ़ की जा सकती है, पर जो दम्पति इसके शिकार हो गये हैं और तज्जनित कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं, उनके लिए भी समाधान का एक मार्ग है। पति-पत्नी के गलत चुनाव को ही दाम्पत्य-जीवन की असफलता का एकमेव कारण नहीं बताया जा सकता। ये कठिनाइयाँ तब और ज्यादा उग्र रूप से खड़ी हो जाती हैं, जब पति-पत्नी अपने स्वार्थ के प्रति अधिक आग्रहशील हो जाते हैं। यों स्वभाव में थोड़ी-बहुत भिन्नता सभी में होती है। उसे समझौते के साथ निभा लिया जाय तो कोई परेशानी खड़ी नहीं होती और दाम्पत्य जीवन की गाड़ी आराम से चलती रह सकती है। निबाहने और समझौता करने की उदारता जिनमें है, वे बड़ी सरलतापूर्वक अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखपूर्वक जीते हुए चला सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन में आने वाली प्रत्येक कठिनाई का यह एक सुगम समाधान है। पति-पत्नी स्वार्थी होने की अपेक्षा एक-दूसरे की प्रसन्नता का ध्यान रखने वाले बनते

हुए उत्सर्ग की भावना का विकास करें तो परिवार चाहे निर्धन हो-चाहे अमीर, पत्नी चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित आसानी से प्रत्येक परिस्थिति में सुख-शान्ति और आनन्द का सृजन किया जा सकता है, यही मध्यम मार्ग है और इस पर चलते हुए पति-पत्नी अपनी रुचि, अपनी इच्छा, अपनी आकांक्षा और अपनी आवश्यकता की माँग करने के स्थान पर अपने साथी की रुचि, उसकी इच्छा, उसकी आकांक्षा तथा उसकी आवश्यकता को महत्व दें तो सम्बन्धों में दरार पड़ने की नौबत ही नहीं आती। वस्तुतः स्नेह, प्रेम और आत्मीयता के स्थान पर स्वार्थ और निजी सुख की ही माँग के कारण कटुता के बीज, हम स्वयं ही बोते हैं। जिसके परिणाम विग्रह, क्लेश, सम्बन्ध-विच्छेद जैसी असफलताओं के रूप में सामने आते हैं।

पत्नी-अनुवर्तिनी नहीं सहधर्मिणी

व्यक्ति समाज की एक इकाई तो है पर पूरी नहीं अधूरी। जिस प्रकार विद्युत के ऋण, धन प्रवाह मिले बिना वह अप्रभावी रहती है। उसी प्रकार व्यक्ति जब तक दाम्पत्य सूत्र में बँध नहीं जाता, वह समाज की पूरी इकाई नहीं बन पाता। सामान्य मनुष्य के साथ तो यही नियम लागू होता है। ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं, जो एकाकी रहकर भी समाज से जुड़ते हैं, उसके लिये बहुत कुछ करते हैं किन्तु ऐसे अधिकांश एकाकी व्यक्ति समाज विमुख या समाज पर भार ही बने देखे जाते हैं। पति-पत्नी के इस एक होकर इकाई बन जाने में पत्नी को किस रूप में लिया जाय ? यह प्रश्न दाम्पत्य की सफलता और प्रक्रान्तर में समाज की श्री वृद्धि के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

नितान्त स्वकेन्द्रित व्यक्ति से लेकर विश्व-मानव समाज की एक सक्रिय इकाई बनने और उस स्तर तक विकसित होने, जहाँ कि व्यक्ति जगत को अपने में और अपने को जगत में देखने लगे, के इस विकास क्रम की जो सीढ़ियाँ हैं उनमें पहली सीढ़ी दाम्पत्य की है। इसकी सफलता-सार्थकता से सारा समाज प्रभावित होता है। यहाँ विवाहोपरान्त पत्नी को जिस दृष्टि से देखा जाता है वह बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

प्राचीनकाल में पत्नी पति से किसी भी प्रकार हेय, निम्न या उसकी वशवर्तिनी नहीं मानी जाती थी। तत्त्ववेत्ता, ऋषि, महर्षि भी दाम्पत्य जीवन को निभाते थे। जीवन के समग्र धर्म को निभाने के लिये एक साथी के रूप में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान था। उसे सहधर्मिणी माना जाता था। कोई भी कृत्य पत्नी के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता था। भगवान श्रीराम को भी अपने महायज्ञ के समय सीता की स्वर्ण मूर्ति गढ़वा कर अपने साथ बिठानी पड़ी थी।

जब तक पत्नी को सहधर्मिणी माना जाता रहा तब तक हमारा देश, समाज, व्यक्ति श्रेष्ठ और शिखरस्थ

रहा। हर दृष्टि से भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से, किन्तु ज्यों-ज्यों उसकी स्वभावगत व नैसर्गिक सेवा-भावना, सहनशीलता, ममत्व, समर्पण भावना को उसकी कमजोरी, उसकी विवशता माना जाकर उसे मात्र पति की अनुगामिनी बना दिया गया। उस पर वर्जनाओं के पहरे बिठा दिये गये। उसमें अपने आपको पुरुष से हीन मानने के कुसंस्कार पनपा दिये गये। हमारा दाम्पत्य माधुर्य, परिवार, समाज और देश रसातल को जाने लगा।

उन बातों को दोहराना आवश्यक नहीं कि पति को ही सब कुछ और पत्नी को कुछ नहीं मानने की इस भूल ने नारी पर कितने अत्याचार करवाये और मातृ शक्ति की इस हीन दशा ने हमारे समाज का कितना अहित किया। नारी को 'कल्याणी' के उच्च पद से उतार कर 'पौवों की जूती' के गर्द में ला पटकने में बहुत बड़ा हाथ दाम्पत्य सम्बन्धों में उसके प्रति रखा जाने वाला गलत दृष्टिकोण है।

आवश्यकता इसी बात की है कि पत्नी को पति अपनी अनुवर्तिनी नहीं, अपनी सहधर्मिणी समझे। सहधर्मिणी के इस सम्बोधन में जो समग्रता और उच्चता है, वह मनुष्य को अपने उच्च लक्ष्य तक पहुँचाने में सुदृढ़ सहारे का काम करता है।

काम तुष्टि धर्म नहीं हो सकती, सामर्थ्य शक्ति और निर्माण कौशल समर्थ दम्पति के लिए सन्तानोत्पादन धर्म हो सकता है। काम सेवन भी उसी मर्यादा तक ही उचित ठहरता है यदि पत्नी को सहधर्मिणी मान कर चला जाय तो और यदि उसे मात्र कामिनी या अनुगामिनी भर माना जाय तो वहाँ मनुष्य के मन में छिपा बैठा पशु फिर किस वल्गा के सहारे थामा जा सकेगा। दाम्पत्य की सफलता, विफलता में यह संयम बहुत महत्वपूर्ण है। सहधर्मिणी के स्वरूप में पत्नी के दर्शन किये जायें तो वहाँ काम भावना के स्थान पर एक दूसरे के प्रति सेवा की कामना उत्पन्न होगी। पत्नी के प्रति जो सहज अनुराग पति के मन में होता है, वह अमर्यादित काम सेवन की पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठकर पिता का, पुत्र तथा भाई के से निष्काम भाव से दिये गये स्नेह और श्रद्धा की देव वृत्तियों के रूप में अभिव्यक्त होने लगेगा, ऐसी स्थिति में पत्नी से भी उसे वैसा ही स्नेह, श्रद्धा का प्रतिदान मिलेगा। वह सक्रम से निष्काम की ओर प्रगति करेगा। ऐसी स्थिति में परिवार तो स्वर्ग बनेगा ही, देश व समाज भी गौरवमय बनता चला जायेगा।

पहले हमारे ऋषिगण-आचार्यगण विवाहित होते हुए भी अपनी पत्नी को कभी मात्र स्त्री की निगाह से नहीं देखते थे। उनके इस जीवन का प्रभाव उनके द्वारा चलाये जाने वाले ऋषिकुलों में पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों पर भी पड़ता था। आज नन्हें-नन्हें बालक भी गन्दी और अश्लील बातें जानते हैं, कहते-सुनते और कुत्सित चेष्टाएँ करते

दिखाई देते हैं, इसका प्रमुख कारण नारी को मात्र वासनात्मक कोण से देखना है। यह दृष्टि पति-पत्नी के पारस्परिक स्वरूप निर्धारण पर बहुत कुछ निर्भर करती है। जिस घर में पति-पत्नी बच्चों के सामने काम भावना से प्रेरित हो वैसी चेष्टाएँ करते हों, उनकी दिन रात्रि की चर्चा से जिज्ञासु बालकों यह ज्ञात होता रहता हो कि उनके माता-पिता के पारस्परिक व्यवहार में और उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार में कहीं न कहीं भिन्नता है। उनका व्यवहार कुछ असमान्य है जैसा सबके साथ नहीं किया जा सकता तो उनका मस्तिष्क उधर ही काम करने लगेगा और वे असमय ही वे सब बातें जान जायेंगे। ऐसे माता-पिता बच्चों के निर्माण की परीक्षा के पहले पर्व में ही यहाँ फेल हो जाते हैं।

किसी चिन्तक से पूछा गया कि प्रेम कहाँ से आरम्भ होता है और कहाँ जाकर समाप्त हो जाता है तो उन्होंने जो उत्तर दिया वह बड़ा सटीक व तथ्यपूर्ण था—'प्रेम वहाँ आरम्भ होता है जहाँ दो हृदय मिलते हैं और वहाँ समाप्त हो जाता है जहाँ दो शरीर मिलते हैं।' यह कथन नितान्त सत्य है। अन्य सम्बन्धों की तरह दाम्पत्य के क्षेत्र में भी इस शारीरिक सम्मिलन को महत्व न देकर मानसिक व आत्मिक सम्मिलन को महत्व देना उसे स्थायी, सार्थक व सफल बनाना है। पत्नी को सहधर्मिणी मानने पर वैसा करना सहज हो जाता है।

पति-पत्नी, सहधर्मी बनकर अपने जीवन के इन चार दायित्वों को पूरा करते हैं। उनमें पहला है अपना और अपने साथी का निर्माण। 'एक और एक ग्यारह होने' की उक्ति की सार्थकता दाम्पत्य सम्बन्ध में सुन्दर रूप में दिखायी जा सकती है। कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता किन्तु प्रत्येक को ईश्वर से कुछ न कुछ विशेषता मिली होती है। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं होता, जिसे ऐसा कुछ विशेष नहीं मिला होता है। पत्नी गुण, कर्म, स्वभाव में जैसी भी है उसमें कुछ न कुछ विशेषता है उससे लाभान्वित होना और अपने में जो कुछ विशिष्ट है उसे देना। इस क्रम से दोनों के व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण सहज सम्भव होता है।

गृहस्थ—दाम्पत्य के क्षेत्र में प्रवेश करते ही सामाजिक दायित्वों के निर्वाह का क्रम आरम्भ हो जाता है। सन्तान उत्पन्न कर उसे सुयोग्य, समर्थ व सचरित्र नागरिक बनाने के महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य में पत्नी सहभागी होती है। उसका सहभागी ही नहीं सहधर्मी भी होना आवश्यक है। बच्चों के पालन-पोषण को कर्तव्य भाव से किया जाना ठीक है न कि मोह भाव से। मोह भाव से किया गया सन्तान का लालन-पालन माता-पिता को उन्हीं से बाँध देता है जबकि उसके सामाजिक दायित्व के रूप में निभाना चाहिये। इसी प्रकार यह क्रम चलता हुआ व्यक्ति के बाद परिवार, समाज और विश्व

तक पहुँचता है, जिसमें पति के लिये पत्नी का सहधर्मिणी स्वरूप ही हितकारी है।

जो लोग पत्नी को अपनी वशवर्तिनी व पीछे चलने वाली मानते हैं वे वस्तुतः उसके साथ ही नहीं नारी जाति के साथ भी गलत ढंग से सोचते हैं। परिवार और दाम्पत्य के क्षेत्र में पत्नी का अनुदान पति से अधिक ही होता है, कभी भी किसी तरह कम नहीं, फिर पति उसे अपनी अनुवर्तिनी माने इसका कोई आधार नजर नहीं आता। 'पीछे चलने वाली' मानने से अपने आप पति पत्नी पर अपना अधिकार मानने लगता है। उसे अपनी ही इच्छाओं के अनुसार चलाना चाहता है। इससे समता के प्रकृतिगत सिद्धान्त का हनन होता है।

पत्नी के लिए एकनिष्ठ रहना जितना आवश्यक है उतना ही पति के लिये भी है और इसी एकनिष्ठता पर दाम्पत्य और परिवार की सफलता निर्भर करती है। किन्तु लम्बे समय से पतिव्रत को तो इतनी महत्ता दी गयी कि उसकी महिमा से ग्रन्थ अटे पड़े हैं किन्तु पत्नीव्रत की बात बहुत कम कही गयी। क्योंकि पत्नी को पति के पीछे चलने वाली माना जाता रहा। जब पत्नी का एकनिष्ठ न रहना, पारिवारिक सम्बन्धों में कटुता व टूटन पैदा करना है तो पति का एकनिष्ठ न रहना भी तो उतना ही भयंकर होता है। यह एकनिष्ठता दोनों के लिये आवश्यक है।

अधिकार भाव जहाँ परिवार को तोड़ता है वहीं साथी का, सहयात्री का, सहधर्मि का भाव उसे पुष्ट और मधुर बनाता है। क्या आवश्यक है कि विवाह के बाद पत्नी अपने सारे व्यक्तित्व को पति में विसर्जित कर दे। यदि उससे इस प्रकार सम्पूर्ण समर्पण की चाह पति करता है, तो वह स्वयं क्यों नहीं वैसा ही करता है। अतः यहाँ दो नदियों की तरह मिलकर एक हो जाने वाली बात उतनी व्यावहारिक नहीं है, जितनी कि दो सहयात्रियों के साथ चलकर मंजिल पर पहुँचने की। जीवन को सार्थक करना प्रत्येक व्यक्ति की मंजिल है किसी में अपने आपको विसर्जित कर देना नहीं।

पत्नी अपनी रुचियों को स्वभाव को एकदम ही पति जैसा बना ले यह न तो सहज है और न ही आवश्यक भी। हर व्यक्ति का गुण, कर्म, स्वभाव एक सा नहीं होता। यह प्रकृति का अटल नियम है। एक ही माता-पिता के पुत्र, एक ही पारिवारिक वातावरण में पले हुए भाइयों के गुण, कर्म, स्वभाव में भी जब जमीन आसमान का अन्तर देखा जाता है तो भिन्न माता-पिता से उपजी, भिन्न पारिवारिक वातावरण में पत्नी पत्नी कैसे एकदम पति जैसी ही हो जायेगी। इस भिन्नता को समाप्त करने का प्रयास तो किया जा सकता है। पर यह समय साध्य है और कठिन भी। लेकिन जहाँ पत्नी वशवर्तिनी मानी जाती है। वहाँ उसकी रुचियों व स्वभावों पर पति अपनी रुचियों व स्वभावों को थोपना चाहता है। इससे

और कुछ हो सकता है वह तो हम नहीं जानते, पारस्परिक प्रेम में टूटन अवश्य आती है और जहाँ प्रेम टूटने लगता है वहाँ खुशियाँ नहीं रह पातीं।

इस स्थिति से बचने के लिए ही पत्नी को सहधर्मिणी बनाया गया है। उससे दुनिया भर की अपेक्षाएँ करने की बजाय सहयोग देकर सहयोग पाने का रास्ता ही व्यावहारिक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नारी पुरुष की तरह कठोर, शुष्क व बुद्धि प्रधान नहीं होती वह तो नम्र, सरस व हृदय प्रधान होती है। उससे कुछ भी पाया जा सकता है। पर उस प्राप्ति के लिए उस पर अधिकार जताकर लेने का तरीका नितान्त अविवेकपूर्ण है। पति उससे जैसा व्यवहार पाना चाहता है वैसा स्वयं भी करे तो, वहाँ दिये हुए का कई गुना लौटती है। यही तरीका व्यावहारिक भी है।

दाम्पत्य की सफलता के लिए पत्नी से यह शिक्षायात करना कि वह मुझे समझती नहीं पति महाशय का कितना एकांगी चिन्तन है। वे स्वयं पत्नी को समझने—उसकी भावनाओं का आदर करने का कितना प्रयास करते हैं तो फिर उससे यह अपेक्षा करना कहाँ का न्याय है। यह समझ दोनों तरफ से उपजनी चाहिए। इसकी पहल पति को करनी चाहिए क्योंकि सदियों से पति की आज्ञा का अनुसरण करना ही एकमात्र धर्म मानने वाली नारी में भी वह रक्षता आ जाय जो पुरुष में है तो इसमें अस्वाभाविक ही क्या है। पुरुष अपनी मनमर्जी से अपने-आपको उस पर थोपता आ रहा है। जबकि यह ठीक नहीं है। नारी पुरुष बन जाय या पुरुष नारी बन जाय इसकी आवश्यकता नहीं है। दोनों अपने-अपने रूपों में पूर्ण हैं, उसी रूप में उनकी उपयोगिता है। यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व विसर्जन की बात अप्राकृतिक है। प्राकृतिक है पति-पत्नी दोनों, अपने-अपने स्वरूपों को बनाये रखते हुए साथ चलें और उस लक्ष्य को प्राप्त करें जो मनुष्य जीवन को सार्थक करता है।

पतिव्रत ही नहीं, पत्नीव्रत भी

निभाया जाय

विवाह का अर्थ काम सेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर रखाने की व्यवस्था, एक कमाऊ सहयोगी मिल जाना नहीं वरन् दो आत्माओं का एकीकरण है। प्रेम मानव तत्व की सबसे उत्कृष्ट विभूति है। आनन्द और उल्लास का सारा आधार उसी पर अवलम्बित है। प्रेम का उभयपक्षीय परिपोषण और निरन्तर अभिवर्धन आध्यात्मिक प्रगति की एक महत्तम साधना है। इस साधना को दो पूरक पात्रों की तरह पति-पत्नी विवाह सम्बन्ध से बँधते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि वे दोनों परस्पर आजीवन वफ़ादारी, आत्मीयता, सेवा-सम्मान, उदारता, सहयोग, सद्भावना की दृष्टि से एक-दूसरे को अपना आराध्य मान

३.१७ गृहस्थ एक तपोवन

कर गृहस्थ की नाव को खेते हुए जीवन सागर के अन्तिम छोर तक पहुँचेंगे।

इस आदर्श को निबाहने के ऊपर दाम्पत्य जीवन एवं गृहस्थ निर्माण की प्रयोजन पूर्ति सम्भव है। विवाह से तरुण वय की एक उमंग वासना का भी नियन्त्रण हो जाता है। छत पर परनाला लगा होने से वर्षा का पानी इकट्ठा होकर एक ही मार्ग से निकल जाता है अन्यथा उसके किस्वर भी फैलने और गिरने का डर रहता है। यों विवाह का उद्देश्य एक दूसरे के आध्यात्मिक स्तर उठाकर बौद्धिक विकास एवं सांसारिक जीवन को सुविधापूर्ण बनाना है और उसमें आध्यात्मिक संयम नितान्त आवश्यक है। फिर यदि दोनों पक्ष अपने मनोविकारों को नियन्त्रित न रख सकें और परिवार बढ़ाने की योजना से सुसम्पन्न हों तो काम सेवन की भी एक मर्यादित गुंजायश है। पर यह मानकर ही चलना चाहिए कि विवाह जैसा पवित्र प्रयोजन केवल वासना के लिए ही सम्पन्न नहीं किया जाता। यदि ऐसा ही होता तो पशुओं की तरह वह घृणित प्रयोजन पूर्ण होते ही पति-पत्नी एक दूसरे को भूल जाते और उपेक्षा करने लगते। वेश्यावृत्ति और व्यभिचार में गृहस्थ की मर्यादित वासना की अपेक्षा आकर्षण बहुत अधिक होता है पर उद्देश्य न होने से उन लोगों में कोई किसी के प्रति वफादार नहीं रहता।

गृहस्थ जीवन की मूल शक्ति साथी के प्रति वफादारी है। सुख-सुविधाओं में ही नहीं विपत्ति, रोग और असमर्थता में भी वफादारी अक्षुण्ण बनी रहे तो समझना चाहिए विवाह करने वालों ने उसका आदर्श भी समझ लिया। सच्चे साथी की हर किसी को प्यास है। इस सम्बन्ध में गहरी निश्चिन्तता मिल जाने पर मनुष्य को भारी सन्तोष और साहस मिलता है। बेजान चीजें एक और एक होकर दो हो सकती हैं। पर सजीव मनुष्य एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। जिन गृहस्थ में पति-पत्नी को एक-दूसरे पर अटूट विश्वास है, जिनकी पारस्परिक वफादारी असंदिग्ध है, जिनके बीच दुराव का एक कण भी नहीं, जो सुख-दुःख में समान रूप से साझीदार रहते हैं। एक-एक पाई आय-व्यय की जानकारी जहाँ दोनों को रहती है, जो अपनी असुविधा की उपेक्षा करते हुए साथी की सुविधा को प्रधानता देते हैं, जो हँसने-हँसाने की उपयोगिता समझ कर एक दूसरे के मन का भार हल्का करते रहते हैं, उन्हें ही धन्य और सफल कहा जा सकता है। आनन्द ऐसे ही गृहस्थ का है। प्रगतिशील और समुन्नत जीवन से ऐसे दाम्पत्य जीवन का भारी योगदान रहता है। यदि विवाह करना हो तो ऐसा दाम्पत्य जीवन बनाने के लिए अपनी ओर से प्राण प्रयत्न करने और बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए उद्यत होकर ही कदम बढ़ाना चाहिए अन्यथा केवल काम सेवन की सुविधा के लिए विवाह करना वेश्यावृत्ति से भी गया गुजरा घृणित कर्म है।

भारतीय दर्शन के अनुसार विवाह एक आत्म समर्पण, उत्सर्ग तथा आस्था परिपक्व करने की घर में रहकर की जाने वाली योग साधना है। हमारा दाम्पत्य जीवन इसी स्तर का होना चाहिए। तभी उससे वफादारी, आत्मीयता, सेवा, सन्तोष एवं प्रगति के फल लगेगे। सन्तान का सदगुणी होना पति-पत्नी की इसी मनःस्थिति पर निर्भर है। गंगा और यमुना बनाकर तीर्थराज बनता है। रात्रि और दिन का मिलन संध्या काल की पुनीत वेला विनिर्मित करता है। बिजली के दो तार मिलकर प्रवाह उत्पन्न करते हैं। दो सच्चे अर्थों में मिले हुए अन्तःकरण वाले पति-पत्नी ही सदगुणी-समर्थ और सुविकसित सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। जिन जोड़ों के बीच अविश्वास, आशंका, रोष, घृणा, निराशा भरी होगी, उनका प्रभाव सन्तान पर अवश्य आवेगा और बच्चे शरीर, मन एवं स्वभाव की दृष्टि से अनेक दोष-दुर्गुण जन्मजात संस्कारों के रूप में लेकर जन्मेगे और सारे परिवार के लिए एक समस्या बनकर रहेंगे।

अविश्वासी और अनुदार वातावरण के बीच विवाहित रहते हुए भी दोनों एकाकी समझे हैं और मन आशंका से भरा रहता है कि कभी भी विश्वासघात हो सकता है। किसी तरह गाड़ी लुढ़कती भी रहे तो वह एक लोक-लाज की रस्सी से बँधा हुआ बन्धन मात्र रह जाता है। उसमें न आनन्द रहता है, न उल्लास, सरसता रहती है और न सुनिश्चितता। ऐसे लाभों से रहित गृहस्थ एक कठिनाई से ढोया जाने वाला भार मात्र ही बना रहेगा।

छोटे घर-घरानों को स्वर्ग का वातावरण करने की एक प्रयोगशाला बनाकर रखा जाना चाहिए। पतिव्रत धर्म एवं पत्नीव्रत धर्म के अन्तर्गत दोनों के ऊपर जिन कर्तव्य उत्तरदायित्व का भार आता है, उसे अति उत्साहपूर्वक वहन किया जाना चाहिए और प्रयत्न यह होना चाहिए कि साथी की तुलना में अपनी भूमिका अधिक ऊँची बनी रहे। भारतीय नारियों की पतिव्रत साधना एक ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य है। उनमें से १० प्रतिशत अपना भाग ईमानदारी से पूरा करती हैं। अशिक्षा, अनुभवहीनता एवं संकुचित वातावरण में आबद्ध रहने के कारण उनके कर्तव्य और व्यवहार में कुछ दोष रहने स्वाभाविक हैं। इन्हें कारणों का निवारण करके बदला जा सकता है। पर उनकी ईमानदारी, वफादारी असंदिग्ध है। यों १० प्रतिशत में पुरुषों के उत्पन्न किये हुए मूल दोष भी हो सकते हैं पर उनमें से अधिकांश की सज्जनता असंदिग्ध है। पतिव्रत धर्म का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी भारतीय नारी में कहीं भी—गई-गुजरी स्थिति में भी देखा जा सकता है।

इस पुनीत क्षेत्र में आग लगाने और विकृतियों उत्पन्न करने का दोष अधिकतर पतियों का होता है। इसलिए आज की परिस्थिति में सबसे अधिक उपदेश, प्रशिक्षण और दबाव पतियों पर दिया जाना चाहिए कि

भूले हुए पत्नीव्रत धर्म की पुनः याद करें और ज्येष्ठता के कारण अपना अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके पत्नी को अनुगामीनी बनने का प्रकाश दें। स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म ही स्वर्ग, मोक्ष की साधना है, पति परमेश्वर मानना चाहिए, उसके प्रति वफादारी, उदारता और सेवा भावना बरतनी चाहिए। इन उपदेशों को बहुत दिन से सुना जाता रहा है। महिला वर्ग ने उसका पालन इतनी खूबी के साथ किया कि इस इतिहास से संसार चमत्कृत है। आज भी भारत के गये-गुजरे गृहस्थ को देखकर पारश्चात्य सभ्यताभिमानि यही सोचते हैं कि आदर्श परिवार बसाने की प्रक्रिया भारत से सीखनी होगी। इस गौरव से नारी की ही भूमिका प्रधान है।

जो आशायें हम पत्नी से करते हैं उसका प्रशिक्षण पति को अपने व्यवहार एवं सदगुणों में करना चाहिए। कोई नहीं चाहता है कि हमारी पत्नी दुराचारीणी, फिजूल-खर्च, दुराव रखने वाली, असहिष्णु, आवेशग्रस्त, कटुभाषी जैसे दुर्गुण युक्त हो। इसलिए उसका कर्तव्य है कि पत्नी के आगे इन्हीं अपनी विशेषताओं का ध्यान रखे। बीमारी, सन्तान न होने, मन्दबुद्धि अथवा व्यवहार ज्ञान से न्यूनता के कारण पत्नी को छोड़ देने, अपमानित करने अथवा सताने की बात सोचना ही पत्नीव्रत धर्म के महान् आदर्श के प्रतिकूल है। शंकरजी सर्पों को शरीर में लपेटे रहते थे। चन्दन वृक्ष पर भी सर्प, बिच्छू लिपटे रहते हैं। एक सज्जन पति का भी कर्तव्य है कि पत्नी में इस प्रकार की कमियाँ हों तो भी ऊपरी ओर से अपने कर्तव्य में रतीभर भी न्यूनता न आने देकर स्नेह, सद्भावना, सेवा और उदारता का ही व्यवहार करे। पतिव्रत धर्म नारी समाज में बहुत कर जिन्दा है। अब पुरुष का काम है कि पत्नीव्रत की आदर्शवादिता को दृढ़तापूर्वक अपनाये और गृहस्थ जीवन की उत्कृष्टता में घर को स्वर्ग बनाये और संसार को एक महत्तम मार्गदर्शन प्रस्तुत करे।

बुद्धिवाद के इस अभिशाप से समाज को मुक्ति दिलायें

दाम्पत्य जीवन के सुमधुर सम्बन्धों की आधारशिला पति-पत्नी के बीच भावनात्मक सम्बन्धों, स्नेह और सौहार्द के ऊपर टिकी होती है। यह सम्बल जितना ही सुदृढ़ होगा दाम्पत्य जीवन उतना ही सरस, माधुर्यपूर्ण, सफल और सार्थक सिद्ध होगा। शारीरिक तुष्टि, आर्थिक निश्चिन्तता और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से तो समझौते की नीति जो अधिकारों के आधार पर बनती है, से भी किसी तरह घिसटते हुए काम चल सकता है पर स्वार्थों पर आघात लगते ही किसी भी क्षण आपसी सम्बन्धों के टूटने का पूरा-पूरा खतरा रहता है। यह सुनिश्चित है कि भौतिक स्वार्थों के कारण जुड़े हुए सम्बन्धों में कभी स्थायित्व नहीं हो सकता। पर यदि पति-पत्नी को जीवन,

पर्यन्त सुदृढ़ रूप से अटूट स्नेह-सूत्र में बँधा रहना अभीष्ट हो तो अपने क्षेत्र को भाव-संवेदनाओं से अनुप्राणित करना होगा, अधिकारों का सीमित करना तथा दूसरे पक्ष के प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देना होगा।

पारिवारिक जीवन का अध्ययन करने वाले मनःशास्त्रियों का मत है कि दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच होने वाले मतभेदों, मनमुटाव तथा झगड़ों का कारण मुख्यतः भौतिक समझा जाता है, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। भावसंवेदनाओं के अन्तःस्रोत शुष्क पड़ जाने के कारण ही परस्पर मनोनालिन्य बढ़ता है। बढ़ते-बढ़ते जिसकी विस्फोटक परिणित विवाह विच्छेदों, तलाक की घटनाओं के रूप में होती है। यह कहना निराधार है कि भौतिक असुविधाओं के कारण तलाक की परिस्थितियाँ प्रस्तुत होती हैं। यदि यह बात सच रही होती तो समृद्ध एवं सुविकसित देशों के परिवार सर्वाधिक खुशहाल और प्रसन्न दिखायी पड़ते और दाम्पत्य जीवन अधिक सुखी रहते। पर सर्वेक्षण और अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि सबसे अधिक घुटन और तनाव से भरा जीवन समृद्धतम देशों में दम्पतियों का है। उन देशों में परिवार संस्था-क्रमशः टूटती जा रही है। उपयोगितावादी समझौते की नीति पर दाम्पत्य जीवन टिका हुआ है। जिस पर थोड़ा भी आघात पहुँचते ही सम्बन्धों के टूटने का खतरा पैदा हो जाता है। इसका कारण भौतिक समझा जा सकता है पर वस्तुस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने वालों का मत है कि यदि दाम्पत्य जीवन की जड़ को स्नेह-सद्भाव के द्वारा अभिसिंचित करने का प्रयास आरम्भ से ही किया गया होता तो उसकी जड़ें इतनी मजबूत हो जातीं कि कभी बाह्य आघातों के कारण उनके उखड़ने की संभावना नहीं रहती और पति-पत्नी के सम्बन्ध स्थायी, सौहार्दपूर्ण, सरस बने रहते।

भौतिकवादी जीवनदर्शन के बढ़ते प्रभाव ने मानवी संवेदनाओं को बुरी तरह रोंदा है। पश्चिमी देशों में विवाह शारीरिक घरातल पर होते हैं। मानसिक एवं भावनात्मक सामंजस्य स्थापित न हो पाने के कारण, स्थूल का आकर्षण कम होते ही सम्बन्धों के टूटने में देरी नहीं लगती। पति-पत्नी के बीच जो विश्वास और समर्पण का सघन भाव होना चाहिए, वह कहीं भी दिखायी ही नहीं पड़ता है। बढ़ती हुई तलाक की प्रवृत्ति पश्चिमी देशों की दुःखद स्थिति पर प्रकाश डालती है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार अमेरिका में सन् १९६० के पूर्व तलाक लेने वालों की संख्या प्रति हजार पीछे पाँच थी, जो अप्रत्याशित गति से पिछले दशकों में बढ़ी है। वर्ष १९७१ में २९ प्रतिशत अमेरिकी विवाह तलाक में परिवर्तित हो गये। वर्ष १९७५ में यह प्रतिशत ३४ तक जा पहुँचा। अमेरिकी राष्ट्रीय स्वास्थ्य सांख्यिकी केन्द्र की रिपोर्टनुसार वर्ष १९६५ में कुल ४ लाख ७९ हजार दम्पतियों ने तलाक दिया, जबकि १९७५ में तलाक लेने

३.१९ गृहस्थ एक तपोवन

वालों की संख्या दस लाख से भी ऊपर जा पहुँची। अनुमान है कि विगत सात वर्षों की अवधि में तलाक की घटनाओं का प्रतिशत ४० तक जा पहुँचा है अर्थात् १०० विवाहों में से ४० तलाक में परिवर्तित जाते हैं।

हिन्दुस्तान टाइम्स दैनिक पत्र में प्रकाशित एक आँकड़े के अनुसार कनाडा जैसे छोटे से देश में नर-नारियों में तलाक की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। परिवार संस्था बिखरती जा रही है। वर्ष १९७१ में २५ हजार विवाह विच्छेद की घटनाएँ प्रकाशन में आयीं। १९७६ में यह संस्था ४७ हजार तक जा पहुँची। सन् १९८१ में लगभग ७० हजार व्यक्तियों ने तलाक लिए। इंग्लैण्ड और वेल्स में वर्ष १९६० में तलाक की घटनाओं का प्रतिशत दस था। १९७० में बीस, १९८० में तीस प्रतिशत जा पहुँचा है अर्थात् जितनी शादियाँ प्रतिवर्ष होती हैं लगभग उसकी एक तिहाई टूट जाती है। स्वीडन में स्थिति और भी अधिक विस्फोटक है। यहाँ जितनी शादियाँ होती हैं, लगभग उनकी आधी टूट जाती है। अर्थात् विवाह विच्छेदों का प्रतिशत लगभग पचास है।

पश्चिम के भौतिकवादी जीवनदर्शन ने भारतीय सामाजिक परिस्थितियों को भी प्रभावित किया है। अपनी सांस्कृतिक मान्यता है कि विवाह दो पवित्र आत्माओं के मिलन की एक ऐसी पुनीत प्रक्रिया है, जो एक-दूसरे के जीवन को अधिक सुविकसित और परिपूर्ण बनाती है। जुड़े हुए सम्बन्ध इसी जीवन तक नहीं रहते वरन् अन्य जन्म-जन्मान्तरों तक चलते हैं। यही कारण है कि विकट से विकट परिस्थितियों में भी भारतीय संस्कृति पति अथवा पत्नी में से किसी को भी विवाह विच्छेद की अनुमति नहीं देती। यह उदात्त भाव जब तक अपने समाज में बना रहा, दाम्पत्य जीवन के टूटने और अलग-विलग होने की नौबत यत्किन्चित ही आती थी। जो ऐसा कदम उठाने का दुस्साहस करते भी थे तो उनकी सामूहिक रूप से सामाजिक स्तर पर भर्त्सना और निन्दा की जाती थी। वह परम्परा और सांस्कृतिक गौरव गरिमा अब पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव से धूमिल पड़ती जा रही है। तलाक की प्रवृत्ति अपने देश में भी बढ़ती जा रही है तथा अपनी सुदृढ़ता एवं पवित्रता के लिए विख्यात भारतीय परिवारों को विघटित कर रही है।

आँकड़े बताते हैं कि सन् १९६१ में अपने देश में १०० व्यक्तियों के पीछे एक तलाक की घटना घटित होती थी। वर्ष १९७१ में ५० व्यक्तियों पीछे एक तलाक की घटना प्रकाश में आयी। लगभग एक दशक बाद अर्थात् वर्ष १९८० में तलाक की घटनाओं में तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई। अनुमानतः प्रत्येक पन्द्रह व्यक्ति पीछे एक विवाह विच्छेद का औसत रहा।

मात्र बौद्धिक धरातल पर सोचने वाले कुछ विचारशील लोगों का मत है कि आपसी मतभेद के कारण घुटन भरी जिन्दगी जीने की अपेक्षा तलाक ले

लेना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। पर इस ढंग से विचार करने वाले वस्तुतः दूरगामी परिणामों को भूल जाते हैं। विवाह विच्छेद करा लेना सुगम है पर उसके बाद प्रस्तुत होने वाली परिस्थितियाँ कहीं अधिक कष्टदायक होती हैं। ऐसे व्यक्ति समाज में अपनी प्रामाणिकता गँवा बैठते हैं। उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। सगे-सम्बन्धियों और निकटवर्ती सथियों तक के मन में यह बात जमी रहती है कि ये वे ही व्यक्ति हैं जो पति अथवा पत्नी के न हो सके। पुनर्विवाह होने पर भी दूसरे पक्ष का वे विश्वास अर्जित नहीं कर पाते। यह आशंका सदा बनी रहती है कि कहीं सम्बन्ध टूट न जाय। सबसे अधिक भावनात्मक ठेस उन मासूमों को पहुँचती है, जो पैदा तो होते हैं पर माता पिता के विलगाव के कारण स्नेह पाने से वंचित रह जाते हैं। तलाक के अनेकानेक दुष्परिणामों की तुलना उन छोटे-मोटे मतभेदों से की जाय, जो दाम्पत्य जीवन में पैदा होती है, तो मालूम होगा कि प्रथम कहीं अधिक कष्टदायक है। थोड़ी सुझ-बुझ और धैर्य का परिचय देकर मतभेदों के कारण ढूँढ़ने और निवारण के लिए प्रयत्न किया जा सके तो कोई कारण नहीं कि हल न निकाला जा सके।

दाम्पत्य जीवन का सुखद निर्वाह

कल-कारखानों में कितने ही व्यक्ति मिल-जुलकर काम करते हैं, अपनी-अपनी इयूटी निभाते हैं। पर इतने भर से उनमें न तो आत्मीयता उभरती है और न घनिष्ठता। इसके बिना वह भीड़ एक ही बाड़े में रहने वाली भेड़ों की तरह जीवनचर्या की पूर्ति भर करती है; पर ऐसा नहीं होता कि उनके बीच पारस्परिक निर्भरता रहे। एक-दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में सहकार करें और विपत्ति के समय एक-दूसरे के लिए बड़ी कुर्बानी करने के लिए तैयार रहें। इस कारण परस्पर वह स्नेह-सद्भाव नहीं देखा जाता, जिससे मन की कली खिले और अपनी क्षमता अनेक गुनी दीख पड़े।

दाम्पत्य जीवन की यही विशेषता है, जो अन्यत्र नहीं दीख पड़ती। सच्चा दाम्पत्य जीवन वही है, जिसमें आत्मीयता का गहरा पुट हो। इसके बिना वह मालिक और मजूर जैसा एक सामाजिक अनुबन्ध मात्र बन कर रह जाता है। पूरे परिवार में अनेक सदस्य रहते हैं। वे अपनी-अपनी मर्यादा में रहकर अपनी आवश्यकताएँ भर पूरी करते हैं; किन्तु कोई किसी पर पूर्णतया निर्भर नहीं रहते।

अबोध शिशु माता पर निर्भर रहते हैं और उसके वात्सल्य का लाभ उठाते हैं किन्तु ऐसा नहीं होता, कि बच्चा भी उसी स्तर का प्रतिपादन प्रस्तुत करे। उसमें केवल माता ही की एकाकी भाव प्रमुखता रहती है, किन्तु पति-पत्नी के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। यदि उनके बीच आत्मीयता की जड़ें इतनी गहरी न हों कि एक

दूसरे को आत्मसात् कर लें तो समझना चाहिए कि लौकिक उपचार भर निभा, जो स्वर्गीय आनन्द इस मिलन का उपलब्ध होना चाहिए, वह न हो सका।

आमतौर से पति खेत, दुकान, नौकरी आदि से पैसा कमाता है और स्त्री घर रहकर भोजनालय, शिशु-पालन एवं सफाई, चौकीदारी आदि में निरत रहती है। दोनों पक्ष के यह कार्य औपचारिक हैं। वह जीवन की व्यवस्था के साथ जुड़े रहते हैं। इतने मात्र से काम तो चलता रहता है पर भावनात्मक तुष्टि नहीं होती। भावनाएँ पारस्परिक विश्वास, सद्भाव और सौजन्य के आधार पर विकसित होती हैं और समर्पण भावना से सिंचित होकर फलती-फूलती हैं।

सफल दाम्पत्य जीवन वह है, जिसमें सघन मित्रता की विशेषताएँ जुड़ी रहें, एक-दूसरे के सम्बन्ध में निरन्तर सोचते रहें, उसकी उचित प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता अनुभव करें। इसके पीछे न तो स्वार्थ की व्यवसाय बुद्धि काम करे और न उचित-अनुचित का विचार किये, अक्षरशः आज्ञा पालन की विवशता ही हो।

क्रम-व्यवस्था की रूपरेखा बनाने में दोनों की सहमति और सन्तुष्टि होना आवश्यक है। किसी पक्ष को ऐसा न लगे कि उस पर कुछ लादा जा रहा है। बलात् श्रम तो जेलखाने में बन्दियों से लिया जाता है, किन्तु योजनाएँ विज्ञान पारस्परिक विचार-विनिमय के आधार पर बनाते हैं। गृह-व्यवस्था में पत्नी का योगदान हो, इसके सम्बन्ध में उसकी स्थिति तथा सुविधा को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। काम का जितना बोझ सरलता से उठ सके, उतना ही करने की बात बननी चाहिए। इसके विपरीत दिन-रात काम में जोते रहना और अध्ययन, विनोद, विश्राम या निजी साज-संभाल के लिए समय न बचने देना बुरी बात है। इससे खीज और निराशा पैदा होती है। समझा जाता है कि वह पत्नी नहीं, रोटी-कपड़े की कीमत पर खरीदी गयी दासी मात्र है। इन परिस्थितियों में स्नेह-सद्भाव का समुचित विकास होना संभव नहीं।

विवाह को कामुकता की खुली छूट मिलने का कानूनी घोषणा पत्र नहीं मान बैठना चाहिए। आवश्यकतानुसार यदा-कदा यह उपचार भी चलता रह सकता है, पर उसके पीछे मर्यादा का, विचारशीलता का समावेश होना चाहिए। विवाह कामुकता की अमर्यादित पूर्ति के लिए नहीं होता, इससे दोनों के शरीर क्षीण होते हैं और ऊपर से दीखने वाला प्यार भीतर-घात करने वाली कैची का काम करता है। इसलिए इस प्रसंग में धैर्य और अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दोनों की ही मानसिक तरंगें बेकाबू हो रही हों तो ही इस दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए।

रंग-रूप को प्रमुखता नहीं दी जानी चाहिए। हम सब भारतवासी हैं, श्रमजीवी और सीमित साधनों वाले हैं

इसलिए न तो परम्परागत सौन्दर्य ही के धनी हो सकते हैं और न सामाजिक परम्परा के अनुसार सिनेमा जैसी उच्छृंखल अभिव्यक्ति ही कर सकते हैं। लज्जा का निर्वाह अपने समाज के शील का चिन्ह है। इसलिए विवाह करने से पूर्व ही यह धारणा बना लेनी चाहिए कि साधारण रूप-रंग, बनावट और स्वभाव की पत्नी से ही गृहस्थ का निर्वाह ठीक प्रकार बन पड़ेगा। रूप-रंग के लिए भीरी की मनःस्थिति नहीं बनानी चाहिए कि एक को लक्ष्य न रहने देकर अनेकों से सम्पर्क साधें या उनका चिन्तन करें। इस दिशा में उन्हीं के कदम उठते हैं, जो रूप-लावण्य और चुहल-चंचलता की प्रवीणता को पसन्द करते हैं। जिनकी पसंदगी ऐसी होती है, वे फिल्म एक्टरों की प्रतिच्छाया ढूँढ़ते फिरते हैं। इसमें निराशा तो मिलती ही है, दाम्पत्य जीवन भी अविश्वास एवं असन्तोष से भर जाता है। इस विपत्ति से बचना हो, तो विवाह के उपरान्त अपने साथी को ही सबसे अधिक रूपवान और गुणवान मान कर चलना चाहिए। जो कमियाँ हों, उनके सम्बन्ध में स्नेह-सौजन्य के साथ उनके निराकरण का प्रयत्न करना चाहिए। यदि दूसरे का उस सीमा तक बदलना सम्भव नहीं हो तो फिर धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए। एक प्रकृति के दो मनुष्य कहीं नहीं मिलते। उनके बीच कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है। आवश्यक नहीं उसमें पूरी तरह सुधार-परिवर्तन हो जाय। उचित यही है कि अपने साथी के प्रति सघन आत्मीयता के आधार पर प्रेम की घनिष्ठता उत्पन्न की जाय और उसे एकरस भाव से निबाहा जाय।

पति अपने को बड़ा मानते हैं और पत्नी को दासी-अनुचरी मानते हैं। ऐसी दशा में समय के अभाव में कोई किसी का सम्मान नहीं कर पाते। मुक्त कंठ से प्रशंसा भी नहीं बन पड़ती। इस कमी को पूरा करना चाहिए। साथी के प्रति न केवल गहरा विश्वास और आत्मभाव हो, वरन् उसके भावुक सम्मान को किसी प्रकार चोट न लगने पाये, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। गुणों की प्रशंसा करना, सेवा-सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट करते रहना, जिसके आधार पर यह समझा जाता है कि अपना, सही मूल्यांकन हुआ।

मिलजुल कर काम करने की आदत एक प्रकार का विनोद-सहयोग बन जाती है। इसलिए पतियों को अपने काम ही पत्नी पर नहीं लादते रहना चाहिए, वरन् उसके हिस्से के कामों में जितना संभव हो, उतना सहयोग करना और हाथ बँटाना चाहिए। इसमें समता और एकता का प्रदर्शन भी बन पड़ता है और उसका लाभ लेते हुए आनन्द भी अधिक आता है। अपने विश्वास और सद्भाव ही प्रतिध्वनि, प्रतिच्छवि और प्रतिक्रिया के रूप में आमतौर से अपने साथी के व्यवहार में परिलक्षित होते हैं।

दाम्पत्य जीवन और सहचरत्व

मनुष्य जाति एक है। उसके दो भाग सृष्टि से नर-नारी के रूप में इसलिए किए हैं कि कुछ कमी पुरुष में रहती है, कुछ नारी में। कुछ आवश्यकतायें पुरुष की हैं, कुछ नारी की। दोनों एक-दूसरे के सहायक-सहयोगी बनकर उन आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति करते हैं। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि एक-दूसरे से भिन्न हैं, श्रेष्ठ या निकृष्ट हैं। यदि ऐसा कुछ मूल्यांकन करना हो तो वरिष्ठता नारी के हिस्से में ही आती है। क्योंकि वही जगत्-जननी है। उसी की कोख से समस्त मनुष्य समुदाय का उद्भव हुआ है।

दाम्पत्य जीवन में पत्नी को उसके गुणों के अनुरूप कितने ही नामों से पुकारा जाता है। परिवार व्यवस्था संभालने के कारण उसे गृहिणी एवं गृह-लक्ष्मी कहते हैं। धर्म कर्तव्यों में सहायक रहने और सर्वतोमुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त करने के कारण उसे धर्मपत्नी एवं कल्याणी कहा जाता है। काम विनोद में भागीदार रहने के कारण उसे कामिनी, रमणी नाम दिया गया है। ऐसे अनेक नामों में अर्धांगिनी का भी एक नाम आता है, जो तथ्य की दृष्टि से अधिक सार्थक है। यों कहने को तो उसे जीवन-संगिनी, प्राणबल्लभा आदि भी कहते हैं, पर उस कथन में अत्युक्ति की मात्रा अधिक है। इतना श्रेय न भी दिया जाय तो उसे सहचरी, सहभागिनी नाम देकर सार्थक बनाया ही जाना चाहिए। नाव को दो मल्लाह मिलकर चलाते हैं। एक के काबू में बहुत छोटी डोंगी ही आ पाती है। बड़ी होने पर उसमें कम से कम दो संचालक तो होने ही चाहिए। गाड़ी में दो पहिए ही नहीं होने चाहिए, वरन् वे समान भी रहने चाहिये। एक पहिये की गाड़ी नहीं चलती। फिर एक छोटा, दूसरा बड़ा हो तो भी परिवहन के प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती। यही उदाहरण दाम्पत्य जीवन पर भी लागू होते हैं।

आवश्यक नहीं कि दोनों का कद, ऊँचाई-मोटाई, शिक्षा, सुन्दरता, कुशलता समान ही हो। दोनों के बीच बहिरंग दृष्टि से अन्तर भी हो सकता है। पर भावना की, आत्मीयता की दृष्टि से दोनों के बीच इतनी समता होनी चाहिए कि एक-दूसरे के सुख-दुःख में समान रूप से साझीदार रहें, मिल-जुलकर रहें। मन का बोझ बाँटायें और क्रिया-कलापों में सहयोगी, सहायक बनकर बोझ बाँटायें। इतना बन पड़ने पर ही दाम्पत्य जीवन को सफल-सार्थक माना जा सकता है।

ऐसी साधारण घटनायें दिन में कई-कई बार भी हो सकती हैं। जिनसे मतभेद का आभास मिले। ऐसा भी हो सकता है कि अभिरुचि-आदतें भिन्नता लिए हुए हों। ऐसी दृष्टि में दोनों पक्षों को व्यक्तित्व की स्वाभाविक भिन्नता का ध्यान रखना होता है और उसे निबाहते रहना पड़ता है। भगवान ने दो वस्तुयें समान नहीं बनाईं। एक ही पेड़

पर लगने वाले असंख्य पत्तों में भी हर एक की बनावट अलग-अलग होती है। हर प्राणी की आकृति में भिन्नता पाई जाती है। दो चेहरे एक जैसे कहीं भी नहीं मिल सकते। इसी प्रकार का हर किसी का व्यक्तित्व अलग-अलग ढंग का होना चाहिए। सर्वतोभावेन समग्र रूप से कोई भी नर-नारी एक जैसे नहीं हो सकते। इस प्रकृति संरचना को आरम्भ से ही ध्यान में रखना चाहिए और दोनों साधियों के मन में इतनी गुंजाइश रहनी चाहिए कि एक-दूसरे के लिए इतनी सुविधा दें कि थोड़ी भिन्नता की दर-गुजर होती रहे। किसी को भी इतना तुनक-मिजाज नहीं होना चाहिए कि पूरी तरह से दूसरे को गुलाम समझे और इसका दबाव दे कि उसकी इच्छा ही सर्वोपरि है। उसकी आज्ञा पालन में ननुनच नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार का दबाव अस्वाभाविक होने के कारण अनुचित भी है। दो शरीरों का जब तक अस्तित्व रहेगा। तब तक यह स्थिति बनी रहेगी कि किसी कदर भिन्नता बनी रहे। साथ ही इतनी उदार सहिष्णुता भी बनी रहनी चाहिये कि वह निभती भी रहे। हँसते-हँसाते उस भिन्नता को एकता के स्तर तक पहुँचाया जा सके। खिचड़ी पकाने में चावल और दाल का अस्तित्व मिलकर एक हो जाता है। किन्तु उनका मौलिक स्वरूप फिर भी पहचाना जा सकता है। मिलन होते हुए भी दोनों का अस्तित्व अलग से पहचाना जा सकता है। इस दृष्टिकोण को विकसित किये बिना पति-पत्नी उस स्तर पर नहीं पहुँच सकते, जिसे समता और ममता कहा जा सकता है।

मित्रता रहते हुए भी दोनों पक्षों की मनःस्थिति संकोच रहित होनी चाहिये। परायेपन में किसी कदर दुराव बना रहता है। इसे दबूपन, झेंप, संकोच आदि नाम भी दिये जा सकते हैं। यह अस्वाभाविक स्थिति तभी तक टिकती है, जब तक परायेपन का भेदभाव रहता है। उसके रहते जी खोलकर अपनी बात कहने और दूसरे की सुनने का अवसर नहीं आता। विचार-विनिमय का सिलसिला चलते रहना चाहिये। आग्रही किसी को भी नहीं होना चाहिये। तर्क, तथ्य, विवेक और औचित्य को कसौटी मानकर, मतभेदों को एक-दूसरे के सामने प्रकट करते रहा जाय। इसके कथन को भी महत्व दिया जाता रहे। तथ्यों का विश्लेषण किया जाता रहे, तो बहस के कुछ ही कदम चलने के उपरान्त समझौते का बिन्दु मिल जाता है। इस प्रकार कामचलाऊ बिन्दु तलाश करते रहने पर मतभेदों के बावजूद एकता बनी रह सकती है। इसके विपरीत कोई पक्ष यदि अपनी बात का आग्रही बना रहे, जिद पर अड़ा रहे। अपने ही कथन को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना ले तो फिर समझना चाहिये कि मनोमालिन्य की जड़ जमीं और कलह का आधार विकसित हुआ। यह स्थिति अच्छी नहीं, प्रेम को थोड़ा-थोड़ा पोषण मिलते रहने पर वह बढ़ता रहता है। किन्तु यदि उसमें खाई खोदना शुरू किया जाय तो वह फूटे घड़े के समान आरम्भ में भरा होने पर भी कुछ समय में खाली हो जाता है। चिन्गारी

तभी तक प्रज्वलित रहती है, जब तक उसमें ईंधन पड़ता रहता है। साथी की सदभावना पर पूरा विश्वास किया जाना चाहिये। मतभेदों को भावना के साथ नहीं जोड़ना चाहिये। लोक व्यवहार कैसे चलाया जाय, इसी में अन्तर देखा जाय और उसे सहमति स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय। यदि वैसा न बन पड़े तो भी उस भिन्नता को चेहरे की बनावट में भिन्नता की तरह सहन करना चाहिये। एक गुलदस्ते में कई रंग के फूल होते हैं, पर वे परस्पर लड़ते-झगड़ते नहीं। अपनी-अपनी विशेषता के कारण गुलदस्ते को शोभायमान बनाते हैं। न केवल दाम्पत्य जीवन में वरन् पूरे परिवार के विचार स्वातन्त्र्य को सहन किया जाना चाहिए। देखना इतना भर है कि कहीं इस मतभेद में कोई अनीति तो नहीं पल रही है। पतनोन्मुख दोष-दुर्गुणों को प्रश्रय तो नहीं मिल रहा है।

पिछली शताब्दियों से नारी के मानवी अधिकारों का अपहरण नर द्वारा किया जाता रहा है। प्रजनन की विशेषता के कारण वह शारीरिक दृष्टि से दुर्बल भी हो जाती है और गृहस्थी के व्यस्त कार्यों में निरन्तर फँसी रहने के कारण वह स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन भी नहीं कर पाती। ऐसी दशा में उसे दुर्बल, पिछड़ी, कम उपयोगी, महत्वहीन माना जाने लगा। इतनी मान्यता बनते-बनते उसका शोषण भी चल पड़ा। शोषण का कारण यह बना कि उसकी समता छिन गयी। चरण दासी का दर्जा दिया गया। उसे पुरुष वर्चस्व के आगे सिर झुकाकर रहने के लिए बाधित किया गया। दुहरे मापदण्ड बने। स्त्री को पग-पग पर अपनी हीनता अनुभव कराने के लिए प्रचलनों का पूरा-पूरा जाल-जंजाल बुनकर खड़ा कर दिया गया। पति को परमेश्वर मानने की आस्था जगाई गयी। विधवाओं को अविवाहित रहने एवं सती के रूप में चिता में जलने, जल जाने, शोभा-सज्जा त्याग देने जैसे प्रचलन बनाए गए। जबकि पुरुष के विधुर हो जाने पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध या अनुशासन उस पर लागू नहीं होता था। स्त्रियाँ घर में ही रहें। घर से बाहर निकलें तो कोई निरीक्षक साथ लेकर चले। पुरुषों के आगे घूँघट-पर्दा निकालकर रहें। इन अनुबन्धों के कारण यह बताये गये कि स्त्रियाँ भावुक होती हैं। वे किसी अन्य की ओर आकर्षित हो सकती हैं। शील गँवा सकती हैं। प्रतिबन्ध लगाने वालों की मानसिकता ने स्त्रियों की हीनता को ही उजागर किया। यह नहीं सोचा गया कि खुलेआम धूमने वाला पुरुष तो अपनी स्वच्छन्दता का और भी लाभ उठा सकता है। ऐसी दशा में उस पर तो और भी कड़े प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। स्त्रियों को पतिव्रत पालन करने के लिये जितना जोर दिया जाता है, जितना दबाव डाला है, उतना ही पुरुष पर भी पत्नीव्रत पालन करने का अनुबन्ध होना चाहिए। जो मर्यादायें नारी के लिए निर्धारित की गयी हैं, वे ही पुरुष के लिए भी की जानी चाहिये। न्याय यही था। औचित्य इसी का प्रतिपादन, समर्थन करता

था। किन्तु वैसा हुआ नहीं। इसका कारण एक ही रहा कि स्त्री को शारीरिक दृष्टि से दुर्बल माना गया और आर्थिक दृष्टि से उपार्जन में असमर्थ।

जंगल का कानून है “जिसकी लाठी उसकी भैंस” समर्थ का ठेंगा सिर पर। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है। बड़े हिरन-चीतलों को उधेड़ खाते हैं। यह जंगली कानून मानवी गरिमा के प्रतिकूल है। उसे न्यायनिष्ठ होना चाहिए। समता और ममता का परिचय देना चाहिये। आत्मीयता की परिधि में दूसरों को भी लेना चाहिये। दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये, जो दूसरों से अपने लिए चाहा जाता है। मानवी गरिमा इसी में है। किन्तु देखा इसके विपरीत जाता है। वन्य पशुओं को पालतू कर उनके दूध, बाल, माँस, गोबर, श्रम आदि का जितना दोहन, शोषण किया जा सकता था किया गया। मुर्गी जैसी पक्षी और मछली जैसे जलचर भी इसी परिधि में जकड़े गये। उनकी दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाया गया और न्याय-औचित्य को आड़े नहीं आने दिया गया। इसी जंगली कानून का शिकार नारी को बनाया गया। नर की तुलना में नारी को दुर्बल माना गया और जो भी दुर्बल हो उस पर मनमानी करने में कोई हर्ज नहीं समझा गया। यह प्रचलन मध्यकालीन सामन्तवादी अन्धकार युग में हुआ था। पर वही रीति-नीति अभी चली आ रही है। भारत जैसे पिछड़े देशों में डण्डे के बल पर मनमानी के लिये विवश किया गया। पाश्चात्य प्रगतिशील देशों में उसे अनेकानेक प्रलोभनों के बल पर दासता स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करने के लिये फुसलाया गया। स्थिति वही है जो साम्राज्यवादी देशों ने दुर्बल देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करके बनाई है। राजाओं द्वारा प्रचलनों का दोहन होता था। उसी से मिलता-जुलता व्यवहार अब तक चला आ रहा है। इसी का परिणाम है कि नारी अपंग बन कर रह रही है। इसका दूसरा प्रभाव समूचे समाज पर यह पड़ा है कि आधी जनसंख्या को पक्षाघात हो जाने जैसी स्थिति बन गयी है। नारी को नर के गले का पत्थर बनकर लटकना पड़ा है और पुरुष वर्ग को भी अपने भार से लाद दिया है।

अब समय आ गया है कि न केवल नारी समुदाय अपितु समस्त मानव जाति परिस्थिति की विषमता को समझे और अपना दायित्व निबाहे। घर से लेकर शिक्षा, नौकरी हर क्षेत्र में पुरुष-नारी दोनों की सहभागिता अनिवार्य बने। वस्तुतः इस सहयोग के अभाव में पुरुष वर्ग ने खोया ही खोया है। यदि विकास की दिशा में अग्रगमन करना अभीष्ट हो, तो दोनों वर्गों को एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर, कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ना होगा। यही समय की माँग है। आने वाले समय में यही होने भी वाला है।

दाम्पत्य प्रेम : छोटा स्वर्ग सोपान

दाम्पत्य की सार्थकता प्रगाढ़ आत्मीयता में है। पति-पत्नी के बीच समान हित, समान स्वार्थ, एक भविष्य, एक लक्ष्य की बात सदैव मनो में रहनी चाहिये। कभी बिलगाव की भावना मनो में नहीं आनी चाहिये। किन्तु न जाने क्यों चलती गाड़ी का सन्तुलन डगमगा जाता है। इस पर यदि एक दृष्टि डालें तो पाते हैं कि मानसिक असमानतायें जिनके संस्कारों और मनो में घुस बैठी है, वे ही दाम्पत्य की इस फलती-फूलती फुलवारी को रौंद डालती हैं। अतः दाम्पत्य सूत्र में बँध जाने के बाद सदैव स्मरण रखना चाहिये कि दोनों का सुख-दुख, उत्कर्ष-अपकर्ष समान और एक है और भविष्य की चिन्ता दोनों को एक समान होना आवश्यक है।

हमें भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिये कि दाम्पत्य जीवन मात्र शारीरिक आनन्द और प्रजनन के लिये नहीं है वरन् अनन्त आनन्द की अनुभूति और परिवार समाज की निर्माण व्यवस्था में शिल्पी की भूमिका निभाने के लिये है और यह तभी संभव है जबकि पति-पत्नी दोनों भावनात्मक गहराइयों में उतरकर एक-दूसरे को समझने और घुल-मिल जाने का प्रयास करें। नर-नारी के बीच प्रकृति ने जो आकर्षण सँजोया है, उसके पीछे भी दो आत्माओं के बीच प्रगाढ़ मिलन की भावनात्मक क्रियायें सम्पन्न कर एक नवीन सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही है, जिससे जीवन में नया निखार आ सके।

दो वस्तुओं की सम्मिलित रासायनिक क्रिया तीसरी वस्तु को जन्म देती है। औषधि शास्त्रों में भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं, धातुओं अथवा क्षारों के सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप नये परिणाम निर्दिष्ट होते हैं और उनसे नया लाभ उठाया जाता है। नर-नारी के बीच भी ऐसा ही भावनात्मक घुलनशील तत्व विद्यमान है, जिसकी गहन आत्मीयता से दोनों का पुराना स्तर विघटित होकर एक नया स्तर विनिर्मित होता है। आत्म-समर्पण, आत्मीयता, संवदेनशीलता, निष्ठा और ममता की गहराइयों ही उस समीकरण की आधार भूमि प्रस्तुत करती हैं। विवाह का वास्तविक प्रयोजन भी यही है कि दो शरीरों की भिन्नता का आभास समाप्त होकर एक प्राण दो शरीर की अनुभूति होने लगे। ऐसे ही अनूठे और अभिनव दम्पतियों की सन्तानें अगणित विशेषतायें, प्रतिभायें लेकर उभरती हैं। भावनात्मक एकता का यह स्तर प्रकृति की इच्छा की ही पूर्ति है, जिससे जीवधारियों के वंश भी चलते रहें और उनका स्तर भी विकसित होता रहे।

जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हेतु की जाने वाली यात्रा को पति-पत्नी का युग्म ही सहज और सुगम बना पाता है। यही जीवन रथ के दो पहिये और गति-प्रगति हैं। एक की दुर्बलता का दूसरे पर, एक की अयोग्यता का दूसरे पर सहज प्रभाव पड़ता है। इसलिये दाम्पत्य की सफलता

के लिये समान रुचि, स्तर व आदर्शों का होना बताया गया है।

यदि गुण, कर्म, स्वभाव में थोड़ी भिन्नता भी हो तो विचारशील कहे जाने वाले से अपेक्षा की जाती है कि वह जीवन साथी का निर्वाह करें और स्नेह, प्रेम के मधुर सम्बन्धों को सदैव सींचते-सँजोते रहे। साथ ही क्रूरता-कटुता से, तलाक, दुर्व्यवहार, कलह, हत्या, आत्महत्या की प्रताड़नाओं की आग से अपने दाम्पत्य की फुलवारी को झुलसने से बचाये रखें।

नर-नारी पूरक सत्तायें हैं। नारी के अन्दर अनेक दिव्य अनुदान विद्यमान हैं। उन पर अशिक्षा और रूढ़िवादिता के कारण जमी राख की परतों को हटाने, उखड़ाने, नारी को सुयोग्य बनाने की जिम्मेदारी पुरुष की है। क्योंकि वर्तमान समाज व्यवस्था तथा गृहस्थ जीवन में वर्चस्व उसी का है। उस अधिकार के साथ उसका कर्तव्य भी बनता है कि स्वयं आगे बढ़कर नारी को सुयोग्य, सुशील बनाने की भूमिका निभाए।

विज्ञानों का कथन है कि—‘स्वर्ग का समस्त सुख-वैभव माता के चरणों में है। यदि तारे आकाश की सुषमा-शोभा हैं तो नारी इस धरित्री की, मनुष्य को सभ्य-सुसंस्कृत बनाने में उसी की प्रधान भूमिका रहती है। प्रसिद्ध मनीषी ग्रियर्सन का कहना है कि समाज के आचरण को बनाना घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना तथा उदारता, कोमलता और सहनशीलता से इस जीवन की विषम यात्रा को सरल-सुखद बनाना स्त्री का कार्य है। सुशिक्षित नारी अपने सदगुणों के कारण घर में स्वर्गीय वातावरण विनिर्मित कर सकती है।

दाम्पत्य जीवन को परस्पर स्नेह, सम्मान, समता और सहयोग के आधार पर ही सुखी एवं सफल बनाया जा सकता है। पतिव्रत मात्र की शिक्षा देने से काम नहीं चलेगा। सफल गृहस्थ जीवन के लिये पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक है। यह इसलिये कहा जा रहा है कि प्रत्येक पति अपनी पत्नी में उन सभी गुणों को देखना चाहता है, जो किसी भी गुणवान एवं आदर्श नारी में देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार पत्नी भी अपने पति में उन तमाम गुणों को देखना चाहती है जो किसी उत्तम पुरुष में पाये जाते हैं। प्रत्येक पत्नी चाहती है कि उसका पति सुन्दर व स्वस्थ हो, मिलनसार एवं उत्तम सूझ-बूझ वाला हो। स्वभाव से विनम्र एवं अच्छे संस्कारों वाला हो। अपने एवं बच्चों के प्रति दायित्वपूर्ण कर्तव्यनिष्ठा व ईमानदारी की भी आशा प्रत्येक नारी अपने पति से करती है और सबसे बढ़-चढ़कर चाहती है, पति का असीम प्यार, जिससे वह एक भी क्षण वंचित रहना नहीं चाहती।

इसी तरह पति भी अपनी अर्धांगिनी से अपेक्षा करता है कि वह सुन्दर, सुशील एवं सुसभ्य हो। साथ ही उसे खूब प्यार करती हो और समय-समय पर उसका

इजहार भी करती हो। मिलनसारिता एवं अच्छी सूझ-बूझ की वह भी अपेक्षा रखता है। ईर्ष्यालु एवं झगड़ालू प्रकृति की नारी से सभी दूर रहना चाहते हैं। अधिकार जताने, वरिष्ठता सिद्ध करने से भी बात बनती नहीं, उलझती ही है। पत्नी से सबसे अधिक अपेक्षा जो पति को रहती है, वह है अपने प्रति, बच्चों एवं परिवार के सदस्यों के प्रति उसका आत्मीयता-अपनेपन से परिपूर्ण व्यवहार का होना। विनम्र, सहिष्णु एवं व्यवहारकुशल नारी घर-परिवार या दाम्पत्य जीवन में उगते कटुता के अंकुरों को समाप्त कर देती है और सबको एक स्नेह सूत्र में पिरोये रखती है।

पति की यह इच्छाएँ उचित हैं पर इन्हें प्राप्त करने के लिये ठीक ऐसा ही व्यवहार उसको भी पत्नी के साथ करना होगा। एकांगी इच्छापूर्ति इस जमाने में कठिन है। दबाव के आधार पर नहीं आदान-प्रदान की नीति अपनाकर ही आदर्श गृहस्थ जीवन जिया जा सकता है।

परिवार को धरती का स्वर्ग बताया गया है। पर बात तभी बन पड़ती है, जब पति अपनी भूमिका स्नेह और विश्वास के सम्पादन में अग्रिम रहे और पत्नी की भूलों को उपेक्षा के गर्त में डालता रहे। दाम्पत्य जीवन में अभ्यास किया हुआ सद्भाव समस्त परिवार में वितरित होता है और अपने छोटे संसार को आनन्द से परिपूर्ण बना देता है।

पति के विकास में पत्नी का सहयोग

परिवार की प्रगति और समृद्धि के लिए आय के अनुसार व्यय का सन्तुलन आवश्यक है। घरेलू व्यवस्था एवं साज-सँभाल की जिम्मेदारी पत्नी को होती है, पति की बाह्य व्यवस्था एवं आय की। यह कुशलतापूर्वक परिश्रम से ही सम्भव है। इसके अभाव में सम्भावित उपार्जन-उत्पादन असम्भव है। पति की अच्छी आमदनी के बाद भी पारिवारिक व्यवस्था लड़खड़ाते रहना तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होने का एक कारण यह भी है कि पत्नी द्वारा गृहस्थी के कर्तव्यों की गैर जिम्मेदारी एवं अनावश्यक खर्चों, आदतों का शिकार होना। अनावश्यकता और इच्छाओं में भेद न समझ पाने के कारण घर को कबाड़ी की दुकान बनाते रहने और पति पर अपना पूर्ण अधिकार समझने वाली महिलाएँ उनके विकास में बाधक होती हैं।

वे यह आशा करती हैं कि उनके पति अधिकांश समय उनके साथ में ही रहें। जब कभी उनके अधिक काम, परिश्रम करने एवं व्यस्तता के अवसर आते हैं या कार्यवश कहीं दौरे के कार्यक्रम बनते हैं तब वे पति को हतोत्साहित करती रहती हैं। अपने स्नेह का प्रदर्शन केवल साथ में रहने पर ही समझती हैं। उसके आदर के लिए न चाहते हुए भी उन्हें बहाना करके इन अवसरों से

बचना पड़ता है। किन्तु यह उन्हीं के भविष्य के लिए घातक ही होता है। कम काम करने वाले शासकीय कर्मचारी उच्च अधिकारियों की नजर में चढ़ जाते हैं। शारीरिक परिश्रम करने वाले मजदूर भी परिश्रम की चोरी करते हैं। फलस्वरूप इसका कुप्रभाव आय पर पड़ता है। होना यह चाहिए कि पत्नी अपने पति को घर के कामों से निश्चित रखकर अधिक परिश्रम हेतु प्रोत्साहित करें। यदि वह स्वयं भी किसी तरह उसके सहयोग के योग्य हैं तो इसकी उपेक्षा न करें। पति के अच्छे संकल्पों तथा कार्यों को पूर्ण करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते रहने से प्रगति एवं सुख-समृद्धि की वृद्धि होती रहती है।

अपने से सम्पन्न परिवारों से अपनी तुलना करते रहने से अपना स्तर घटिया लगने लगता है। उसकी बराबरी करने के लिए प्रयत्न से नारियाँ अछूती नहीं रहती। वे उनकी शान-शौकत देखकर पूर्ति के लिए लालायित और चिन्तित रहती हैं। पति से अच्छे भोजन, कपड़े, जेवर आदि की कीमत एवं विलासिता की वस्तुओं के भोग के लिये वे हठ करती हैं। उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति का हठ के सामने कोई ध्यान नहीं रहता। पूर्ति न हो सकने पर पति को झिड़कियाँ देती रहती हैं। इतना ही नहीं आय बढ़ाने के अनेकों विकल्प देती हुई भ्रष्टाचार तथा बेईमानी के लिए उन्हें सलाह भी देती हैं। बातों-बातों में कर्जा का भार बढ़ाते रहना तो साधारण बात बन जाती है। पत्नी को प्रसन्न रखने हेतु विवश होकर अनैतिक कदम उठाना पड़ता है।

इन कार्यों में एक दो बार सफलताएँ मिल जाने पर ऐसा करते रहने की हिम्मत बढ़ जाती है। बिना मेहनत से ही धनोपार्जन होने लगता है तो आलस्य-प्रमाद आदि दुर्गुणों का आदत में समावेश हो जाता है। इससे उनकी कार्यक्षमता और योग्यता क्षीण होती जाती है तथा भावी प्रगति के द्वार बन्द हो जाते हैं। यदि पत्नी अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार व्यय करे तथा अनावश्यक इच्छाओं की पूर्ति हेतु हठ न करें तथा अपने से कम साधन-सुविधा वाले परिवार से तुलना करें, तो निरर्थक इच्छाओं को प्रश्रय नहीं मिलता। अर्थाभाव में भी परेशानी अनुभव नहीं होती और सन्तोष, धैर्य के साथ जीवन के सुखों को भोगा जा सकता है। इतने में ही कुछ बचत करके या उत्पादन कार्यों में सहयोग देकर पति को ईमानदारी एवं परिश्रम के लिए प्रोत्साहित कर सकती हैं। ईमानदारी की हर स्थान में माँग होती है। योग्यता, उसके विश्वास की छाप जमाने से प्रगति के अवसर प्राप्त होते हैं।

कुछ महिलायें ऐसे स्वभाव की होती हैं कि दिन-भर यहाँ-वहाँ गपशप करती रहती हैं और व्यर्थ में समय नष्ट करती हैं। मेल-मुलाकात खाना-पीना, पार्टी, शृंगार आदि कार्यों से उन्हें फुरसत नहीं मिल पाती। दिन

भर के काम-काज से थका-हारा पति घर आता है। तब वह घर का वातावरण साफ-सुथरा एवं व्यवस्थित देखकर प्रसन्न हो जाता है। इससे उसकी दिन भर की थकान एवं कुण्ठाएँ समाप्त हो जाती हैं। मन हल्का हो जाता है किन्तु यदि घर में पैर रखते ही गृहस्थी का सामान गन्दा, अस्तव्यस्त पड़ा दिखाई देता है, अनेकों परेशानियाँ तथा समस्याओं की बौछार शुरू होने लगती है, तो उसका मन तनाव युक्त होकर खिन्न हो जाता है। थकान और भी बढ़ जाती है। घर की विमृखलित व्यवस्था से परेशानी बढ़ जाती है। ऐसे वातावरण में कोई कार्य योजनाबद्ध रूप से प्रगतिशील दिशा में नहीं बढ़ पाता तथा इसका दुष्परिणाम यह होता है कि शारीरिक क्षमता एवं मानसिक योग्यता क्षीण होने लगती है। घर की समस्याएँ ही दिनभर मस्तिष्क में बनी रहती हैं। कार्य कुशलता की कमी से प्रगति के अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। महिलाएँ ऐसे प्रसंग न आने दें और सुव्यवस्थित वातावरण बनाये रखकर पति को प्रसन्न रखते हुए उसकी कुशलता को बढ़ाते रहने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

यह स्वाभाविक है कि परिश्रम करने वाले पुरुष अपनी पत्नी से काफी सुख-सुविधाओं की आशा करते हैं ताकि उनका कार्य सुव्यवस्थित चलता रहे। यदि स्वयं पत्नी ही पति से अनेकों इच्छाओं की पूर्ति की आशा रखे तो उसका ध्यान एवं मनोयोग कार्य को सम्पन्न करने में नहीं, गृहस्थी में बँटा रहेगा। पत्नी का कर्तव्य हो जाता है कि वह इस तरह बाधक न बने। अपनी ओर से इस बात के लिए पति को आश्वस्त रखे कि उसे कोई दुख या कष्ट नहीं है और न कोई इच्छा। इस बात का विश्वास होते ही वह अपने व्यावसायिक कार्यों को विशेष रुचि के साथ करता है। इसके लिये वे प्रोत्साहित भी कर सकती हैं।

उनके कदमों को प्रगति की ओर बढ़ाते रहने के लिए खाने-पीने, सोने-जागने, काम पर जाने-आने आदि की व्यवस्था ऐसी है जिस पर थोड़ा भी ध्यान देकर पत्नी की ओर से सुविधा दी जाय तो इससे कार्य की गति एवं कुशलता पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। किन्तु इनकी ही चिन्ता करते रहने पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि पत्नी प्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक कार्यों में सहयोग न दे सके तो भी गृहस्थी की व्यवस्था, कार्य-कुशलता एवं सन्तोष-वृत्ति द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दे सकती है, इस थोड़े से ही कर्तव्य पालन से यदि पति की उन्नति हो जाय या समाज में कोई उच्च स्थान मिल जाये तो इससे पूरे परिवार का सम्मान बढ़ता है, जो पत्नी के लिये भी गौरवशाली होता है। अतः उसे अपनी तरफ से सतर्क रह अहमन्यता त्याग कर विकासशील कार्यों में अपना कर्तव्यनिष्ठ कदम उठाया जाना सभी दृष्टियों से उत्तम है।

सुखी दाम्पत्य के स्वर्णिम सूर

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयता पूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों; यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिए पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं, यह कर्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्व मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष से स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी परस्पर की आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा-आलोचना करना भी इतना ही बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थक कर घर आने पर, उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी उसमें धुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन

पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुतः परस्पर सच्चाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमता से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनाएँ और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हैं, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए भावनात्मक परिष्कार का उद्देश्य स्त्री-पुरुष को नेक और सुशील बनाना होता है। पुरुष में पुरुषत्व के, स्त्री में स्त्रीत्व के गुण विद्यमान हों तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन सुख से न बीते। अन्य सारी योजनाएँ—इन्हीं गुणों के विकास की माध्यम हैं। मुख्य रूप से पुरुष में शक्ति, साहस, सक्रियता और निर्भयता आदि गुणों का समावेश हो और स्त्री में कोमलता, मृदुता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण होने चाहिए। दोनों के स्वभाव में अपने-अपने गुणों का पर्याप्त स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि का परिमार्जन अपने आप होता है और दाम्पत्य-जीवन में घनिष्ठता बढ़ती जाती है और उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती, ऐसे ही घरों में श्रेष्ठ और सद्गुणी सन्तानें जन्म लेती हैं और उनसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन सुखी एवं समुन्नत होता है इसलिए दाम्पत्य-जीवन को पवित्र बनाना, उद्देश्यपूर्ण रखना प्रत्येक गृहस्थ का मूल धर्म कर्तव्य है।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम—दाम्पत्य जीवन को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाये रखने के लिए जिस प्रेम की आवश्यकता है, जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है वे कभी भी किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिए तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष-दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नजर नहीं आता, प्रेम मानव अन्तःकरण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से यह आकांक्षा लेकर आती है कि उसे अपने ससुराल में

सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में उठ खड़े होते हैं।

इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए, जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आपको न्यूछावर कर देने के लिए उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य-जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल, मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण होता है। सुख-सन्तोष का जीवन फूस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है, बशर्ते कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को स्थिर रख सकें।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं। किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटाये, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें, यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का अप्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।

पति और पत्नी का सम्बन्ध

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति।
दम्पत्यो रेष वै धर्मः सहधर्म कृतः शुभः॥

—विष्णु पुराण

पत्नी पति को देवता के समान और पति पत्नी के समान समझे। दोनों का धर्म और कर्तव्य समान है।

भार्यापत्युर्वृतं कुर्याद् भार्यायाश्चेत्पतिर्वृतम्।

संसारोऽपि हि सारः स्याद् दम्पत्योरेक कः॥

यदि पति-पत्नी एक हृदय हों तो यह असार संसार भी सारवान बन जाता है।

पत्नी के पति के प्रति कैसे भाव रहें ? इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

न कामये भर्तुविनाकृता सुखं

न कामये भर्तु विनाकृतादिवम्

न कामये भर्तुविना कृता श्रियं

न भर्तुहीना व्यवसायि जीवितुम्

‘मैं पति के बिना सुख नहीं चाहती, बिना पति के स्वर्ग नहीं चाहती, बिना पति के धन नहीं चाहती, बिना पति जीना भी नहीं चाहती।’ ऐसे ही भाव पति भी पत्नी के प्रति रखें।

सर्व तीर्थ समो भर्ता सर्व धर्म मयः पति।

मखानां यजनात् पुण्यं घद् वै भवति दीक्षिते

तत् पुण्यं सप्तवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥

—पद्म भूमि. ४१/१४-१५

अर्थात्—पति में सब तीर्थ समाये हुए हैं। पति ही सर्व धर्ममय है। यज्ञ और दीक्षा का जो पुण्य है वह स्त्री को पति की पूजा से तत्काल प्राप्त होता है।

स्त्री के लिए जो व्यवहार पति के लिए आवश्यक बताया गया है, वही व्यवहार पति पत्नी के साथ भी करें। कहा गया है—

नास्ति भार्या समं तीर्थं नास्ति भार्या समं सुखम्।

नास्ति भार्या समं पुण्यं तारणाय हिताय च।

—पद्मपुराण

‘पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं, पत्नी के समान कोई सुख नहीं, पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं। दुःख से तरने और हित साधना करने के लिए पत्नी के समान और कोई नहीं है।

इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति अपने शब्दों में महाकवि कालिदास ने इस प्रकार की है—

गृहिणी सचिवः सखी मित्रः प्रिय शिष्या ललिते

कला बिम्बी।

‘पत्नी ही धर्म-मंत्री, मित्र, प्रिय तथा ललित कलाओं की शिष्या है।’

सन्नुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।

तस्यां त्वरोद्यमानायां सर्वमेव न रोचते॥

मनुस्मृति ३/६०/६२

अर्थात्—‘जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहते हैं, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ उनमें कलह होता है वहाँ सौभाग्य-दायिद्वय स्थिर रहता है। स्त्री की प्रसन्नता से ही सब कुल प्रसन्न रहता है और उसकी अप्रसन्नता से सब अप्रसन्न और दुःखदायक हो जाता है।’

धर्मपत्नी के प्रति पति के कर्तव्य

हमारे यहाँ नारी और पुरुष के कार्यों की एक सीमा रेखा-सी मान ली गई है। घर का काम, रसोई बनाना, बच्चों की देखभाल, सफाई आदि के कार्य स्त्री के माने गये हैं तो घर से बाहर कमाई करना, खेती-नौकरी या कोई पेशा आदि करना पुरुष का काम रहा और यह विभाजन इतना दृढ़ हो गया कि नारी सुलभ कार्यों को करने में पुरुष शर्म-संकोच का अनुभव करता है तो घर की सीमा से बाहर के कार्यों में नारी का प्रयत्न निन्दनीय समझा जाता है। यद्यपि आज के युग में ये सीमायें टूटती जा रही हैं तथापि पूर्व संस्कारों के कारण कम से कम हमारे देश में तो अभी उक्त धारणायें व्यापक रूप में फैली हुई हैं। आज भी नारी और पुरुष के कार्यक्षेत्र की यह विभाजन रेखा टूटी नहीं है।

भले ही इसका कारण कुछ भी रहा हो लेकिन आज की परिस्थितियों में विकास की माँग के अनुसार इस विभाजन को लक्ष्मण-रेखा नहीं माना जा सकता। आज हमें इसकी अनुपयुक्तता पर विचार करना होगा साथ ही इसको मिटाना होगा।

वस्तुतः पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। दोनों का एक दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति पत्नी के कार्यों का विभाजन उनकी सीमा रेखायें कभी निश्चित नहीं की जा सकती। दाम्पत्य जीवन का सार इसी में है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार साथी की तरह एक दूसरे के कामों में मदद करें, योग दें, चाहे वह काम घर के अन्दर का हो या बाहर का।

बहुधा भोजन बनाना पत्नी का काम समझा जाता है और यह ठीक भी है कि यदि पति बाहर काम पर गया है और पत्नी को अन्य कोई काम नहीं है, वह घर पर रहकर भोजन बनावे। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पति को भी इस काम को उसी उत्साह से करना चाहिए, जैसे पत्नी करती है। लेकिन बहुत से लोग इसे अपना अपमान समझते हैं। पत्नी के सामने चूल्हा फूँकने में शर्म महसूस करते हैं। कैसी बिडम्बना है। जो स्त्री जीवन भर चूल्हा फूँकती है, पति को भोजन बनाकर हमेशा देती है, यदि बीमारी-हारी में या किसी परेशानी के समय वह इसमें असमर्थ होती है तो वही पति इसमें अपना अपमान समझता है।

लेकिन समझदार पति जो पत्नी को अपने बराबर साथी की तरह समझता है कभी इसमें संकोच न करेगा। महान् लेनिन के गृहस्थ-जीवन का जिन्होंने अध्ययन किया वे जानते हैं कि वह पत्नी के हर काम में हाथ बँटाता था। पैदल ही चलकर एक साधारण नागरिक की तरह

बाजार से घर का सामान, साग-सब्जी लाता था। कई वर्षों तक तो भोजन एक समय उनकी पत्नी बनाती थी और एक समय वे स्वयं।

यह आवश्यक नहीं अनिवार्य है कि पत्नी की तरह ही घर के कामों में पति को भी कुशल होना चाहिए। पत्नी जीवनभर अपने पति-बच्चों के वस्त्र धोती है, उनकी सेवा करती है, जो भी करना आवश्यक होता है उसमें संकोच अनुभव नहीं करती। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के कपड़े तक उठा कर धरने में, बीमारी-हारी में, उसकी कुछ सेवा-सुश्रूषा करने में बहुत से पति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अपना अपमान समझते हैं। क्या इसी रूप में वे पत्नी की सेवा से उन्नत होना चाहते हैं। सचमुच ऐसे व्यक्ति कभी भी नारी से उन्नत नहीं हो सकते।

बहुत से परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं, उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि कुछ विश्राम करें। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ, आलस्य में पड़े रहकर मौज करने में, ताश-शतरंज खेलने में बिताते हैं, लेकिन पत्नी को कुछ सहारा नहीं देते घर के काम में, ताकि वह भी बेचारी कुछ सुस्ता सकें, विश्राम कर सकें। पति का कर्तव्य है कि जिस तरह पत्नी हमेशा निःसंकोच भाव से सेवा करती है, उसी तरह वह भी आवश्यकता पड़ने पर पत्नी की सेवा करे। उसके आराम-स्वास्थ्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

काम-काज की ही बात नहीं बहुत से लोग अपनी स्त्री के प्रति सहानुभूति और सहयोग का रुख भी तो नहीं रखते। उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से उसे परेशानी पैदा कर देते हैं। रात को साधियों की गपशप, सिनेमा आदि के कारण देर से घर आते हैं। उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी उनकी बाट जोहती रहती है। न वह स्वयं समय पर खा पाती है न सो पाती। पति इस तरह की व्यर्थ परेशानी से पत्नी को छुटकारा दिला सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि वह पत्नी के प्रति सद्भावना रहे, उसकी सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। ऐसी बहुत-सी कृत्रिम परेशानियों को इस तरह दूर किया जा सकता है।

यदि आप अपने दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी पत्नी के स्वस्थ विकास की क्षमता रखते हैं, अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति सच्चे बनना चाहते हैं तो सभी प्रकार पत्नी के कार्यों में सहयोग करें। किसी कारणवश आपकी पत्नी भोजन नहीं बना पाती तो आपका कर्तव्य है कि आप उसी भावना से भोजन बनायें, जिस तरह प्रतिदिन आपकी पत्नी बनाती है।

बीमार पड़ने पर या किसी तकलीफ में पत्नी की सेवा-सुश्रूषा करने में कंजूसी न करें। यही वह अवसर होता है जब आप अपनी स्त्री के ऋण से, जो जीवनभर आपके ऊपर चढ़ता रहता है, मुक्त हो सकते हैं। फिर अपने जीवन साथी की सेवा करने में शर्म क्यों ? इस

बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखें कि आपके द्वारा अकरण ही आपकी पत्नी को परेशानी न उठानी पड़े। इसके लिए अपनी आदतों में, अपने रहन-सहन और कार्यक्रम में सुधार कर लें। पत्नी के भी स्वास्थ्य, मनोरंजन, घूमने-फिरने का ध्यान रखें। किसी पर्व-त्यौहार पर आपकी पत्नी यदि सहेलियों के साथ उत्सव मनाना चाहें तो घर के आवश्यक कार्य आप स्वयं संभाल लें और उसे स्वतन्त्रता के साथ आमोद-प्रमोद का अवसर प्रदान करें। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं और पत्नी के बीच में किसी तरह का भेदभाव पूर्ण व्यवहार कोई सीमा-रेखा न मानें वरन् एक बराबर साथी की तरह व्यवहार करें।

पति-पत्नी परस्पर मन-मुटाव से बचें

पति-पत्नी के रूप में सम्पादित आत्ममेध-यज्ञ द्वारा दो अपूर्ण और अभिन्न सत्तायें एक, पूर्ण और अभिन्न बनती हैं। वस्तुतः यह दो शरीरों का सामीप्य-सम्मिलन नहीं, प्रत्युतः दो आत्माओं का समन्वय है, एकाकार हो जाना है। बाह्य एवं भौतिक दृष्टि से द्वैत का बोध तो हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक स्थिति इसके प्रतिकूल होती है। क्योंकि दो ध्रुव अपने निजत्व को खोकर एक दूसरे से जुड़कर परस्पर समर्पित होते, स्वीकारते हैं। उनके इस स्नेहासिक्त प्रेम-व्यापार-विनिमय से निकटस्थ परिजन अर्थात् परिवार के सदस्य भी लाभान्वित होते हैं। इस पावन परिणय के संस्कारोंपरान्त ही प्रेम का विस्तार मनुष्य कदाचित् सीखना आरम्भ करता है।

मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी माँ के प्रति प्रेमपरक अनुभूति तो स्वाभाविक है, किन्तु जो अभी-अभी अनचीन्हा, अनजाना सदस्य आया है, उसे भी प्रेममय भावों से अभिभूत किया जा सकता है, इसका मांगलिक उद्घाटन विवाहोपरान्त ही होता है। प्रेम की यह विस्तार प्रक्रिया यदि सिमटती नहीं, बल्कि अनुदिन, उत्तरोत्तर, व्यापक एवं विस्तृत होती जाती है तो अन्ततोगत्वा परिवार, समाज राष्ट्र, विश्व अर्थात् व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होने लगती है। जो सम्भवतः मानव-जीवन का वास्तविक अभीष्ट है।

देखा इसके विपरीत ही जाता है, विवाह-संस्कार के बाद कतिपय वर्षों तक तो अनौपचारिक प्रेम, आदर, शिष्टाचार परस्पर बना रहता है, किन्तु जैसे-जैसे गार्हस्थ्य-जीवन का संकट अग्रगामी होता है, वैसे-वैसे ही स्वल्प एवं बेमतलब और बेसिर-पैर की बातों में ही मनमुटाव, तनाव एवं आपसी झगड़े की स्थिति विनिर्मित हो जाती है। प्रेम के स्थान पर घृणा का भाव अपनी कलाबाज्रियाँ दिखाने लगता है।

दाम्पत्य-सूत्र में आबद्ध होते समय जिन पवित्र प्रतिज्ञा-सूत्रों को दुहराया गया था, उसे विस्मृत कर तत्काल में रख दिया जाता है एवं विचार विकृति के कारण कलह का वातावरण बन जाता है। जैसे एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता, एक ध्रुव से विद्युत-प्रकाश सुलभ

नहीं हो सकता, उसी प्रकार का एक हाथ से ताली बजना सम्भव नहीं होता। केवल पत्नी अथवा पति को दोषी ठहराया जाना युक्तियुक्त नहीं है, किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि लड़की जो कल तक अपने भाई, बहिन, माता एवं पिता से सम्बद्ध थी, उसके आचार एवं विचार मातृ-पितृ गृह से ओत-प्रोत थे, आकस्मिक रूप से नूतन-गृह में प्रवेश करती है तो सामंजस्य में कुछ तो समय लगेगा। स्वजनों से, परिचितों से, अपरिचितों एवं अजनवियों के मध्य आती है तो स्वाभाविक रूप से कुछ समय नूतन-परिवार की परम्पराओं से तालमेल बिठाने में लगता है। अग्नि में लकड़ी डाली जाती है तो वह कुछ देर साथ रहने के बाद ही अग्नि के गुण, कर्म एवं स्वभाव को आत्म-सात कर अग्निमय हो जाती है, अग्नि में डालने मात्र से अविलम्ब अग्नि नहीं बनती, इसी प्रकार गंगा समुद्र से मिलकर समुद्र बनती तो है, किन्तु मीलों बाद ही उसकी निर्लिप्तता समाप्त होती है, शक्कर को पानी में डाला जाय और तुरन्त यह अपेक्षा की जाय कि वह मीठा हो गया होगा—कोरी कल्पना है, उसे पानी में घुलाना-मिलाना पड़ेगा, तभी मिठास पैदा होगी। खटाई के सम्पर्क में सम्पूर्ण रात्रि अथवा कुछ घण्टे जब दूध रहता है, तभी दधि का रूप धारण करता है और हमारी अपेक्षा यही रहती है—विशेषकर सास की, ननद की और जिठानी की कि बहू एक ही दिन में हमारे अनुकूल चलने लगे। लोहे का अग्नि-संस्कार भी न हो और अपनी इच्छानुसार मोड़ें, तो मुड़ना सम्भव नहीं, ढालना सम्भव नहीं। छात्र ने अभी कल ही नई शाला में नाम लिखाया है और आज अंग्रेजी बोलना अनिवार्य है, यदि ऐसा चिन्तन बहू के प्रति बनाया जाता है तो वैज्ञानिक एवं न्यायोचित नहीं है। आखिरकार वह भी तो किसी की बेटी है, सास काश बहू को देखते समय बेटी वाला चश्मा लगा ले तो वैषम्य मिट जाय तथा बहू-बेटी समान है की उक्ति सार्थक हो जाय।

सास और ननद की संकीर्ण दृष्टि एक बार क्षम्य भी है, किन्तु जिसके समर्पित होकर अपना गोत्र और वंश बदल कर, जिसके पाणि-ग्रहण को अपने जीवन का अवलम्ब मानकर आई है, वह पति भी उचित सम्मान एवं सद्भाव की अभिव्यक्ति न करे तो फिर उस नव-परिणीता का आश्रय एवं आधार ही ढह गया। बात-बात में खीझ, मनमुटाव, मात्र आपसी समझ का अभाव ही कहा जा सकता है, अपने प्रभुत्व को, वर्चस्व को अरोपित करने की आकांक्षा ही अनेक स्थलों पर मतभेदों का कारण होती है। गृहस्थ-जीवन में कुछ न कुछ गड़बड़ी आये दिन होते रहना कोई अनहोनी बात नहीं है, ऐस अवसरों पर सद्भावना एवं उदारतापूर्वक यह विचार करना अधिक उपयोगी होगा। जब धर्म-पत्नी को सहयोगिनी, सहचरी, अर्धांगिनी कहा जाता है तो उसे भी समान रूप से सोचने, विचारने एवं प्रस्ताव रखने, सलाह देने का अधिकार है, उसे त्याग की दृष्टि से देखें तो भी

वह नर की तुलना में कुछ अधिक ही ठहरती है। अतः पति ही पत्नी को न समझ सके—जिसे जीवन-साथी कहते हैं, तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण बिडम्बना ही कहा जायेगा। ठीक है, पत्नी से भी गलती हो सकती है, किन्तु उसका समाधान दिल दुखाने वाली कर्कश अभिव्यक्ति नहीं है, वरन् विवेकपूर्ण, शालीन सद्भावना है। सन्त तुकाराम से गई-बीती स्थिति तो हो नहीं सकती, पत्नी के मारने पर भी वे हँसकर कहते हैं कि वाह इतने सधे हुए हाथों मारा कि गन्ने के बराबर दो टुकड़े हुए, न कोई छोटा, न बड़ा।

मानव मात्र सम्मान का भूखा है, अतः स्वाभाविक है कि मीन-मेख निकले, छिद्रान्वेषण करे और मन-मुटाव न उत्पन्न हो असम्भव है। जब हम अच्छी तरह से जानते हैं कि नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, भाव-प्रवण एवं सहृदय होती है, अतः जो व्यवहार हमें अपने लिए पसन्द नहीं है, उस व्यवहार को कोमलता की प्रतिमूर्ति के साथ करें तो उसे कैसे पसन्द आ सकता है ? अपना चेहरा जरा अपने दर्पण में देखें तो फिर शिक्कयत समाप्त हो जायेगी।

आत्म-निरीक्षण ऐसे अवसरों पर जब पत्नी की किसी गलती अथवा भूल से क्रोध आये, करना चाहिए। छोटी-सी बात भी विकराल रूप धारण कर लेती है, रस्सी का साँप बन जाया करता है, विद्वेष पनपना और जल्पना पीछे लग जाती है।

पत्नी की प्रतिष्ठा पति की प्रतिष्ठा है, यह भाव विकसित हो जाने पर किसी बात को प्रतिष्ठा का बिन्दु बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पति को पत्नी की अभिरुचियों का पता हो और उसके अनुकूल यदि वह व्यवहार करने लगे तो उसे हानि नहीं, लाभ ही होगा। जिस बात को प्रेम से साथ कहा जा सकता है, उसे अप्रिय भाषा, अशिष्ट-शैली में अभिव्यक्त किया जाय तो किसी को भी पसन्द नहीं आयेगा।

भाषा एवं भोजन के सम्बन्ध में कहा तो यही जाता है कि वह प्रिय, हितकर एवं रुचिकर ही होना चाहिए, जिससे सामने वाले को मन्त्र-मुग्ध किया जा सके। कहते हैं—मीठा बोलने वाला शत्रु को भी मित्र बना लेता है, फिर जो व्यक्ति एक ही नाव पर सवार हों, एक ही नीड के पक्षी हों, उनके वार्तालाप में मधुरता न हो, तो विषाक्त स्थिति का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। परिवार में उल्लास एवं आनन्द तभी टिक सकता है, जब पति-पत्नी संयुक्त रूप से एक दूसरे की भावनाओं, अभिरुचियों का स्वागत करें, मात्र पति ही की इच्छा चले, उसके ही विचारों को महत्व दिया जाय और पत्नी की अवमानना हो तो कुण्ठा एवं नैराश्य कोमलमना नारी में उत्पन्न होने लगेंगे और तज्जनित मनमुटाव का अन्त तो दुखद ही होता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पति यदि चाहे तो अपने चिन्तन एवं दृष्टिकोण को

इस प्रकार बना सकता है। दुनिया के शत-प्रतिशत विचार एवं भाव एक-दूसरे से, किसी भी व्यक्ति के नहीं मिलते। “पिण्डे-पिण्डे मतिर्भिन्न” की उक्ति इस सन्दर्भ में अक्षरशः सार्थक एवं प्रामाणिक मानी जा सकती है। फिर पत्नी से विचार-साम्य कैसे सम्भव है ? एक बात और अधिकतर देखने एवं सुनने में आती है—पति से पत्नी अपने माता-पिता अथवा भाई की अवमानना अथवा निन्दा सुनती है तो वह इसे बर्दास्त नहीं कर पाती—इसका कारण सुस्पष्ट है कि रक्त का सम्बन्ध अपना असर दिखाता है, जिसने जन्म दिया है, उसके विरोध में तो पति महोदय भी सुनना पसन्द नहीं करेंगे। इसका सीधा, सरल एवं सौम्य तरीका यही है कि पत्नी को पति के माता-पिता अर्थात् सास-ससुर का एवं पति को अपनी पत्नी के माता-पिता का सम्मान करना औचित्यपूर्ण है, जिससे रोष एवं विद्वेष की स्थिति उत्पन्न ही न हो सकेगी तथा पारिवारिक जीवन में सुमधुरता, परस्पर सहयोग, सद्भाव और सौहार्द की स्थापना अपने आप हो जायेगी। इसके विपरीत यदि आपसी मनमुटाव पति-पत्नी के मध्य बना रहता है, तो जो शक्ति बच्चों को सुसंस्कृत बनाने, गृह-प्रबन्ध एवं सुव्यवस्थित जीवनयापन करने में लगती, जिससे कि घर में स्वर्ग का अवतरण उत्पन्न हो गया होता, वह शक्ति व्यर्थ नष्ट होती रहती है।

एक स्वर्ण-सूत्र अवश्य इस समस्या के समाधान हेतु अथवा राम-बाण औषधि इस बीमारी के सरल उन्मूलनाय उपयोग में लाई जा सकती है। वह है—पति-पत्नी का चिन्तन। यदि ऐसा हो जाय कि श्रेष्ठ हैं तो दोनों श्रेष्ठ, निकृष्ट हैं तो दोनों निकृष्ट, उठेंगे तो दोनों उठेंगे, गिरेंगे तो दोनों गिरेंगे। तो इससे परस्पर सद्भाव एवं सौहार्द बढ़ेगा, जिससे कलह का नागपाश अपना असर नहीं दिखा सकता। अन्त में निर्विवाद रूप से यही कहा जा सकता है कि संवेदना एवं सहानुभूति दाम्पत्य-जीवन की सफलता की कुंजी है।

सफल दाम्पत्य—सघन-आत्मीयता पर निर्भर

पति-पत्नी के बीच सघन आत्मीयता का विकास ही दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता है। यों उनमें प्रगाढ़ आत्मीयता स्वाभाविक भी है। दोनों के हित एक, स्वार्थ एक, भविष्य एक, परिवार एक हैं। ऐसे में बिलगाव की भावना का तो कहीं स्थान ही नहीं होना चाहिए। किन्तु मानसिक असामान्यताएँ इस आत्मीयता की सहज अनुभूति में बाधक बन बैठती हैं। इसलिए दाम्पत्य-जीवन में बाँधने से पूर्व जहाँ सौ बार विचार जरूरी है, साथी के स्वभाव-गुणों की परख आवश्यक है, वहीं दाम्पत्य-सूत्र में बाँध जाने के बाद इस तथ्य का स्मरण जरूरी है कि अब दोनों का सुख-दुःख, उत्कर्ष-अपकर्ष एक हो गया है और सम्मिलित

भविष्य को संभालने में पूरी निष्ठा तथा लगन से जुटाना आवश्यक है।

वस्तुतः शारीरिक संयोग मात्र से दाम्पत्य-सुख की कोई गहरी अनुभूति सम्भव नहीं है। क्योंकि वह तो हेयर-ड्रेसिंग करा लेने या तेल मालिश कराने, हजामत बनवाने अथवा दाद-खाज खुजलाने से मिलने वाली क्षणिक और तुच्छ तुष्टि के ही समान है। दाम्पत्य-जीवन की अनुभूतियों का आनन्द तभी सम्भव है, जब पति-पत्नी दोनों भावनात्मक गहराइयों में उतरें और एक-दूसरे में घुल-मिल जाने की स्थिति का प्रयास करें। प्रकृति ने नर-नारी के बीच जो आकर्षण सँजोया है, उसका प्रयोजन यही है कि दो व्यक्तियों के बीच प्रगाढ़ मिलन की भावनात्मक एवं रासायनिक क्रियाएँ सम्पन्न हों और इससे दोनों के भीतर एक सृजनात्मक नवीनता आये, दोनों के व्यक्तित्व में एक नया निखार उभरे।

दो वस्तुओं की सम्मिलित रासायनिक क्रिया तीसरी वस्तु को जन्म देती है। औषधि-शास्त्र में भी भिन्न-भिन्न वनस्पतियों, धातुओं अथवा क्षारों के सम्मिलित प्रयोग के नये परिणाम निर्दिष्ट रहते हैं और उनका नया लाभ उठाया जाता है। नर-नारी के बीच भी ऐसे घुलनशील तत्व विद्यमान हैं कि उनमें गहन आत्मीयता से दोनों का पुराना स्तर विघटित होकर एक नया ही स्तर विनिर्मित होता है। किन्तु घुलन और नवनिर्माण की यह प्रक्रिया गहरी भावनात्मक सघनता से ही सम्पन्न होती है। आत्म-समर्पण, आत्मीयता, संवेदनशीलता, निष्ठा और ममता की गहराइयों ही इस एकत्व की आधार-भूमि प्रस्तुत करती हैं। विवाह का वास्तविक प्रयोजन भी यही है। इस स्थिति में शरीरों की भिन्नता का आभास भी नष्ट हो जाता है, एक प्राण दो शरीर की अनुभूति होने लगती है। तब तक ऐसी अभिनव आभा उत्पन्न होती है, जिससे दोनों के शरीर एवं व्यक्तित्व जगमगा उठें। ऐसे अनूठे और अभिनव व्यक्तित्व वाले समरस माता-पिता की सन्तान में अगणित प्रतिभाएँ तथा विशेषताएँ स्वाभाविक ही विद्यमान होती हैं। भावनात्मक सघनता का यह स्तर प्रकृति की इस इच्छा की भी पूर्ति करता है कि विश्व में जीवधारियों का वंश तो चलता ही रहे, उनका स्तर भी विकसित होता रहे।

विवाह का उद्देश्य यदि पाशविक, उन्माद की तुष्टि का प्रबन्ध और संख्या-वृद्धि करने वाला पशुतुल्य प्रजनन हो, तब तो बात और है, अन्यथा यदि इसका उद्देश्य दो व्यक्तियों का संस्कार, उनमें नवीन चेतना का उन्मेष तथा सीमित किन्तु सार्थक सन्तान की प्राप्ति हो तो पति-पत्नी के बीच गहन आत्मीयता की अविरल अनुभूति का उत्कर्ष आवश्यक है।

जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति हेतु की जाने वाली यात्रा को पति-पत्नी का यह अनन्य संयोग ही सहज-सुगम बनाता है। पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन-रथ के दो पहिये हैं, गाड़ी के दो चक्के हैं, दोनों की

गति-प्रगति परस्पर सम्बद्ध है। दोनों में से एक भी दुर्बल या अयोग्य हुआ तो दाम्पत्य जीवन की गति प्रभावित होगी। चाल में लड़खड़ाहट आ जाने पर कभी भी दुर्घटना, टूट-फूट सम्भव है। इससे मात्र-दाम्पत्य-जीवन ही नहीं, परिवार तथा समाज भी प्रभावित होता है।

सफल-सार्थक दाम्पत्य जीवन के लिए समान रुचि, स्तर व आदर्श वाले पति-पत्नी होने चाहिए। अनमेल विवाह जीवन में विषाद, कटुता, विक्षोभ, विग्रह और विनाश का ही कारण बनता है। अतः अनमेल विवाह की रस्म की जड़ों में मट्टा डाला जाना जरूरी है।

मेल से मतलब जन्म-कुण्डली मिलना या कद, वजन, रंग, बनावट आदि देखने भर से नहीं। उसका तात्पर्य है, मनःस्थिति से—स्वभाव, प्रकृति एवं दृष्टिकोण से। जो भावनात्मक दृष्टि से न मिल सकें, उन्हें अनमेल ही कहा जायगा। विवाह से पूर्व दाम्पत्य सहयोग मिलाते समय गुण, कर्म, स्वभाव की-दृष्टिकोण, रुझान एवं चरित्र की विशेषताओं को देखा जाना चाहिए और समझा जाना चाहिए कि वे परस्पर अधिक घनिष्ठ हो सकते हैं या नहीं ? यही मेल मिलना है, इसके विपरीत स्थिति को अनमेल ही कहा जायगा। विवाह से पूर्व इस सम्बन्ध में देख-भाल हो सके तो अधिक उपयुक्त है। यदि वैसा न बन पड़े तो पति-पत्नी का कर्तव्य है कि वे दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए एकता के आधारों को अधिक विकसित करने का निरन्तर प्रयत्न करें। कुटुम्ब के अन्य सदस्यों का भी कर्तव्य है कि इस दिशा में बाधक न बनकर यथासम्भव सहायक ही सिद्ध होते रहें।

इतने पर भी थोड़ी-बहुत भिन्नता स्वाभाविक है, यह तथ्य सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए। निबाहने और समझौता करने की उदारता से क्रमशः सधन आत्मीयता विकसित होती चलती है। जबकि अपनी ही रुचि, इच्छा, कामना को महत्व देने वाले पति-पत्नी मधुर सम्बन्धों में दरार पैदा कर लेते हैं। स्नेह-प्रेम के स्थान पर कटुता-कलह के बीज बोने पर अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं हो जाती, अपितु तलाक, दुर्व्यवहार, कलह, हत्या, आत्महत्या जैसे भयंकर परिणाम ही हाथ लगते हैं।

आत्मीयता के लिए लगभग समान मानसिक स्तर आवश्यक है। थोड़ा-बहुत अन्तर तो स्वाभाविक है, पर उसे भी प्रयासपूर्वक ही मिटाया जा सकता है अन्यथा तनिक-सी भी उपेक्षा बढ़ते-बढ़ते खाई का रूप ले लेती है।

रुचि एवं आदर्शों की अनुरूपता के साथ ही दाम्पत्य जीवन की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि पति-पत्नी को इस विषय में पर्याप्त ज्ञान एवं व्यावहारिक जानकारी है अथवा नहीं ? समुचित जानकारी के अभाव में अनुकूल परिस्थितियाँ भी कुछ सहायक सिद्ध नहीं हो पातीं। इसीलिए पहले अपने देश में लड़कों को गुरुकुलों में और कन्याओं को मातृ-गृह में भावी

गृहस्थ-जीवन की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। गृहस्थ-जीवन के कर्तव्यों-दायित्वों को निभाने की समर्थता आ जाने पर ही घर बसाने की अनुमति दी जाती थी।

नर-नारी परस्पर पूरक सत्ताएँ हैं। इस तथ्य को पुरुष-प्रधान समाज में सर्वप्रथम नर को ही हृदयंगम करने की आवश्यकता है। नारी में अनेक दिव्य अनुदान सदैव विद्यमान रहते हैं। उस पर अशिक्षा, रूढ़िवादिता के कारण जमी राख की परतों को हटाने-उड़ाने की जिम्मेदारी पुरुष की ही है। नारी-शिक्षा के महत्व को अभी तक नहीं समझा गया है। पढ़ाई क सीधा रिश्ता नौकरी से जोड़ दिया गया है। विचारशील पुरुष को अपनी पत्नी के सही सांस्कृतिक शिक्षण का प्रयास भी स्वयं ही करना चाहिए। तभी वह उसके विकसित व्यक्तित्व से, स्वयं के जीवन से भी सम्पन्नता का अनुभव कर सकेगा।

सुसंस्कृत नारी ही समर्पण की गहराई समझती है। स्नेह और विवेक से आपसी सम्बन्ध अधिकाधिक सुदृढ़ स्वस्थ बनते जाते हैं और परस्पर-पूरक दम्पति सार्थक तथा आनन्दपूर्ण जीवन जीते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण वाले पति-पत्नी पारस्परिक मनमुटाव उत्पन्न करने वाले प्रसंगों को चतुराई से उड़ा देते हैं। परस्पर सम्मान और संवेदना की सधनता, भ्रान्ति और कटुता को कभी-भी पनपने नहीं देती। दाम्पत्य-जीवन में सरसता, सरलता, प्रफुल्लता, प्रगाढ़ आत्मीयता और परस्पर की प्रेरणा सदैव आनन्द प्रवाहित करती रहती है। यही उसका लक्ष्य भी है। इसके बिना दाम्पत्य-जीवन निरर्थक ही कहा जायगा। दाम्पत्य-जीवन का वरण कर लेने के बाद सधन आत्मीयता के सभी प्रयास निरन्तर करते ही रहना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावें

दाम्पत्य-जीवन का महल मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य जीवन की नींव लगती है। दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित प्रयास है, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्नेह व आत्मीयता, त्याग, बलिदान जीवन की कठोरताओं, शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उसे सरस, सरल और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पद-पद पर नई आशा, नई उमंग, नव-प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेव से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण आत्मीयता, आदर-सम्मेलन को पाकर सबला देवी गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने वाले उक्त कोमल धागे इतने कोमल भी होते हैं कि तनिक से

झटके में टूट जाते हैं और फिर सम्पूर्ण दाम्पत्य जीवन का सुन्दर महल लड़खड़ा कर ही गिर पड़ता है। पति-पत्नी के व्यवहार की सामान्य सी भूलें असावधानी अथवा अज्ञान से परस्पर के मधुर सम्बन्ध कटुता, द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता में बदल जाते हैं। गृहस्थ-जीवन में फैले हुये गृहकलह, असन्तोष, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े में मनुष्य की उन्नति, विकास, उत्कर्ष सब धरे ही रह जाते हैं। वस्तुतः इनका आधार व्यवहार भी सामान्य-सी बातें ही होती हैं, जिनका ध्यान रखा जाय तो दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से सहज ही बचाया जा सकता है।

पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है, कालान्तर में आत्म-हत्या, हत्या, घोखेबाजी के रूप में कई भयंकर परिणाम भी मिलते हैं। अखबारों में आये दिन इस तरह के समाचार पढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः परस्पर सच्चाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है। इससे बुरे पक्ष का भी गुजारा हो जाता है।

कुछ समय पूर्व अनेकों सदस्यों का मिला-जुला सम्मिलित परिवार सुख-शान्तिपूर्वक अपने दिन गुजारता था, सबका निर्वाह भली प्रकार होता था, अनेकता में एकता की साथ भी पूरी होती थी। किन्तु अब तो बड़े सम्मिलित परिवारों की बात तो दूर परस्पर पति-पत्नी में ही एकता, समता, सामंजस्य नहीं है। इसका कारण है परस्पर अधिकार की भावना, आपाधापी और व्यक्तिगत स्वार्थ का दृष्टिकोण, सामंजस्य की भावना का अभाव।

वस्तुतः एक से दो अथवा अधिक व्यक्तियों का निर्वाह तभी हो सकता है, जब उनमें परस्पर आपाधापी की भावना न हो। अपना स्वार्थ, अपना सुख, अपना लाभ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के संकीर्ण दृष्टिकोण को छोड़ने में ही पति-पत्नी या परिवार के जीवन की गति सम्भव है। घर में तना-तनी या लड़ाई-झगड़ा होने पर बाजार में जाकर मिठाई खाने वाले, पत्नी को दुःखी, असन्तुष्ट, परेशान छोड़कर मौज मजा करने वाले, मित्रों में जाकर हँसी-खुशी मनाने वाले पति कभी भी अपनी पत्नी की सद्भावना और आत्मीयता प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह दिन भर काम से थके हुए पुरुष को समय पर आवश्यक सेवा-सहायता, सहानुभूति न देकर सखियों में गप-शप लड़ाने वाली, पड़ोसिन के यहाँ जाकर बातें बनाने वाली या घर में कुहराम मचा देने वाली स्त्री, दाम्पत्य-जीवन के नीड़ में ही आग सुलगा देती है। इसकी ज्वालाओं से दग्ध पुरुष की निराशा, झूठा अवसाद और

फिर विरक्ति के उच्छवासों में दाम्पत्य जीवन की सभी स्वर्गीय सम्भावनायें नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।

पति-पत्नी का एक समान सम्बन्ध है जिसमें न कोई छोटा न कोई बड़ा। जीवन यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न हृदय साथियों की तरह ही होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्व है। पुरुष जीवन-क्षेत्र में पुरुषार्थ और श्रम के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद व्यवस्था और साधन-सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमानवश पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दाम्पत्य-जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर भावनाओं का अभाव भी है।

दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा होने का एक कारण विवाह और सम्बन्ध तय होने की गलत परम्परायें भी हैं। अक्सर माता-पिता द्वारा केवल जातीय नियम या ऊपरी बातें देखकर ही विवाह सम्बन्ध तय हो जाते हैं। किन्तु इससे विवाह का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसी तरह नई सभ्यता के भावुकता और अन्धप्रेम पर आधारित अनुभव-शून्य विवाह सम्बन्धों के दुष्परिणाम और विफलता कुछ कम हानिकारक नहीं होते।

उक्त दोनों ही आधार गलत हैं। एक अनमेल विवाह है जिसमें दम्पति के विचार, भाव, मानसिक स्तर में भिन्नता रहना स्वभाविक है। दूसरे में विवाह एक बच्चों जैसा खेल बनकर रह जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि विवाह सम्बन्ध में गुण, कर्म, स्वभाव का समुचित मेल मिलाया जाय। गुण, कर्म और स्वभाव की प्रेरणा से होने वाले सम्बन्ध चिरस्थायी, मधुर और सत्यपरिणाम देने वाले होते हैं। सावित्री ने गुणों से प्रभावित होकर सत्यवान को अल्पायु होने पर भी अपना पति चुना था। गुण और कर्तव्य पर आधारित दम्पति के जीवन की अनेकों समस्यायें सहज ही सुलझ जाती हैं।

स्मरण रहे दाम्पत्य-जीवन कई सदस्यों का एक घुला-मिला जीवन है, जिसमें प्रत्येक का अपना-अपना महत्व और स्थान है। दाम्पत्य-जीवन में स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने सपनों की दुनिया में रहकर आकाश कुसुम नहीं तोड़ने चाहिए। अपने आपको ही बड़ा कमाऊ, बुद्धिमान और उपयोगी मानकर अहंकार करना, हर काम का श्रेय स्वयं ही लेना, दूसरों की परवाह न करते हुए अपनी ही चलाना, अपनी ही पसन्दगी को अधिक महत्व देना, दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा करना है। शान्ति, प्रेम, आनन्द, प्रसन्नता के साथ सहजीवन ही दाम्पत्य-जीवन का आधार होना चाहिए, जहाँ त्याग, उदारता, सहिष्णुता, उत्सर्ग, आत्मीयता भी हो। लेकिन किसी एक पक्ष के अनीति या अन्याय की राह पर चलने

का विरोध भी दूसरे को करने का अधिकार है। मन्दोदरी ने रावण का, तारा ने बालि की नीतियों का विरोध भी किया था।

दाम्पत्य जीवन की आधारशिला

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने एक उपन्यास में नारी पात्र से यह प्रश्न पुछवाया है—“क्या आपसी वफादारी और विश्वास के सभी कर्तव्य केवल स्त्रियों के लिए ही हैं। पुरुष जिसे अग्नि की साक्षी में सात फेरे पाड़कर अपने घर लाता है, वह अपने डंडे के बल पर क्या विवाह के सारे दायित्वों से छुटकारा पा सकता है।” नायिका ने यह प्रश्न केवल नायक से ही नहीं, पूरे पुरुष समाज से पूछा है। वफादारी, कर्तव्य-निष्ठा, प्रेम, त्याग और सहिष्णुता के निबाहने की सौगन्ध खाकर पुरुष जब किसी स्त्री को ब्याह कर अपने घर लाता है, तो आशा यही की जानी चाहिए कि दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए की गयी प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे। लेकिन सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि पुरुष अपनी इन सभी प्रतिज्ञाओं को स्त्री पर ही लाद देता है और उससे एक निष्ठा की, प्रेम और विश्वास की अपेक्षा करता है। न केवल एकनिष्ठा तथा साहचर्य की वरन् दासी बनकर रहने तथा अनुचरी का बन्धन निभाने की भी।

इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए किसी विचारक ने लिखा है—“भारतीय पुरुष भले कितना ही उच्छृंखल रहा हो, कामुक रहा हो, व्यभिचारी रहा हो पर वह अपने लिए पत्नी को चाहता है सीता-सावित्री की तरह।” क्या यह सच नहीं है कि सभी पुरुष सीता-सावित्री जैसी पत्नी तो चाहते हैं पर राम और सत्यवान बनना कोई नहीं चाहता।

विवाह कोई सौदा नहीं है, जिसमें भरण-पोषण का दायित्व लेकर निष्ठा, विश्वास तथा वफादारी सब कुछ खरीद लिया जाय। वह आत्म समर्पण है—पत्नी का पति के प्रति और पति का पत्नी के प्रति। जब कोई भी पक्ष केवल दूसरे पक्ष से ही समर्पण और विश्वास की एकांगी अपेक्षाएँ करे तो वहीं से वह समर्पण सौदा बनने लगता है और सौदा ही नहीं शोषण भी। सौदा भी होता है तो बराबर के मूल्यों पर। लेकिन सौदे में भी वह स्थिति बेईमानी का भाव उत्पन्न कर देती है कि थोड़ा सा मूल्य देकर सब कुछ छीन लेने की चेष्टा हो।

एकनिष्ठा और वफादारी का अर्थ मात्र यह नहीं है कि पति पत्नी दोनों केवल यौन-सम्बन्धों के मामले में ही वफादार रहें। यह मानने पर तो विवाह केवल काम सेवन की व्यवस्था ही बनकर रह जाता है। जबकि विवाह का अर्थ बहुत विशाल और ऊँचा है। प्रेम, सेवा, त्याग और सहिष्णुता के आदर्शों का प्रयोग गृहस्थी की शाला में ही होते हैं और इन प्रयोगों को सिद्ध कर सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोग करना होते हैं। काम सेवन तो विवाह

सम्बन्धों की एक छोटी सी आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य भी ऊँचा होना चाहिए।

यदि उस उद्देश्य के साथ एकान्तिक पति-पत्नी सम्बन्ध निबाहे जायें तो तमाम विवाहितों की यौन उच्छृंखलताओं का निदान ढूँढ़ा जा सकता है। दाम्पत्य जीवन के साथ काम को जोड़ने का इतना ही अर्थ है कि व्यक्ति की वासना उमंग नियन्त्रित हो सके। छत पर परनाला इसलिए बनाया जाता है कि बारिश का पानी जो छत पर इकट्ठा हो जाता है। वह उसमें से बह निकले। परनाला न हो तो पानी कहीं भी और किधर भी गिर सकता है। तालाब जब बनाये जाते हैं तो उसमें अधिक पानी भर जाने पर उसके निकलने की व्यवस्था भी होती है। वह व्यवस्था भी परनाले की तरह होती है, जिनमें से अनावश्यक पानी बह कर निकल जाता है। विवाहित व्यक्ति से यौन शुचिता तथा एकनिष्ठा की अपेक्षा इसलिए की जाती है कि उनके पास वह व्यवस्था है, जिससे वह अपनी वासना को नियन्त्रित रख सके।

स्त्रियाँ तो आमतौर पर एकनिष्ठ और वफादार रहती हैं। उन्हें प्रकृति ने बनाया भी इस विशेषता के साथ है कि पुरुषों की अपेक्षा वह नहीं के बराबर कामवेग से रूस्त होती हैं। थोड़ी बहुत वासना जो होती भी है वह भी प्रकृति की आवश्यकता के अनुरूप ही और वह आवश्यकता किसी रूप में पूरी होने के बाद—सन्तान का जन्म होने के उपरान्त समाप्त ही हो जाती है। कतिपय स्त्रियों में जो विकृति होती है वह भी या तो पुरुषों द्वारा प्रेरित अथवा वातावरण दोष के कारण। लेकिन पुरुष इस मामले में भी स्त्रियों से हार गया और वह अपेक्षाकृत उच्छृंखल, उदण्ड तथा कामुक, लम्पट बना रहता है। स्त्रियाँ जबकि संयमी और एकनिष्ठ रहती हैं, पुरुष विवाह के बाद भी कामुक और लम्पट बना रहता है। वह अपनी पत्नी पर तो अत्याचार करता ही है, अवसर मिलता है तो समाज में भी दूषित वातावरण फैलाने से नहीं चूकता।

और विडम्बना यह कि नारियों के सतीत्व को पवित्र रखने के लिए पुरुषों ने उस पर घर से बाहर न निकलने, किसी अपरिचित व्यक्ति से बात तक न करने, मुँह पर हमेशा पर्दा डाले रहने के अनेकों प्रतिबन्ध लगा दिये। कहा जाता है कि इससे उन्हें अपने शील और पतिव्रत धर्म को निभाने में मदद मिलेगी। कहा जा चुका है कि नारियाँ स्वभाव से शीलवती होती हैं। यदि उनके शील भ्रष्ट होने की चिन्ता करते हुए ये प्रतिबन्धात्मक व्यवस्थाएँ करना आवश्यक लगे तो पहली व्यवस्था पुरुष के प्रति की जानी आवश्यक है।

स्त्रियों को इस एक मामले में ही पुरुषों ने छला है—ऐसी बात भी नहीं है पुरुषों ने और क्षेत्रों में भी नारी को बड़ी बुरी तरह छला है—सुविधाएँ, अधिकार, कार्यक्षेत्र, अवसर, व्यवस्था सभी कुछ तो उसने अपने लिए सुरक्षित कर रखी है। परिवार की सार-समहाल और

देखभाल का सारा दारोमदार महिलाओं पर रहते हुए भी पुरुष ने 'मुखिया' का पद अपने नाम पर ही रखा है। घर में ही देखा जाय तो गृहिणी एक तरह से पूरे घर की मालकिन होती है। घर की सारी व्यवस्था, सदस्यों की सुविधाओं और आवश्यकताओं का ध्यान उसे ही रखना पड़ता है। पर अधिकांश परिवारों में कोई निर्णय लेते समय एक पक्षीय मत को ही प्रधानता दी जाती है और वह प्रायः पुरुष का ही होता है अर्थात् परिवारों में भी प्रधानता पुरुष ने अपने लिए ही रख छोड़ी है।

तो निष्ठा, विश्वास, वफादारी, कर्तव्य और दायित्वों के परिपालन पर केवल स्त्री के लिए ही जोर दिया जाता है और उन सबसे मुक्त रहते हुए भी अन्तिम निर्णायक तथा परिवार का एकछत्र अनुशास्ता पुरुष ही क्यों ? न्यायपूर्ण दृष्टिकोण का तकाजा है कि अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों और दायित्वों में भी समानता होनी चाहिए। इस आदर्श मर्यादा के निर्वाह से बचकर पुरुष अपने अहं को भले ही तुष्ट कर ले पर घाटा उसे ही उठाना पड़ता है। परिवारों में आमतौर पर होते रहने वाले क्लेश-कलह, लड़ाई-झगड़े आदि इन हानियों और दुष्परिणामों के ही चिन्ह हैं।

दाम्पत्य जीवन की आधारशिला निर्मल प्रेम और प्रगाढ़ मैत्री है। इस आधारशिला पर विनिर्मित हुए गृहस्थ में ही पति-पत्नी एक-दूसरे की अपेक्षाएँ पूरी कर सकते हैं, एक दूसरे के स्नेह-सौहार्द का आनन्द उठा सकते हैं, एक दूसरे की सुख-सुविधाओं का मित्रतापूर्वक लाभ उठा सकते हैं। ऐसी स्थिति में ही पति अपने विश्वस्त साथी का मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है, सच्चा सहयोग ले सकता है अन्यथा वह एक खरीदी हुई वस्तु की तरह पत्नी का उपभोग तो आज भी कर रहा है। लेकिन उसमें कहाँ वह सुख-शान्ति का निर्मल स्रोत और कहाँ आनन्द की शीतल छाया।

मर्यादा टूटी नहीं, औचित्य छूटा नहीं

रसोईघर तीसरी मंजिल पर और उसमें भी नल नहीं। पानी नीचे के नल से भरना पड़ता था। माताजी थीं पुराने विचारों की—बहू होती ही काम करने के लिये इस मत को मानने वाली। सो वे उसे ही पानी लेने भेजती। पति के लिए यह किसी धर्म संकट के कम नहीं था। एक ओर मर्यादा और दूसरी ओर कर्तव्य।

उन्हें यह सहन नहीं होता था कि पत्नी इस स्थिति में भी पानी का मटका सिर पर लेकर इतनी सीढ़ियाँ चढ़े। वे किसी तरह पत्नी से पानी मँगवाना बन्द कराना चाहते थे। किन्तु यह कार्य आसान नहीं था। एक तरफ उनकी जननी थी और दूसरी तरफ शिशु निर्माण में संलग्न सहधर्मिणी। माँ को कुछ कहते तो मर्यादा टूटती। स्वयं पानी ले आते तो माँ को बुरा लगता है। इस

समस्या का उन्होंने ऐसा समाधान खोज निकाला कि न तो माँ नाराज हुई और न पत्नी को कष्ट।

पति ने अपने नहाने का समय वही निश्चित किया जब पत्नी पानी लेने आती थी। मटका जब भरता तो वह चुपचाप उसे उठा लेते। पत्नी मना करती तो वे उसे चुप करा देते। वह अपने देवता के मनोभावों को समझ गई। वह कुछ नहीं कहती और उनके पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ती जाती। जब वे तीसरी मंजिल पर पहुँचते और एक-दो सीढ़ियाँ ही बच रहतीं तभी वह मटका पत्नी के सिर पर रख देते और स्वयं नहाने के लिए नीचे आ जाते।

यह सूझ-बूझ वाले पति और कोई नहीं भारत रत्न लालबहादुर शास्त्री थे, जिन्होंने राष्ट्रीय और पारिवारिक दायित्वों को पूरी निष्ठा के साथ निभाया था। सहधर्मिणी के स्वास्थ्य तथा सुख की ओर उनका पूरा ध्यान रहता था। वे सदैव अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति सच्चे ही बने रहे। यह उनकी सूझबूझ का ही परिचायक थी कि उन्होंने कर्तव्य का निर्वाह भी कर लिया और मर्यादाओं का उल्लंघन भी न होने दिया। ललितजी ने भी उनके देश सेवा की भावना को समझ उन्हें पूरा-पूरा सहयोग दिया।

पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दोनों का एक-दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति-पत्नी के कार्यों का विभाजन, उसकी सीमा रेखा कभी निश्चित नहीं की जा सकती।

सफल दाम्पत्य जीवन में पत्नी की भूमिका

दाम्पत्य की सफलता पति-पत्नी दोनों के सक्रिय सहयोग और दायित्व वहन पर निर्भर करती है। किन्तु कार्य विभाजन कुछ इस प्रकार का होता है कि भीतरी मोर्चे पर पत्नी की भूमिका ही प्रधान रहती है। नारी अपने प्रकृति प्रदत्त गुणों के कारण अथवा आरम्भ से ही दाम्पत्य की सफलता की धुरी बनी रहने के कारण आज भी दाम्पत्य जीवन की सफलता में तीन चौथाई हाथ बँटाती है।

पुरुष प्रकृति से कुछ कठोर, बलिष्ठ व उद्दाम पौरुष युक्त होने के कारण उपार्जन आदि श्रमसाध्य कामों में आगे रहा अतः उसकी भूमिका बाहरी अधिक हो गयी। स्त्री घर संभालती रही, पुरुष के बरसाती पानी से उद्दाम पौरुष को अपनी ममता और करुणा के सुदृढ़ कगारों में समेट कर जीवन के आँगन में शुभ मार्ग में प्रवाहित करती रही। यह क्रम आज भी कुछ उसी रूप में चल रहा है। पाश्चात्य देशों में नारी ने पुरुष के योग्य श्रम-साध्य कार्यों में भी अपना जौहर दिखाया है फिर भी उससे नारी की महत्ता या गरिमा बढ़ी हो, या घर के

दायित्वों को वहन करने में घटी हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। कहने का तात्पर्य यही है कि दाम्पत्य की सफलता में पत्नी का पक्ष प्रमुख होता है और पति का गौण।

गृहस्थी की गाड़ी चलाने में स्त्री-पुरुष दोनों ने जो काम अपनाये हैं उनमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा, न कोई महत्वपूर्ण और न कोई महत्वहीन। जिस प्रकार देश का शासन चलाने के लिये मन्त्रियों को भिन्न-भिन्न विभाग सौंपे जाते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ सुख साधना में भी बाहर और भीतर के कार्यों का यह वर्गीकरण ठीक भी है और शारीरिक-मानसिक रचना के उपयुक्त भी।

परिवार के भीतर विभाग का संचालन नारी के हाथ में रहता है अतः दाम्पत्य जीवन में भी उसी का रोल अधिक रहता है। नारी पुरुष को जन्म देती है। वह सृष्टा है। पति निर्माण में उसे आगे बढ़ाने में पत्नी का जितना सहयोग रहता है, उतना किसी अन्य का नहीं। इतिहास उठाकर देखें तो बड़े-बड़े महापुरुषों को महापुरुष बनाने वाली उनकी माँ या पत्नी ही थी।

यों कहलाने को 'दाम्पत्य' स्त्री पुरुष के माधुर्य भाव पूरित सहचर्य को कहा जाता है किन्तु इस दाम्पत्य की परिधि इतनी ही विस्तृत है जितनी सूर्य के प्रकाश सफेद रंग की। ऊपर से दाम्पत्य कहलाने वाला यह सम्बन्ध अपने में ठीक उसी प्रकार सात रंग छिपाये हुए है जैसे सूर्य के प्रकाश में। दाम्पत्य में पति-पत्नी की, भूमिका मात्र स्त्री-पुरुष की नहीं होती वरन् पत्नी यहाँ माता, बहिन, मित्र, सखा, संरक्षिका, मार्गदर्शक, पुत्री आदि की भूमिकाएँ भी निभाती हैं। उसी प्रकार पति भी समय-समय पर पिता, भाई, सखा, मित्र, मार्गदर्शक, संरक्षक आदि की भूमिकाएँ निभाता है। इन सभी भावनाओं का सतरंगा इन्द्र-धनुष दाम्पत्य-जीवन में खिलता है। इसमें मुख्य भूमिका पत्नी की होती है। क्रियाओं का दौर उसकी तरफ से चलता है और उसकी प्रतिक्रियाएँ पति की ओर से होती हैं।

दाम्पत्य की सफलता में पति-पत्नी के विश्वास का बहुत बड़ा हाथ होता है। बिना विश्वास के किसी से प्रेम नहीं हो सकता। इस विश्वास के बल पर ही वह अपने माता-पिता और परिवार को छोड़कर पति गृह आ जाती है। यह विश्वास की बहुत बड़ी अभिव्यक्ति है। यह विश्वास बना रहना चाहिए।

विवाह के पूर्व प्रेम सम्बन्धों में चाहे कितनी ही तीव्रता व उत्कण्ठता हो किन्तु उसके पूर्णत्व की प्राप्ति विवाह के पश्चात् ही होती है। उस पूर्णत्व की उपलब्धि के लिये पत्नी ही आगे रहती है क्योंकि प्रेम का जो अक्षय स्रोत उसके पास होता है, यह पुरुष के लिये एक प्रकार से संजीवनी शक्ति का कार्य करता है।

पति अब तक अपनी माता के स्नेह-संरक्षण में रहा होता है तो वह अपनी पत्नी से भी अपेक्षा करता है कि वह उसकी माँ की तरह ही उसके लिये भोजन बनाये, उसकी देखभाल करे, उसकी सेवा करे। उसकी ये अपेक्षाएँ अस्वाभाविक नहीं होतीं। क्योंकि पत्नी के रूप में वह उन सब सम्बन्धों को स्थायी रूप से पा लेना चाहता है, जो उसे आज तक मिलते आये थे। यहाँ उसकी ये अपेक्षाएँ यदि गलत रूप से लगती हैं और यह सोचने लगती है कि ये तो मेरा कुछ भी महत्व नहीं आँकते उन्हें तो बस अपनी माँ और बहिनों के हाथों का काम ही पसन्द है किन्तु बात ऐसी नहीं होती है। कोई पत्नी अपने को फूहड़ कहलाना पसन्द नहीं करेगी। यदि उसे अपने दाम्पत्य को सफल बनाना है तो पति की इन अपेक्षाओं को स्वस्थ दृष्टिकोण से लेना चाहिए। या तो उसे अपनी रुचियों के साथ मोड़ लेना चाहिए या उसकी बात मान लेना चाहिए।

रूप और आकर्षण से पति आरम्भ में भले ही बँधा रहे, आगे चलकर पत्नी की यह अस्थायी पूँजी काम देने वाली नहीं होती। सुरुचि, सम्पन्नता, स्वच्छता आदि ऐसी बातें हैं जो दाम्पत्य की सफलता में बड़ा काम देती हैं। पत्नी का मानसिक सौन्दर्य ही वह अभीष्ट होता है, जिसे पति पाना चाहता है। ऊपरी रूप व आकर्षण उसी की भूख को स्पष्ट करते हैं। स्नेह, सौजन्य, उत्साह, प्रसन्नता, धैर्य, सहनशीलता आदि ऐसी मानसिक सुन्दरताएँ हैं जिनके आगे रूप टिक नहीं सकता। अतः समझदार पत्नियाँ अपने इस मानसिक सौन्दर्य का ही परिचय देती हैं।

जो यह सोचती है कि पति को प्रायः रूप की भूख होती है, यह बात पूर्णतः सत्य नहीं होती। यदि इस बात पर विश्वास करके शारीरिक सौन्दर्य की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाय तो वह पुरुष को असंयमी बना देता है। यह असंयम दोनों के लिये हानिकारक होता है।

कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता। कुशल पत्नियाँ अपने पति को जैसा भी उनका व्यक्तित्व है प्रेम करती हैं। उसे विकसित करने का प्रयास करती हैं। अपने आपको भी वे पूर्ण मानकर नहीं चलतीं, अपनी कमियों को सहज रूप से अस्वीकारती चलती हैं। इस पूर्वाग्रह रहित प्रेम व कमियों की सहज स्वीकारोक्ति का पति पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उसकी दृष्टि में पत्नी का स्थान बहुत उच्च हो जाता है और जब तक परस्पर यह उच्च भाव रहता है दाम्पत्य की वाटिका महकती ही रहती है।

दो भिन्न-भिन्न रुचियों व स्वभावों के व्यक्ति एक साथ रहते हैं तो किसी न किसी बात पर, किसी न किसी को शिकायत रह सकती है। शिकायत करनी भी चाहिए किन्तु अवसर देखकर। जिन्हें अपने दाम्पत्य सुख को ग्रहण नहीं लगाना है, उन्हें बिना उपयुक्त अवसर

देखे शिकायत नहीं करनी चाहिए। पति को सबेरे आफिस जाते समय बताया गया था कि अमुक वस्तु लौटते समय बाजार से लेते आये। किन्तु वे भूल गये। थके हारे आते ही पत्नी ने उसके लिये पूछा तो उनकी दृष्टि में पत्नी का मूल्य कम हो जायगा और यह भाव आ जायगा कि उसे उनका ख्याल नहीं रहता।

शिकायत की स्थिति में पति से ही कहना ठीक रहता है। दूसरों को कहने में कोई लाभ नहीं मिलने वाला और यह बात तो दोनों को गाँठ बाँधकर रखनी चाहिए कि अपने साथी की बुराई या शिकायत किसी दूसरे से हर्गिज नहीं करें। पुरुषों में प्रायः ऐसी आदत कम ही होती है। महिलाएँ पारस्परिक वार्तालाप में अपने पतियों की शिकायत किया करती हैं जो घूम फिर कर पति तक पहुँच जाती है और दाम्पत्य सम्बन्धों के लिये विष का काम करती हैं।

आजकल जीवन बड़ा विषम व जटिल होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में उपार्जन के क्षेत्र में संघर्ष व जटिलता बहुत बढ़ गयी है। ऐसी स्थिति में पति यदि अपनी बाहरी कटुता को परिवार के वातावरण धो देना चाहे तो यह अस्वाभाविक नहीं किन्तु यदि परिवार में उन्हें वह वातावरण नहीं मिले तो उसकी प्रतिक्रिया मन पर हुए बिना नहीं रहती। अतः घर में उत्सास, हर्ष और प्रसन्नता का वातावरण रखने का पूरा-पूरा प्रयास समझदार गृहिणियाँ करती हैं।

जिस प्रकार दुकान, व्यापार, व्यवसाय या नौकरी का काम करते हुए भी पति समय-समय पर घर-गृहस्थी के कामों में पत्नी का हाथ बँटा दिया करता है, जिससे पत्नी को यह लगता है कि इन्हें मेरा कितना ध्यान है। उसी प्रकार पत्नी भी ऐसे समाज में जब व्यापार या नौकरी में कोई समस्या उत्पन्न हो जाय तो उनका सहयोग करती है, हिम्मत बँधाती है, राय देती है तो उससे दाम्पत्य में प्रगाढ़ता आती है।

पति यदि लड़ाई-झगड़ा करते हैं या खिंचे-खिंचे रहते हैं तो उनसे लड़ने की अपेक्षा उस कारण को खोजना ठीक रहता है, जिससे कि घर में कलह का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। कोई व्यक्ति स्वभाव से झगड़ालू नहीं होता, कुछ कारण या परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने पर विवश करते हैं। यदि उन कारणों को खोजे बिना ईट का जबाब पत्थर से देने वाली रीति-नीति अपनायी जाय तो दाम्पत्य सम्बन्धों में कटुता आते देर नहीं लगती। धैर्य व सहनशीलता के साथ उन गुणधर्मों को सुलझाने में ही हित है जो कलह का वातावरण उत्पन्न करती हैं।

प्रायः बच्चे-बच्ची हो जाने पर महिलाएँ पति की तरफ से उदासीन हो जाती हैं। जबकि होना यह चाहिए कि बच्चों को स्नेह देते हुए भी दाम्पत्य सरसता में कोई कमी नहीं आनी चाहिए। कम से कम आध घण्टे का

समय परिवार के व्यस्त कार्यक्रमों में उसे ऐसा भी निकालना चाहिए, जो उनका और उनके पति का अपना हो। उसमें परिवार के किसी अन्य सदस्य का कोई साझा नहीं हो। पत्नी का पूरी तरह गृहस्थिन या बाल-बच्चेदार हो जाना पति सहज स्वीकारते हुए भी कहीं-कहीं बुझ सा जाता है। अपने आपको उपेक्षित समझने लगता है जो दाम्पत्य की सफलता में बाधा बन जाता है।

दाम्पत्य जीवन में रुचि, एकता का होना उतना आवश्यक नहीं है जितना एक दूसरे को समझना आवश्यक है। यह समझ जितनी गहरी होती जाती है दाम्पत्य की चूनर भी उतनी ही सजीव रंगों से भर उठती है। एक दूसरे को समझने की पहल पत्नी की ओर से हो तो यह और भी अच्छा रहता है। क्योंकि यह तो स्वतः सिद्ध बात है कि जब पत्नी पति को समझकर उसके अनुरूप आचरण करेगी तो यह असम्भव है कि पति भी उसी पद्धति को नहीं अपनाए।

गलतियाँ सभी से होती हैं पति से भी हो सकती हैं और पत्नी से भी। गलती का होना जितना स्वाभाविक है उसे स्वीकार लेना उतना ही सुन्दर है। जो महिलाएँ अपनी भूल को स्वीकारना अपनी हेठी समझती हैं, वे अपने दाम्पत्य सम्बन्धों पर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारती हैं। भूल स्वीकार लेने पर उसकी वह भूल नहीं रहती पर उसी पर अड़े रहने से वह शूल बन जाती है।

प्रेम की शक्ति अपार होती है। जो पतियाँ सच्चे अर्थों में अपने पति को प्रेम करती हैं वे देर-सबेर अपने दाम्पत्य स्वर्ग का सृजन कर ही लेती हैं।

लोकमान्य तिलक तथा उनकी

धर्म-पत्नी

महाराष्ट्र प्रान्त के दापोली ग्राम में बाल गंगाधर तिलक सन् १८७१ में दूल्हा बनकर गये। उस समय उनकी उम्र बहुत कम थी फिर गीता-रामायण के अध्ययन ने उच्च आदर्शों तथा निस्पृह, अनासक्त और निर्लोभ जीवन के सिद्धान्तों में गहन आस्था दी थी। दूल्हे से विवाह की रस्में पूरी होने के दौरान पूछा गया—‘देहेज में तुम्हें क्या चाहिए’

‘आसपास बैठे मित्रों तथा रिश्तेदारों के हृदय में एक आतुरता जागी। बाल गंगाधर इस समय किसकी बात मानकर देहेज माँगने वाले हैं। सभी ने अपने-अपने परामर्श से तिलक को देहेज में पसन्द की रकम माँगने के लिए समझाया था। लेकिन सब कुछ आशा के विपरीत हुआ। तिलक ने अपनी संक्षिप्त सी माँग रखी—‘पढ़ने योग्य अच्छी-अच्छी पुस्तकें, जितनी आप दे सकें।’

ससुराल वालों ने उनकी यह माँग पूरी की हो या नहीं की हो परन्तु आश्चर्य तो उन्हें भी कम नहीं हुआ और जब घर में सिंगार कर रही वधू ने यह सुना कि

दूल्हा दहेज में किताबें माँग रहा है तो उसकी भी हँसी छूट गयी।

लोकमान्य तिलक का विवाह तत्कालीन परम्परा के अनुसार बहुत छोटी उम्र में हो गया था। विवाह के समय उनकी पत्नी सत्यभामा मात्र दस वर्ष की अबोध बालिका थी। महात्मा गाँधी की तरह तिलक को भी आजीवन इस मूढ़ सामाजिक कुरीति का शिकार होने का खेद बना रहा। सत्यभामा से तिलक ६-७ वर्ष ही बड़े थे और उनके लिए विवाह का महत्व गुड़ियाओं के खेल से अधिक महत्व नहीं रखता था। ऐसी स्थिति में हँसी छूट भी गयी तो कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। उनके आगे का ज़िम्मेदार गृहिणी स्वरूप भारतीय नारी की उज्ज्वल परम्परा और जीवनसंगिनी के आदर्शों का ही प्रतीक है।

विवाह के बाद भी लोकमान्य तिलक की शिक्षा जारी रही। १८७२ में उनके पिता का देहान्त हो गया। उस वर्ष उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। माता तो उन्हें बहुत छोटा छोड़कर ही मर गयी थी। तिलक की शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण उनके चाचा की देखरेख में होने लगा। पिता की वसीयत के अनुसार उन्हें जो धन मिला था, उसी के आधार पर वे पूना के डेम्कन कालेज में भर्ती हुए।

बढ़ती वय के साथ-साथ लोकमान्य तिलक और उनकी धर्म पत्नी सत्यभामा विवाह के अर्थ को भी समझने लगे। पति-पत्नी एक दूसरे के सहयोग से अपना विकास और दूसरे की सेवा करने के लिए ही बनते हैं। तिलक हालाँकि कुछ समझदार थे। उन्होंने देखा कि सत्यभामा एकदम निरक्षर है और वे पढ़ते जा रहे हैं। शिक्षा का स्तर भले ही बराबर न हो परन्तु वह खाई इतनी बड़ी तो नहीं होना चाहिए कि जोड़ा ही असंगत लगे। तिलक ने अपनी पत्नी को चचेरे भाई-बहनों की सहायता से पढ़ने की प्रेरणा दी। बात सत्यभामा की भी समझ में आ गयी और वे अपने चचिया ससुर के पुत्र पुत्रियों के साथ अक्षर अभ्यास करने लगीं अपने पति की सेवा के सर्वथा योग्य बनना है, कच्चे से कच्चा मिलाकर उनके साथ समाज में चलना है—इन प्रेरणाओं ने सत्यभामा में एक लगन जाग्रत कर दी। आदर्श भावनाओं से प्रेरित लगन और निष्ठा स्वाभाविक ही श्रमशीलता को जन्म देती है। सत्यभामा देवी इन गुणों के बल पर शीघ्र ही परिश्रमपूर्वक लिखना-पढ़ना सीख गयीं।

महाविद्यालयीन शिक्षा काल में लोकमान्य तिलक का सम्पर्क प्रसिद्ध सुधारवादी चिंतक श्री आगरकर से हुआ। उनके विचारों से प्रभावित होकर तिलक ने राजनीतिक सुधारों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति अपना लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे लेखनी और वाणी द्वारा प्रचार कार्य में जुट गये। अध्ययन और सेवा कार्य में लगे रहने के कारण उन्हें अपनी पत्नी तथा अन्य परिजनों के पास बैठकर बात करने का समय भी नहीं मिलता। कभी-कभी सत्यभामा इस परिवर्तन से खिन्न हो उठती। एक बार तो

उन्होंने तिलक के सामने अपना असन्तोष भी व्यक्त किया। तिलक ने तुरन्त अपनी पत्नी को समझाया—“पगली मैं तुमसे नाराज थोड़े ही हूँ। समाज को सुखी बनाने के लिए स्वराज्य हमारा प्रथम प्राप्तव्य है और उसके लिए प्रयत्नशील रहने के कारण मैं समय नहीं निकाल पाता तो इसका मतलब यह थोड़े ही है कि मैं तुमसे नाराज हूँ।”

स्वराज्य और समाज सेवा जैसे शब्दों का स्पष्ट अर्थ सत्यभामा की समझ में तो नहीं आया। परन्तु आत्म-सन्तोष के लिए पति का इतना कहना मात्र ही पर्याप्त रहा कि मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ। पति पर इतना सहज विश्वास और जीवन साथी के प्रति दृढ़ निष्ठा ने यह सोचने को विवश किया कि पति जिस काम में इतने व्यस्त रहते हों, उसमें स्वयं भी सहयोग देना चाहिए। सत्यभामा ने बड़े भोलेपन से—“आपके समाज सेवा कार्य में मुझे भी सहयोग देना चाहिए न”—उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्होंने पूछ लिया—“मैं किस प्रकार आपका हाथ बँटा सकती हूँ।”

तिलक ने विस्तारपूर्वक अपने विचारों को सुबोध भाषा में समझाया और कहा कि—“तुम्हें सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहने तथा धैर्य धारण करने की आदत डालनी चाहिए। तभी तुम मेरी सहायक सिद्ध हो सकोगी।”

सत्यभामा ने इस सत्य को पकड़ लिया और अपने जीवन में पूरी तरह उतार लिया। सन् १८७९ में तिलक ने एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके चाचा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस खुशी में वे अपने भतीजे की बहू के लिए एक कीमती साड़ी लाये। देखकर तिलक ने कहा—इतनी कीमती साड़ी पहनना इस दरिद्र देश की स्त्री—कम से कम सत्यभामा को तो पहनना शोभा नहीं देता। चाचाजी ने तिलक की उपेक्षा करते हुए कहा—तुम तो हमेशा पागलों की तरह बड़बड़ाते रहते हो। पहनना तो बहू को है तुम्हें थोड़े ही।

यह कहते हुए चाचाजी ने सत्यभामा की ओर साड़ी बढ़ा दी परन्तु उन्होंने साड़ी पहनने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। जोर देने पर तिलक के विचारों को ही उन्होंने अपनी भाषा में दोहरा दिया। चाचा ने अफसोस करते हुए तिलक से कहा—अब तो तुम मुंसिफ बनोगे। राज दरबार में तुम्हारी बड़ी इज्जत होगी। सत्यभामा भी तुम्हारे साथ उस सम्मान की अधिकारिणी होगी। क्या तुम नहीं चाहते कि वह इस सम्मान की भागीदार बने।

चाचाजी ने यह कहकर सत्यभामा की ओर देखा। वहाँ कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। आँखों में थी सफलता की एक चमक—जो उन्होंने अपने पति के सिद्धान्तों की अभ्यस्त बनकर प्राप्त की थी और आज उस सफलता का प्रमाण सिद्ध कर दिया था।

उत्तर सुनने की आशा से चाचा ने तिलक की ओर देखा। वे समझ रहे थे कि बहू को शायद बाल गंगाधर

ने कीमती साड़ी पहनने के लिए मना कर दिया है। तिलक ने कहा—‘सरकार की नौकरी कर जो हुजूरों की संख्या बढ़ाने के लिए मैंने उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की है। बल्कि मैं तो अपनी शिक्षा का उपयोग देशवासियों में स्वातन्त्र्य भावना और राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए करूँगा।’

‘फिर भी जीवनयापन के लिए तो कुछ करना पड़ेगा। यह तो जाहिर है कि तुम्हें बैठे-ठाले जिन्दगी भर कोई नहीं खिलायेंगे।’

‘मैंने शिक्षक बनने का निश्चय किया है। यह कार्य मेरे उद्देश्य पूर्ति में भी सहायक सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति में धन और मान की अभिलाषा करना व्यर्थ है।’—तिलक ने दृढ़ निश्चय के साथ कहा। चाचा ने उनका बड़ा विरोध किया परन्तु उन्हें अपने निश्चय से हटाया न जा सका।

१८८० में संस्थापित राष्ट्रीय संस्थान ‘न्यू इंग्लिश स्कूल’ में तिलक ने अध्यापन कार्य आरम्भ किया। वेतन के रूप में जो कुछ मिलता था। उससे अति साधारण स्तर का ही निर्वाह हो सकता था। तिलक अपनी पत्नी सहित शनीवार पेठ में मकान लेकर रहने लगे। जो कुछ मिलता उसमें से भी बहुत कुछ बचाकर तिलक जन-जागरण के कार्यों में लगा देते। परिणामस्वरूप इस नयी गृहस्थी को कई तंगियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। परन्तु सत्यभामा ने अपने चेहरे पर शिकन तक नहीं आने दी। धीरे-धीरे वे गृह-व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी अपने कंधों पर लेने लगीं ताकि पति को देश सेवा का अधिक से अधिक समय मिल सके। तिलक के एक जीवनी लेखक ने इस समय का वर्णन करते हुए लिखा—सत्यभामा अब अपने पति के विचारों तथा निस्वार्थ देशभक्ति की भावनाओं को भली भाँति समझने लगी थी। उन्हें स्वयं के जीवन में भी चरितार्थ कर वे सच्ची सहधर्मिणी बनने का प्रयास कर रही थीं।

सन् १८८१ में तिलक ने साप्ताहिक केसरी का प्रकाशन आरम्भ किया। आरम्भ में यह पत्र साझेदारी में शुरू हुआ था परन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने पत्र का पूरा उत्तरदायित्व सम्हाल लिया। इस पत्र की प्रगति के साथ ही साथ तिलक का राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन भी व्यापक होता गया। वे और अधिक व्यस्त रहने लगे। घर की समस्याओं तथा आवश्यकताओं की ओर उन्हें ध्यान देने का समय बिल्कुल भी नहीं रहने लगा। ऐसी परिस्थितियों में सत्यभामा बाई ने उनके सभी गृहस्थ उत्तरदायित्वों का बोझ स्वयं हस्तान्तरित कर लिया। बाद में तिलक तो घर की ओर से पूर्णतया निश्चित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। इस समय सुविधा का अधिकांश श्रेय सत्यभामा बाई को ही दिया जाना चाहिए।

प्रत्येक अवसर पर सत्यभामा देवी कर्तव्यनिष्ठ, समझदार और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनकर आगे आयीं। पति के लक्ष्य और विचारों का महत्व समझकर उन्होंने स्वयं का कर्तव्य निर्धारित किया और उसे पूरा करने के लिए तत्परतापूर्वक जुट गयीं। दाम्पत्य जीवन में कर्तव्यों के प्रति यहाँ सजग दृष्टि और सहयोग का भाव दम्पति के सम्बन्धों में स्वर्गीय आनन्द की सृष्टि करता है। लोकमान्य तिलक अपने व्यस्त जीवन में गृहस्थी की ओर इतना ध्यान भले ही न दे पाते हों परन्तु वे पत्नी और परिवार को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते थे। उन्हें हर समय अपने परिवार की आवश्यकताओं, कर्तव्यों तथा समस्याओं का पूरा-पूरा ध्यान रहता था। कई अवसरों पर उनका यह दृष्टिकोण उभर कर सामने आया।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें अनेकों बार जेल जाना पड़ा। जेल से उन्होंने कई भावना प्रधान पत्र लिखे हैं, जिनमें उनकी पत्नी के प्रति निष्ठा और प्रेम पूर्णतया व्यक्त हुए हैं। सन् १९२८ में उन्हें छह वर्ष के लिए देश निर्वासन की सजा हुई। सत्यभामा बाई उस समय मधुमेह की घातक बीमारी की शिकार थीं। सरकार ने उस समय समझौता करने के लिए कहा, शासन के दलालों ने सत्यभामा की रूग्णावस्था को ध्यान में रखकर सरकार से क्षमा याचना की सलाह दी। परन्तु लोकमान्य तिलक ने प्रेम को कभी कर्तव्य के मार्ग में बाधा नहीं बनने दिया। उन्होंने उस समय यही कहा—मेरी अणु मात्र निर्बलता भी सर्वसाधारण पर पहाड़ बनकर गिरेगी। जिससे राष्ट्र का आत्म समान कुचल जायेगा।

कौन जानता है इस निष्ठा को सुदृढ़ करने में उनकी सच्ची सहधर्मिणी सत्यभामा बाई का ही हाथ रहा था। जिन्होंने अपने स्वास्थ्य और जीवन से अधिक मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण देश की आजादी और राष्ट्र का आत्म सम्मान बताकर समझौता न करने के लिए प्रेरित किया था।

मधुमेह का शिकार होने पर भी सत्यभामा अपने निर्वासित पति का कुशल क्षेम परमात्मा से चाहती रहीं। अपने मन को यशोधरा और उर्मिला की तरह समझा-बुझाकर ढाढस बँधाती रहीं। उस समय लोगों ने सत्यभामा के मुख मण्डल पर ऐसी सन्तोष और शान्ति की आभा देखी जो बहुत कम लोगों को ही नसीब होती है। लोकमान्य तिलक भी माण्डले जेल में निर्वासन की सजा काटते हुए अपनी पत्नी और परिवार के समाचार मँगवाते रहते। सत्यभामा को धैर्य बँधाने के लिए वे नियमित रूप से पत्र भी लिखा करते थे। सत्यभामा बाई का रोग बढ़ता रहा। डॉ. मुजे, भाऊ दीक्षित, अण्णा साहब पटवर्धन आदि चिकित्सकों ने अच्छा से अच्छा औषधोपचार किया परन्तु सत्यभामा बाई की प्राण ज्योति ७ जून, १९१२ को बुझ गयी। तिलक को अपनी सुयोग्य

पत्नी का अभाव आजीवन खलता रहा। लोकमान्य तिलक का दाम्पत्य जीवन लोकसेवियों के लिए एक आदर्श बनकर अमर हो गया।

एक और ताजमहल

शहंशाह शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा के बिछोह में उसके प्रेम के स्मारक के रूप में ताजमहल का निर्माण किया था। यह पति-पत्नी के प्रेम की अमर निशानी के रूप में जगद्विख्यात हो चुका है। किन्तु नारी केवल प्रेमिका ही तो नहीं होती। वह पुरुष की जननी व विधाता भी होती है। वह शिल्पी होती है और पुरुष उसकी कृति। दोनों एक दूसरे से अभिन्न होते हैं, कलाकृति और कलाकार की तरह। नारी के इसी स्वरूप का स्मृति दर्शन कराने के लिए हिन्दी-साहित्य सेवी—‘सरस्वती’ के यशस्वी सम्पादकाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पत्नी की स्मृति में एक स्मृति मन्दिर निर्मित कराया है।

यह स्मृति मन्दिर उत्तर-प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में आज भी विद्यमान है और यह नारी के उस स्वरूप का दिग्दर्शन करता है, जो पूजनीय है—वन्दनीय है। इसके निर्माण में ताजमहल की तरह लाखों रुपये खर्च नहीं किये गये हैं वरन् यह कुछ ही हजार रुपये की लागत से बना है। किन्तु उसके साथ जुड़ी भावना उससे कई गुना परिष्कृत, पूर्ण व अभिनन्दनीय है।

द्विवेदीजी को राष्ट्र भाषा हिन्दी के उन्नायक के रूप में करोड़ों व्यक्ति जानते हैं तथा भावी पीढ़ियाँ भी उन्हें जानेंगी। किन्तु उन्हें इतना ऊँचा उठाने में —उनके निर्माण में किसका हाथ रहा है ? उस तथ्य को बहुत कम लोग जानते हैं। द्विवेदीजी को पग-पग पर सहारा देने, उन्हें हाथ थामकर सहारा दे श्रेय पथ की ओर चलाने का श्रेय निश्चय ही उनकी ममतामयी, त्यागमयी, गारिमामयी, स्वाभिमानिनी, सिद्धान्तनिष्ठ पत्नी को ही मिलेगा जिनकी स्मृति में उन्होंने यह मन्दिर निर्मित किया है।

कवि हृदय द्विवेदीजी ने इस स्मृति मन्दिर के माध्यम से अपने हृदय के उन भावों को मूर्त रूप दिया है, जिसका अभिप्राय यही है कि पत्नी के रूप में पति को एक महान शक्ति-अनूठा सम्बल प्राप्त होता है। उसका स्थूल कलेवर व स्वरूप भले ही स्त्री शरीर रहता हो लेकिन उसके भीतर माता, भगिनी, सहयोगिनी, सखा, दर्शक व सेवा मूर्तिरूपिणी अनेकानेक सूक्ष्म सरिताएँ बहती रहती हैं। उनके द्वारा व्यक्ति व समाज के जीवन में रस का संचार होता रहता है। उन्हें यदि अपनी पत्नी का यह रस न मिला होता तो उनकी व्यक्तित्व वल्लरी सूखकर मुर्झा गयी होती।

एक सामान्य रेल्वे कर्मचारी से वे प्रगति करते हुए अफसर बन गये थे। जब वे झाँसी में नियुक्त थे तो उनका अँग्रेज अफसर स्वयं तो रात्रि को क्लब में या

अपने बँगले में मजे करता और उन्हें उसका काम करना पड़ता था। वे दिन को अपना काम करते और रात को अफसर का। बात यहीं तक रहती तो भी सह लेते पर उन्हें अपने मातहत काम करने वाले कर्मचारियों को भी आफिस टाइम से दो घण्टे पहले बुलाने के लिए दबाव डाला गया तो उन्होंने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। ऐसी स्थिति में खुशी-खुशी आठ आने नित्य में उनके लम्बे-चौड़े परिवार का खर्च चलाया।

यह उनकी पत्नी की ही प्रेरणा थी कि उन्होंने कभी प्रसिद्धि तथा धन का लोभ नहीं किया। वे स्वयं साहित्यकार नहीं कहलाये किन्तु साहित्यकारों के जनक कहलाये। उनकी लेखनी को कभी उनकी पत्नी ने वेश्यावृत्ति स्वीकार नहीं करने दी। बीस रुपये माहवार पर वे ‘सरस्वती’ के सम्पादक नियुक्त हुए थे। फिर भी कभी उनके सामने घर-गृहस्थी की कोई समस्या नहीं आयी।

इस स्मृति मन्दिर में उन्होंने देवी, लक्ष्मी व सरस्वती के समक्ष अपनी पत्नी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की है। वस्तुतः यह उनकी पत्नी की प्रतिष्ठा नहीं है वरन् समग्र नारी जाति की अभ्यर्थना है। सच ही तो कहा है किसी ने जाग्रत नारी जगत की जीवन ज्योति है। सम्पादकाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मित यह स्मृति मन्दिर इस सत्य के स्मारक रूप में आज भी विद्यमान है।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने

वाले कुछ स्वर्ण-सूत्र

पति-पत्नी में कभी झगड़ा नहीं होना चाहिये। यह शोभनीय भी नहीं है और कल्याणकारी भी नहीं है। पति-पत्नी के झगड़े का मतलब है पूरे परिवार का नाश और उनके प्रगाढ़ प्रेम का अर्थ है, सुन्दर परिवार, सुखदायी गृहस्थ। पति-पत्नी के पारिवारिक लड़ाई-झगड़े के कुछ बाह्य और कुछ मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं। उनमें से अकर्तव्यशीलता भी एक विशेष कारण है। यदि पति-पत्नी परस्पर अपने बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों को सावधानीपूर्वक पूरा करते रहे, तो उन दोनों में कभी कोई लड़ाई-झगड़ा न हो।

बाह्य कर्तव्यों में पति का सबसे पहला कर्तव्य है कि वह पत्नी के स्वास्थ्य का अपनी ओर से पूरा ध्यान रखे। बहुत स्वार्थी पति अपनी सेवा लेने के साथ-साथ पत्नी को हर समय किसी-न-किसी काम में लगाये रखते हैं। उनका विचार रहता है कि पत्नी से जितना ज्यादा-से-ज्यादा काम लिया जा सके, लिया जाना चाहिये। वह तो काम करने और सेवा करने के लिये आई ही है। जगह पर पानी, जगह पर खाना, यहाँ तक कि कपड़े-लते और किताब, कागज, स्याही, दबात तक जगह पर ही लेते हैं। किसी वस्तु अथवा किसी काम के लिए जगह

से उठना जानते ही नहीं। यहाँ तक कि कलम-पेंसिल तक उसी से बनवाते और फाउण्टेनपेन में रोशनाई तक उससे ही भरवाया करते हैं। इतना ही नहीं इन तुच्छ कामों के लिए भी उन्हें आराम करती हुई अथवा कोई और आवश्यक काम करती हुई पत्नी को उठा देने में जरा भी दया या संकोच नहीं करते। बहुत से बाबू साहबों को तो पत्नी ही कोट-पतलून और टाई-जूते पहनाती है और हर रोज जूते पर पालिश किया करती है।

रसोई और नाश्ते के सम्बन्ध में तो उसे जितना हैरान किया जा सकता है किया जाता है और यह मुसीबत छुट्टी के दिन और भी बढ़ जाती है। जरा यह बनाना, थोड़ा वह भी बना लेना, आज सुबह इसकी चाय है, शाम को उसका भोजन है, बहुत दिन से यह नहीं बना, वह चीज खाये तो कई दिन हो गये—की ऐसी रेल लग जाती है कि बेचारी पत्नी को दिन भर दम मारने और चूल्हे, अँगीठी के पास से उठने की फुरसत नहीं मिलती। आप तो कोच, कुर्सी या चारपाई पर पड़ गये और मिनट-मिनट पर तरह-तरह की फरमाइशें चलाने लगे। अपनी इस नवाबी में उन्हें इस बात का जरा भी ध्यान नहीं रहता है कि उनकी इस फैल-सूफी से बेचारी पत्नी की हड्डी-हड्डी टूट जाती है।

किसी प्रकार यदि बेचारी को थोड़ा-सा आराम का अवसर मिल भी जाता है, तो फिर उनकी ऐसी गप्प और हा-हा-ही-ही चलती हैं कि उसके आराम का सारा समय पलक उठने, गिरने, जम्हाने और अलसाने में ही निकल जाता है और वह फिर थकी-थकी उठ कर दूसरे समय के काम में लग जाती है। यदि सौभाग्य ही कहिये, उनकी पत्नी कलाकार अर्थात् संगीत या वाद्य की जानकर हुई तब तो गारण्टी के साथ उसके दिन का ही नहीं रात का भी आराम का समय बहुत-सा बेकार चला जाता है। खा-पीकर आराम से पकड़ कर पति देवता को संगीत की इच्छा होती है और वह पत्नी को महफिल लगाने के लिये मजबूर कर देते हैं। जब संगीतज्ञ पत्नी से विवाह किया है तो फिर उसका लाभ क्यों न उठाया जाये ? काम के बाद ही तो वह समय मिलता है, जिसमें उनकी कला का रस लिया जा सकता है। उनके महानुभाव तो आप आराम से पड़कर यदि पैर नहीं दबवाते तो आधी-आधी रात तक उपन्यास सुना करते हैं। उनका तो कार्य दस बजे दिन से आरम्भ होता है, पत्नी का यदि चार-पाँच बजे से आरम्भ होता है तो इससे क्या वह तो अपनी जानते हैं पत्नी अपना मरे भुगते।

जब घर में ही धुल जाते हैं तो आवश्यक क्या कपड़े इस परवाह से पहने जायें कि कम-से-कम चार-पाँच दिन तक साफ रह सकें ? हर दूसरे-तीसरे दिन कपड़ों का एक ढेर उसके लिये तैयार रहता है। बच्चों के कपड़ों के साथ वह दोपहर को पति देवता के कपड़े धोती, सुखाती और लोहा करती है। इस प्रकार बहुधा

पत्नियों से इतना काम लिया जाता है कि जरा आराम करने का अवसर नहीं मिलता, जिसका फल यह होता है कि उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, उसका स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता है और वह बात-बात पर झल्लाने, रोने लगती है। गृह-कलह आरम्भ हो जाता है।

वे बुद्धिमान गृहस्थ जिन्हें पारस्परिक प्रेम, सद्भावना और सुख-शांति वांछित है, पत्नी से उतना ही काम लें जितना उचित और आवश्यक है। जो उनके अपने काम हों वे सब स्वयं ही करें। पारिवारिक जीवन में आलस्यपूर्ण नवाबी चलाना ठीक नहीं। पत्नी के पास घर-गृहस्थी और बच्चों का पहले से ही इतना काम होता है कि उसे समय नहीं रहता। इस पर अपना काम सौंप कर काम की इतनी अति न कर दीजिये कि उसका शरीर टूट जाये। पत्नी जितनी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न रहेगी उतनी ही मधुर और सरस होती चली जायेगी।

बहुत से स्वार्थी लोग बड़प्पन और अधिकार के अहंकार में हर वस्तु में अपना 'लॉइन्स शेयर'—(सिंह भाग) रखते हैं। वे नाश्ते और भोजन की सबसे अच्छी चीजें अधिक मात्रा में स्वयं उपभोग करते हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत बचता है, वह प्रसाद रूप में पत्नी को मिलता है। यही हाल बाजार से लाये फल, मिठाई आदि में भी होता है। यह बहुत ही हेय, और क्रूर स्वार्थ है। इस व्यवहार की अधिक पुनरावृत्ति होने और यह समझ लेने पर कि पति का इसमें केवल स्वार्थ ही नहीं अहंकार भावना और कमाई का अधिकार भी शामिल है, यदि पत्नी का मन उससे फिर जाता है तो ज्यादा दोष नहीं दिया जा सकता है। ऐसे स्वार्थी पशुओं से पत्नी को ही नहीं पूरे संसार को घृणा करनी चाहिये। वे इसी योग्य होते हैं।

अच्छे और भले पति हर अच्छी वस्तु को प्रेमपूर्वक अपनी प्रियतमा को ही अधिक-से-अधिक खिलाने-पिलाने में तो और सुख अनुभव करते हैं। चूँकि वे कमाई करते हैं इसलिये उन्हें अपना यह कर्तव्य अच्छी तरह याद रहता है कि कहीं संकोच-वश पत्नी किन्हीं वस्तुओं को जी भर कर न खाने का अभ्यास न कर ले अथवा खाने में संकोच करे। वे अपने आप अपने सामने अथवा अपने साथ बिठा कर खिलाने का ही यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। ऐसे पतियों की पत्नी कितनी प्रसन्न और सुखदायक रहती है इसका अनुमान सहज नहीं।

पहनने, पहनाने में भी यह विषमता अच्छी नहीं। अनेक पति अपने लिये तो जब-तब अच्छे-से-अच्छे और नये कपड़े बनवाते रहते हैं, तब भी कभी महसूस करते रहते हैं। किन्तु पत्नी के वर्षों पहले खरीदी दो-चार साड़ियाँ उन्हें शीघ्र ही खरीदीं, जैसी मालूम होती है।

जैसे सुन्दर कपड़े अपने लिये बनवाते हैं, वैसे पत्नी के लिये नहीं। ऐसे 'फैलसूफ' पति अपनी पत्नी का पूरा प्यार कभी नहीं पा सकते। उचित यह है कि कि पुरुष होने के नाते पति मोटे, सस्ते और सादे कपड़े पहने और पत्नी को अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनाये। वह सुन्दर है, सुकुमार है, वस्त्र उसकी शोभा है।

अपने से अच्छे कपड़े पत्नी को पहनाने वाले पति अपनी पत्नी पर बिना मंत्र के वशीकरण कर देते हैं और प्यार में बदली उसकी कृतज्ञता का आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि अपने से अच्छे न भी पहनाये जायें तो कम-से-कम उस स्तर और उस मात्रा का तो प्रबन्ध किया ही जाना चाहिये, जो स्वयं अपने लिए करते हैं। इसी प्रकार साबुन, तेल आदि का भी प्रबन्ध पत्नी के लिए अपने से अच्छा ही करना चाहिये।

इन कतिपय पदार्थिक कर्तव्यों के साथ-साथ पति को कुछ मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का भी निर्वाह करना चाहिये। इनमें से सबसे पहला कर्तव्य है प्रशंसा। उसके भोजन, और शृंगार की प्रशंसा कीजिये और प्रशंसा की आँखों से ही उसे देखिये। इससे उसको बड़ी पुलक और सुख की सिरहन प्राप्त होती है। उसे यह विश्वास रहता है कि पति को मैं और मेरे काम पसन्द हैं। यह पसन्दगी की भावना हर नारी की एक साध होती है। इस पर वह अपना आराम और सुख-सुविधा तक निछावर करने को तैयार रहती है।

पत्नी के सेवा करते समय कभी भी उदास, उदासीन व तटस्थ मत रहिये। उससे हँसते-मुस्कराते और एकाग्र होकर बात करने का प्रयत्न करिये। इससे उसको यह बड़ा सन्तोष रहता है कि पति उसको देखकर खिल उठता है, मेरी साधारण सी बात में भी उसे रस आता है और शीघ्र ही मुझमें खो जाता है। वह इसे नारीत्व की विजय समझती है और नारी होने का अभिमान करने लगती है, जिसको प्रेम रूप में वह आभारस्वरूप समर्पित कर देती है।

बाजार से जब भी आइये कुछ-न-कुछ उसकी पसन्द की वस्तु अवश्य लेकर आइये। स्त्रियों का स्वभाव भी कुछ बच्चों जैसा होता है, अपनी पसन्द की छोटी-सी वस्तु भी पाकर बहुत अधिक प्रसन्न हो जाती हैं। यह और इस प्रकार के अन्य बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करने वाले पतियों की पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहती हैं और किसी भी स्थिति में गृह-कलह उपस्थित नहीं कर पाती हैं।

किन्तु, नियम है कि ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती। आदान के अभाव में प्रदान सम्भव नहीं होता। पति के साथ पत्नी को भी ऐसे क्ररण उपस्थित नहीं करना चाहिये, जिससे पति का उसकी ओर से मन फिरने की सम्भावना हो जाय।

सबसे पहले तो उसे पति की उचित सेवा में न तो प्रमाद करना चाहिये और न अरुचि ही। पति को जो कुछ पसन्द है, खाने की वस्तुओं में उनका समावेश करते रहना चाहिये। दिन भर के परिश्रम के बाद रुचिकर भोजन और पत्नी की आवभगत उसको पूरी तरह ताजा कर देने के लिए पर्याप्त है—पति के आने पर जो पत्नियाँ उसकी सेवा-स्वागत भूल कर अपनी गाथा लेकर बैठ जाती हैं या तत्काल बाजार का काम बतलाने लगती हैं, वे उसकी अनुकूलता कभी प्राप्त नहीं कर सकतीं।

खरीद-फरोख्त के समय पति की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दीजिये और सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके कपड़े ज्यादा पुराने, फटे अथवा कम नहीं होने चाहिये। खाने-पीने की वस्तुओं में प्रयत्न करिए कि पति को अधिक न सही पुरुषोचित भाग तो मिलना ही चाहिये। पौष्टिक पदार्थों के उपयोग में पति की बराबरी करने का प्रयत्न न कीजिये और न अपने ऊपर इस स्पर्धा से अधिक खर्च करिये कि जब वह इतना व्यय करते हैं तो मैं क्यों न करूँ। अपने वस्त्रों का स्तर यथा-सम्भव उतना ही रखिये जितना कि पति का हो।

पति की आर्थिक कमी अथवा कम कमाई की आलोचना तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। जहाँ तक संभव हो ऐसी व्यवस्था रखिये कि उसका आभास कम-से-कम ही हो। पति की आर्थिक आलोचना करने का अर्थ है उसका मन अपनी ओर से विमुख कर देना। बाजार अथवा बाहर जाते समय अपनी फरमाइश की सूची पेश करने और आने पर उनके लिए तलाशी लेने लगने का स्वभाव पति को रुष्ट कर देने वाला होता है। पति के प्रिय मित्रों की अनुचित आलोचना करना अथवा उनका सम्बन्ध विच्छेद कराने का प्रयत्न करना पति के एक सुन्दर सुख को छीन लेने के बराबर है। पति के मित्रों को स्वजन और शत्रु को शत्रु मानना पत्नी का प्रमुख कर्तव्य है। जो पत्नियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मान कर केवल अपने मित्र को मित्र और अपने विरोधी को विरोधी मानती हैं, वे अपने दोनों के बीच खाई खोदने की भूल करती हैं।

इसके अतिरिक्त संकट के समय में भी पति के पास मुस्काती हुई ही रहो। पति के सम्मुख गन्दी दशा में रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्रति घृणा को जन्म देती हैं। अनेकों स्त्रियों का स्वभाव होता है कि पति के पीछे तो वह खूब सजी-धजी रहती हैं, बाहर-सज-धज कर निकलती हैं लेकिन घर में खासतौर से पति के सम्मुख गन्दा व पुराना कपड़ा पहन कर आती हैं। उनका ख्याल रहता है कि पति उनके पास कमी समझ कर और नई साड़ियाँ लाकर देगा। किन्तु यह प्रयत्न उल्टा है। इससे पति उसे स्वभाव से गन्दा समझ कर कपड़े लाकर देना बेकार

समझते हैं। सदा मधुर और मृदुल बोलिये। नारियों की मीठी वाणी और अनुकूल मुस्कान का जादू पुरुष पर अधिकार जमा लेता है। यदि इस प्रकार पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए अपने-यह कतिपय बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करते रहें तो उनके बीच कलह-क्लेश होने की संभावना ही न रहे और दाम्पत्य-जीवन का अधिक-से-अधिक आनन्द पा सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का

रहस्य

विवाह के समय वर और वधू दोनों के मन में अपने दाम्पत्य-जीवन को लेकर मीठे-मीठे सपने उठते रहते हैं और हृदय में हिलोरे लेते रहते हैं। उस समय देखे गए सपने, किये गए संकल्प और लिये गए व्रत लम्बे समय तक हृदय को गुदगुदाते रहते हैं। इन संकल्पों और सपनों को समय-समय पर दोहराया भी जाता है। पत्नी के रूप में पति को जो साथी मिलता है, उसे वह अपने सबसे अधिक निकट और सर्वाधिक घनिष्ठ पाता है। पति के रूप में स्त्री को जो साथी मिलता है, उसमें वह अपनी कई अपेक्षाओं की पूर्ति का आधार खोजती है।

इस जीवन की शुरुआत में पति-पत्नी एक-दूसरे से जो स्नेह, संरक्षण, सहयोग, प्रेम, मार्गदर्शन और प्रतिदान प्राप्त करते हैं, वह चिर-काल तक एक-दूसरे के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहता है। लेकिन प्रायः वह आकर्षण शीघ्र ही चुकता जाता है और लगने लगता है कि दोनों में एक असन्तोष, एक विरक्ति की भावना बढ़ती जा रही है। पति-पत्नी आरम्भ में जिस प्यार और जिस स्नेह का रस-पान कर रहे होते हैं, वह शीघ्र ही विलीन होने लगता है तथा एक-दूसरे से शिकवा-शिकायत उत्पन्न होने लगती है। कश पति-पत्नी उस अनुदान को देखें, जो उन्हें एक-दूसरे से प्राप्त हो रहा है, तो यह शिकवा-शिकायत होने की परिस्थितियाँ ही पैदा न हों। लेकिन विवाह के कुछ समय बाद ही जीवन में असन्तोष और विरक्ति का जो भेद-विष घुलना आरम्भ हो जाता है, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वर-वधू ने विवाह के आदर्शों को जरा भी नहीं समझा और एक-दूसरे के प्रति इसीलिए आकर्षण अनुभव किया कि उन्हें शारीरिक सहचर्य की प्राप्ति का उल्लास था।

विवाह के कुछ समय बाद तक ही पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण और लगाव रहता है। जैसे ही उनका सौन्दर्य पुराना होने लगता है, परिचय नया नहीं रहने लगता। उनका जीवन रोते-झींकते-कलपते और लड़ते-झगड़ते बीतना आरम्भ हो जाता है। पति-पत्नी में

सम्बन्धों में तनाव पैदा होना इसलिए अस्वाभाविक नहीं है कि मनुष्य का स्वभाव भूल करने और गलतियाँ करने का ही होता है। ये भूलें दाम्पत्य-जीवन में भी होती हैं। पर स्थिति समस्या तब बन जाती है, जब उन स्वाभाविक कमजोरियों को बात का बतंगड़ बनाने के प्रयत्न होने लगते हैं। इसके स्थान पर यदि गलतियों और त्रुटियों को सहज मानवीय कमजोरी मानकर चला जाय तो प्रेम और आकर्षण में कमी नहीं आने पाती, क्योंकि तब गलतियों के प्रति दृष्टिकोण दूसरा हो जाता है।

दम्पति को अपने जीवन-साथी के प्रति सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करते हुए एक-दूसरे से सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहीं कोई गलती भी होती है तो समझना चाहिए कि वह अस्वाभाविक नहीं है और इसलिए उसे अस्वाभाविक रूप से नहीं लेना चाहिए। साथी के गुण व दोषों को स्वाभाविक मानकर चला जाय, साथ ही दोषों का परिमार्जन और गुणों का अभिवर्द्धन किया जाता रहे तो उससे एक-दूसरे के प्रति गहरी समझ और प्रगाढ़ एक्य की भावना उत्पन्न होकर बढ़ने लगती है, जो दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए एक आवश्यक कदम है।

एक-दूसरे के प्रति समझ-बूझ पूर्ण रवैया तथा सहनशीलता का भाव रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। भगवान ने एक कंकड़ को भी दूसरे कंकड़ के समान नहीं बनाया तो दो व्यक्तियों की मनोभूमि और विचारधारा एक-दूसरे के समान कहाँ से बनाता ? इस विविधता में ही सृष्टि की सुन्दरता है। अतः यह समझना भी आवश्यक है कि पति-पत्नी की विचारधारयें और मनोभूमियाँ एक समान होना सम्भव नहीं है। दोनों के वैचारिक दृष्टिकोण, मान्यता और सोचने का ढंग एक जैसा हो यह संयोग कम ही देखने में आता है। यदि इस तथ्य के प्रति समझपूर्ण रवैया नहीं अपनाया गया तो पति-पत्नी दो भिन्न ध्रुव बन जाते हैं और उनके जीवन में आवश्यक तालमेल नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में एक पक्ष ने यदि अपनी ही बात पर अड़े रहने और दूसरे से भी उसको ही मनवाने की हठधर्मी पकड़ ली तो बात बिगड़ती चली जायगी। अपना पक्ष अवश्य रखा जाय, पर उसे ही मानने और स्वीकार करने का आग्रह उसके साथ न जोड़ा जाय। यहाँ ऐसी दृढ़ता भी नहीं बरतनी चाहिए कि हमें अपने पक्ष की कोई त्रुटि का भान हो रहा है। तो उसे स्वीकार करने से अपना बड़प्पन कम हो जायगा—यह डर भी नहीं रखना चाहिए। वरन् इस गलती को सामने लाने का श्रेय अपने साथी को देते हुए उसके सुलझपन को महत्व देना चाहिए। यह रीति-नीति पारस्परिक समझ-बूझ को विकसित करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

विचारों में ही नहीं, यह विभिन्नता पसन्दगी में भी रहती है। पति-पत्नी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए

३.४३ गृहस्थ एक तपोवन

कि वे एक दूसरे की पसन्द पर आक्रमण न करें। उन्हें एक दूसरे की पसन्द की इज्जत करना, उसे स्वीकार करना तथा तदनुसार अपने साथी को प्रसन्न रखने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इससे पति भी अपनी पत्नी के प्रति यह सद्भाव रखने लगता है कि वह मेरी प्रसन्नता का कितना ख्याल रखती है और पत्नी भी अपने पति से सन्तोष तथा तृप्ति का अनुभव करती है। यह सहनशीलता न केवल साथी की एक दूसरे के लिए उपयोगिता सिद्ध करती है, वरन् उनके पारस्परिक प्रेम भाव बढ़ाने का आधार भी खड़ा करती है।

परस्पर समझ तथा सहनशीलता के सदगुणों का अभिवर्द्धन करने के साथ-साथ पति-पत्नी को अति भावुकता से बचना चाहिए। भावनायें होना अति उत्तम है। उनके स्तर और परिष्कृत स्वरूप पर ही सामान्य व्यक्ति महामानव तक बन जाते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भावनाओं में बहकर अन्धा ही हो जाया जाय। इस तरह की आत्यन्तिक भावशीलता या अति भावुकता मनुष्य के क्रियाकलापों और प्रेम प्रवृत्ति को हवा में उड़ने वाले बादलों की तरह अस्थिर और क्षण-जीवी बना देती है। अतः इस अति से सावधान और सतर्क रहना चाहिए। पति-पत्नी आसमान में नहीं उड़ें, धरती पर ही रहें। आसमान की बातें तो सोची जा सकती हैं, सोची जानी भी चाहिए। अपने लक्ष्य और आदर्श उतने ही ऊँचे रहें, पर पाँव धरती से उखड़े नहीं, जिससे कि देखे गये स्वप्न दिवा-स्वप्न मात्र बनकर रह जायें। भावनाओं का जो प्रबल प्रवाह पति-पत्नी के हृदय में बहता है, उस प्रबल भाव-राशि को दिशा देने के लिए धैर्य और निष्ठा के दो किनारों की आवश्यकता है। अति भावुकता उन किनारों को तोड़ डालती है।

इसी प्रकार आत्यन्तिक आसक्ति भी अति दुःखदायी है। पति-पत्नी को एकता और समर्पण के सूत्र में आबद्ध करने वाला सूत्र यद्यपि आसक्ति ही है, पर आसक्ति वही परिष्कृत है, जो समय के साथ प्रौढ़, पुष्ट और कल्याणकारी बनती जाती है तथा प्रेम में परिणत होने लगती है, इसकी अति से यदि नहीं बचा जाता तो कई बार बड़े संकट उपस्थित हो जाते हैं। आसक्ति की प्रेम-परिणित के लिए आवश्यक है कि अपने सम्बन्धों को सेवा परक बनाया जाय। स्त्री की प्रवृत्ति अधिकांश में सेवा-परायण ही रहती है, इसीलिए काम-क्रीड़ा के क्षेत्र में वह पुरुष की अपेक्षा काफी पीछे और उदासीन रहती है।

कुछ समय तक अलग-अलग रहना भी प्रेम की ताजगी बनाये रखने के लिए आवश्यक है। थोड़े समय का यह विच्छेद पति-पत्नी को भावनात्मक दृष्टि से और भी निकट ला देता है। साथ रहते-रहते एक दूसरे की भावनाओं और उपयोगिता को समझ पाने की स्थिति प्रयास करने पर भी कम ही प्राप्त होती है, जितनी कि अलग-अलग रहने से होती है। पत्नी सोचती है कि वह होते तो ऐसा करते, अमुक कठिनाई हम तक आने ही

नहीं देते। या कितना सूना हो जाता है उनके बिना ? पत्नी के साथ रहते हुए पति को उसके हर काम में कोई न कोई कमी नजर आती है, पर जब पत्नी मायके चली जाती है तो पति अनुभव करता है कि पत्नी के रहते उसे कितना आराम और कितना सुख मिलता था ? वह विच्छेद एक दूसरे को समझने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है, जिसमें कि उन्हें एक दूसरे की आवश्यकता अनुभव होती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पति समझता है, पत्नी उसकी उपेक्षा कर रही है या पत्नी पति को अपनी उपेक्षा करता हुआ अनुभव करती है। बहुत बार तो इस तरह की भ्रान्ति ही होती है और कई बार इस अनुभव के पीछे शारीरिक अस्वस्थता या मानसिक उलझनें भी कारण बन जाती हैं। उन कारणों का पता लगाये बिना यह धारणा बना लेना गलत है कि इससे अनेक गलतफहमियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो दाम्पत्य सम्बन्धों को रिक्त बना देती हैं। उचित यह है कि इस धारणा को बनाने से पूर्व इस तरह की स्थिति के कारणों को खोजा जाय। यदि इस ओर से उदासीनता बरती गयी तो थोड़े दिन इस प्रकार की कल्पित उपेक्षा भले ही सहन की जाती रहे, पर आगे चलकर वह भ्रान्ति दृढ़ विश्वास में बदल जाती है। पत्नियाँ भी इसी तरह की भूलें करती हैं। रोजगार-धन्ये की व्यस्तता या नौकरी की उलझनों के कारण पति को अपनी पत्नी का जरा ध्यान नहीं रहा या वह उसकी बतायी वस्तुएँ लाकर देना भूल गया या पत्नी ने कुछ पूछा और अपनी उलझनों में उलझे हुए उसने कोई जबाब दे दिया, तो पत्नी उसे अपनी उपेक्षा समझ लेती है तथा वह अपनी धारणा के वशीभूत होकर जान-बूझकर पति के प्रति रूखा रवैया अपना लेती है। उचित है कि असली कारणों को खोजा जाय और वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास किया जाय।

पति-पत्नी को जो भावना सर्वाधिक निकट लाती है वह सम्पूर्ण समर्पण है। समर्पण का यह आदर्श वस्तुतः अपने अहं को परिष्कृत करने का नाम है। लेकिन सामान्य बातों को भी पति-पत्नी सहज रूप में लेने की अपेक्षा एक दूसरे पर की जाने वाली चोट या आक्षेप समझने की भूल कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में कलह का विष-वृक्ष पनपने लगता है। इसीलिए समझदार दम्पति अभ्रिय बातों को भी सहज रूप में लेने की समझदारी करते हैं। इस तरह के प्रसंग में साम्य-भाव अपनाना चाहिए। पति हर तरह का मजाक या आक्षेप करना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है, लेकिन उसे पत्नी का छोटा-सा मजाक भी सहन नहीं होता यह गलत है। कोई भी पक्ष योग्यता और अनुभव की दृष्टि से बड़ा या छोटा हो सकता है, पर इस कारण भावनात्मक असन्तुलन नहीं आना चाहिए। पति-पत्नी में यदि एक दूसरे के प्रति योग्यता या अनुभव के कारण बड़प्पन का भाव आ गया तो उसके साथ दुराग्रह को नहीं जोड़ना चाहिए, वरन्

अपने साथी को मात्र साथी मानकर, उससे सहज व्यवहार अपनाना चाहिए।

दम्पति को एक दूसरे की प्रशंसा द्वारा भी अपने सम्बन्धों के वातावरण में प्रफुल्लता और माधुर्य का रस घोलते रहना चाहिए। प्रशंसा की चमत्कारी शक्ति सर्वविदित है और यह एक कला भी है, इस कला का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रशंसा करते समय कर्मों को प्रमुखता दी जाय, न कि व्यक्ति को और सुनने में भी अपने सत्कार्यों, व्यक्तित्व तथा व्यवहार को विकसित करने की कामना की जाय, न कि अहंकार का वैभव किया जाय। पत्नी ने अपनी सूझ-बूझ से कोई नुकसान होने से बचा लिया या कोई कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से कर दिया तो उसकी मुक्त कण्ठ से सराहना करनी चाहिए। यहाँ यह सोचना गलत है कि यह तो उसका दायित्व था—इसमें प्रशंसा करने की क्या जरूरत है ? पत्नी भी यदि अपने पति की प्रशंसा में कृपणता बरतती है तो वह अपने पति के हृदय में स्थायी स्थान बनाने में असफल रहती है।

अपने पारिवारिक जीवन को सफल और मधुरता के साथ जीने का यही रहस्य है कि विवेक-सम्मत नीति-नीति अपनायी जाय और बिना सोचे-समझे न तो कोई कदम उठाया जाय और न कोई बात की जाय। इस आदर्श का पालन करते हुए सफल दाम्पत्य-जीवन जिया जा सकता है।

गृहस्थाश्रम की सार्थकता

‘धन्यो गृहस्थाश्रम’ यह गृहस्थाश्रम धन्य है लेकिन ऐसी धन्यता सरलता से प्राप्त नहीं होती। यह प्रयत्न-साध्य है। कष्टसाध्य है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी के शरीर सुन्दर और नीरोग होने चाहिये। इस प्रकार उनके मन भी नीरोग होने चाहिये। पति-पत्नी को एक दूसरे के साथ निष्ठापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। जिस विवाह विधि से पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थिर हुआ है, उस विवाह विधि के कुछ मन्त्र बड़े सुन्दर हैं। वाग निश्चय (सगाई) के समय ब्राह्मण कहता है।

विवाह सुक्तों में वधू को अघोरचक्षु व शिवा, सुमन व तेजस्वी, वीरप्रसू, श्रद्धालु आदि विशेषण लगाये गये हैं। ‘अघोर चक्षु’ का विशेष वर और वधू दोनों को ध्यान में रखने योग्य है एक की दूसरे पर प्रेमपूर्ण दृष्टि हो वह भयावह एवं क्रूर न हो।

विवाह का मतलब केवल बाध्य विवाह नहीं है। हृदय का विवाह, मन का विवाह, वर का वधू के गले में माला डालना मानो एक-दूसरे के हृदय पुण्य एक दूसरे को अर्पण करना है। अग्नि के चारों ओर सात कदम चलना मानो जीवनभर साथ-साथ चलना, सहयोग करना है।

विवाह के लिए लड़की के शरीर का रंग देखा जाता है। उसकी बुद्धि और हृदय के वर्ण, उसकी अन्तरात्मा के वर्ण की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। उलटे यह समझा जाता है कि स्त्रियों के आत्मा ही नहीं

होती यानि एक प्रकार से उनका वर्ण नहीं होता अतः आज सारे विवाह अशास्त्रीय एवं अधार्मिक हैं। जिस विवाह में स्त्री-पुरुष के हृदय व बुद्धि का वर्ण देखा जायेगा, उसके शरीर की नीरोगिता देखी जायगी वही सच्चा शास्त्रीय विवाह होगा।

आज पंचांग से जाना जाता है कि किसी का राक्षस गण है या देवगण लेकिन किसी का राक्षसगण है या देवगण यह भी क्या पंचांग से मालूम हो सकता है। जो अपने लिए जमा करता है वह राक्षस है और जो दूसरों को देता है, वह देव है। वर्ण की पहचान तो कर्म से होती है। पंचांग से नहीं।

स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम का होना चाहिए। स्त्री कोई सम्पत्ति नहीं है। उसके हृदय है, बुद्धि है, भावना है स्वाभिमान है, आत्मा है। सुख-दुख है। यह बात पुरुषों को मालूम होनी चाहिए। स्त्री संसार में महान शक्ति है। इस शक्ति के साथ व्यवहार करने वाले पुरुष को शिव बनना चाहिए। शिव और शक्ति के प्रेममय किन्तु संयममय सम्बन्ध से ही कर्मवीर कुमारों का जन्म होता है। शूरता-धीरता के सागर, विद्या आगर सुपुत्रों का जन्म होता है।

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में बालकों का जन्म होगा। एक बच्चे को जन्म देना मानो एक देवता की मूर्ति का निर्माण करना है। क्या हम इस देवता का ठीक तरह साज-संभाल कर सकेंगे। क्या ठीक तरह हम उसका उदर-पोषण कर सकेंगे। क्या इसके वर्ण का ठीक तरह विकास कर सकेंगे। मात-पिता को इन बातों का विचार कर ही लेना चाहिए। नहीं तो घर में बहुत से चिड़चिड़े और रोगी बच्चे दिखाई देंगे। उन्हें न शिक्षा मिलेगी, न संरक्षण। इनसे जीवन सुखमय कैसे होगा और वह समाज भी तेजस्वी कैसे होगा। उस समाज का धारण कैसे होगा।

पति-पत्नी सुख और दुख में साथ रहेंगे, साथ चढ़ेंगे, साथ गिरेंगे उनके आस-पास सूत लपेटा जाता है। अब पति-पत्नी का जीवन-पट एक साथ बुना जायेगा। अब ताना-बाना एक हो जायेगा। अब कुछ भी पृथक् नहीं है। कुछ भी अलग नहीं है।

शरीर पर प्रेम करने से सच्चा प्रेम नहीं होता। यदि कल शरीर रोग से कुरूप हो जाय। हम शरीर से प्रारम्भ करें लेकिन बनें देहातीता। देह के अन्दर की आत्मा को पहचानकर उससे भेंट करना चाहिए। मनुष्य आँगन से घर के प्रथम भाग में आता है। मध्य भाग फिर देव घर में जाता है। इस प्रकार वर-वधू को एक दूसरे के हृदय के क्षेत्र में जाना चाहिए। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि केवल हमारे शरीर ही नहीं है। पूजा करने वाला पति हमारा अपमान करता है। हम कोई मिट्टी का शरीर नहीं हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे को मिट्टी का माँस का गोला न समझें। धीरे-धीरे इस मिट्टी में जो उदारता है।

३.४५ गृहस्थ एक तपोवन

दीपक के काँच का महत्व अन्दर की लौ के कारण है। हमें उस ज्योति की उपासना करनी चाहिए। जब तक आत्मा की महानता समझ नहीं आती, तब तक सच्चा प्रेम नहीं है। पत्नी की आत्मा की महानता दिखाई देते ही पति उसे ज्ञान देता है। ध्येय देगा वह उसके केवल वखालंकरणों द्वारा गुड़िया-जैसी सजाता नहीं रहेगा, इसी प्रकार जिस दिन पत्नी को दिव्यता दिखाई देगी उस दिन वह पति को चाहे जैसे आचरण नहीं करने देगी। चाहे जिस तरह से पैसे प्राप्त करने का काम नहीं करने देगी।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम में पवित्रता लानी चाहिए। पति-पत्नी एक-दूसरे को सावधान करके एक-दूसरे को प्रेम और कभी क्रोध से हमेशा आगे बढ़ाते रहें। अन्त में पति-पत्नी को भाई-बहिन की तरह हो जाना चाहिए। आसक्तिमय प्रेम से अन्त अनासक्त प्रेम का निर्माण करना चाहिए। कीचड़ में कमल खिलाना चाहिए। संसार में मोक्ष की शोभा प्राप्त करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम मोक्ष की ओर जाने का एक मार्ग है। यह एक सीढ़ी है। यहाँ हमेशा नहीं रहना है। पति-पत्नी को यह बात न भूलनी चाहिए कि गृहस्थाश्रम में रहकर संतति पैदा करके वासना-विकार शांत करके अनेक प्रकार के पाठ सीखते-सीखते अन्त में छोटे संसार में एक दिन बड़े संसार में जाना है।

गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। इसमें भी आश्रम जैसी ही पवित्रता रहनी चाहिए। यह पति पत्नी और बच्चों का आश्रम है। सबको एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए। ध्येय की पूजा करनी चाहिए।

उन कुल-परम्पराओं के लिए यदि सर्वस्व का भी त्याग करना पड़े, तो वह करना चाहिए। हरिश्चन्द्र ने सर्वस्व त्याग कर दिया है। श्रियाल और चांगुण ने अपना लड़का अर्पण किया। परिवार मानो एक देव होता है और परिवार के सब लोग उसके लिए तैयार रहते हैं। हरिश्चन्द्र के निकलते ही तारा उसके पीछे-पीछे चल दी थी। हरिश्चन्द्र और तारा के पीछे छोटा सा रोहिताश्व भी भागता हुआ जाता था। माता-पिता उस रोहिताश्व को मना नहीं करते थे। वे यह नहीं कहते थे कि—तू छोटा है। क्यों आता है अपनी ही शिक्षा से और अपने उदाहरण से बच्चों को ध्येय पूजा सिखानी थी।

आज इस प्रकार का गृहस्थाश्रम कहाँ है। सब एक ध्येय की पूजा नहीं करते। हाँ यदि ध्येय ही विचित्र हो तो दूसरी बात है। लेकिन जब आसक्ति और भय मार्ग में आते हैं। तो अवश्य बुरी बात है।

इसका क्या कारण है कि हमारे घरों में ज्ञान-चर्चा नहीं होती। पति जो सुनता है, वह पत्नी को नहीं कहता, राष्ट्र में जो विचार उत्पन्न हो रहे हैं, उनकी चर्चा घरों में नहीं है। पति-पत्नी का गुरु है लड़कियों का जनेउ होना

बन्द हो गया है। पति ही उसका गुरु ठहराया गया, लेकिन क्या यह पति गुरु का काम करता है। क्या वह ज्ञान-दान, विचार दान करता है। क्या वह आस-पास की जानकारी पत्नी को देता है।

पत्नी ज्वार की रोटी बनाकर देती है लेकिन पति उसे विचार को कौन रोटी देता है ? पति के दिमाग में तो यह विचार ही नहीं आता कि उसकी पत्नी का भी मन है, बुद्धि है, हृदय है। इसी से वह विश्व की बातों की चर्चा घर में नहीं करता फिर बच्चों को वे बातें कैसे मालूम होंगी ? जहाँ पत्नी ही विचारों के अज्ञान में है, वहाँ बच्चे भी अज्ञान में ही बड़े होंगे।

भारतीय संस्कृति में इस प्रकार का गृहस्थाश्रम नहीं होता। बकासुर के पास जाने की बारी जिस ब्राह्मण की आई उसके घर के एक-एक व्यक्ति मरने के लिए तैयार था। पति कहता है—मुझे मरने दो। पत्नी कहती है—मुझे मरने दो। लड़की कहती है—मुझे मरने दो। लड़का कहता है—मुझे मरने दो। इसका नाम है गृहस्थाश्रम और इसी का नाम है कुटुम्ब। रानी एक विचार से प्रेरित हैं—एक ही ध्येय की पूजा होती है।

गृहस्थाश्रम संयम की पाठशाला है। गृहस्थाश्रम तपस्या है। हम अपनी सैकड़ों वृत्तियों का निरोध करने की शिक्षा गृहस्थाश्रम में प्राप्त करते ही हैं। बच्चे बीमार हो जाते हैं तो उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी पड़ती है। बच्चों की इच्छानुसार काम करना पड़ता है। पद-पद पर गुस्सा करने से काम थोड़े ही चल सकता है।

गृहस्थाश्रम में हम त्याग का पाठ सीखते हैं। पति पत्नी को सर्वस्व अर्पण कर देना चाहता है। पत्नी, पति को सुखी बनाना चाहती है। माता-पिता फटे कपड़े पहन कर पहले बच्चों को सजाते हैं। दूसरों को सुखी दिखाना, दूसरे के आनन्द में आनन्द मनाना यही गृहस्थाश्रम की शिक्षा है।

बच्चे अच्छे बनाने के लिए ही माता-पिता को स्वयं को अच्छा बनाना पड़ता है। आचार और व्यवहार में अच्छा रहना होता है। जो माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छे हों, उन्हें अत्यन्त जागरूकता रखनी चाहिए। यदि बच्चे अपने माता-पिता को रात-दिन माता-पिता के झगड़े देखते रहें तो उनके जीवन पर कितना बुरा असर होगा। जब आलसी और विलासी माता-पिता सामने होंगे तो बच्चे भी सज-धज-प्रिय बन जायेंगे।

माता-पिता को यह देखना चाहिए कि उनके बच्चे शारीरिक दृष्टि से बलवान, हृदय से विशुद्ध और उदार, बुद्धि से विशाल और निर्मल हों। हम जिस काल में रह रहे हैं उसका हाल बच्चों को भी बताना चाहिए। भोजन करते हुए हँसते-खेलते हुए बच्चों को भी बताना चाहिये इतिहास का सारा ज्ञान।

गृहस्थाश्रम में संयम, त्याग और वासना-विकार को सीमित करने तथा प्रेम और सहयोगादि गुणों की शिक्षा

मिलती है। हम थोड़े-थोड़े पकने लगते हैं, उच्छ्वलपन कम होता है और प्रौढ़ता आती है। हमें जीवन का बहुत-सा अनुभव प्राप्त होता है। खट्टापन नष्ट होकर जीवन की मधुरता आती है।

अब तक हमने एक सीमित परिवार-सेवा की। उस सीमित परिवार में हमने जो सेवा का गुण सीखा उसे अब समाज को देना चाहिए। अपने परिवार के बाहर आकर अब हमें समाज को ही अपना परिवार समझना चाहिए—अधिक अनासक्त होना चाहिये। अधिक व्यापक होना चाहिये। अधिक उदार होना चाहिये। हमें अपनी आत्मा का राज्य बढ़ाना चाहिये।

वानप्रस्थ का अर्थ है—वन को निकला हुआ, भवनों छोड़कर वन के लिये निकला हुआ। ये वानप्रस्थ वन में रहते हैं, वहाँ आश्रम चलाते हैं, स्कूल चलाते हैं। वानप्रस्थ के बराबर कोई उत्कृष्ट शिक्षक नहीं है। शिक्षक अनुभवी, प्रौढ़, शान्तकाम, हँसते-खेलते शिक्षा दे देने वाला होना चाहिये और वानप्रस्थ को कुछ विशेष आवश्यकता तो रहती भी नहीं, उसे तो पेट भर भोजन मिल जाय तो बहुत है।

आज हजारों पेंशनर देश में हैं। यदि सच कहा जाय तो उनको इधर-उधर स्कूल खोलने चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो दस वर्ष में शिक्षा सर्वत्र पहुँच जायेगी। लेकिन भारतीय संस्कृति के गुण गाते हुए—शान्त स्थान में बैंगला बनाकर वे अपने नाती-पोतों को खिलाते रहते हैं। उन्हें तो सबके नाती-पोतों को खिलाना चाहिये। उनके लिए सुन्दर आश्रम की स्थापना करनी चाहिये। सच्चे अर्थ में आज समाज में कोई भी वानप्रस्थ नहीं है। वानप्रस्थ वही है जो परिवार की मर्यादिक आसक्ति छोड़कर समाज की सेवा करने लगे।

लोकेषणा की हेय लालसा

काम वासना की शारीरिक और मानसिक अमर्यादित प्रक्रियाएँ व्यभिचार को जन्म देती हैं और उससे स्वास्थ्य, सद्भाव एवं दाम्पत्य जीवन की निष्ठा पर भारी आघात पहुँचता है। सन्तान का सदगुणी होना बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम रहे। जिस दाम्पत्य जीवन में अविश्वास, संदेह, दुर्भाव एवं मनोमालिन्य बल रहेगा वहाँ सुसन्तति का जन्म कदापि सम्भव न होगा। चरित्र पर सन्देह होना, पति-पत्नी के प्रेम एवं विश्वास में आग लगाने वाला पत्नीता है। 'एक नारी ब्रह्मचारी' वाली कहावत में बहुत कुछ तथ्य है। नारी के लिए पतिव्रत की जो महत्ता है वही नर के लिए पत्नी व्रत की। रामायण में पतिव्रता के लिए यह धर्म बताया है कि वह "अन्ध, बधिर, क्रोधी, अति दीना" जैसा पति मिलने पर भी सन्तुष्ट रहे और उसे ही ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझ कर सेवा करे। ठीक यही बात पति के लिए लागू होती है। संयोगवश जैसी भी कुछ कली,

कानी, लँगड़ी, अन्धी, दुर्गुणी, फूहड़, कर्कश, मूर्ख, रोगी, अपंग नारी मिल गई है उसे गृह-लक्ष्मी, देवी की प्रतिमूर्ति समझ कर प्रेमपूर्वक निबाहे और अपनी इसी छोटी दुनिया से सन्तुष्ट रह कर कुमार्ग पर मन न दौड़ावे।

सुसन्तति के अभाव में पारिवारिक जीवन नष्ट होते चले जा रहे हैं और हर पीढ़ी अपनी पूर्व पीढ़ी की अपेक्षा अधिक दुर्गुणी एवं कुसंस्कारी बनती चली जा रही है। यह असुरता के विकाश का क्रम यदि इसी प्रकार चलता रहा तो हमारी सभ्यता और संस्कृति नष्ट होती ही चली जायेगी और सभ्य समाज की रचना के स्वप्न अधूरे ही पड़े रहेंगे। इसलिए हमें यौन सदाचार के लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिए और इसकी जड़ 'मानसिक असंयम' को दूर करना चाहिए। दृष्टिकोण में से वासना को हटाना और अपने दाम्पत्य जीवन को ईश्वरीय आज्ञा मानकर सन्तुष्ट रहना, जहाँ धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से आवश्यक है, वहाँ समाज रचना की दृष्टि से भी अनिवार्य है। हम व्यभिचार बुद्धि का परित्याग करके जब बहिन-भाई के, पिता-पुत्री के पवित्र सम्बन्धों में सन्तोष एवं आनन्द का अनुभव करेंगे, तभी यह आशा की जा सकेगी कि हमारा समाज सभ्य बने और जिस स्वर्गीय वातावरण को इस धरती पर अवतरित देखना चाहते हैं वह आकांक्षा पूर्ण हो।

लोकेषणा की प्रवचन—वितेषणा, पुत्रेषणा के अतिरिक्त तीसरी ऐषणा है 'लोकेषणा'। वाहवाही लुटने की, दूसरों के मुँह अपनी प्रशंसा सुनने की, मानसिक दुर्बलता को लोकेषणा कहते हैं। यों उचित मर्यादा में यह वृत्ति भी उचित धन उपार्जन और संयमी दाम्पत्य जीवन की तरह उपयोगी होती है, इस आधार पर मनुष्य सत्कर्म करता और अपने चरित्र को ऊँचा रखता है। बुराइयों से बचता और निन्दा से डरता हुआ मर्यादा के अन्दर रहना सीखता है। इस दृष्टि से यश-कामना को उत्तम माना गया है। पर यह उत्तमता तभी तक स्थिर रहती है, जब मनुष्य ईमानदारी से धन कमाने की तरह अपने उत्कृष्ट आचरण एवं श्रेष्ठ सत्कर्मों द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यदि अमीरी का रौव गाँठ कर फिजूलखर्ची के द्वारा अपना बड़प्पन सिद्ध करके प्रशंसा प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है तो वह लोकेषणा निन्दनीय भी है और अहितकर भी।

कीमती कपड़े और जेवर—आज शेखीखोरी, बनावट, ढोंग, फैशनपरस्ती और बड़प्पन दिखाने की बहुत होड़ चल रही है। इन बातों में लोग अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च करते हैं। ठाठ-बाट बनाने में अपनी गाढ़ी कमाई का अधिकांश भाग फूँक देते हैं। कीमती कपड़े पहनने की कोई उपयोगिता समझ में नहीं आती। शरीर ढकने के लिए सीधे-साधे कपड़े पर्याप्त हैं, पर जब उनमें प्रचुर धन खर्च करके कीमती सूट और महँगी साड़ी पहन कर लोग बाजार में निकलते हैं तो

उनका उद्देश्य देखने वालों पर यह रौब गौठना होता है कि हम बहुत बड़े अमीर हैं। इसी प्रकार जेवर लादे फिरने का फूहड़पन भी इसी ओछी बुद्धि का परिचायक है कि लोग हमें धनी समझें। धनी होने का प्रमाण-पत्र गले में लटकाने फिरने, हाथ-पैरों में बाँधे फिरने का फितूर ही जेवर पहनने की भोंड़ी शक्ल बनाये फिरता है। जो धन बैंक में जमा होकर या किसी कारोबार में लग कर दिन-दिन बढ़ता रह सकता था और कितने ही लोगों के लिए रोजी-रोटी उत्पन्न करने वाला बन सकता था। उसे जेवरों में रोक कर पंगु बना देना वस्तुतः लक्ष्मीजी का अपमान है।

पैसे की उपयोगिता तभी है जब वह घूमता रहे। यदि उसे जमीन में गाढ़ दिया जाय या जेवर जैसे दिन-दिन घटने वाले, ईर्ष्या उत्पन्न करने वाले, अहंकार बढ़ाने वाले और चोर-उचककों का मन ललचाने वाले व्यर्थ कामों में लगा दिया जाय तो उसकी फिर क्या उपयोगिता रह जाती है ? यह तो लक्ष्मी देवी के हाथ-पैर तोड़कर उसे लुंज-पुंज बना देने जैसा अनुपयुक्त कार्य हुआ ? कीमती पोशाक न पहन कर यदि हम सादे कपड़े पहनें तो यह हमारी सज्जनता और बुद्धिमत्ता का चिह्न होगा। इस विभाग में बचा हुआ पैसा हम अपने और दूसरों के आवश्यक कार्यों में लगा कर अपनी दूरदर्शिता और भलमनसाहत का परिचय दे सकते हैं।

अहंता की पूर्ति के लिए—विवाह-शादियों में लोग अन्धे होकर पैसे की होली जलाते हैं। उनका प्रयोजन शायद यही रहता होगा कि उत्सव में शामिल होने वाले अथवा दर्शक लोग इन पैसे की होली फूँकने वालों को अमीर समझ कर उनकी प्रशंसा करें। मृत्यु भोज या अन्य बड़ी-बड़ी दाबतों के मूल में भी वाहवाही लूटने की मनोवृत्ति छिपी रहती है। दूसरों की तुलना में अपने को अधिक अमीर सावित करके अधिक वाहवाही लूटने के लिए अपना घर खाली कर डालते हैं, कर्जदार बन जाते हैं और कई बार तो मतवाले होकर इतना खर्च कर बैठते हैं कि पीछे उन्हें अपने आवश्यक कार्यों को ठीक तरह चलाने में भी कठिनाई अनुभव होने लगती है। मोटर, घोड़ा, गाड़ी, कोठी, बँगले, नौकर-चाकर आदि का भारी सरंजाम आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं, ठाठ-बाट दिखाने और अमीरी प्रदर्शित करने के लिए जुटाया जाता है। बड़े आदमी बनने के शौक में जितनी फिजूलखर्ची इन कामों में की जाती है, उससे कहीं कम में काम चल सकता था।

अमीरी प्रशंसनीय नहीं—किसी जमाने में अमीरी बड़प्पन का चिह्न रही होगी, पर अब जैसे-जैसे विचारशीलता बढ़ रही है अमीरी को घृणा और ईर्ष्या, द्वेष की दृष्टि से देखा जाने लगा है। सर्वसाधारण की गरीबी और परेशानी को घटाने में अपनी कमाई को खर्च न करके जो लोग उसका संग्रह करते चले जा रहे हैं,

अपने ऊपर अम्बाधुन्ध खर्च कर रहे हैं और वाहवाही लूटने के लिए उसे फूहड़पन के साथ उलीचते हैं, उन्हें स्थायी, निष्ठुर एवं मदांश ही कहा जा सकता है। बड़प्पन पाने की आशा से जो लोग यह उद्धतपन करते हैं। उन्हें यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि उनका यह छछोरपन प्रशंसा का नहीं निन्दा का कारण बनता चला जा रहा है और वह समय दूर नहीं जब इस प्रकार की मूर्खता अवांछनीय मानी जाने लगेगी। लोग उनसे घृणा करके ही चुप न हो जायेंगे वरन् ऐसे उद्धत प्रदर्शनों का विरोध करेंगे और रोकेगा।

सार्वजनिक जीवन का सत्यानाश—सार्वजनिक संस्थाओं का सत्यानाश इसी प्रवृत्ति ने किया है। पदाधिकारी बनने की हैसियत में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण जन संगठन ईर्ष्या और कलह के अखाड़े बने हुए हैं। हर कोई बड़प्पन और पदवी चाहता है, जिसे मिल जाती है वह फिर उसे सदा के लिए छाती से चिपकाये बैठा रहना चाहता है। जिसे नहीं मिलती, वह सत्ता प्राप्त को पदच्युत करने के लिए ही नहीं उस संस्था की प्रगति को ही नष्ट करने पर तुल जाता है। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी संस्थाएँ इस बीमारी की शिकार हो रही हैं और इसी पारस्परिक कलह में अपनी उपयोगिता एवं शक्ति गँवाती चली जा रही हैं। व्यक्तियों का पतन भी इसी कुचक्र में हो रहा है। एक व्यक्ति स्वयं सत्ता हथियाने और अपने प्रतिद्वन्दी को गिराने के लिए जितने हथकण्डे प्रयोग करता है, जितने कुचक्र और षडयन्त्र बनाने में अपनी शक्ति खर्च करता है। उतनी ही यदि वह सच्चे मन से सच्ची सेवा करने में लगा दे तो लोक-परलोक भी सुधरे, आत्मा को शान्ति भी मिले और जनता-जनार्दन की कुछ ठोस सेवा भी बन पड़े।

बड़े बनने के ओछे उपाय—प्रशंसा का उद्देश्य लेकर थोड़ा-सा सेवा कार्य कर देने वाले, लम्बे-चौड़े लेक्चर झाड़ने वाले, बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाले लोग अपने हथकण्डों से बड़प्पन लूटने में सफल हो जाते हैं। यह सामाजिक जीवन के लिए एक खतरा है। राजनैतिक चुनावों में अयोग्य और अनुपयुक्त व्यक्ति भी केवल बड़प्पन प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं और अम्बाधुन्ध धन व्यय कर देते हैं।

थोड़ा-सा दान देकर अपने नाम का पत्थर लगवाने की या नामवरी छपवाने की प्रवृत्ति निम्न कोटि की है। इसमें दान या सेवा का नहीं प्रशंसा प्राप्त करने का अहंकार ही प्रधान है। अहंता को पाप माना गया है। पाप ही नहीं उसे पाप का मूल भी कहा गया है। “पाप मूल अभिमान” की उक्ति प्रसिद्ध है। यह पाप जहाँ भी रहेगा वहाँ सेवा क्या बन पड़ेगी ? सत्कर्म कहाँ सम्भव होगा ? नाम के भूखे पागल लोग, जहाँ नाम नहीं मिलता वहाँ से खिसकने लगते हैं और वहाँ जोड़-तोड़ भिड़ाते हैं, जहाँ किसी प्रकार उन्हें नामवरी प्राप्त हो। एक

संस्था छोड़कर दूसरी में, दूसरी को छोड़कर तीसरी में घुसते फिरने वाले लोग आमतौर से इसी मर्ज के मरीज होते हैं। सैद्धान्तिक मतभेद के कारण तो कोई बिरले ही इस प्रकार का परिवर्तन करते हैं। हमारा सार्वजनिक जीवन इस लोकेषणा की दुष्प्रवृत्ति के कारण कितना गन्दा और मलीन होता चला जा रहा है यह देखकर भारी दुःख होता है।

स्वराज्य में विश्वास करने वाले राजनैतिक विचार के लोग जब स्वतन्त्रता संग्राम में जुट पड़े तो उस संघर्ष प्रयत्न ने एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया। निस्वार्थता एवं संगठन का परिणाम सदा ही चमत्कारिक होता है। धार्मिक जगत में त्यागी समझे जाने वाले लोग यदि अपनी लोकेषणा को त्याग कर सके होते तो भारत की धर्म प्रधान जनता को चरित्र दृष्टि से कहीं अधिक समुन्नत कर सकना बहुत ही सरल हो गया होता। धन और वासना का प्रलोभन छूट सकता है पर लोकेषणा तो सबसे प्रबल है, उसका लोभ त्यागी कहे जाने वाले लोगों से भी नहीं त्यागा जाता।

मूक सेवा की महत्ता—हमें मूक सेवा को महत्व देना चाहिए। नींव के अज्ञात पत्थरों की छाती पर ही विशाल इमारतें तैयार होती हैं। इतिहास के पन्नों पर लाखों परमार्थियों में से किसी एक का नाम संयोगवश आ पाता है। यदि सभी सज्जनों का नाम छापा जाने लगे तो दुनिया का सारा कागज इसी काम में समाप्त हो जायगा। यह सोचकर हमें प्रशंसा की ओर से उदास ही नहीं रहना चाहिए वरन् उसको तिलांजलि भी देनी चाहिए। नामवरी के लिए जो लोग आतुर हैं उनके निम्न स्तर का, स्वार्थी ही माना जाना चाहिए। जो बदले की नीयत से सत्कर्म कर रहा है वह व्यापारी है। पुण्य और परमार्थ को वाहवाही के लिए बेच देने वाले व्यापारी हीरा बेचकर काँच खरीदने वाले मूर्ख की तरह हैं। जिसने प्रशंसा प्राप्त करली उसे पुण्य फल नाम की और कोई चीज मिलने वाली नहीं है। दुहरी कीमत वसूल नहीं की जा सकती। अहंकार को तृप्त करने के लिए प्रशंसा प्राप्त कर लेने के बाद किसी को यह आशा न करनी चाहिए कि इस कार्य में उसे परमार्थ का दुहरा लाभ भी मिल जायगा।

प्राचीनकाल में गुप्त दान की बड़ी महत्ता थी। बाइबिल में कहा गया है कि—“तू दाहिने हाथ से दान इस प्रकार कर कि तेरा बायाँ हाथ भी जानने न पावे।” पुण्य और पाप का जितना बखान होता है, उतना ही वह घट जाता है। लोकेषणा का लोभी ईश्वर का प्यार नहीं हो सकता। श्रु को तो निरभिमानता ही प्रिय है। अठारह पुराण विभिन्न काल में विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये हैं पर उनमें से किसी ने भी अपना नाम न देकर व्यासजी को ही उनकी रचना का श्रेय दिया है। तुलसीकृत रामायण में कई व्यक्तियों ने अपनी कृतियों के क्षेपक लगाये पर उसमें अपना नहीं तुलसीदासजी का ही नाम

रखा। प्राचीनकाल में नाम से बचने की प्रवृत्ति थी। लोभ नाम को नहीं काम को महत्व देते थे। सत्कर्म करने से आत्मा में जो सन्तोष उत्पन्न होता है, समीपवर्ती लोगों में जो गहरी श्रद्धा उत्पन्न होती है उतना ही लाभ प्राप्त करके प्रत्येक सत्कर्म प्रेमी को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। सेवा का यही परिपूर्ण पुरस्कार है।

आत्म-सन्तोष के लिए सत्कर्म—वाहवाही और नामवरी के लिए ओछे उपायों का अवलम्बन करना उतना ही हेय है, जितना धन और वासना की पूर्ति अनैतिक उपायों से करना। इस मानसिक दुर्बलता ने समाज का अन्य किसी भी भयंकर बुराई से कम अहित नहीं किया है। सभ्य-समाज की रचना के तीन प्रमुख आधारों में हमें सज्जनता का श्रेय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और हत्यारी लोकेषणा से दूर रहना चाहिए। आज महत्वाकांक्षाओं की आग में सारी दुनिया जल रही है। उन्नति के नाम पर प्रगति की अभिलाषा से बुरे-बुरे दुष्कर्म करने में संलग्न हैं। हमें सन्तोष का अमृत पीना और पिलाना चाहिए और यह समझना तथा समझाना चाहिए कि वाहवाही व्यर्थ है। आत्म-सन्तोष के लिए श्रद्धापूर्वक सत्कर्म करते रहना ही श्रेष्ठ है। उसी में अपना और सब का कल्याण समाया हुआ है।

वित्तेषणा की डाकिन

धन के सम्बन्ध में असन्तोष लोभ बनकर फूटता है। वासना का असन्तोष काम कहलाता है। स्वामित्व का असन्तोष मोह कहलाता है। अहंकार की पूर्ति में कहीं नुटि रह जाने का असन्तोष क्रोध कहलाता है। मानसिक शत्रुओं का पाप एवं दुष्कर्मों का सारा परिवार असन्तोष से ही अपना पोषण पाता है। परिवारों का मधुर मेल-मिलाप इसी के कारण नष्ट होता है। दाम्पत्य जीवन की प्रेम प्रतीति में पलीता लगाने वाला यही दुष्ट है। शान्ति और प्रेम के साथ मधुर जीवन-यापन करते हुए आनन्द की सरिता बहाने और अपना तथा दूसरों का कल्याण करने में संलग्न होने की अपेक्षा वैभव इकट्ठा करने की हविस में देश-विदेश मारे-मारे फिरने और प्रेत-पलीत की तरह निरन्तर व्यस्त व्यथित रहने में यह असन्तोष ही एकमात्र कारण हो सकता है।

असन्तोष को प्रगति का चिन्ह मानना सर्वथा भूल है। उससे आकांक्षाओं को उत्तेजना तो अवश्य मिलती है पर उनकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। कोई महत्वपूर्ण सफलता बिना व्यक्तित्व के आवश्यक गुणों में अभिवृद्धि किये कदापि सम्भव नहीं हो सकती और इन गुणों का बढ़ाना शान्तचित्त, आत्म-निरीक्षण, आवश्यक धैर्य और निरन्तर अभ्यास से ही सम्भव है। इन्हें बढ़ा सकना उद्विग्न असन्तोषी के लिए किस प्रकार शक्य हो सकता है ? वह बावला तो आज ही, अभी ही, सब कुछ पाने की तृष्णा में सब पर हावी होने का उपक्रम बनाये रहता है,

उसे इतनी फुरसत कहाँ है जो आत्म-निरीक्षण करे और अपने अन्दर उन महापुरुषों जैसे गुणों को बढ़ावे जिनके आधार पर महान कर्मा की पूर्ति हुआ करती है और मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा करता है।

तीन ऐषणाएँ—असन्तोष का असुर तीन रूप बनाकर अपनी मायावी दृष्टता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होता रहता है और प्रेम तथा आनन्द के साथ जीवन-यापन कर सकने वाली सहनशीलता में पलीता लगाता रहता है— (१) वितेषणा (२) पुत्रेषणा (३) लोकेषणा—असन्तोष के यही तीन स्वरूप हैं। धन, वासना और अहंता की तृष्णा जब अमर्यादित हो उठती है, तो उसे ऐषणा कहा जाता है। उचित प्रयत्न के साथ उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, उचित रीति से धन कमाया जाना उचित है। यह प्रशंसनीय और आवश्यक भी है क्योंकि इसके बिना अपने शरीर और परिवार का निर्वाह नहीं हो सकता। जिन्होंने गृहस्थ धर्म अपना लिया है और विवाहित जीवन-यापन कर रहे हैं, उनका उचित मर्यादा के अन्तर्गत सन्तानोत्पादन की दृष्टि रखकर क्रमोपभोग भी उचित है। अपने पीछे अपने स्मारक के रूप में समाज के श्रेष्ठ नागरिकों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करके जाना ही सन्तानोत्पादन का उद्देश्य है। काम सेवन उसका एक विनोद भरा शुभारंभ मात्र है।

हम शुभ कार्य करके दूसरों की दृष्टि में अपना सम्मान स्थिर करें और अपने आत्म-गौरव के अनुरूप सेवा और सदाचार भरा उत्कृष्ट जीवन-यापन करते हुए श्रद्धा के भाजन बनें, यह यशस्वी होने की आकांक्षा भी उचित है क्योंकि इसी से प्रेरित होकर मनुष्य कष्टसाध्य शुभकर्मों को करने के लिए तैयार होता है। पर यह तीनों की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकना असन्तोष और अधीरता से सम्भव नहीं। इससे तो मनुष्य मर्यादाएँ छोड़कर उच्छृंखलतापूर्वक अनुचित मार्ग अपना लेता है।

औचित्य और मर्यादा—धन, वासना और अहंता की उचित और व्यवस्थित प्रगति तो विवेक एवं दूरदर्शिता के आधार पर ही सम्भव हो सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम आज की स्थिति पर सन्तोष अनुभव करते हुए मन को प्रसन्नता से, आशा से, उत्साह से परिपूर्ण रखें, जिससे प्रगति का कठिन मार्ग पार करते हुए हम दिन-दिन ऊँचे उठ सकने की स्थिति को प्राप्त कर सकें। असन्तुष्ट व्यक्ति एक प्रकार का उन्मत्त होता है, जो स्वयं परेशान रहता है और दूसरों को परेशान करता है। परिस्थितियों के साथ समझौता करके ही इस संसार में सब को काम चलाना पड़ता है। परिस्थितियों को अपने अनुरूप ढालने में लगा रहना चाहिए पर साथ ही अपने को भी परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।

हमें तीनों ऐषणाओं से बचते हुए आनन्द-उल्लास, का, प्रेम और सन्तोष का नैतिक जीवन व्यतीत करने की ही इच्छा करनी चाहिए। बड़ा आदमी बनने की

महत्वाकांक्षा वाले व्यक्ति इस संसार में अत्यधिक हानिकारक सिद्ध होते हैं। आततायी उपद्रवकारियों की तरह वे दूसरों को पददलित करते हुए उनकी लाशों पर ही चढ़कर बड़े बन पाते हैं। इसलिए भौतिक विभूतियों की तृष्णा को अध्यात्मवाद की दृष्टि से सदा ही हेय माना जाता रहा है। उसे रोकने और नियन्त्रित रखने के लिए पग-पग पर शिक्षण दिया जाता रहा है। समाज का सन्तुलन महत्वाकांक्षी लोग ही बिगाड़ते हैं, इसलिए इन मानसिक रोगियों से ऐसे ही सतर्क सहना चाहिए जैसे ईंट मारने वाले पागलों से बचा जाता है।

धन की भ्रम मरीचिका—आज धन के लिए हर व्यक्ति प्यासा-सा फिरता है। धन, अधिक धन और अधिक धन यह एक ही पुकार हर दिल और दिमाग में से उठती सुनाई देती है। धर्मध्वजी सन्त-महन्तों से लेकर जेबकट और चोर-डाकुओं तक हर वर्ग के लोग धन की आकांक्षा से अपने-अपने चरखे चलाते रहते हैं। विचारणीय बात है कि क्या धन की उतनी ही आवश्यकता है, क्या गरीबी इस सीमा तक पहुँच गई है कि मनुष्य को निरन्तर धन के लिए उद्ध्विग्न हुए बिना काम न चले ? बात ऐसी बिल्कुल भी नहीं है। भगवान ने इतनी वस्तुएँ और साधन-सामग्री इस धरती पर पहले से ही पैदा कर रखी हैं कि मिल बाँट कर मनुष्य अपना गुजारा कर सकें और शान्ति और आनन्द के साथ हिल-मिल कर प्रेमपूर्वक जीवन-यापन करते हुए लक्ष्य प्राप्ति के लिए अग्रसर हो सकें।

रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य जीवन की प्रधान भौतिक आवश्यकताएँ हैं। यह आवश्यकताएँ इतनी छोटी और थोड़ी हैं कि बड़ी आसानी से थोड़े ही समय के उचित श्रम में उन्हें पूरा कर सकते हैं। गरीब कहे जाने वाले लोग भी इन तीनों आवश्यकताओं को पूरा कर लेते हैं और सन्तोषपूर्वक हँसते-खेलते जीवन व्यतीत करते रहते हैं। इसके विपरीत वे लोग हैं जिनके यहाँ सब कुछ होते हुए भी दिन-रात धन की हाथ-हाथ लगी रहती है। अशान्ति, बेचैनी, चिन्ता और परेशानी से रहित जिनका एक क्षण भी व्यतीत नहीं होता। ऐसे लोग वस्तुतः बड़े दयनीय* हैं। बेचारे न जीवन का मूल समझ सकें और न उसका लाभ प्राप्त कर सकें। इन अभागों की दुर्दशा पर केवल दुःख के आँसू ही बहाये जा सकते हैं। असन्तोष की आग में जलते रहने वाले यह अमीर वस्तुतः विशाल अस्पताल के कीमती पलंगों पर पड़े हुए वह रोगी हैं, जो आग से झुलसे हुए हैं, जिनके बाहर और भीतर आग ही आग-जलन ही जलन पीड़ा दे रही है। कीमती इमारत एवं बहुमूल्य पलंग का क्या सुख इन बेचारों को मिल सकेगा ?

सादगी का पितृव्यहीन जीवन—भारत गरीब देश है, यहाँ हर आदमी की औसत आमदनी बहुत थोड़ी है। हमारा उत्पादन कम है। योग्यता और क्षमता भी स्वल्प है।

ऐसी दशा में राष्ट्रीय आय का स्वल्प होना स्वाभाविक है। इसलिए हममें से हर एक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उतना ही खर्च अपने ऊपर करें जितना कि मध्यम वर्ग के भारतीय नागरिकों को अपने ऊपर करना उचित है। यदि कुछ लोग अपने ऊपर अधिक खर्च करेंगे, अधिक जमा करने की सोचेंगे तो उनके कार्यों से दूसरों को उतना ही अभावग्रस्त रहना पड़ेगा। एक ऊँची मीनार खड़ी करने पर जमीन में उतना ही गहरा गड्ढा कहीं न कहीं करना पड़ता है, एक व्यक्ति धनी तभी हो सकता है जब दूसरे अनेकों के हिस्से की राष्ट्रीय आय का भाग अपने नीचे दबाले। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप दूसरे अनेकों को अभावग्रस्त एवं गरीब रहने के लिये विवश होना पड़ता है। इसलिए संग्रह की, विलासिता की प्रवृत्ति को हेय माना गया है। अध्यात्मवाद के अपरिग्रह से लेकर भौतिकवादी साम्यवाद तक सभी न्यायसंगत दृष्टिकोण का निष्कर्ष एक ही है कि हर व्यक्ति को उतनी ही सुख-सुविधा प्राप्त रहे, जितनी कि उस समाज के मध्यवर्गीय नागरिकों को प्राप्त होती है।

गरीब और अमीर के बीच का अन्तर—वर्तमान अर्थतंत्र के कारण यदि किसी व्यक्ति की आमदनी अधिक होती है तो उसका कर्तव्य है कि उसे समाज को पुनः दान आदि के रूप में लौटा दे। हाथ में पाँच उँगलियाँ होती हैं, उनमें से कुछ छोटी कुछ बड़ी भी हैं। योग्यता और पुरुषार्थ के आधार पर यह अन्तर मनुष्य की सुख-सुविधाओं में भी रह सकता है पर यह होना उतना ही चाहिए जितना कि उँगलियों की लम्बाई में होता है। यह अनुपात दस पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं है। इस से अधिक अन्तर यदि लोगों की आर्थिक स्थिति में रहेगा तो उससे समाज में अशान्ति ही उत्पन्न होगी। उससे ईर्ष्या और अनाचार का ही जन्म होगा। यह एक तथ्य है जिसे हम चाहें विवेक-उदारता और न्याय की दृष्टि से अपनाकर अपनी महानता का परिचय दे सकते हैं, अन्यथा आज नहीं तो कल बलपूर्वक ऐसा करने के लिए विवश किया जाने लगेगा।

गरीब और अमीर के बीच इतना अन्तर किसी भी प्रकार स्थिर नहीं रह सकता, जितना कि आज देखा जाता है। सन्त विनोबा के भूदान आन्दोलन से लेकर सरकार की कर नीति तक धीरे-धीरे सब ओर से यही प्रयत्न चल रहे हैं कि व्यक्ति अधिक सम्पन्न न रहने पावे। इस युगवाणी को हम विवेकपूर्ण सुन लें और अमीरी की महत्वाकांक्षाएँ छोड़कर मध्यवर्ती जीवन-यापन करने की बात तक अपने को सीमित कर लें तो हमारे असन्तोष का एक बहुत बड़ा कारण अनायास ही समाप्त हो सकता है। गुजर के लायक हम सब कमाते भी हैं, प्रयत्न करके इसे कुछ और भी बढ़ा सकते हैं। अमीरी के सपनों का नशा यदि हमारे मस्तिष्कों पर से उतर जाय तो स्वस्थ,

सुविकसित एवं शान्तिमय जीवन-यापन करने के लिये हमें एक नई दिशा मिल सकती है।

फिजूलखर्ची से बचना ही चाहिए—हमारे खर्च दिन-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं। विलासिता की बिलकुल बेकार आदतों को हम दैनिक आवश्यकता मान बैठे हैं और खर्च अन्ध-धुन्ध बढ़ाये चले जा रहे हैं। हर व्यक्ति अपने से अधिक अमीर की नकल करके स्वयं भी अमीर कहलाने की मृगतृष्णा में भटक रहा है। अमीरों के से ठाठ-बाट बनाने में गरीब लोग जब अपनी औकात और हैसियत का ध्यान छोड़ देते हैं, तब एक उपहासास्पद स्थिति पैदा हो जाती है। फैशन का भूत लोगों पर इसलिए सवार है कि वे कीमती पोशाक, जेवर, नगीने पहन कर, ठाठ-बाट इकट्ठा करके बड़े और अमीर आदमी समझे जाने लगे। फैशनपरस्ती एक घटिया दर्जे का छछोरापन है।

अमीरी की बिड़म्बना बनाने में जो फिजूलखर्ची के उपकरण जुटाते हैं उन्हें बाल बुद्धि ही कहा जा सकता है। आज तो विलासिता की सामग्री को भी आवश्यकता समझने की हमारी बुद्धि प्रमित होने लगी है। सिनेमा, बीड़ी, मटरगश्ती, शृंगार साधन, चाय-पानी, यार-दोस्त आदि महकमे काफी खर्चीले बैठते हैं। कीमती कपड़े के कई-कई जोड़े रखने, जेवर आदि बनाने में ढेरों पैसा खर्च होता है। हाथ से काम न करके, छोटे-छोटे क्रमों को स्वयं न करके, पैसे देकर क्राने में आलसी भी बनना पड़ता है और पैसा भी खर्च होता है। टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत न कराके उन्हें पूर्णरूपेण बेकार हुए बिना ही फेंक दिया जाता है। अव्यवस्थित रूप से पड़ी हुई चीजें समय से पूर्व ही नष्ट और बर्बाद होती रहती हैं। खर्च में हाथ खुला रखने का उचित आमदनी होने पर भी तंगी बनी रहती है। उधार की आदत फिजूलखर्ची को बहुत बढ़ा देती है। जब कभी जो कुछ भी लेना हो नकद लेना चाहिए और उतना खर्च करना चाहिए जितनी आमदनी हो। उधार देना भी आज के अनैतिक युग में अपने पैसे को सड़क पर बखेर देने के समान है। लेकर वापिस करने वाले कोई बिरले ही देखे जाते हैं। सामाजिक कुरीतियों में वाहवाही और लोकाचार की उपेक्षा करके ही पैसे की व्यर्थ बर्बादी को रोका जा सकता है। यह सूत्र है जिन पर विस्तारपूर्वक विचार करके हम मितव्ययी बन सकते हैं और आर्थिक तंगी के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तोष से बच सकते हैं। बुद्धिमानी पैसा कमाने में नहीं, उसके खर्च करने में है। कमाई तो कभी-कभी अनायास भी हो सकती है पर खर्च के सम्बन्ध में मनुष्य कितना सतर्क रहा है, इससे उसकी बुद्धिमानी परखी जा सकती है।

सादगी ही श्रेष्ठ है—सादगी, मितव्ययिता और सामान्य श्रेणी का जीवन-यापन करने से ही मनुष्य का गौरव है। सज्जनता का यही परिधान है। समाज में जब

३.५१ गृहस्थ एक तपोवन

तक यह प्रवृत्ति विकसित न होगी, हम अशान्ति और असम्यता की ही ओर बढ़ते रहेंगे। कहते हैं कि जरूरतों से प्रेरित होकर मनुष्य दुष्कर्म करते हैं फिर हम इसकी जड़ को ही क्यों न काटें ? अपनी जरूरतों को ही सीमित क्यों न करें, जिससे दुष्कर्म करने की आवश्यकता ही न पड़े। सन्तोषी को सबसे बड़ा सुखी माना गया है। वितेषणा पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए यदि हम सादगी को अपनी जीवन नीति बना लें और मितव्ययिता को अपनाकर तृष्णा को निरर्थक अनुभव करने लगे तो सचमुच अपना जीवन बड़ा सुखी हो सकता है। यदि स्वयं सुखी रहना और दूसरों को शान्ति से रहने देना हमें अभीष्ट हो तो वितेषणा को अस्वाभाविक, अनैतिक, अवांछनीय एवं अनुपयुक्त मानना पड़ेगा। यह डायन जब तक हमारे पीछे पड़ी रहती, तब तक न चैन की साँस लेने का अवसर मिलता है और न दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारे का कोई मार्ग रह जाता है। जिसे निरन्तर धन की हाथ लगी हुई है वह सज्जनता और सदाचार का जीवन देर तक नहीं बिता सकता। अवसर आते ही उसका अनीति के मार्ग पर फिसल पड़ना निश्चित है। यह फिसलन ही असम्यता है। सभ्य समाज की रचना के लिए वितेषणा को अपना प्रथम शत्रु मानते हुए सादगी, सीमितता और सज्जनता की बुद्धि उत्पन्न करनी चाहिए।

नर एवं नारी एक दूसरे के सहचर

नारी स्वातन्त्र्य एवं नारी को अधिकार दिये जाने के प्रसंग की जब भी चर्चा होती है तो सहज ही अनेकानेक पक्ष मस्तिष्क पटल पर आ जाते हैं। भारतीय परिवेश में उन्हें दृष्टिगत रख चिन्तन करना अपरिहार्य मानना चाहिए। हमारे यहाँ बड़े कुटुम्बों, संयुक्त कुटुम्बों का अभी भी प्रचलन है। बहुजनन हमारे राष्ट्र से जुड़ी एक और विषम विडम्बना है। कन्या से बढ़कर पुत्र को महत्व दिये जाने, छोटे परिवार का महत्व न समझ पाने एवं जनमानस में अज्ञान का बाहुल्य होना भी प्रस्तुत समस्या का मूलभूत कारण है।

स्त्री के लिए पति का, स्वजन-सम्बन्धियों का बच्चों का मिला-जुला भार इतना बोझिल हो जाता है कि उसे निरन्तर लादे रहने में उसकी कमर टूट जाती है। यह बोझ कभी घटता नहीं वरन् आयु बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता ही जाता है। बेटे-बेटियों से निवृत्त नहीं हो पाते कि पोते, धेवते अपनी-अपनी फरमाइशें लेकर आ उपस्थित होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकने के लायक न तो समय बचता है, न मन, न साधन। यदि नारी को इस प्रकार प्रतिबंधित न किया गया होता तो वह पति के लिए सहायक रहती। उस पर भार न बनती और घर भरने के लिए सहमत न होती। स्वार्थी पुरुष वर्ग द्वारा नारी का शोषण करने, उसे अपंग बनाकर रखने के मूल में जो लाभ सोचे गये थे, वे भ्रम मात्र थे। किन्तु

वस्तुस्थिति सर्वथा विपरीत निकली। पददलित नारी अपने लिए, बच्चों के लिए, पति के लिए, समूचे परिवार के लिए भारभूत सिद्ध हुई है। वह इनमें से किसी के लिए भी उत्साहवर्धक सिद्ध नहीं हुई। फिर देश, धर्म, समाज, संस्कृति के लिए तो वह कोई अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर ही कैसे सकती थी।

समय आ गया है कि नर को अपने चिरकाल से चले आ रहे अनाचार को बन्द करना चाहिए। प्रायश्चित्य उसी को करना चाहिए।

यह प्रायश्चित्य इसी प्रकार हो सकता है कि नारी को जितना गिराने के लिए षडयन्त्र रचा गया है, उसकी क्षतिपूर्ति की जाय। खाई को पाटा जाय, जिसमें गिरकर पैर तोड़ने, जान गँवाने का खतरा खड़ा हो गया है। भूमि को समतल किया जाना चाहिए। नारी को दासी स्तर से ऊँचा उठाकर उसे सहचरी स्तर तक विकसित किया जाना चाहिए।

इस परिवर्तन में पुरुष को अग्रगामी भूमिका निभानी चाहिए कि दोनों पक्ष अपने को एक ही मनुष्य जाति के समभागी सदस्य समझें और उन पहचानों को हटा दें जो नारी को भोग्या और पुरुष को भोक्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उत्तेजक वेष-भूषा, शृंगार, केश विन्यास, भोड़े वस्त्र, नाक-कान आभूषण यह सभी ऐसे हैं जो नारी को गुड़िया जैसे खिलौने के रूप में प्रस्तुत प्रदर्शित करते हैं। होना यह चाहिए था कि दोनों का वेष-विन्यास एक जैसा रहता। इस सन्दर्भ में चीन तथा उसके ईर्द-गिर्द वाले देशों ने सही मार्ग अपनाया है और पुरुष तथा नारी का लिवास एक जैसा रखा गया है। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पड़ता है कि दोनों पक्ष अपने को मनुष्य जाति का समान सदस्य अनुभव करते हैं। कामुकता भड़काने वाले उपकरणों के हट जाने से उनका ध्यान बहिन-भाई या पति-पत्नी के रूप में, सहचर के रूप में मिल-जुलकर रहने या काम करने के लिए समुद्धत होता है। कोई पक्ष ऐसा छुई-मुई नहीं रहता, जिसके प्रतिपक्षी को दृष्टि मात्र से चंगुल में फँसाकर पतन के गर्त में गिरा दे। उत्तेजक वेष विन्यास ही है जो नर-नारी के बीच कामुक उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। एक पक्ष की हीनता का सूचक भी। पशुओं को बन्धन में बाँधकर रखने के लिए उनकी नाक में नकेल डाल देते हैं। गाय, ऊँट आदि को इसी आधार पर इधर-उधर खरीद कर ले जाया जाता है। कैदियों के हाथों में हथकड़ी, पैर में बेड़ी, गले में तौक, कमर में रस्सी बाँधी जाती है। उसी प्रक्रिया का यह विकसित रूप बनता है कि स्त्रियाँ नाक में, कान में, छेद करायेँ और उनमें नकेल, नाथ, अंकुश के प्रतीक जेबर पहनें। गले में, हाथ में, पैरों में, कमर में वैसे आभूषण पहनें जिससे उनकी सामाजिक स्थिति कैदी जैसी प्रतीत होती हो। यह दासता के चिह्न हैं, जिन्हें अब प्रसन्नतापूर्वक धारण किया या कराया जाता है—यह

अनुचित है। किसी महिला को जज, डाक्टर, मिनिस्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर बनना पड़े तो क्या वह इस बचकनपन को धारण किए हुए विज्ञ समुदाय के सामने उपस्थिति होने में लज्जा अनुभव करेगी ? यदि हाँ तो उसे गृह संचालिका ही नहीं पति के हर काम में सहचरी बनाने की प्रक्रिया में सदभागी होने के लिए प्रायः वैसा ही वेश विन्यास बनाना चाहिए जैसा कि पति का है। उसमें राई-रती अन्तर रहे तो ही उसे किसी प्रकार दर-गुजर किया जा सकता है।

मेंहदी, महावर, होठों की लाली, नाखून पालिस, माँग का सिन्दूर, माथे की बिन्दी, काँच की चूड़ी आदि सजावटें भी नारी के द्वारा अपनी हेय स्थिति स्वीकार किए जाने के प्रमाण रूप में विद्यमान हैं। यदि यह सुहाग के चिन्ह हैं तो नारी को सौभाग्यवान होने की तरह पुरुष को भी सौभाग्यवान होना चाहिए और इन्हीं चिन्हों को उन्हें भी धारण करना चाहिए। पुरुष धारण नहीं करता, इसका अर्थ यह है कि वह अपने बड़प्पन का अहंकार कम नहीं करना चाहता। नारी ही है जो अपने बँधुआ होने के सभी प्रतीत पट्टे धारण किए रहती है। इसमें भी अपने को सौभाग्य-भाग्यवान होने पर गर्व करती है।

नारी में—कुमारी, विवाहिता, विधवा, परित्यक्ता के बीच प्रतीक परक कोई चिन्ह नहीं होना चाहिए। नारी का अर्थ है—नारी। वह पुरुष की सहचरी है तो सही, पर हर स्थिति में उसका पत्नी होना आवश्यक नहीं। वह अपने पिता की, भाई की, किसी स्वजन की कार्यक्षेत्र में सहचरी हो सकती है। सहचरी का अर्थ है—साथ काम करना। पति-पत्नी भी सहचर तभी हो सकते हैं, जब वे जीवनसाथी बनकर रहें। दोनों एक दूसरे के काम में हाथ बँटाये, दोनों अपने-अपने विषय में साथी को परिचित तथा प्रवीण बनायें। यदि इसमें किसी पक्ष को संकोच अनुभव होता है तो इसका तात्पर्य यही हुआ कि वे आपस में ही असाधारण भेदभाव नहीं करते वरन् अपने कामों में भी वैसा ही अन्तर मानते हैं। काम का बँटवारा स्वैच्छिक और सुविधा की दृष्टि से हो। उसके साथ हीनता या बड़प्पन किसी प्रकार जुड़ा नहीं होना चाहिए।

सहचर का क्रिया-कलाप मात्र साथ-साथ काम करने तक ही सीमित या समाप्त नहीं हो जाता वरन् उसके साथ यह दायित्व भी जुड़ता है कि विकसित पक्ष, अविकसित पक्ष को कम से कम अपने बराबर बनाने या और भी अधिक विकसित, सुयोग्य, समर्थ बनाने का प्रयत्न करे। नर की योग्यता और आयु नारी से अधिक होनी चाहिए—पिछले दिनों से यह मान्यता बनी चली आ रही है। अब इसमें अन्तर किया जाय तो यह भी बिना किसी हिचक और झिझक के हो सकता है कि पत्नी पुरुष की तुलना में अधिक शिक्षित, अधिक सुयोग्य, अधिक बलिष्ठ एवं अधिक आयु की हो। सहचर होने का तात्पर्य मानसिक, आत्मिक दृष्टि से बराबरी का होना है।

आयु, योग्यता आदि की दृष्टि से कोई भी बड़ा हो सकता है। एक की वरिष्ठता का लाभ दूसरे को सहचर होने की स्थिति में अनायास ही मिल जाता है।

प्रेम की पावन पाठशाला

पति को अपने ऑफिस जाने की जल्दी मची है और पत्नी अभी तक भोजन भी नहीं बना सकी है। कसूर उस बेचारी का भी क्या था कोयले ही गीले थे। सिंगड़ी देर से जली सो खाना समय पर न बन सका। वह चौके में बैठी मन ही मन भुन-भुना रही है। 'मैं क्या करूँ कोयले भी तो गीले उठा लाये। ये दुकानदार भी कैसे स्वार्थी हैं पूरे पैसे लेंगे और माल देगे मिलावट का।'

पतिदेव भी थोड़ा अपनी पत्नी की सहायता करते हुए घिस नहीं जाते या एक दिन भोजन नहीं मिलता तो कोई कयामत नहीं आ जाती, पर वे भी दूसरे ढंग से सोचते हैं—'दिन भर गप्पें लड़ाती है मगर भोजन समय पर नहीं बना सकती।' वे बिना खाये-पिये ही आफिस चले जाते हैं।

घटना छोटी-सी पर परिणाम बड़ा अशुभ ! पति दिनभर आफिस में पत्नी की अकर्मण्यता को लेकर भाग्य का रोना रो रहे हैं और पत्नी ने खाना बनाकर रख दिया है, स्वयं भी मुँह चढ़ाये पड़ी है। दोनों के मन में गाँठें पड़ गईं।

शाम को पति थका-हारा आफिस से लौटा। उसने तो वहाँ नाश्ता भी कर लिया पर पत्नी की तो भूख हड़ताल ही हो गई। चाहते हुए भी वह पति को नहीं मना सकी। उसका स्वाभिमान उसे रोक देता है। 'गलती तो उनकी भी है।' इसी प्रकार पति भी चुप-चाप आकर कोई पुस्तक पढ़ने लगता है या आफिस का काम लेकर बैठ जाता है। मन की गाँठें और कस जाती हैं।

इस प्रकार की घटनाएँ प्रत्येक परिवार में घटित होती रहती हैं। सभी इस प्रकार मानापमान का प्रश्न बनाते हैं, उनका जीवन नीरस होता जाता है। घर-घर न रहकर एक सराय हो जाता है।

छोटी-छोटी बातों को लेकर कुढ़ते रहने की प्रवृत्ति अनिष्टकारक होती है। इसका सीधा प्रभाव मनुष्य की प्रसन्नता पर पड़ता है। स्नायुविक तनाव उत्पन्न होता है। क्रोध, क्षोभ तथा कुण्ठा उत्पन्न होती है तथा कार्य-क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की शक्ति क्षीण होती रहती है।

जरा-सी सावधानी बरती जाय तो इस प्रकार उत्पन्न होने वाले अग्रिय प्रसंगों से मुक्ति पाई जा सकती है। स्वयं को दूसरे के स्थान तथा स्थिति में रखकर विवेक से सोचा जाय तो थोड़ा दोष अपना भी लगेगा। उस दोष को स्वीकार करते हुए सहायता करने को तत्पर होने से

यह स्थिति सहज ही टाली जा सकती है तथा मानसिक शान्ति का सुख पाया जा सकता है।

मन में ऐसी गाँठें पड़ने के पूर्व ही सचेत हो जाने वाले, स्वस्थ दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति जहाँ भी जाते हैं, अपने सहयोगियों तथा प्रशासकों की संख्या में वृद्धि कर लेते हैं। इस प्रकार के प्रसंग विशेषतया अधिक निकट के व्यक्तियों में ही उत्पन्न होते हैं। प्रायः पति-पत्नी में ही ऐसे प्रसंग उत्पन्न होते हैं।

जिसे अपना समझा जाता है, उस पर कुछ अधिकार भी माना जाता है तथा यह आशा की जाती है कि वह मुझे अपना समझेगा। यह समझना तथा आशा करना अनुचित नहीं है। किन्तु यह समझना पहले अपनी ओर से निभाया जाय तथा दूसरे पक्ष से वैसी ही आशा न रखी जाय तभी अधिक हितकारी होता है अन्यथा एक दूसरे पर दोषारोपण की प्रवृत्ति चल पड़ती है।

प्रेम तथा अपनत्व का क्रम अपनी ओर से देने के रूप में ही चलता रहे। अपना आदर्श सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ईश्वर आदि रहे। उन्हीं की तरह देने की कामना की जाती रहे तो स्वयं की महानता विकसित करते रहने तथा श्रद्धा के पात्र बनने में शंका ही न रहे।

इस विशाल दृष्टिकोण को अपनाकर ऐसे अभ्रिय प्रसंगों से बचा जा सकता है तथा पारिवारिक शान्ति को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

कौस्तुभ मणिवत-‘कौस्तुभ दम्पति’

दक्षिण भारत में जन्मे डा. कौस्तुभ अपने बाल्यकाल से ही दीन-दुखियों के प्रति बड़े दयालु थे। बुद्धि के कुशाग्र एवं परिश्रम के धनी कौस्तुभ ने समाज की सेवा करने के उद्देश्य से ही चिकित्सकीय क्षेत्र चुना था। अपने अध्ययन काल में ये बड़ी लगन व श्रद्धा से अध्ययन करते रहे। एम. बी. बी. एस. की उपाधि के बाद क्षयरोग मिदान में आपने विशेष योग्यता का प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा आप पूना के क्षय विरुजालय में अधीक्षक हो गये। इस संस्था में आपने बड़े मनोयोग से रोगियों की सेवा की। रोगियों की दृष्टि में डाक्टर भगवान का ही छोटा स्वरूप होता है। आपने रोगियों की एक डाक्टर में निहित आस्था-अपेक्षा, विश्वास को पूरा करने के लिए डा. कौस्तुभ रोगियों की परिचर्या में सदैव निमग्न रहते थे। बर्नाडशा कहा करते थे कि रोगियों को जितना डाक्टर की दवा लाभ नहीं पहुँचाती, उतना रोगी के प्रति स्नेह, व्यवहार, सहानुभूति की भावना लाभ पहुँचाती है। रोगी के प्रति डाक्टर का मधुर व्यवहार दवा से कई गुना अधिक प्रभावशाली होता है। इसलिए जिस प्रकार रोगी अपने डाक्टर को भगवान का स्वरूप समझता है उसी प्रकार डाक्टर भी यदि रोगी को आत्मवत् मानकर उसकी सेवा-सुश्रूषा, आचरण करे तो निश्चित ही

अधिकांश रोगी शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर नीरोग रहने लगे। डाक्टर कौस्तुभ इसी तरह के सफल डाक्टर थे। वे रोगियों की सेवा को ही जीवन का उद्देश्य समझते थे तथा रोगी की पीड़ा को दूर कर देने में उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति होती थी।

अपने जीवन के निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए यदि कोई साथी-सहयोगी मिल जाय तो लक्ष्य पूर्ति का मार्ग सुवासित हो जाता है। सद्कार्य करना, निःस्वार्थ गाव से समाज सेवा व परोपकार के कार्य करते रहना अपने आप को एक कंटककीर्ण मार्ग पर चलाने जैसा रहता है, ऐसे में अच्छा साथी रहे तो राह के काँटों को हटाता हुआ वह उद्देश्य पूर्ति में ही सहायक सहारा ही सिद्ध नहीं होता अपितु वह मार्ग को सुरक्षित भी किए रहता है और इस तरह स्वयं समाज-सेवी का जीवन लक्ष्य तो सुविधाजनक ढंग से पूर्ण हो ही जाता है, साथ ही उसका अपना जीवन भी सुवासित बना रहता है। इस दृष्टि से डाक्टर कौस्तुभ सौभाग्यशाली रहे कि उन्हें अपनी जीवन सहचरी के रूप में ऐसी ही महिला मिली, जिसने डा. कौस्तुभ के स्वर्णिम व्यक्तित्व को सुगन्धित बना दिया।

डा. कौस्तुभ के अपने ही विद्यालय में एक परिचारिका थी, जिसमें सेवा के लिए वांछित सभी गुण विद्यमान थे। यह परिचारिका रूस की युवती थी जो बड़ी ही लगन से रोगियों की सेवा किया करती थी। अपने विरुजालय में प्रविष्ट रोगियों की सेवा-सुश्रूषा में बड़ी दक्ष थी। रोगियों के बिस्तरों को व्यवस्थित बनाए रखने से लेकर उनके भोजन-पथ्य, उनकी शारीरिक स्वच्छता आदि सभी बातों पर वह व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया करती थी। डा. कौस्तुभ तो रोगियों को देखने सुबह-शाम ही आते थे व उनकी दशा देखकर उपचार प्रक्रिया निर्धारित भर करते थे परन्तु यह परिचारिका तो प्रायः हर समय ही रोगियों के पास ही रहकर डा. कौस्तुभ के दिए गए निर्देशानुसार रोगियों को देख लिया करती थी। डा. कौस्तुभ के विचारों-निर्देशनों को, उनकी भावनाओं को कार्यरूप में शतशः परिणित देख डा. कौस्तुभ को अपार प्रसन्नता होती थी तथा अपनी इच्छाओं के कार्यान्वयन में इस परिचारिका के सहयोग से ही आकृष्ट हो डा. कौस्तुभ ने अपनी जीवन सहचरी के रूप में इस रूसी परिचारिका को चुना। डाक्टर व परिचारिका एक जीवन सूत्र में आबद्ध हो विरुजालय के माध्यम से क्षय से पीड़ित रोगियों की दूने जोश व उत्साह से सेवा करने लगे। परिचारिका का भी यह सौभाग्य ही था कि उसे एक ऐसा जीवन साथी मिला, जिसने इसकी सेवा करते रहने की लगन को एक बड़ा सहारा दे उसके जीवन को सुरक्षित ही कर दिया। इस सौभाग्यशाली युवती का नाम था ‘सुचेता’ जो अब श्रीमती डा. कौस्तुभ बन गई थी। विवाहोपरान्त दोनों पति-पत्नी सम्यक् भाव से सेवा में लगे रहते थे।

डा. कौस्तुभ के कोई सन्तान नहीं थी। आजकल सन्तान के लिए जो तृष्णा सामान्य जन में रहती है वैसी कौस्तुभ दम्पति में नहीं थी वे यही सोचते थे कि भगवान् ने उन्हें कोई पुत्र अथवा पुत्री न देकर शायद यह अवसर प्रदान किया कि पूरे समाज के ही पुत्र-पुत्रियों को अपनी सन्तान समझें। निःसन्तान रहने से वे कभी भी अप्रसन्न न रहे वरन् दूने जोश के साथ पूर्ण समर्पित भाव से सेवा में जुट गए। सन्तान होने से उनका प्यार व सेवा का क्षेत्र सीमित हो जाता परन्तु अब तो उनका परिवार पूरा समाज बन चुका था।

वे पूरे समाज के बच्चों में ही पुत्र भाव रखकर व्यवहार करते थे। डा. कौस्तुभ में सेवा करने की उमंग यहाँ तक उमड़ी कि उन्होंने नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और मैसूर के पास ही एक पहाड़ी पर अपनी एक छोटी सी कुटिया बना वहीं रहकर वानप्रस्थी जैसा जीवन बिताने लगे। यहाँ रह कौस्तुभ दम्पति प्रतिदिन चार घण्टे मैसूर के सिविल अस्पताल में जाकर रोगियों की निःशुल्क सेवा करते थे। शेष समय में दोनों पति-पत्नी अन्य समाजसेवी कार्यों में लगे रहते थे।

एक दिन उन्होंने देखा कि एक पाँच वर्षीय क्षीणकण्ठ बालक उनके द्वार पर पीड़ा से कराह रहा है। पूछने पर उसने बताया कि उसे क्षय रोग है, उसका पिता अत्यन्त निर्धन है अतः उसे यहाँ चुपके से छोड़कर चल दिया है।

डा. कौस्तुभ समाज के निर्धन वर्ग की परिस्थितियों से तो भली-विधि परिचित थे ही, उन्हें स्थिति का तुरन्त आभास हो गया। डा. कौस्तुभ की स्वाभाविक करुणा उमड़ पड़ी व उन्होंने इस लड़के को अपने घर पर ही रख लिया। उचित उपचार तथा व्यवस्थित परिचर्या से बालक शीघ्र ही निरोग हो गया। कौस्तुभ दम्पति के संस्कार तो इस तरह के थे ही कि वे हर आत्मा में परमात्मा के दर्शन करते थे, हर मनुष्य को वे परम आत्मीय मान उसे स्नेह-प्यार-दुलार देते। इस लड़के को भी कौस्तुभ दम्पति का अपार स्नेह मिला, ये सन्तानहीन थे ही इसी बालक को इन्होंने अपना पुत्र मान ही घर पर रख लिया व इसी बालक की सेवा में वे आनन्द का अनुभव करने लगे।

फिर एक दिन विचित्र सी घटना हुई। डा. कौस्तुभ के घर एक पागल सी स्त्री रोती-बिलखती आई व कहने लगी—“डाक्टर साहब मेरा लड़का इकलौता बेटा जाने कहाँ चला गया, वह बीमारी की हालत में था जाने वह कहाँ होगा” इसी बीच डा. कौस्तुभ के घर से वह लड़का आ निकला। वह स्त्री उससे लिपटकर रोने लगी वह कहने लगी—“मिल गया मेरा लाल, यही है, यही है” स्त्री पागल तो थी ही, डा. कौस्तुभ ने उसका भी उपचार किया, वह स्त्री दो माह में ठीक हो गई। जब वह जाने लगी तो एक पलक के साथ अपने लाल को

देखने लगी। माँ का प्यार अन्धा होता है। वह बिना इस बात की चिन्ता किए डा. साहब के कितने उपकार हैं डा. साहब से बोली—

“मुझे अपना बच्चा भी साथ दे दीजिए।”

बच्चा जो अब समझदार हो चला था। यह तो जानता था कि डा. कौस्तुभ द्वारा ही नवजीवन प्राप्त हुआ है व कौस्तुभ दम्पति ने उसे अपना प्यार उड़ेलकर पाला-पोसा है। अतः वह माँ के साथ जाने में हिचक रहा था।

श्रीमती डा. कौस्तुभ एक स्त्री का हृदय पहचानती थीं। वे माँ नहीं बनी थीं तो क्या माँ का हृदय तो रखती थीं। उन्होंने आगे बढ़कर कहा, “बहिन तुम अपना बच्चा ले जाओ”। हमने जो इसके साथ उपकार किया इसके प्रत्युपकार में तुमसे इसे दूर नहीं रखेंगे। तुम्हें दुःखी कर हम कैसे सुखी रह सकते हैं। यदि हमने तुम्हारा पुत्र ले लिया तो तुम दूसरा पुत्र कहाँ से लाओगी परन्तु यदि हमने तुम्हें दे दिया तो हम तो दूसरा पुत्र खोज लेंगे। हमको ऐसी कला आती है कि समाज के किसी भी बच्चे में हम अपने पुत्रवत् प्यार रखें” महिला पानी-पानी हो गई। कौस्तुभ दम्पति का मनुष्यता के प्रति इतना प्यार, इतना दुलार अन्यत्र मिलना सहज नहीं।

दाम्पत्य सुख का प्रमुख

आधार—विवेकशीलता

विवाह के पावन सूत्र दो शरीरों को ही नहीं, दो आत्माओं को परस्पर एकाकार कर देते हैं। उनका यह मिलन सदैव सुखदायक बना रहे। प्रेम का यह पादप निरन्तर पल्लवित-पुष्पित होता रहे—दाम्पत्य सुख की सरिता अपना आकाश विस्तृत करती रहे, यह असम्भव नहीं है। विवेकशीलता से काम लिया जाय तो यह सुख-सौभाग्य सहज पाया जा सकता है। यह सौभाग्य जिसने पा लिया, वह पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का भार सहज ही वहन कर सकता है।

पति-पत्नी का प्रेम बरसाती नाले के समान अल्प-कालीन नहीं, सदा बहने वाली नदी की तरह स्थायी होता है। नदी जब पर्वतों से निकलती है तो क्षीणकण्ठ तथा तीव्रगामिनी होती है। मार्ग की चट्टानों से टकराती हुई, शोर करती हुई बहती है। उसमें जल कम और प्रवाह अधिक होता है। विवाह के आरम्भिक दिनों में पति-पत्नी के प्रेम की यही स्थिति होती है, उसमें भावुकता का प्रवाह अधिक तथा विवेकशीलता का जल कम होता है। जो पति-पत्नी केवल भावुकता का प्रवाह भर होते हैं वे बरसाती नाले की तरह शीघ्र ही सूख जाते हैं। जहाँ विवेक का जल होता है, वे निरन्तर आगे बढ़ते हुए अपने कलेवर को बढ़ाते चलते हैं।

रूप-यौवन का आकर्षण अधिक दिनों तक पति-पत्नी को बाँधकर नहीं रख सकता। रूप की अपनी कोई मर्यादा नहीं है। यह मनुष्य के मन की उपज मात्र है। एक अफ्रीकी हब्शी के लिये काला रंग, मोटे होठ तथा चपटी नाक सुन्दरता की निशानी है। एक अमेरिका निवासी गोरे व्यक्ति के लिये वह सब कुरूपता का मान दण्ड हो जाता है। चीन में छोटे पाँव सुन्दर मानते हैं। तो भारत में छोटे पाँव अशुभ माने जाते हैं। हमारे देश में काले कमर तक लहराते बाल सुन्दर माने जाते हैं तो इंग्लैण्ड में भूरे छोटे-छोटे गर्दन तक लम्बे।

रूप स्थायी भी तो नहीं होता, आयु के साथ ढल जाता है, अस्वस्थ होने पर बिगड़ जाता है। जो रूप को देखते हैं वे उसके समाप्त होने पर कैसे अपने जीवन साथी को प्यार कर सकेंगे ?

रूप देखना ही है तो मानसिक सौन्दर्य में देखना चाहिये। सच्चा परिचय तो मानसिक ही होना चाहिये। यही प्रेम का आधार होता है। इसे बढ़ाया जा सकता है। सद्बिचारों से, सद्गुणों से तथा सत्कर्मों से, मानसिक सौन्दर्य को बढ़ाते रहने से व्यक्तित्व में निखार आता है। यह निखार परस्पर प्रीति बढ़ाने में पर्याप्त होता है।

यौनासक्ति भी दाम्पत्य प्रेम का आधार नहीं हो सकती। स्त्री-पुरुष का शारीरिक अन्तर मात्र आकर्षण का केन्द्र नहीं होता। शरीर के पीछे मन भी लगा होता है। पुरुष कठोर, पस्त्रिमी, बुद्धि प्रधान होता है। स्त्री कोमल, सहनशील तथा भावना प्रधान होती है। यही अन्तर स्थूल रूप से शरीर की आकृति में भी स्पष्ट होता है।

आजकल यह भ्रान्ति बुरी तरह फैल रही है कि पति-पत्नी के प्रेम को स्थायी रखने के लिये शारीरिक समानता का रूप, रंग, गठन आदि का समान होना आवश्यक है यह नितान्त भ्रामक है। मिलन तो उनके गुणों का होना चाहिए। पति अपनी पत्नी से सहनशीलता, तथा भावनाओं का अनुदान प्राप्त करता है। पत्नी अपने पति के शारीरिक श्रम तथा बुद्धिवादिता का लाभ उठाती है। परस्पर एक दूसरे के पूरक बनकर पूर्णत्व की प्राप्ति करना ही इस विभिन्नता का परिणाम है।

शारीरिक संसर्ग की अपनी मर्यादाएँ हैं। इन मर्यादाओं को तोड़ने पर स्वास्थ्य हानि तथा मानसिक दुर्बलता का शिकार होना पड़ता है। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष के संसर्ग में जो अनूठा स्पर्श सुख का सृजन किया है। उसके पीछे एक ही कारण है कि इससे आकर्षित होकर व्यक्ति सृष्टि क्रम को चालू रखे—सन्तानोत्पादन करे। इस सुख की अनुभूति भी मर्यादित रहने में ही होती है। इस रहस्य पर आवरण पड़ा रहता है, तभी तक सुख है। शारीरिक संसर्ग से जितना बचा जाय तथा मानसिक अनुदान जितना अधिक ग्रहण किया जाय उतना ही पारस्परिक प्रेम बढ़ता है।

स्त्री-पुरुष का भेद प्रकृति ने जितना नहीं बनाया है, उतना मनुष्यों ने उसे बना दिया है। जिस प्रकार दो पुरुष परस्पर सहयोगी, भाई, मित्र, परिजन आदि होते हैं। उनमें परस्पर प्रेम होता है। यह प्रेम उच्च कोटि का भी हो सकता है। भाई-भाई के लिये सब कुछ त्याग सकता है। मित्र अपने मित्र के लिये प्राण विसर्जन करने से भी नहीं हिचकिचाता। ऐसे उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। महिलाओं में भी आपस में ऐसा ही प्रेम देखा जा सकता है।

लिंग भेद की यह धारणा मिटा दी जाय तथा पति-पत्नी एक दूसरे को अपने साथी, सहयोगी के रूप में अस्वीकार करके आपस में वैसा ही प्रेम करें तो यह प्रेम की बेल जीवन भर बढ़ती रह सकती है। शारीरिक भेद को भुलाकर किया गया यह प्रेम ही सच्चा दाम्पत्य प्रेम होता है।

सदियों से मन-मस्तिष्क में बैठी यह भावना नहीं मिट सके तो भी पत्नी को 'रमणी' स्वरूप से देखना हितकर नहीं होता। सम्बन्धों में जितना शारीरिक लगाव कम होता है प्रेम उतना ही प्रगाढ़ होता है। माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहिन आदि का प्रेम शारीरिक लगावों से रहित होने के कारण पवित्र कहलाता है तथा चिरस्थायी होता है।

पत्नी भी दिन भर माता, भगिनी की तरह ही सेवा करती है, प्रेम करती है। पति भी दिन भर पिता की तरह जी तोड़ श्रम करता है, अच्छी-अच्छी वस्तुएँ जुटाता है। यह पवित्रता जितनी अधिक बनी रहेगी उतना ही दाम्पत्य चिरस्थायी तथा आल्हादकारी बना रहेगा। 'कामिनी' के रूप में पत्नी महत्व देना पाशविक ही कहा जा सकता है। पाशविक प्रेम में स्थायित्व की आशा व्यर्थ होती है।

जीवन साथी का चुनाव स्वयं ने किया हो अथवा अभिभावकों ने, उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। दाम्पत्य जीवन की सफलता तथा परस्पर प्रेम का विकास करने का दायित्व दोनों पर होता है।

विवाह के पश्चात् दोनों के सुख-दुःख एक हो जाते हैं। हमारे देश में पुरुषों का काम उपार्जन तथा स्त्री का काम गृह संचालन माना जाता है। यह कार्य विभाजन शारीरिक, मानसिक क्षमताओं को दृष्टिगत रखकर किया गया है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक दम्पति इसका पालन करे। एक दूसरे की सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए इसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है। इसमें एक दूसरे का सहयोग भी रहना चाहिए। इस प्रकार का सहयोग प्रेम में वृद्धि करता है, पति पत्नी के घर के कामों में हाथ बैठा दे, तो उसे परम सुख मिलता है। इसी प्रकार पत्नी पति के व्यापारादि कामों में सहयोग परामर्श दे सकती है।

पति-पत्नी को एक दूसरे का यथार्थ रूप लेकर चलना आवश्यक है। मनुष्य में गुण-दोष होने स्वाभाविक हैं। गुणों में एकदम वृद्धि तथा दोषों को एकदम मिटाना

सम्भव नहीं। जैसा भी यथार्थ स्वरूप एक दूसरे का है उसी के अनुरूप एक दूसरे से आशा रखी जाय। पति यदि नारी की आदर्श प्रतिमा को अपने मन-मस्तिष्क में बिठाये रखे व अपनी पत्नी से वैसा ही व्यवहार चाहे। पत्नी भी पति के ऐसे ही आदर्श स्वरूप को लेकर चले और पति को उस कसौटी पर कसे तो दोनों के हाथ निराशा ही लगती है। प्रेम के स्थान पर कटुता का आरम्भ होने लगता है। यथार्थ स्वरूप को सामने रखकर चलने से वे एक दूसरे की आशा से अधिक ही स्नेह-सहयोग देते हैं तथा परस्पर प्रेम बढ़ता है।

कोई पक्ष यह नहीं चाहता है कि वह अनुपयोगी सिद्ध हो। पति के हाव-भाव, क्रिया-कलाप तथा थकान द्वारा इस बात की पुष्टि होती रहे कि पत्नी उसके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है, उसकी आवश्यकता जैसी विवाह के समय थी वैसी ही आज भी है तो पत्नी की दृष्टि में उसका सम्मान बढ़ जाता है। यही पत्नी के व्यवहार से भी झलके कि उसे अपने पति वैसे ही लगते हैं जैसे विवाह के समय लगते थे तो दाम्पत्य स्नेह के सूत्र और भी दृढ़ हो जाते हैं।

इस उपयोगिता को जताने के लिये प्रशंसा करना—प्रेम प्रदर्शन करना आवश्यक है। यह क्रिया जितनी बार दोहराई जायेगी, परस्पर नवीनता तथा आकर्षण बना रहेगा। प्रशंसा करने में इस बात का ध्यान रहे कि प्रशंसा कार्यों की तथा गुणों की हो। शरीर तथा सौन्दर्य की प्रशंसा शारीरिक आकर्षण को जन्म देती है। सत्कार्यों तथा गुणों की प्रशंसा एक दूसरे का सम्मान तो बढ़ाती ही है साथ ही साथ उनकी और वृद्धि करने का उत्साह भी जगाती है।

मनुष्य से भूल होना अस्वाभाविक नहीं। भूल पति से भी होती है तथा पत्नी से भी। भूलों को सुधारना भी आवश्यक होता है। भूल सुधार का क्रम भी प्रशंसा की तरह ही चलता रहना आवश्यक है। किन्तु सुधार का यह क्रम इस प्रकार का न हो कि एक दूसरे के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचे। भूल-सुधारने, स्वीकारने के लिये वही पक्ष सामने आये, जिसने भूल की हो तो सराहनीय ही कहा जायगा। ऐसी स्थिति में दूसरा पक्ष उसके इस साहस की प्रशंसा करे तो उसके मन पर इसका अच्छा प्रभाव तो पड़ेगा ही साथ ही अपने जीवन साथी पर उसे गर्व भी हो आयेगा। भूल या गल्ती करने वाला उसे स्वतः स्वीकार न करे तो दूसरे को सहन कर लेना ही ठीक रहता है। यदि सह सकने योग्य न हो तो उसे अपनी भूल विनम्र शब्दों में बता दे, जिससे कि उसे बुरा न लगे।

पति-पत्नी के स्वभाव तथा रुचि में भिन्नता हो सकती है। विवाहोपरान्त यह भिन्नता पूरी तरह मिटाना आवश्यक नहीं होता। एक दूसरे को समझ लेना, एक दूसरे की रुचि तथा स्वभाव का ध्यान रखना ही पर्याप्त

होता है। एक दूसरे की रुचि तथा स्वभाव का सम्मान करने से उनके हृदय में परस्पर सम्मान बढ़ जाता है। ये असमानताएँ या तो स्वतः समाप्त हो जाती है या एक दूसरे की आदत में आ जाती है।

पति-पत्नी कर्तव्य से तो बँधे ही होते हैं। भावनाएँ भी उन्हें बाँधती हैं। एक दूसरे की भावनाओं को समझ लेना तथा उनका सम्मान करना दाम्पत्य रूपी भवन की नींव होती है। यह प्रवृत्ति दोनों के हृदयों में मधुरता की सरिता बहाती रहती है। जरा से इंगित पर या बिना कुछ कहे अपने जीवन साथी की इच्छाओं को जान लेने तथा तदनु रूप आचरण करने वाले दम्पति एक दूसरे के सर्वस्व हो जाते हैं।

जो दम्पति एक दूसरे की भावनाओं को समझने में असमर्थ होते हैं, उनका परस्पर स्नेह घटता जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि वे एक दूसरे को चाहते हुए भी प्रेम नहीं दे पाते। ये बातें साधारण सी होती हैं किन्तु महत्वपूर्ण होती हैं। एक दूसरे के लिये कोई उपहार लाने, सेवा करने आदि में जो समर्पण की भावना जुड़ी होती है उसको समझा न जाय, उसे प्रशंसा के जल से सींचा न जाय तो यह प्रेम-बेलि सूखने लगती है।

पति-पत्नी का प्रेम एक सुन्दर, सुसज्जित प्रासाद होना चाहिए। प्रेम के इस पथ में खण्डहरों का कोई मूल्य नहीं होता, खण्डहरों में निराशा, दुःख, शोक, क्लेश, उत्पीड़न आदि कीड़े-मकोड़े, उल्लू व चिमगादड़ निवास करते हैं। जीवन भर साथ निभाने तथा पुलकते, हँसते-खेलते अपने पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों को निभाते रहने वालों का प्रेम ही सुरम्य प्रासाद कहा सकता है, जिससे स्नेह, सौजन्य, आशा, उत्साह, दया, प्रसन्नता, श्री, मेधा आदि सत्पुरुष निवास करते हैं। ऐसे सुरम्य प्रासाद मिलकर ही समाज रूपी सुन्दर नगर का निर्माण करते हैं। यह तभी हो सकेगा जबकि पति-पत्नी ऐसा विवेक अपनायेंगे।

हमारे सम्बन्ध—स्नेह-सौहार्द्रपूर्ण कैसे

रहें ?

परिवार में सभी सदस्य एक रुचि और एक प्रकृति के नहीं रहते। यों किसी भी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के पूर्णतः अनुकूल होना सम्भव है भी नहीं। पर अन्य व्यक्तियों में व्यवहार से इसलिए कोई कठिनाई नहीं होती कि उनसे थोड़े ही समय के लिए सम्पर्क करना पड़ता है। इसलिए रुचि और प्रकृति में विभिन्नता रहते हुए भी सम्बन्धित कार्यों में सामंजस्य बन जाता है और कोई अड़चन नहीं आती। पर परिवार में यदि समझदारी से काम न लिया जाय तो इस वैविध्यता के कारण बड़ी कठिनाई आ जाती है और संदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता तथा तनाव आ जाता है। फलतः घर नरक बन

३.५७ गृहस्थ एक तपोवन

जाते हैं। घर के लोगों को किसी कार्यविशेष के कारण तो एक दूसरे से सम्पर्क नहीं करना पड़ता। उनका तो जीवन ही परिवार का जीवन बन जाता है। घर में माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, चाचा-चाची और नौकर आदि विभिन्न सम्बन्ध और विभिन्न स्तर के सदस्य होते हैं। अपनी आदतों और रुचियों में तालमेल रखते हुए यदि सभी सदस्य अनाक्रमक ढंग से रहें तो परिवार का वातावरण स्वर्गोपम बन जाता है। यदि इसके विपरीत स्थिति बन जाती है तो परिणाम भी उल्टे होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि परिवार के सभी सदस्य अपने सम्बन्धों को स्नेह-सौहार्दपूर्ण बनायें और घर में स्वर्गिक आनन्द की सृष्टि करें।

इसके लिए विधिवत् एक आचार संहिता बनाई जा सकती है और उस पर अमल किया जा सकता है। परिवार में स्नेह-सौहार्द की सृष्टि के लिए हमें प्रत्येक सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए विचार करना पड़ेगा। सर्वप्रथम हम पिता और पुत्र के सम्बन्धों को लें—पिता और पुत्र का सम्बन्ध परिवार में सर्वाधिक घनिष्ठ और दायित्वपूर्ण है। पिता को अपने पुत्र के प्रति कई दायित्वों का निर्वाह करना होता है तो पुत्र को भी अपने पिता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी हैं। पर इनके सम्बन्धों में ही सबसे ज्यादा कटुता उत्पन्न होती देखी गयी है। छोटे बच्चों और अवयस्क पुत्रों की बात अलग है, जो पूर्णतया पिता पर ही आश्रित हैं, पर वयस्क युवकों में अपने पिता के प्रति सम्मान की भावना बड़ी तेजी से लुप्त होती जा रही है, पुत्र बचपन में अपने पिता के सभी व्यवहारों को चाहे वे वांछनीय हों अथवा अवांछनीय नासमझी के कारण अथवा मजबूरी से सहता चला जाता है। पर बगवत का बीजारोपण उन्हीं व्यवहारों के दरम्यान हो जाता है, जो समय आने पर फूट पड़ते हैं। अतः उचित यह है कि पिता-पुत्र के प्रति अपने व्यवहार को विवेकपूर्ण बनाये।

यदि पिता अपने पुत्र के हृदय में स्वयं के लिए श्रद्धा भी उत्पन्न कर सकता है और पुत्र के लिए प्रेरणा-स्रोत तथा पथ-प्रदर्शक भी बन सकता है। एक पश्चिमी लेखक—कैक्सटन ने अपने पिता के संस्मरण लिखते हुए कहा है—‘मैं औरों के साथ सैर-सपाटे, खेलने और मछली का शिकार करने के आनन्द को छोड़कर, अपने पिता के साथ बाहर बगीचे में चहार-दीवारी के सहारे चहलकदमी करना अधिक पसन्द करता था। वे कभी तो चुप रहते, कभी बीती बातों को सोचते हुए आगे की बातों की चिन्ता प्रकट करते, पर जिस समय वे अपनी विद्या के भण्डार को खोलने लगते तथा बीच-बीच में चुटकुले सुनाते हुए हँसी का भी पुट देते तो मुझे अपूर्व आनन्द मिलता था।’ आगे कैक्सटन ने लिखा है कि थोड़ी-सी कठिनाई आने पर भी मैं अपने

पिता के पास जाता था और अपने हौसलों तथा आशाओं को उनके सामने कहता था। वे उनमें नई प्रेरणायें भर दिया करते।

पिता-पुत्र के सम्बन्धों में कड़ुआहट के बीज वहाँ जमना शुरू होता है, जहाँ पिता समझने लगता है कि वह अपने बेटे का ‘भाग्य विधाता’ है। वह जी रहा है तो उसी की बदौलत और उसे इसके लिए मेरा गुलाम रहना चाहिए। प्रेम जीवन में मधुरता भरता है, पर स्मरणीय है कि उसमें अधिकारी होने की भावना कहीं नहीं रहती। अधिकारी भावना की बुनियाद अहं पर खड़ी होती है और अहं अपनी जरा भी उपेक्षा सहन नहीं करता। इसलिए पिता को जब कभी यह अनुभव होता है कि पुत्र उसकी उपेक्षा कर रहा है, तो उसका क्रोध फूट पड़ता है और यह प्रवृत्ति पुत्र पर अपना दुष्प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती।

इधर वयस्क पुत्र भी अपने स्वाभिमान को समझने लगता है और आशा करता है कि उससे इसी तरह का व्यवहार किया जाय कि उसके अहं को ठेस न पहुँचे। पर पिता २५ साल के नौजवान को भी ५ वर्ष के अबोध शिशु जैसा समझता है तथा यह भी अपेक्षा करता है कि मेरा पुत्र आज भी उसी तरह मेरी आज्ञाओं का पालन करे। दोष केवल पिता का ही नहीं है पुत्र भी गलत! धारणाओं और बुरी संगति में पड़ जाने के कारण अपने पिता को समुचित सम्मान देने से कतराता है। ऐसी स्थिति में पिता और पुत्र के सम्बन्ध को सौहार्दपूर्ण बनाये रखने में पं. रामचन्द्र शुक्ल का यह सुझाव सर्वथा उपयुक्त है। उन्होंने लिखा है—‘पुत्र को अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए तथा पिता के पास अपने से ज्यादा अनुभव होने, उनके उन दुःखों का जिनको उसके लिए उठाया गया है, सदैव ध्यान रखना चाहिए। पुत्र को पिता के स्वाभाविक बड़प्पन को स्नेहपूर्वक खुले दिल से स्वीकार करना चाहिए, तो पिता को भी अपने पुत्र का व्यक्तित्व स्वीकार करते हुए उस पर ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए।’

उत्तरदायित्वों के कारण पिता का स्वरूप जितना श्रद्धेय है, उतना ही गारिमामय स्वरूप माँ का स्नेह और सेवा के कारण है। जो पुत्र अपने पिता की उपेक्षा करता है, माँ की सद्भावना भी स्वाभाविक रूप से उसके प्रति कम होने लगती है। माँ को स्नेह और ममत्व के कारण चाहे जितना महिमा-मण्डित किया जाय, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि वह माँ होने से पहले पत्नी है। पुत्र के साथ उसके सम्बन्ध तभी जुड़े हैं, जबकि पति से रिश्ता जुड़ा। लाख भावुक और स्नेहशीलता होते हुए भी स्त्री अपने पुत्रों के कारण अपने पति की उपेक्षा नहीं करती। स्वयं के सम्मान में पहले वह पति के सम्मान की आकांक्षा करती है। अतः माता और पुत्रों के सम्बन्ध भी

उन्हीं परिस्थितियों में मधुर और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं, जिन स्थितियों में कि पिता और पुत्र के।

माता-पिता के अतिरिक्त परिवार में भाई भी रहते हैं। यदि संयुक्त परिवार है तो भाई-भाई एक ही घर में होंगे और विघटित परिवार है तो अलग-अलग। इन दोनों ही स्थितियों में जो भी हों—भाई-भाई का सम्बन्ध तो रहता है और भाई से यदि सम्बन्ध अच्छे और सुदृढ़ हों तो पारिवारिक एकता का मधुरिम दृश्य सामने आता है। आजकल संयुक्त परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। जो हैं, वे भी विघटन की ओर अग्रसर हैं। यह एक अति उपयोगी व्यवस्था नष्ट होती जा रही है, जिसे बचाया जाना चाहिए। इसके विघटन का कारण भाई-भाई के बीच उत्पन्न होने वाली कटुता की दीवार है। इसी कारण एक ही घर में दीवार खिंच जाती है और जरा-जरासी बातों में झगड़ा बढ़ जाता है। सामान्यतः भाइयों में परस्पर मनमुटाव के लिए ये कारण जिम्मेदार होते हैं—

- (१) जायदाद का बँटवारा, (२) पिता का एक पर अधिक स्नेह और दूसरे पर कम, (३) स्थिति में भेद अर्थात् एक भाई का पढ़-लिखकर अधिक योग्य तथा सम्पन्न हो जाना और दूसरे का कम योग्य रहना, (४) मिथ्या अभिमान और बड़प्पन की भावना, (५) पत्नियों का परस्पर मन न मिलना।

जायदाद के बँटवारे, पिता द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति के विभाजन को लेकर ८० प्रतिशत मनमुटाव होते हैं। उचित यह है कि बँटवारा न्यायपूर्ण होना चाहिए और किसी को कम तथा किसी को ज्यादा नहीं मिलना चाहिए। यह एक अलग से समाधानकारक बात है। इसके अतिरिक्त किसी को यह भी नहीं सोचना चाहिए कि अमुक को पिता का अधिक स्नेह मिला है तथा मुझे कम। वस्तुतः पिता को न तो कोई सन्तान कम प्यारी होती है और न कोई ज्यादा। उसका प्यार सभी पर समान रूप से होता है। यह जरूर हो सकता है कि एक सन्तान को पहले अधिक सुविधायें मिली हों और दूसरी को कम प्राप्त हुई हों। या पहली सन्तान का कम लाड़-प्यार हुआ हो और पिछली सन्तानों को अधिक दुलार मिले। इसमें परिस्थितियाँ ही कारण हैं, जो समय-समय पर बनती और बिगड़ती रहती हैं। इसके लिए न पिता को दोषी ठहराना उचित है और न इस कारण से वैमनस्य ही पैदा करना।

उपरोक्त कारणों में से किसी भी कारण से मनमुटाव या तनाव पैदा होता दिखाई दे तो बड़े भाई का अधिक दायित्व हो जाता है। कई स्थानों पर बड़े भाई को पिता के बराबर भी देखा गया है। उसे चाहिए कि वह पूर्ण शान्ति और विवेक से अपने अनुज को मनोवृत्ति का अध्ययन करे, सूक्ष्म दृष्टि से उसकी देखभाल करे तथा उत्पन्न तनाव का हल खोजे। भाई का महत्व

रक्त-सम्बन्ध के कारण आत्मिक स्तर का होने से और भी बढ़ जाता है। दोनों में एक आत्मा तो है ही, रक्त और शरीर भी एक से ही तत्वों से बने हैं, भावनायें तथा संस्कार भी लगभग एक जैसे ही होते हैं। यदि किन्हीं कारणों से सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा होता है तो दो ही बातें समझ में आती हैं, उन कारणों के तौर पर—पहली तो यह कि कहीं सोचने-समझने के तरीके में भूल हुई जा रही है और दूसरी यह कि कोई तीसरा व्यक्ति षड्यन्त्रों में रुचि ले रहा है। समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो भाई-भाई में फूट डाल कर अपना मतलब हल करने की बात सोचते हैं।

यह भी कोई जरूरी नहीं कि सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा करने वाला कोई बाहर का व्यक्ति ही हो। वह पत्नी भी हो सकती है और अक्सर तो भाई-भाई में मनमुटाव करने में पत्नियों का ही ज्यादा हाथ रहता है। अच्छे वातावरण से दूर संस्कारहीन परिवारों में पत्नी हुई स्त्रियों में ईर्ष्या विकार बेहद भरा होता है और वे छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने पतियों के कान भरा करती हैं तथा देवर-जेठ को भी खरी-खोटी सुनाती रहती हैं। उनकी बातों में तो नहीं ही आना चाहिए, साथ ही पत्नी के इस दुर्गुण को भी दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। यदि बातों को केवल अनसुना ही करते रहा जाय तो विग्रह की कुसम्भावना को अधिक देर तक टालते नहीं रहा जा सकता। आखिर एक न एक दिन उन बातों की ओर ध्यान चला ही जायेगा और तनाव पैदा हुए बगैर नहीं रहेगा। अतः ईर्ष्या को दूर करने के लिए हर घड़ी सजग और सतर्क रहना चाहिए। स्मरण रहे, भाई आपका सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा हितैषी है। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। यदि दो भाई मिल-जुलकर अग्रसर हों तो हर कोई देखता रह सकता है। छोटा भाई अपने बड़े भाई में पथ-प्रदर्शक, हितैषी एवं संरक्षक की प्रतिच्छाया देख सकता है तो बड़ा भाई अपने छोटे भाई से सहयोग, ब्रह्मा और परामर्श की अपेक्षा रखता है।

अन्त में आता है अपिभावक और सन्तानों का सम्बन्ध सूत्र। यद्यपि इस सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत चर्चा पिता-पुत्र के प्रकरण में कर दी गई है। पर मातृ-पितृ भी अपनी सन्तान के प्रति अनिवार्य रूप से जिम्मेदार हैं। सन्तान का आगमन दायित्व तो बढ़ाता है, वह दायित्व कितनी कुशलता के साथ पूरा किया जाता है, यही बात परिवार के सुखद वातावरण तथा बच्चों के भविष्य-निर्माण से सम्बन्ध रखती है। सन्तान के प्रति अपना स्नेह सच्चा और निष्कृष्ट रखना चाहिए, उसमें न तो अनुचित लाड़-प्यार हो और न अत्यन्त ही कठोर मशीनी-अनुशासन।

सन्तान के लिए न केवल जीवन की सुख-सुविधाओं तथा इच्छापूर्ति के साधनों की व्यवस्था की जाय, वरन् उन्हें ऐसी शिक्षा और ऐसे संस्कार देने की भी चेष्टा की जाय, जिससे वे अच्छे और सुयोग्य नागरिक के रूप में विकसित हो सकें। इनके लिए घरेलू वातावरण को इस तरह का बनाये रखना जरूरी है, जिसमें बच्चों का मानसिक संस्थान, उनकी आदतों और उनके संस्कार भली-भाँति निर्मित और विकसित हो सकें। सन्तान सामान्यतः अपने माता-पिता की ही अनुकृति होती है। वे उन्हीं का अनुकरण करते हैं। अतः बच्चों के साथ साफ-सुथरा और समझदारीपूर्ण व्यवहार करने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अपनी आदतों एवं प्रवृत्तियों को भी एक आदर्श के रूप में ढालकर खड़ा किया जाय। बच्चों के साथ किया गया व्यवहार एवं उनमें डाले गये संस्कार ही भविष्य के परिवारों की पृष्ठभूमि बनाते हैं।

हमें यदि संयुक्त परिवार और आदर्श-परिवार बनाने हैं तो दोनों उद्देश्यों के लिए वर्तमान रीति-नीति का पुनरीक्षण करना चाहिए तथा देखना चाहिए कि इसमें कहाँ त्रुटि हो रही है तथा कहाँ सुधार की आवश्यकता है ? परिवार संस्था राष्ट्र-भवन में लगी हुई वह ईंट है, जिसकी मजबूती पर भवन की मजबूती और सुदृढ़ता निर्भर करती है। उस ईंट में प्रयुक्त तत्व जितनी मजबूती के साथ सम्बद्ध होंगे, परिवार का भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा।

बड़ी उम्र में पिता बनना चाहिए

अधिक आयु में संतानोत्पादन करना कई दृष्टियों से लाभदायक है। प्रो. ग्रीम हीक ने इस सम्बन्ध में गहरी खोजबीन की है और उन्होंने अनेक सबूतों के आधार पर सिद्ध किया है कि नई उम्र के लड़कों से जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह उजड़ड़, मूर्ख एवं दुर्गुणी होती है। कारण यह है कि नई उम्र के युवकों का शारीरिक और मानसिक विकास बहुत कम होता है, इसलिए उन अविकसित युवकों की सन्तान भी महत्वपूर्ण सदगुणों से वंचित रह जाती है।

अनेक किस्से-कहानियों में ऐसी गाथायें मिलती हैं जिनमें किसी पिता के बड़े बेटे को अल्प बुद्धि और छोटे बेटे को बुद्धिमान बताया जाता है। सच-मुच यह तथ्य ठीक है। अधिक आयु वाले पुरुष से जो बच्चा उत्पन्न होता है, वह अपेक्षाकृत अधिक पराक्रमी और प्रतिभाशाली होता है। बीस बाइस वर्ष से कम उम्र के पिताओं की सन्तान स्वास्थ्य की दृष्टि से भी निर्बल होती है और मानसिक दृष्टि से भी। बाइस से तीस वर्ष तक की उम्र के पिताओं के बच्चे खूब तन्दुरुस्त होते हैं और साधारणतः होशियार भी होते हैं। तीस से ऊँची उम्र के पिता द्वारा प्रखर बुद्धि के बालक पैदा होते हैं। चालीस से ऊपर की आयु में उत्पन्न हुआ बालक स्वास्थ्य की

दृष्टि से कुछ हल्का भले ही रहे पर बुद्धि में असाधारण होता है।

प्रो. ग्रीम हीक ने अपनी पुस्तक में असंख्य प्रमाण एकत्रित करके प्रकाशित किये हैं, जो आयु सम्बन्धी उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं। गेटे, स्पिलर, शेक्सपियर, रैफल्, एवार्ड मैकले, गोल्ड स्मिथ, फेड्रिक दी ग्रेट, ग्रान्ट, सिकन्दर, नेपोलियन, रूजवेल्ट आदि महापुरुष अथेड़ माता-पिताओं के रज वीर्य से पैदा हुए थे। चालीस से पचास वर्ष के बीच की आयु में उत्पन्न हुए बालक देश के नेता, धुरंधर विद्वान, गम्भीर एवं बुद्धिमान होते हैं। प्रिंस विस्मार्क, क्रामवेल, ग्लेडस्टोन, कीटो जैसे प्रतिभाशाली पंडित ढलती उम्र के पिताओं से पैदा हुए थे। जेलखानों में बन्द अपराधियों की दूँद-खोज करने से जाना गया है कि उनमें से तीन-चौथाई ऐसे हैं जो किशोर अवस्था के पिताओं के वीर्य से उत्पन्न हैं, कारण यह है कि चढ़ती उम्र में शाररत और नासमझी अधिक होती है इसलिए यह गुण सन्तान में भी उतर आते हैं।

कुछ विशेष उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती। ऐसे उदाहरणों के बारे में जाँच करने पर पता चलता है कि उनके माता-पिता असाधारण रूप से बाल्यकाल में ही वृद्धों जैसी बुद्धिमत्ता संग्रह कर चुके थे, या फिर वह जन्मा हुआ बालक पूर्व जन्मों के कोई विशेष संस्कार अपने में लिये हुए हो, यह भी हो सकता है कि नई उम्र की सन्तान बुद्धिमान निकल आवे और ढलती उम्र की मूर्ख या दुर्गुणी निकले। परन्तु ये अपवाद हैं जो थोड़े से ही होते हैं।

आधुनिक शोधें जितनी खोज और गहराई के साथ की जाती हैं, उतना ही प्राचीन स्वर्ण सिद्धान्तों के समीप पहुँचती जाती है। शास्त्रकारों में दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य रखने और बड़ी उम्र में सन्तानोत्पादन करने का आदेश किया है। उसके असंख्य लाभ हैं। उन लाभों में से एक लाभ यह प्रकाश में आया है कि सन्तान ऐसी उत्पन्न होती है जो माता-पिता को सन्तोष दे सके, उसे पाकर उनका मन सन्तुष्ट हो जाय।

कामोत्तेजना का जितना जोश पच्चीस वर्ष से नीचे होता है, उतना आगे चलकर नहीं रहता इसलिए इससे अधिक आयु में विवाह करने पर अमर्यादित वीर्यपात करने की मूर्खता उतनी नहीं होती। विवेक की मात्रा बढ़ने से वे उच्च्यंखलताएँ नहीं होतीं जिनकी नई उम्र में अधिक सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त वीर्यरक्षा से शारीरिक एवं मानसिक बल बढ़ने का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है।

काम के साथ शारीरिक वासनाएँ जोड़ना अहितकर

विवाह व्यवस्था स्त्री-पुरुष को पति-पत्नी बनाकर उनकी शारीरिक वासनाओं को संयमित करने के लिये बनायी गयी है न कि कामोपभोग की खुली छूट देने के लिए। प्रकृति ने पशु पक्षियों पर तो अपना नियन्त्रण रखा है कि वे उसकी व्यवस्था के अनुसार ही कामोपभोग कर सकें। मनुष्य पर ऐसा अंकुश इसलिये नहीं रखा गया कि वह पशुओं की अपेक्षा अधिक विवेकयुक्त और संयम समर्थ है।

वैवाहिक जीवन में काम और वासना को पृथक्-पृथक् करके चलना ही उसके उद्देश्यों को रखा करना है। न तो भारतीय सभ्यता संस्कृति में ही विवाह का अभिप्राय शारीरिक वासनाओं की अबाधतृप्ति माना गया है और न ही पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति में, वरन् सभी धर्मों में, सभी संस्कृतियों में विवाह को धर्म कृत्य व मानवीय गौरव और गरिमा के अनुरूप जीवनयापन करने में एक साथी का चयन करना ही रहा है।

सन्तानोत्पादन के लिए शारीरिक संसर्ग अनिवार्य हो सकता है किन्तु वैवाहिक सम्बन्धों के पारस्परिक प्रेम के लिये—पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम के लिए इसे आवश्यक मानना नितान्त भ्रामक है। किन्तु दुर्भाग्य से इन दिनों कुछ इस प्रकार की विकृत धारणाएँ लोगों के मन में बनती जा रही हैं कि कामोपभोग भूख लगने पर भोजन करने की तरह ही आवश्यक है। मल-मूत्र विसर्जन की तरह वीर्य विसर्जन भी एक सहज स्वाभाविक क्रिया है। इस मान्यता ने जितना अनिष्ट मानव समाज का किया है, उतना शायद ही किसी रूढ़ परम्परा ने किया हो। किन्तु आज का शिक्षित और अशिक्षित व्यक्ति दिन पर दिन इस पर विश्वास करके पति-पत्नी के बीच सम्भोग की अनिवार्यता पर बल देता जा रहा है।

ऐसी विकृति मान्यताओं का श्रीगणेश कुछ सिर-फिरे मनोवैज्ञानिकों ने किया है जो आज छूट के रोग की तरह फैलता ही जा रहा है। अब तो बाहरी देशों में नौबत यहाँ तक पहुँच गयी है कि शारीरिक तृप्ति के लिए पति-पत्नी का रिश्ता देखना ही आवश्यक नहीं रह गया है। कहना न होगा कि यह मनुष्य की सभ्यता का प्रतीक नयी-बढ़ती हुई पशुता का द्योतक है।

काम का अर्थ होता है मानसिक आल्लाह प्राप्त करना, अपने आपको प्रसन्न रखना व अपने सहभागी की प्रसन्नता में वृद्धि करना। काम से अभिप्राय क्रीड़ा होता है और उसकी उत्पत्ति होती है प्रसन्नता से। प्रसन्नता शरीर की वस्तु नहीं, मन और आत्मा की वस्तु होती है।

आयु परिपक्व होने पर जीवन साथी की जो कामना मन में जागती है, उसमें शारीरिक वासना का लेश मात्र

अंश भी नहीं होता है। किन्तु सामाजिक वातावरण व इधर-उधर की सुनी सुनाई बातें, गन्दे और कुत्सापूर्ण पूर्वाग्रह मन में जो विचार उत्पन्न कर देते हैं वे उसे शारीरिक वासना से संयुक्त करके विकृत कर देते हैं। प्रायः देखा जाता है कि विवाहोपरान्त पति-पत्नी के बीच बरसाती नाले की तरह शारीरिक आकर्षण का प्रवाह बह निकलता है। शरीर की वासनाओं की तृप्ति तो कभी होती नहीं। इस अनियन्त्रित कामोपभोग का दुष्परिणाम शरीर को खोखले होने और मानसिक शक्तियों के इस रूप में परिलक्षित होता है।

इस असंयम का सबसे बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है पत्नी को। विवाह होने के बारह-तेरह महीने बाद ही उसकी गोद में एक बालक आ जाता है। वह अपने आपको पत्नीत्व के ढाँचे में तो ढाल ही नहीं पायी थी कि माँ बन जाना पड़ता है। जिसके लिये न तो उसका शरीर ही तैयार होता है और न मन ही। पति भी नहीं चाहता कि वह इतनी शीघ्र पिता बन जाय। उसके और पत्नी के बीच एक तीसरे प्राणी के आ जाने के कारण वह यदि पत्नी के शरीर से ही प्यार करता रहा है तो उसके माँ बन जाने पर उससे वितृष्ण हुए बिना नहीं रहता। यहाँ तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने जैसी उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

मनुष्य जीवन के चार उद्देश्यों में से काम भी एक है। विवाह काम को धर्म सम्मत बनाता है। काम मनुष्य का एक सहज स्वभाव है, जो उसे पुरुषार्थ के लिये प्रेरित करता है। काम से शारीरिक संसर्ग की कोई विशेष संगति नहीं। पति-पत्नी के साहचर्य सुख में काम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह जब संयम में बँध जाता है तो साहचर्य, सुख की श्रीवृद्धि करता है किन्तु यही काम जब असंयमित और विकारग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य की पशु प्रवृत्तियों को भड़काने का काम करता है।

स्त्री, पुरुष की जननेन्द्रिय आँख, नाक, कान जैसी ही कोमल और मार्मिक होती है। इसको इतना संवेदनशील, कोमल और मर्म स्थल बनाने का प्रकृति का यही अभिप्राय रहा है कि इसका उपयोग साल-छह महीने में ही किया जाना चाहिए अन्यथा उनके क्षतिग्रस्त और रोगग्रस्त हो जाने का भय रहता है। जो लोग इनके इस महत्व और प्रकृति को नहीं जानते और इनसे अन्धाधुन्ध काम लेते हैं, उन्हें यौन रोग हो जाते हैं। लोगों के शीघ्र पतन, सुजाक, धातु दोर्बल्य के रोगों के पीछे उनकी यह अत्यधिक कामोपभोग की वृत्ति ही मुख्य कारण होती है। स्त्रियों में श्वेत प्रदर व रक्त प्रदर का रोग भी इसी कारण होता है।

इस सम्बन्ध में पुरुष अधिक दोषी होते हैं। स्त्रियाँ तो बेचारी उनकी वासना की शिकार होकर मुफ्त में ही रोग ग्रस्त हो जाती हैं। जाने क्यों लोग ऐसा सोचने

३.६१ गृहस्थ एक तपोवन

लगते हैं कि वे इसी की भूखी होती हैं या उन पर अपने पौरुष की धाक जमाने के लिए वे इसे आवश्यक समझते हैं। विवाह होते ही अब तक यत्नपूर्वक संचित कोष को वे अन्धाधुन्ध खर्च करने लगते हैं। यौवन की शारीरिक शक्ति के कारण उसका कुप्रभाव शीघ्र तो दृष्टिगोचर नहीं होता पर जब होता है तो उनके लिये पछताने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता।

अमेरिका, स्वीडन, जर्मनी आदि देशों में जहाँ यौनाचार सम्बन्धी सभी मर्यादाओं को ताक पर रख दिया गया है, यौन रोगों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। इन देशों के युवक-युवतियाँ यौवन के आरम्भ में ही खूब मुक्त यौनाचार करके खोखले ही हो जाते हैं, इससे यह परिणाम होता है कि वे जब सन्तान की कामना करने लगते हैं, तो स्वयं को उसके असमर्थ पाते हैं। पुरुष पिता बनने योग्य नहीं रहता और स्त्री माँ बनने के अयोग्य हो जाती है। ऐसी स्थिति में उन्हें भारत जैसे देशों के अनाथालयों से बच्चे गोद लेने पड़ते हैं।

सामान्यतः स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक संयमी और काम दक्ष होती हैं। वे अपने प्रेम को प्रदर्शित करने का जंगली तरीका शारीरिक संसर्ग पसन्द नहीं करती। सामिप्य, वार्तालाप, सेवा, दर्शन, दृष्टि-विनिमय हास-परिहास, सेवा आदि के द्वारा ही वे अपना प्रेम प्रदर्शित करती हैं। लज्जा उनका स्वाभाविक गुण होता है किन्तु पुरुष प्रायः उन्हें समझने में भूल करता है और वह उत्तेजित हो उठता है। क्रूरता और कठोरता पुरुष में ही अधिक होती है। उसकी उन प्रवृत्तियों के नियमन के लिये ही उसे नारी के साहचर्य में बाँधा जाता है किन्तु वह उसका अर्थ समझ नहीं पाता है।

उत्तेजना किसी भी प्रकार की हो वह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक क्षमताओं का ह्रास करती है। उत्तेजित अवस्था में हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। हारमोन्स के स्राव का क्रम बिगड़ जाता है। स्नायुओं पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। क्रोध के समय मनुष्य उत्तेजित होता है, तब भी यही प्रक्रिया होती है और जब वह कामातुर होता है तो भी यही स्थिति बनती है। यह उत्तेजना मनुष्य के लिए बहुत घातक सिद्ध होती है। बार-बार उत्तेजित होने पर स्नायुओं की क्षमताओं में ह्रास होता है वह बहुत हानिकारक होता है। क्रोध करने वाले को क्रोध की आदत पड़ जाना इसी का परिणाम है, अधिक कामोपभोग करने वालों को भी ऐसी ही आदत पड़ जाती है, जो शरीर को महत्वपूर्ण तत्व वीर्य को नष्ट करता है। वीर्य रक्त से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। चोट लगने पर अधिक रक्त बह जाने पर व्यक्ति जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार अधिक वीर्य नाश से भी मनुष्य की हालत अधमरे की सी हो जाती है। वह न तो मरता ही है न जी ही पाता है।

लज्जा मात्र नारी की ही शोभा नहीं है। लज्जा पुरुष के लिये भी उपयोगी है। लज्जा वस्तुतः अच्छी आदत है। लज्जा की वह दीवार स्त्री-पुरुष के बीच बनी रहनी चाहिए, चाहे वे पति-पत्नी ही क्यों न हों। हम शरीर के अंगों को वस्त्रों में छिपाकर रखते हैं जिनके अनावृत्त रखने से हम जंगली, असभ्य और पशु कहलाते हैं। उस लज्जा को अनावृत्त करना जिस प्रकार नारी को स्वीकार नहीं होता वैसे ही पुरुष को भी नहीं होना चाहिए।

कोई भी यह पसन्द नहीं करता कि दूसरे उसे जंगली समझें। यदि यह थोड़ा विचार करे तो जिस समय व्यक्ति कामोपभोग में प्रवृत्त होता है, तो उस समय उसकी स्थिति पशु की सी हो जाती है, उसे अपने उन अंगों को भी अनावृत्त करना होता है, जिन्हें वह किसी भी स्थिति में अनावृत्त करना नहीं चाहता। वैसे ही क्रिया-कलाप करता है जो केवल एकान्त में ही किये जा सकते हैं। क्योंकि वे पशुतापूर्ण ही लगते हैं। फिर पत्नी के सामने ही या पति के सामने ही क्यों अपने आपको असभ्य या जंगली सिद्ध किया जाय।

मनुष्य पशुओं से उच्च है। वह पशुओं की सी असभ्यता करे तो यह उसके लिये शोभाजनक नहीं। अपने जीवन साथी के प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिये प्रकृति ने उसे सुविकसित मस्तिष्क, वार्तालाप करने के लिये जिह्वा, भाषा, भाव प्रदर्शन, संवेदनशील हृदय अन्तःकरण आदि प्रदान किये हैं, फिर वह पशुओं के से घटिया प्रेम प्रदर्शन पर उतर आये तो इसे उसकी मूर्खता, असभ्यता ही कहना चाहिए।

गाय अपने बच्चे को चाटकर प्रेम प्रदर्शित करती है। लेकिन मानवी को अपने बच्चे को चाटकर प्रेम प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह अपने हाव-भाव, क्रिया कलाप, वार्तालाप, भावना आदि से उसे प्रदर्शित कर देती है। पति-पत्नी के बीच में ऐसा ही क्रम चलता रहना चाहिए। इसी से उनका पारस्परिक सेवा, सहयोग, मैत्री, वार्तालाप, मनोविनोद, त्याग, बलिदान, संरक्षण, स्नेह, सहिष्णुता, एकनिष्ठता आदि के द्वारा एक दूसरे को प्रसन्न रखना चाहिए। यह एक दूसरे को प्रसन्न रखना ही काम की सच्ची अभिव्यक्ति है। यह वह अमृत है जिसे छक कर पीने की तृषा एक दूसरे को निकट लाती है। इस अमृत में शारीरिक वासनाओं की मिलावट करना दाम्पत्य की सफलता के मार्ग में बाधक ही बनती है।

मानसिक परिचय बढ़ना ही सुखी दाम्पत्य के लिये हितकर होता है, शारीरिक परिचय नहीं। शरीर को महत्व देना और शारीरिक आकर्षणों में बँधना अहितकर होता है क्योंकि शरीर का आकर्षण स्थायी नहीं होता वह तो समय, आयु और शारीरिक स्थिति के साथ बदलता रहता है। शरीर से बँधे रहने वालों का प्रेम भी वैसा ही